प्रकाशक
© रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
४८७२, चादनी चौक, दिल्ली

मूल्य : १२ ५०

मुद्रक
बालकृष्ण, एम० ए०
युगान्तर प्रेस, डफरिन पुल, दिल्ली

पूज्यचरण गुरुदेव
आचार्य पं० नन्ददुलारे जी वाजपेयी

को

सादर समर्पित

'क्या ले गुर संतोपिए, हौंस रही मन माँहि'

भूमिका

हिन्दी साहित्य विभिन्न दिशाओ मे इतनी शीघ्रता से उन्नति कर रहा है और उसका रूप इतना व्यापक तथा सर्वाङ्गीण बनता जा रहा है कि उस पर अधिकारपूर्वक कुछ लिखने का उत्तरदायित्व किसी एक व्यक्ति को नही, वरन् अनेक विशेषज्ञो के समूह को ही सौंपा जा सकता है। बन्धुवर श्री रामचन्द्र जी मिश्र के विद्वत्तापूर्ण निबन्ध को यत्र-तत्र पढते हुए मुझे पग-पग पर अपनी दयनीय अयोग्यता तथा सर्वथा अधूरे ज्ञान का परिचय अवश्य मिलता रहा। मैं निरन्तर यही सोचता रहा कि इस प्रकार की जिम्मेवारी मुझ पर क्यो डाली गई है ? शायद इसका कारण यह हो सकता है कि हिन्दी मे स्वच्छन्दतावादी युग के प्रवर्तक कविवर श्रीधर पाठक का मैं कृपापात्र था और सन् १९२० मे पन्द्रह-बीस दिन तक उनकी सेवा मे उपस्थित होकर मैंने उनके जीवनचरित का मसाला भी इकट्ठा किया था। अपने अस्त-व्यस्त जीवन के कारण जिस यज्ञ को मैं आज तक पूरा नही कर सका, उसे बन्धुवर मिश्रजी ने अधिकाश मे और बडी सफलतापूर्वक पूर्ण कर दिया है। मुझे यह बात ईमानदारी के साथ स्वीकार करनी पडेगी कि जिस सूक्ष्म विश्लेषण शक्ति तथा असाधारण परिश्रम के साथ उन्होंने अपने कर्तव्य का पालन किया है, उसका दशाश भी मुझमे नही।

हाँ, रचनाओ के पीछे जो व्यक्तित्व होता है उसके चित्रण मे मेरी रुचि अवश्य रही है। इस दृष्टि से मैंने इस ग्रन्थ के सातवें, आठवें और नवें अध्याय को देखा और उन्हे अपने मे इतना सर्वाङ्गपूर्ण पाया कि मैं उनको अलग से पुस्तकाकार मे छपाने की जोरदार सिफारिश करूँगा। यदि भविष्य में कभी पाठक जी के ग्रथो का सग्रह छपाया जाय तो ये अध्याय उसकी भूमिका का काम भलीभाँति दे सकते हैं। पर इस योग्यतापूर्ण निबन्ध मे एक त्रुटि मुझे दीख पड़ी और छिद्रान्वेषण की दृष्टि से नही, बल्कि सर्वथा सद्भावनापूर्वक उसकी ओर लेखक तथा पाठको का ध्यान आकर्षित कर देना चाहता हूँ। 'पाठक जी के पत्र' नामक विषय को केवल ढाई पृष्ठो मे समाप्त कर इस विषय

के प्रति अनजाने मे कुछ अन्याय कर दिया गया है। बस, इस कमी की पूर्ति के लिये ही पाठक जी के कुछ पत्रों के अश यहाँ दिये जाते हैं। हाँ, लेखक ने पाठकजी के ५-७ पत्र सातवें अध्याय मे अवश्य दे दिये हैं।

'विशाल भारत' मे स्वर्गीय बालकृष्ण जी भट्ट के सुपुत्र श्री लक्ष्मीकान्त जी भट्ट का एक लेख श्रद्धेय पुरुषोत्तमदासजी टडन के विषय मे प्रकाशित हुआ था और उसे हमारे पत्र के कितने ही पाठको ने पसन्द किया था, क्योकि वह सुन्दर रेखाचित्र का एक असाधारण नमूना था और उससे भट्टजी की साहित्यिक योग्यता का, जो उन्हे अपने पिताजी से विरासत मे मिली थी, पता लगता था। इस लेख को पढकर श्रीमान पाठक जी ने मुझे अपने २६ फरवरी सन् १६२८ के पत्र मे लिखा था —

"Pt Lakshmı Kant Bhatt's वह कौन हैं has genuınely pleased me Please let me know hıs Calcutta address I suppose he and hıs brother जनार्दन भट्ट and the rest of the famıly are at present ın Calcutta I wısh to wrıte to them The note वह कौन हैं has awakened many memorıes ın my mınd and touched tender cords of my heart"[1]

पाठक जी का स्वर्गीय बालकृष्ण भट्ट से घनिष्ठ सम्वन्ध था और इसलिये स्वभावत लक्ष्मीकान्त भट्ट उनके स्नेहपात्र थे। भट्ट जी ने उनको एक पत्र लिखा था उसकी प्रतिलिपि उनके अक्षरो मे अगले पृष्ठ पर दी जा रही है।

अपने प्रमाद के कारण मैं स्वर्गीय सत्यनारायण का जीवन-चरित पाठक जी की सेवा में नही भेज सका था। उसका जिक्र पाठक जी ने अपने २२-३-२७ के कृपा-पत्र में इस प्रकार किया था —

"स्वर्गीय स० ना० क० र० की 'जीवनी', मालूम होता है, प्रकाशित हो गई। इसकी आपको बहुत-बहुत बधाई। हम समझते थे कि उसकी एक पोथी ईं जानिब भी आवेगी लेकिन शायद यह गलतफहमी थी।

हमारे लडके ने हमारी बीमारी मे आपके दो बडे-बडे पत्रो के उत्तर आपको

---

१. अर्थात् "पडित लक्ष्मीकान्त भट्ट के 'वह कौन हैं' नामक लेख से मुझे हार्दिक हर्ष हुआ है। कृपया उनका कलकत्ते का पता मुझे बतलाइये। मेरा खयाल है कि वे, उनके भाई जनार्दन भट्ट और शेष कुटुम्बी इस समय कलकत्ते मे रह रहे हैं। मैं उन्हें पत्र लिखना चाहता हूँ। 'वह कौन हैं' नामक लेख ने मेरे मस्तिष्क मे कितनी ही स्मृतियाँ जाग्रत करदी हैं और मेरे हृदय के कोमल तारों को झंकृत कर दिया है।"

भेजे थे, वे शायद आपके पास नही पहुँचे। अब हम बीमारी से मुक्त है। बीमारी बडे समारोह की थी। उसने अपना खूब जल्वा दिखाया।"

श्री
प्रणतय:
कविवर श्रीधर क्यों न कहाँय —
जिनकी स्वीकृति बिन बहुत इक ग्रंथ —
सरस रसीली कविता पाथ —
दुख को आन जेहि नाहिं माथ —
[illegible]
[illegible]
श्री जार्ज भूप की महिमा गान —
करि हैं सब हमहूं लै तान —
धन्यवाद कहि बारं बार
पठवहुँ स्वीकृति पत्र उदार
बालवृद्ध - बालकृष्ण
31-1-12

---

३ मार्च सन् १९२० को मैंने एक पत्र श्री पाठक जी की सेवा मे भेजा था, जिसमे मैंने उनका जीवन-चरित लिखने का विचार प्रगट किया था। पाठक जी का उत्तर यहाँ दिया जाता है।

श्री पद्मकोट
६/३/१९२०

प्रियवर बनारसीदास जी, नमस्कार।

जबसे आपका ३/३ का अनुग्रहपत्र आया है मैं बराबर श्वास से आक्रान्त रहा हूँ। कल दाँत मे भी असह्य पीडा उत्थित हुई थी। ये सब शीघ्र ही आने वाले कूच की सूचनाए हैं। आपकी सतत सुकृत्यपरता सचमुच आपके प्रकृत महत्व की द्योतिनी है। आप अवश्य उन सदात्माओ मे हैं, जिनकी इस देश को अपने उद्धार के लिये इस समय इतनी आवश्यकता है।

आपकी लिखी हुई जीवनियाँ मुझे सभी पसन्द हैं, परन्तु विशेषत तोताराम वाली रुचती है। सबसे अधिक उपयोगी भी वही हुई है। मेरी अधम जीवनी भी आप लिखना चाहते हैं, इस प्रस्ताव के विरुद्ध मुझे बहुत कुछ वक्तव्य है, परन्तु मुझे प्रतीत होता है कि वह सब व्यर्थ जायगा, अत मैं निषेध न करूँगा। जब आगामी गर्मी की छुट्टियो मे आप यहाँ पधारियेगा तभी जो कुछ निवेदन करना है कर दूंगा। परन्तु श्वास रोग से शीघ्र निवृत्त होने की सभावना मुझे नही दीखती। परन्तु अभी अर्सा बहुत है, जैसी दशा होगी सूचित कर दूंगा। इस रोग से मेरी अनेक सासारिक क्षतियां हो रही है। पर बस क्या है!
"हानि, लाभ, जीवन, मरन, जस, अपजस, विधि हाथ।"

जीवनियो के सम्बन्ध मे मेरा स्थिर मत यह है कि साहित्य मे स्थान केवल उन्ही जीवनियो को मिलना चाहिये, जो साहित्यिक दृष्टि से रुचिर होने के अतिरिक्त सच्चे लोकोपकार की क्षमता भी रखती हो। अत प्रत्येक प्रस्तावित जीवनी के कतिपय निश्चित अगो को आचार्यों द्वारा निर्धारित या निर्मित कसौटी पर पहले अवश्य परख लेना चाहिये। धृष्टता क्षमा कीजियेगा— कृपैषी

श्रीधर पाठक

चू कि श्रद्धेय पाठक जी मेरे पूज्य पिताजी के सहपाठी रहे थे, इसलिए मुझ पर उनका विशेष स्नेह था और मेरे विषय मे उन्होने जो भाव उपरोक्त पत्र मे प्रकट किये थे, उन्हे मैं आशीर्वाद ही मानता था। उनका एक अन्य हस्तलिखित पत्र मैं यहाँ दे रहा हूं, जिसमे मेरे प्रति उनकी स्नेहाशीष स्पष्ट व्यक्त होती है—

श्रीप्रयाग,
30-8-29

प्रियवर, बौत दिनन ते दरसन परसन नायं भये। अबतो फिरोजाबाद ई रैत हौ? ऐमदाबाद च्यों छोड़ि दयौ? इत माऊ ई कबऊ आइबो होगो?

कबऊ कबऊं तौ चिट्ठी डारि दैबो करौ? उतमाऊं ऋतु तो अच्छी होइगी - मो दिगी तौ नायं फैली? अबके पिराग में पानी अच्छौ तरे नायं बरसौ -

श्री० पा०

पोता भुजा कैसो है रहो है? नाम लिखियो -

जव सन् १९१८ मे मेरी पुस्तक 'प्रवासी भारतवासी' प्रकाशित हुई तो श्री पाठक जी ने अत्युक्तिमयी भापा मे उसका स्वागत किया था। मैंने उस पुस्तक पर अपना नाम नही दिया था और वह मेरे उपनाम 'भारतीय हृदय' के नाम से प्रकाशित हुई थी। पाठक जी के शब्द सुन लीजिये :—

"यह ग्रथ जो भारतीय हृदय की सहृदयता का उदय है, ऊँचे चित्रो की वृत्ति को अपने वृत्त से वलात् वाहर खीच ले जाता है ' 'प्रवासी भारतवासी' भारत के स्यापे का सगीत है, उसकी जगत्प्रसरित पर-वशता का प्रणव नाद है। इसके सकलन मे 'भारतीय हृदय' ने जो श्रम किया है उसमे भारत सहज उऋण नही हो सकता······इत्यादि।"

अपने ३–१–२५ के पत्र मे उन्होंने एक वाक्य लिखा था वह उनकी पत्र-लेखन शैली का द्योतक है। "आपकी लोकसेवा प्रवृत्ति अवलोक हृदय मे उत्कृष्ट आलोक सृष्ट होता है।"

वस्तुत. गद्य लिखते समय पाठक जी की लेखन-शैली मे कभी-कभी भारी-भरकमपन आ जाता था, पर पद्य या कविता मे वह वात नही थी। वहाँ सहज स्वाभाविकता तथा अकृत्रिमता ही रहती थी।

यहाँ प्रोफेसर रामदास जी गौड का एक पत्र तथा पाठक जी द्वारा दिया गया उसका उत्तर ये दोनो उद्धृत किये जाते हैं —

सावन सुदी तृतीया छिहत्तरि साल
पियरी वडी, वनारस वाग मुहाल

कविवर, गे वहु दिनवा
मिले उ न हाल।
सुमिरि कवहुँ एक छिनवा
किहेउ निहाल॥
करत अनेकन कजवा
अतिसइ व्यस्त।
भूलउँ कवि - सिरतजवा
करहु गुदस्त॥
आपन लिखहु कुसलवा
लरिकन केर।
सुमिरि सो ,चहल पहलवा
हिय दुख ढेर॥

का प्राप्तस्थान मूल्यादि से परिचय दे इस शरीर को अनुग्रहीत करके अति शीघ्र ही प्रमुदित करेंगे।

कृपाकांक्षी
मैथिलीशरण,
चिरगाँव
(झांसी)

अन्त मे कविवर श्रीधर पाठक जी की कुछ कविताओ के वे अश उन्ही के अक्षरो मे उद्धृत किये जाते हैं, जो उन्हे और मुझे प्रिय थे। पाठक जी से मैंने प्रार्थना की थी कि वे मेरी नोट-बुक मे उन कविताओ को अपने हाथ से लिख दें, जो मुझे प्रिय हैं और कुछ अपनी प्रिय कविताएँ भी उद्धृत कर दें। पाठक जी ने अस्वस्थ होते हुए भी मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। ये कविताए वनाष्टक, एकान्तवासी योगी, देहरादून यात्रा, काश्मीर सुखमा, घन विजय इत्यादि से ली गई हैं।

१।

झिल्ली झरें झनकार कहूँ,
फुसकारत साँपिन रोस भरी
पट घुग्घू डरावने बोलत बोल,
बिलापैं बिलार घरी पै घरी
कहुँ फूकत स्यार हैं, भूकत ल्यार,
लरैं लटैं लरि लास भरी
निसि भीषन भाव भयौ या मन कौ,
बनवास की वासना नास करी

० ० ०

गाते थे वन ! पावन तू ही,
तपस्वियों का तप-अभ्यास था
जग तत्व की खोज में लग्न जहाँ,
ऋषियों ने आगम किया श्रम था
जब भारत विश्व का निश्रम औ था,
सात्विक जीवन का क्रम था
महिमा बनवाले की थी तब और,
अगाध पवित्र अनुपम था

◇ ◇ ◇

ज्ञान पिटारे की गुण-गाथा साधु कहाँ तक मैं गाऊँ
गाते गाते थके नहीं वह, लाखों में भी चुक जाऊँ
लिख निकाई विधि ने उस में की एकत्र बटोर
वारि छीटें त्रिभुवन धन उस पर गारों काम करोड़

◇ ◇ ◇

नमो नमो गिरि-तनया, अद्भुत वारि
सुरधुनि भारत-जनया, अघ तट वारि
नमो ब्रह्म-द्रव रूपिणि, भेद-कुठार
तरल तरंग स्वरूपिणि, गग-सुधार
तारिणि सगर-सुअनवा, स्वर्ग-नसैनि
बसहु सदा मो मनवा, सब सुख-दैनि

◇ ◇ ◇

त्यों रहे जुरि बदेसवा बहु नर नारि
बहु-स्वभाव, बहु-भेसवा, बहु-अनुहारि
इन महँ कोउ सदगुनवा कोउहिन दिखाय
यहि सन करत बातनवा मन बहलाय

◇ ◇ ◇

लसत लहलही जहाँ सघन सुन्दर हरियारि
तहँ अब ऊसर महँ भई नासि गई निकारि

◇ ◇ ◇

यही स्वर्ग सुरलोक यही सुर कानन सुन्दर
यहि अमरन को ओक यही कहुँ बसत पुरन्दर

◇ ◇ ◇

हे धन! जिन देसन महँ काए बासा बीति गई
‡ फिरहु कहाँ भरमाए, का यह रीति नई ?

◇ ◇ ◇

स्वर्गीय पाठक जी ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनो के आचार्य थे। वे जौंघरी ग्राम के, जो हमारे जन्मस्थान फीरोजाबाद से आठ मील दूर है, निवासी थे और उनकी शिक्षा फीरोजाबाद मे ही हुई थी और हम लोग—फीरोजाबादी—इस बात में एक प्रकार के गौरव का अनुभव करते हैं कि हम भी उसी नगर के निवासी हैं, जिसे उन्होंने कभी पवित्र किया था।

बन्धुवर मिश्र जी के इस ग्रंथ से केवल पाठक जी के विषय मे ही नही तत्कालीन अन्य लेखको और कृतियों के विषय मे भी अधिकाधिक जानने की इच्छा उत्पन्न होती है। ग्रन्थ की सफलता का यही रहस्य है। साहित्य सेवियो की कीर्तिरक्षा एक पुण्य कार्य है—एक यज्ञ है, और इस ग्रन्थ के सुविख्यात

प्रकाशक ने इस यज्ञ मे योग देकर प्रशसनीय कार्य किया है। मैं इन दोनो महानुभावो का कृतज्ञ हूँ, क्योकि इन्होंने इस अवसर पर पूज्य पाठक जी को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने का अवसर मुझे भी प्रदान किया।

९९, नार्थ ऐवेन्यू
नई दिल्ली
१४-४-५९

बनारसीदास चतुर्वेदी

प्राक्कथन

डा० रामचन्द्र मिश्र की यह पुस्तक आगरा विश्वविद्यालय के लिए लिखे गए उनके पी-एच डी. प्रबन्ध का परिवर्तित रूप है। इसमे कुछ अध्याय कम कर दिये गए हैं, कुछ का सक्षेप कर दिया गया है। प्रयत्न यह रहा है कि पुस्तक भारी-भरकम और भयावनी न बन जाय, लोग उसे पढ़ें, समझें और उपयोग करें। आकार के सभ्रम मे न पडकर पक्ष या विपक्ष मे सम्मति दें। चर्चा चलती रहे, रुचि बनी रहे। यही किसी पुस्तक की मुख्य सार्थकता है। हमे प्रसन्नता है कि प्रबन्ध लिखते समय और पुस्तक के लिए उसे सक्षिप्त करते समय भी डा० मिश्र ने हमारी सलाह और परामर्श से काम लिया है। पी-एच. डी के लिए विषय का चुनाव भी उनके लिए मैंने ही किया था और उनके समस्त कार्य की निगरानी भी मैं ही करता हूँ। अब उनके अथक परिश्रम को पुस्तक रूप मे प्रकाशित होते देखकर मेरी प्रसन्नता स्वाभाविक ही नही अनिवार्य है।

हिंदी साहित्य के इतिहास मे सन् १८७५ से १९२५ तक का समय अनेक दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। इस पचास वर्ष के काल-खड मे भारतेन्दु और द्विवेदी जी के नाम से दो युग आते और व्यतीत होते हैं। साधारणत इतने थोडे समय मे इतने बडे साहित्यिक युगो का आरम्भ और अवसान आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। इसके कारणो की खोज आवश्यक हो जाती है। भारतेन्दु-युग के साहित्य में कतिपय ऐसी स्वच्छन्द प्रवृत्तियाँ मिलती हैं जो आगे चलकर द्विवेदी-युग मे अवरुद्ध सी हो जाती हैं। रचनात्मक साहित्य की दिशा मे प्रगति के स्थान पर एक प्रत्यावर्तन भी दिखाई देता है। कुछ अन्य तत्व द्विवेदी-युग के साहित्य मे अवश्य आते हैं, पर वे भारतेन्दु-युगीन-साहित्य को नया वेग न देकर एक मोड ही देते हैं। वैसी स्थिति में द्विवेदी-युग को भारतेन्दु-युग का एक अतर्वर्ती अध्याय ही क्यों न माना जाय, उसे स्वतन्त्र युग का गौरव किस आधार पर दिया जाय।

इसके अतिरिक्त एक अन्य समस्या भी हमारे समक्ष थी। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतेन्दु जी के रहते-रहते ठाकुर जगमोहनसिंह तथा उनके कुछ ही पश्चात

प० श्रीधर पाठक की स्वच्छन्दतावादी कृतियाँ प्रकाशित होने लगी थी। बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे यह स्वच्छन्दतावादी धारा गुप्त और हरिऔध जैसे कवियो के नीतिवादी काव्य-प्रवाह मे पडकर विलीन होती जा रही थी। यद्यपि रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पाडेय आदि की काव्य-कृतियो ने उसे एकदम लुप्त होने से बचाया, पर इस स्वच्छद धारा के बीच-बीच मे टूट-टूट जाने से इसका अविरत प्रवाह साहित्यिकों की दृष्टि से ओझल होता रहा जिससे हिन्दी साहित्य मे आधुनिक स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो का उद्गम और विकास बहुत कुछ अस्पष्ट ही बना रहा। उसे स्पष्ट करने की आवश्यकता थी, और प्रस्तुत पुस्तक मे डा० मिश्र ने यही कार्य किया है।

मिश्र जी का विषय-क्षेत्र सन् १८७५ से १९२५ तक का काव्य ही रहा है अतएव आधुनिक छायावादी या रहस्यवादी काव्य से उस क्रमागत स्वच्छदतावादी काव्य का सबध निरूपण करना उनकी कार्य-सीमा के बाहर पड गया है। परतु उनके सपूर्ण अनुशीलन की परिणति इसी तथ्य की ओर इगित करती है कि जगमोहनसिंह और श्रीधर पाठक का काव्य ही पत, निराला जैसे नये स्वच्छदतावादियों की (जिन्हे छायावादी भी कहते हैं) पीठिका और प्रेरणा-भूमि रही है। यूरोप और खासकर इगलैंड मे जिस प्रकार शेली, कीट्स और वर्ड्सवर्थ आदि के आगमन के पूर्व ही स्वच्छदतावादी पूर्व-सूचनायें मिलने लगी थी, और अनेक कवि 'रोमैंटिक प्रिकर्सर्स' के नाम से इतिहास मे परिगणित हो गए हैं, उसी प्रकार छायावादियो के पूर्व-पुरुषो के रूप मे जगमोहनसिंह तथा पाठक जी जैसे कवियो की गणना होनी ही चाहिए।

ऊपर निर्देशित विकास-क्रम आज भले ही अधिकाश साहित्यिको द्वारा स्वीकार कर लिया गया हो, पर आज से कुछ वर्ष पूर्व इस विषय मे कोई स्पष्ट जानकारी न थी बल्कि काफी बडा मतभेद भी था। आचार्य रामचद्र शुक्ल जैसे सर्वमान्य पडित भी नये छायावादियो को पाठक जी अथवा जगमोहनसिंह की प्रकृत स्वच्छदतावादी परपरा मे स्वीकार करने को तैयार न थे। वे प्रसाद, निराला और पत द्वारा प्रवर्तित छायावादी काव्य को एक साम्प्रदायिक वस्तु मानने के पक्ष मे थे। जो कुछ हो, साहित्यिक इतिहास की इस स्थिति को स्पष्ट करने की आवश्यकता थी और प्रस्तुत पुस्तक मे उसे स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। यह पुस्तक सन् १९२५ मे आकर समाप्त हो जाती है। एक अन्य पुस्तक या प्रबध की आवश्यकता रह जाती है जो '२५ के आगे के स्वच्छंदतावादी काव्य-विकास को १९५० तक ले जाकर उसकी परिणति तक पहुँचा दे।

इस दूसरे प्रबंध में ही पूर्व-स्वच्छन्दतावादी और उत्तर-स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्तियों का समुचित संबंध-निरूपण किया जा सकेगा। अच्छा हो यदि स्वयं डा० रामचंद्र मिश्र अपने आगामी कार्य के लिए इस विषय का वरण करें।

कहने की आवश्यकता नहीं कि डा० मिश्र की यह पुस्तक नये और अज्ञात तथ्यों पर भी प्रकाश डालती है। उन्होंने केवल विभिन्न काव्य-प्रवृत्तियों का ही स्पष्टीकरण नहीं किया है, जगमोहनसिंह और विशेषकर श्रीधर पाठक की संपूर्ण कृतियों का धारावाहिक अनुशीलन और विवेचन भी किया है। अब तक इन कवियों पर इतनी विस्तृत विवेचना कहीं उपलब्ध न थी। मिश्र जी ने शास्त्रीय और स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं के बीच जो विभाजक रेखाएँ ढूँढ निकाली है, वे भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इससे स्पष्ट है कि मिश्र जी में न केवल दौड़-धूप कर चीजों को ढूँढ निकालने की शक्ति है, उनमें वस्तुओं के सूक्ष्म विवेचन करने की सामर्थ्य भी है। इसके अतिरिक्त हिन्दी गद्य के भी वे एक अभ्यासी लेखक हैं।

हमें आशा ही नहीं विश्वास भी है कि मिश्र जी के इस साहित्यिक प्रयास और परिश्रम का उचित मूल्य आँका जायगा। हम अपनी ओर से उनकी इस कृति के प्रकाशन के लिए उन्हें हार्दिक बधाई देते हैं।

सागर विश्वविद्यालय
१५-३-५६

—नन्ददुलारे वाजपेयी

वक्तव्य

हिन्दी के आधुनिक काव्य की प्रगति मे छायावादी-रहस्यवादी-धारा का विशेष महत्व है। सच तो यह है कि हिन्दी की क्रमागत काव्य-परम्परा को आधुनिक छायावादी और रहस्यवादी काव्य की असाधारण देन है। अपनी भावधारा और अभिव्यजना-शैली से इसने हिन्दी के अन्तरग एवं बहिरग सौंदर्य मे उल्लेखनीय अभिवृद्धि की है।

छायावादी एव रहस्यवादी काव्य व्यापक रूप से स्वच्छन्दतावादी काव्य-शैली का ही एक विशेष उन्मेष है। इस स्वच्छन्दतावादी काव्य की स्पष्ट रूप-रेखा १९२५ ई० से हिन्दी काव्य मे परिलक्षित होने लगती है। अनन्तर १९४० ई० तक इस काव्यधारा के अन्तर्गत इतनी महत्वपूर्ण रचनाएँ हुईं कि हिन्दी-साहित्य मे समृद्धि का एक नया युग ही आ गया। इस महत्वपूर्ण काव्य-धारा और काव्य-शैली के मूल स्रोत क्या हैं और वे कब से और कहाँ से उद्भूत हुए हैं, यह जिज्ञासा साहित्य के विद्यार्थी के लिए अत्यन्त स्वाभाविक और अनिवार्य है। छायावादी-रहस्यवादी काव्य को यदि हम स्वच्छन्दतावादी काव्य कहे, तो १८७५ ई० से १९२५ ई० तक के पचास वर्ष के काल मे अनेक कवि और काव्य-प्रवृत्तियाँ ऐसी मिलती हैं जिन्हे पूर्व-स्वच्छन्दतावादी कवि और पूर्व-स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति या भावधारा कह सकते हैं। पूर्व-स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्तियो के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक अध्ययन को ही मेरा यह प्रबन्ध प्रस्तुत करता है। इस युग मे प० श्रीधर पाठक का व्यक्तित्व विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसलिये पाठक जी को अनुशीलन का विशेष विषय बना लिया गया है।

काव्य के स्वच्छन्दतावादी तत्व पाठक जी के पूर्व ठाकुर जगमोहन सिंह एव उनके परवर्त्ती कवियो मे भी उपलब्ध होते हैं। परवर्त्ती कवियो मे विशुद्ध स्वच्छन्दतावादी भावना के दृष्टिकोण से रामनरेश त्रिपाठी का काव्य भी महत्वपूर्ण है। फलत. इन सभी कवियो की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के प्रसाद, पन्त, निराला एव महादेवी आदि प्रमुख कवियो को उनके उस स्वरूप मे उपस्थित करने का श्रेय एक विशेष अर्थ में ठाकुर जगमोहन सिंह, श्रीधर पाठक, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', रूपनारायण पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी, बदरीनाथ भट्ट एव मुकुटधर पाण्डेय आदि को है।

हिन्दी की छायावादी धारा के समान अग्रेजी काव्य का रोमाटिक नवोन्मेष (Romantic Revival) भी महत्वपूर्ण है। यह नवोन्मेष थोडे-थोडे कालान्तर से योरुप के जर्मनी, फ्रास, रूस एव इगलैण्ड आदि प्रदेशो मे प्रस्तुत हुआ था। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य के समान ही अग्रेजी के रोमाटिक 'नवोन्मेष युग' के प्रमुख कवि वर्ड्सवर्थ, बायरन, शेले एव कीट्स आदि, पूर्व-रोमाटिक युग के टॉमसन, कॉलिन्स, ग्रे, काउपर, गोल्डस्मिथ, बर्न्स एव ब्लेक आदि कवियो के काव्यो पर ही अपने काव्य-भवन की भित्ति बना पाये थे। इस प्रकार दो भिन्न देश होते हुए भी हम देखते हैं कि दोनो देशो के पूर्व-स्वच्छन्दतावादी युग के काव्य का अस्तित्व अपने देश के विशेष काव्य के लिये महत्वपूर्ण रहा है। इन दोनों देशो के पूर्व-स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रगति मे काफी साम्य भी है। फलत योरुपीय प्रदेशों मे स्वच्छन्दतावादी भावना की प्रगति और इगलैंड के पूर्व-स्वच्छन्दतावादी युग के प्रमुख कवियो की भी चर्चा इस प्रबन्ध के परिशिष्ट भाग मे कर दी गई है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण तथ्यो के आधार पर ही 'हिन्दी के प्रारम्भिक स्वच्छन्दतावादी काव्य तथा विशेषत प० श्रीधर पाठक की कृतियो का अनुशीलन' शीर्षक से यह शोध-प्रबन्ध आगरा विश्वविद्यालय मे प्रस्तुत किया गया था। हिन्दी काव्य का यह अग अभी तक विवेचको द्वारा अछूता सा रहा है। फलत मेरा प्रस्तुत प्रबन्ध हिन्दी-विवेचना के इस अभाव की पूर्ति का एक विनम्र प्रयास है। विश्वास है कि हिन्दी-काव्य की आरम्भिक स्वच्छन्दतावादी भाव-धारा के सम्बन्ध मे मेरा यह अध्ययन उपयोगी सिद्ध होगा।

उपर्युक्त विषय आगरा-विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० डिग्री के लिए स्वीकृत किया गया था। अब वही प्रबन्ध आवश्यक परिवर्तन और परिशोधन के पश्चात् इस पुस्तक के रूप मे प्रकाशित किया जा रहा है। तत्सम्बन्धी सपूर्ण शोध-कार्य मैंने गुरुवर आचार्य प० नन्ददुलारे वाजपेयी के निरीक्षण में सम्पन्न किया है। उनके सत्परामर्शों एव प्रोत्साहनो की अभिप्रेरणाएँ यदि मुझे सुलभ न होती तो यह प्रबन्ध इस रूप में पूर्ण करना कठिन ही नही असम्भव था।

इस प्रबन्ध की सामग्री का संचय और आकलन करने मे ठा० जगमोहनसिंह विषयक साहित्य के लिए ठा० श्री व्रजमोहनसिंह और श्री रामेश्वरप्रसाद गुरु का और प० श्रीधर पाठक के सम्पूर्ण साहित्य, वंशीय परम्पराओ एव अन्य उपयोगी वृत्तो के लिए मैं श्री वाग्धर पाठक, सुश्री ललिता पाठक और श्री पद्मधर पाठक का कृतज्ञ एव चिरऋणी हूँ।

श्री पद्मधर पाठक ने, जो इस समय द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत दिल्ली विश्वविद्यालय मे इतिहास-विभाग के रिसर्च स्कॉलेर हैं, मेरे शोध-कार्य को विश्वस्त रूप से पूर्ण करने के लिए कितने ही दुष्प्राप्य अंशो की प्रतिलिपियाँ भेजी, जिनका मैंने श्रीधर पाठक की जीवनी मे उपयोग किया है। असन्दिग्ध रूप से यदि उनका सहयोग मेरे साथ न रहा होता तो तद्विषयक मुझे बडी ही कठिनाइयाँ पडती और भटकना पडता। मैं इस कृपा के लिए उनका चिर आभारी हूँ।

प्रस्तुत प्रबन्ध के लिए श्रद्धेय प० बनारसीदास चतुर्वेदी ने भूमिका एव गुरुवर आचार्य प० नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्राक्कथन लिखने की कृपा की है। उनकी भावनाओ से मेरे अकिंचन अध्ययन को प्रोत्साहन एव एक नवीन दिशा तो मिल ही रही है, किन्तु उनसे इस प्रबन्ध मे गरिमा भी समाहित हो उठी है, यह ध्रुव सत्य है। मैं उनका स्नेह-भाजन रहा हूँ, इससे सदैव की भाँति आज भी मैं उन पण्डितजनो के समक्ष सभक्ति और सादर प्रणत हूँ।

श्री रामनवमी, २०१६ — रामचन्द्र मिश्र

विषय-सूची

अध्याय ८

अध्याय ९

अध्याय १०

परिशिष्ट—१

परिशिष्ट—२



गुरुवर आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी जी

अध्याय १

भूमिका एवं विषय-परिचय

विषय-प्रवेश

समाज और साहित्य का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। प्रत्येक अपने अस्तित्व के लिये दूसरे की अपेक्षा करता है। किसी भी राष्ट्र के जातीय जीवन और सास्कृतिक नस्थान के यथातथ्य अध्ययन के लिये यदि इनमे से किसी एक को भी टटोल कर उसका समुचित विश्लेपण कर लिया जाय, तो हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है, क्योकि दोनो के निर्माण के मूल मे मानवीय भावनाओ का प्रमुख स्थान है। भावनाओ के अनुकूल ही इन दोनो के स्तर होते हैं। मानवीय भावनाएँ अवाध रूप से सृजित होती रहती हैं। इसमे किसी भी प्रकार का व्यतिक्रम नही होता। फलत सभ्यता के आदि क्षणो से अद्यपर्यन्त भावनाओ की एक लडी का अन्वीक्षण किया जा सकता है। साहित्य 'सत्य-शिव-सुन्दर' को लेकर चलता है। फलस्वरूप साहित्य मे समाज का कल्याण और मगल भी निहित रहता है। इस प्रकार अपने मागलिक उद्देश्य एव लोक-व्यापी प्रभाव के कारण वह विश्व मे विशेपरूपेण वरेण्य और प्रत्येक युग का प्रतीक है।

हिन्दी का उपलब्ध साहित्य उपर्युक्त सभी तथ्यो का सम्पोपण करता है। वीरगाथा-काल के चारण-साहित्य मे प्राप्त होने वाली युद्ध की घटनाएँ, तत्कालीन इतिहास और मान की रक्षा के लिये युद्ध मे वीरत्व के चित्र, राजपूत राजाओ की जातिगत भावनाओ को व्यक्त करते हैं। साहित्य के पूर्व-मध्यकाल मे आध्यात्मिक भावनाओ का बाहुल्य हो उठता है। चारण-काव्य के नायक अधिपतियो का स्थान भारतीय महाकाव्यो के नायक राम और कृष्ण ले लेते हैं। जुलाहा 'राम नाम का मरम है आना' की अनुभूति कर ब्रह्म के निर्गुण और निराकार रूप का आलाप कर उठता है और सूफी प्रेमाख्यानो मे अन्योक्ति-रूप मे अपने (निर्गुण) प्रिय का समावेश होने लगता है। मुसलमानों मे

इस स्वच्छन्दतावादी भावना को हिन्दी-काव्य मे अवतरित करने का पूर्ण श्रेय श्रीधर पाठक को है। 'एकान्तवासी योगी' शैली, भावधारा, विषय तथा छन्द आदि सभी प्रयोगो मे अपने विगत काल की परिपाटियों से भिन्न है। अनन्तर 'जगत सचाई सार', 'श्रान्त पथिक', 'ऊजड ग्राम' तथा 'काश्मीर सुषमा' आदि उनके काव्यो मे इस स्वच्छन्दतावादी शैली का पूर्ण सम्पोषण और परिपाक मिलता है। प्रकृति के सम्बन्ध मे भी यह निवेदन करना युक्तियुक्त होगा कि श्रीधर पाठक ने प्रकृति-पर्यवेक्षण स्वतत्र रूप से ही किया है। भक्ति-युग मे प्रकृति से नैतिक उदाहरण लिये गये हैं और रीतिकालीन शृगार के उद्दीपन-विभाव मे उसका प्रयोग हुआ है। श्रीधर पाठक ने उक्त प्रकार से प्रकृति का उपयोग न कर उसके स्वतत्र रूप का प्रस्फुटन किया। यद्यपि ठाकुर जगमोहनसिंह भी श्रीधर पाठक से कुछ पूर्व रमणीय प्रकृति को स्वतत्र रूप से ही अपना चुके थे, किन्तु भारतेन्दु-युगीन व्रजभाषा की परम्परागत पदावली का उनके प्रकृति-चित्रों पर प्रभाव पडा है। इससे श्रीधर पाठक इस दिशा मे मौलिक ही रहेंगे।

श्रीधर पाठक से पूर्व विषय तथा छन्द आदि के सम्बन्ध मे हम भारतेन्दु को भी अशत स्वच्छन्दतावादी कवि की कोटि मे ले सकते हैं, किन्तु जहाँ तक भाषा और काव्य-शैली का प्रश्न है वहाँ वे व्रजभाषा की परम्पराओ से बँधे हुए कवि हैं। इस कारण उन्हे वस्तुत स्वच्छन्दतावादी कवि नहीं कहा जा सकता।

श्रीधर पाठक की स्वच्छन्दतावादी प्रगति में महावीरप्रसाद द्विवेदी की सुधार-वादी नीति से एक अन्य व्यवधान उपस्थित हुआ। मर्यादा और नीतिवादी दृष्टि-कोण, सस्कृतवृत्तो के प्रयोग तथा इतिवृत्तात्मक कथानको को काव्य मे प्रस्तुत करने के प्रयासो के कारण द्विवेदीजी का क्षेत्र स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्तियो से दूर ही रहा। द्विवेदी काव्य-मडल के अनेक कवि रामायण अथवा महाभारत आदि के अन्तर्गत किसी-न-किसी उपदेशात्मक अथवा उदात्त चरित्र को लेकर ही चले। इस प्रगति से श्रीधर पाठक द्वारा सम्पोषित स्वच्छन्द भावना कुछ दब अवश्य गई, किन्तु उसका स्वतत्र विकास रुका नही। उसका प्रवाह चलता रहा और द्विवेदी काव्य-मण्डल के बाहर के कवियो ने उसका पोषण किया। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', रामनरेश त्रिपाठी एव मुकुटधर पाण्डेय आदि की रचनाओ से इस शैली का अभ्युत्थान होता रहा।

उपर्युक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि शास्त्रीय पद्धति से काव्य की स्वच्छन्दत वादी पद्धति अधिक अकृत्रिम और मानवीय थी। चमत्कार और उक्ति-वैचि॰

के प्रकाशन का इसमे विशेष स्थान नही था। अग्रेजी काव्य मे भी 'आगस्टन काल' मे जब ड्रायडन और पोप के द्वारा शास्त्रीय काव्य उत्कर्ष पर पहुँचा दिया गया तब स्वच्छन्दतावादी पुनरुत्थान (Romantic Revival) की स्वच्छद काव्य-सृष्टियो के द्वारा उसकी प्रतिक्रिया हुई। इसके पूर्व टॉमसन, कालिन्स, ग्रे, काउपर, गोल्डस्मिथ, वर्न्स और ब्लेक आदि स्वच्छन्दतावादी नवोन्मेष के पूर्व सक्राति-युग के कवि थे। श्रीधर पाठक को गोल्डस्मिथ के अमर काव्यो से पर्याप्त प्रेरणा मिली थी। गोल्डस्मिथ जिस प्रकार सक्राति-काल का कवि था, उसी प्रकार श्रीधर पाठक भी वस्तुत. हिन्दी के आधुनिक युग के सक्राति-काल के कवि हैं। उनके द्वारा हिन्दी-काव्य की विशेष धारा स्वच्छन्दवादिता को नव-जीवन मिला।

छायावाद की पृष्ठभूमि

कवि चेतन-जगत् का सबोध प्राणी है। फलतः वह अत्यधिक भावुक, विचारशील और मननशील होता है। अपने चतुर्दिक् दृष्टिपात करने से उसे प्रकृति, मानव, पशु, पक्षी आदि दिखलाई पडते हैं। ये सब चराचर स्थूल जगत् के अन्तर्गत हैं। मानव-जाति के ससर्ग के कारण ये ही पदार्थ उसके लिए उल्लेखनीय और स्मरणीय होते है। स्थूल मे वाह्य का चित्रण ही विशेष होता है। इन चित्रणो से जव उसका मानसिक कोष तृप्त हो जाता है तव वाह्य से वह अन्तर मे प्रवेश करने के लिए आकुल हो उठता है। वह उसके निर्माण तथा सघटन आदि के सम्बन्ध मे सोचता हुआ उसका अपने वैयक्तिक जीवन अथवा लौकिक ससर्ग अथवा अन्य किसी आदि शक्ति के साथ समन्वय स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील होता है। साहित्य मे यह प्रगति ही सूक्ष्म-निरीक्षण है। इस प्रकार स्थूल और सूक्ष्म का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक अपने अस्तित्व के लिए दूसरे पर आधारित है।

उपर्युक्त सिद्धान्त सभी प्रदेशो के साहित्य के साथ मेल खाता है। अग्रेजी साहित्य के शेक्सपियर-युग का मानववादी उत्थान 'आगस्टन-युग' के स्थूल चित्रणो से परास्त है। कालान्तर मे आगस्टन युग का ड्रायडन और पोप का विद्रूप (Satirical), चमत्कारिक और आलकारिक काव्य स्वच्छन्दतावादी नवोन्मेष से पराभूत हो उठता है।

हिन्दी-साहित्य की प्रगति मे भी उपर्युक्त तथ्य प्रमाणित हैं। वीरगाथा-काल मे लौकिक राजे-महाराजे, उनकी साज-सज्जा, उनके युद्ध तथा सामाजिक

जीवन हमारे कवियों के वर्णन के स्थूल विषय रहे। भक्तिकाल की सगुण-धारा में राम-कृष्ण की भक्ति एव निर्गुण-धारा के अन्तर्गत अव्यक्त ब्रह्म की उपासना मे सूक्ष्म मानसिक दृष्टि का ही प्राधान्य है। अनन्तर रीतिकाल मे राधा-कृष्ण के आलकारिक चित्रण पुन स्थूल के अन्तर्गत ही आ जाते हैं। आगे चलकर इस स्थूल की प्रतिक्रिया ही आधुनिक युग मे होती है।

देश के राष्ट्रीय एव साहित्यिक नव-जागरण और नवोत्थान मे १८५७ ई० का भारतीय विद्रोह एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इसने युग-युगो की सुषुप्त चेतना को झकझोर डाला। देश खुमारी को त्याग कर नवीन अरुणिमा मे विचरण करने को प्रस्तुत हो उठा।

भारतीय साहित्य, विशेपरूपेण हिन्दी-काव्य, अभी तक अभिसारिकाओ के रुनझुन और छमछम तथा वियोगिनियो की विगलित अश्रुधाराओ मे अपने अस्तित्व को विस्मृत किए था। तत्कालीन काव्य एक प्रकार से राजभवन के विलास-गृह मे मादकता से अठखेलियाँ कर रहा था। उसे जीवन के यथार्थ का स्वप्न मे भी ध्यान न था। ऐसे ही समय मे भारतेन्दु ने उसे नवीन जीवन प्रदान कर अपने वास्तविक रूप का परिचय कराया। कविता के वहिरग मे वही सब पुराना-का-पुराना था, किन्तु अन्तरग मे काव्य की भावधारा वदल गई और विषय-प्रतिपादन परिवर्तित हो गए।

भारतेन्दु ही इस नव-जागरण काल की महामहिम विभूति थे। उन्होंने ही इस दिशा मे नवीन भावधारा का आदर्श प्रस्तुत किया। उनकी मण्डली के अन्य सहकारी उन्हीं के पदचिह्नो का अनुसरण कर रहे थे। फलत भारतेन्दु-युग (१८६५ ई०–१९००) उन्हीं की अप्रतिम सेवाओ द्वारा अक्षुण्ण है।

इस सम्बन्ध मे डॉ० सुधीन्द्र का कथन है कि :—

"शताब्दियो से हिन्दी-कविता भक्ति या शृगार के रग मे रगी चली आ रही थी। केवल चुम्बन और आलिगन, रति और विलास, रोमाच और स्वेद, स्वकीया और परकीया की कडियों मे जकडी हुई हिन्दी-कविता को भारतेन्दु ने सर्वप्रथम विलास-भवन और लता-कुजो से वाहर लाकर लोक-जीवन के राज-पथ पर खडा कर दिया। हिन्दी-कविता मे भारतेन्दु ने सर्वप्रथम समाज के वक्ष स्थल की धडकन को सुनाया। आर्थिक जीवन मे महँगी और अकाल, टैक्स और धन का विदेश-प्रवाह, धार्मिक क्षेत्र में वहुदेव-पूजा और मतमतान्तर के झगडे, सामाजिक क्षेत्र में जाति-पाँति के टटे, खान-पान के पचडे और वाल-विवाह, नैतिक क्षेत्र मे पारस्परिक कलह और विरोध, उद्यमहीनता और

आलस्य, भापा-भूपा-भेष की विस्मृति तथा राजनीतिक क्षेत्र मे पराधीनता और दासता जीवन के ये विभिन्न स्वर उनकी वेणु से प्रसूत होने लगे थे। अपनी कह-मुकरिनियो मे, अपने 'भारत-दुर्दशा' नाटक मे आई हुई कविताओं मे, अपनी राजप्रशस्तियो मे, अपनी होलियो और लोक-गीतो मे भी भारतेन्दु इन विपयो को नही भूले हैं। राजसी सभ्यता और राजभक्ति के सस्कार मे पालित-पोपित होकर भी भारतेन्दु का स्वर जनता का स्वर है—यह हमे गर्व के साथ स्वीकार करना पडेगा। काव्य मे यह रग-परिवर्तन हिन्दी ने प्रथम वार देखा। ब्रज भापा मे यह विपय की क्रान्ति थी। शताब्दियों से रुग्ण हिन्दी-कविता-कामिनी को यह सजीवनी मिली।"[१]

भारतेन्दु-युग मे काव्य की प्रचलित प्रवृत्तियो मे आमूल परिवर्तन हो गया था। नवीन विचारधाराओ और भावनाओ के समावेश से इन प्रवृत्तियो का वदलना भी स्वाभाविक ही रहा।

राजनीतिक चेतना, आर्थिक स्थिति, देश-भक्ति, सामाजिक परिस्थिति, धार्मिक कविता आदि ये नवीन काव्यगत विशेपताएँ थी जिनको भारतेन्दु और उनकी मण्डली ने अपने काव्य का विपय वनाया।

गदर के उपरान्त महारानी विक्टोरिया की घोपणा ने भारतीय समाज को आशान्वित कर दिया था। उनके मानस मे अग्रेजी साम्राज्य के प्रति एक आस्था थी और उत्साह था।

भारतेन्दु के काव्य मे श्री अलवरत वर्णन, श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र, विजय-वल्लरी, विजयनी-विजय, वैजयन्ती, तथा रिपनाष्टक आदि तथा प्रेमघन और अम्विकादत्त व्यास आदि की रचनाओ मे भी राजनीतिक और राजभक्ति सम्बन्धी भावनाएँ पिरोई हुई हैं —

प्रभु रच्छहु दयालु महरानी।
वहु दिन जिये प्रजा-सुखदानी॥

हे प्रभु रच्छहु श्री महारानी।
सब दिशि मे तिनकी जय होई।

---

१. डॉ० सुधीन्द्र, 'हिन्दी-कविता का क्रान्ति युग', प्रथम सस्करण १९४७, पृष्ठ २६।

रहे प्रसन्न सकल भय खोई ।
राज करै बहु दिन लौं सोई ।
हे प्रभु रच्छहु श्री महारानी ।[1]
महरानी को पन राख्यो निज नवल रीति वल ।
परिभ्रध-न्याय-तुला के नप राख्यो सम दुहुँ दल ।।
सब प्रजापुंज-सिर आपको रिन रहिहैं यह सर्वछन ।
तुम नाम देव सम नित जपत रहिहैं हम हे श्री रिपन ।।[2]
चाहत न हम कछु और दया चाहत इतनी वस ।
छूटैं दुख हमरे, बाढ़ै जासों तुमरो जस ।।
भारत को धन अन्न और उद्यम व्यापारहि ।।
रच्छहु वृद्धि करहु साँचे उन्नति आधारहि ।।
पूरन मानव आयु लहौ तुम भारत भागनि ।
पूरन भारतीन की करत सकल सुख साधनि ।।[3]

राष्ट्रीय चेतना के जाग्रत होने के कारण समाज अग्रेजो के शासन मे ही सुख-शान्ति की कामना करता था। अग्रेजो के न्याय मे उसे विश्वास था। शासन के क्षेत्र मे भी सुव्यवस्था थी। इसके अतिरिक्त अग्रेज पाश्चात्य विकसित विज्ञान का भारत मे उपयोग कर भारतीयो को अपने प्रति आश्वस्त रखने की व्यवस्था बनाये रखने मे प्रवीण भी थे। रेल, तार, डाक तथा अन्य सुविधाओ के कारण भारतवासी अग्रेजो को अपना परम हितैषी समझते थे, किन्तु अँग्रेजो के ससर्ग के कारण देश के विद्वान, राजनीतिज्ञ और विचारक उनकी स्वार्थ-नीति को परखने लगे थे। तत्कालीन कवि-समाज ने भी समाज के इस अध पतन के लक्षण को परखा और अपनी फबतियाँ कसीं।

देश के इस पतन को देखकर भारतीयो मे जागरण की एक नवचेतना जागी। देश की सम्पन्नता को अक्षुण्ण देखने के लिये तथा पूर्वपरिस्थिति पर आने के लिये देशभक्ति की समस्या को भी उच्च पद मिला।

---

१ 'भारतेन्दु ग्रथावली', जातीय सगीत, पृष्ठ ८१३, प्रथम सस्करण, भाग २।

२ 'भारतेन्दु ग्रथावली', द्वि० खण्ड, रिपनाष्टक, पृष्ठ ८१७ प्र० स० १९९१ वि०, ना० प्र० सभा, काशी।

३. 'प्रेमघन सर्वस्व', प्र० खण्ड, आर्याभिनन्दन, पृ०३८७, सम्मेलन, प्रयाग, (प्रथम सस्करण—१९९६ वि०)।

निज राजा अनुसासन मन, वच करम धरत सिर।
जगपति सी नरपति मे राखति भक्ति सदा थिर ।।
भरे विबुध, नरनाह सकल, चातुर गुन मण्डित ।
बिगरो जन समुदाय, बिना पथ दर्शक पण्डित ।।
रही सकल जग व्यापी भारत राज बडाई ।
कौन विदेसी राज न जो या हित ललचाई ।।[1]

भारतेन्दु के 'भारत दुर्दशा' नाटक मे भारत की जैसी दीन-हीन दशा थी, उसका बडा कारुणिक चित्रण है। इस प्रकार के कारुणिक चित्रण वस्तुत देशभक्ति की भावना को उद्दीप्त करने मे सहायक थे। उपर्युक्त के समान ही सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र मे भी भारतेन्दु तथा उनकी मण्डली ने जनता के समक्ष नूतन भाव के आदर्श रखे।

काव्य के अतरग अश का जहाँ तक सम्बन्ध था नवीन विषयो के समावेश ने काव्य मे स्वच्छन्दतावादी भावना के लिये प्रेरणा अवश्य प्रस्तुत कर दी। काव्य के बहिरंग छन्द एव भाषा आदि से अपेक्षाकृत इसके अधिक उर्वर होने पर भी, इनको स्वच्छन्दतावादी समझ लेना आवश्यक नही है। काव्य के बहिरग के स्थान पर अवश्य आशातीत परिवर्तन नही हुए, तथापि भाषा के प्रश्न को भी सुलझाने के लिए भारतेन्दु दत्तचित्त हो चुके थे। उन्होने खडी बोली का भी प्रयोग काव्य मे किया, किन्तु उनके ये प्रयोग उर्दू की बह्रो ही पे अधिकाशत मिलेंगे। भारतेन्दु और उनकी मण्डली ने प्रचलित छन्दो के स्थान पर लावनी, कजली तथा अन्य लोकप्रिय छन्दो को अपना लिया। इस सम्बन्ध मे प्रेमघन अपने साथियो मे कही अधिक स्वच्छन्दतावादी और रसिक थे। भारतेन्दु ने बगला के पयार छन्द को भी अपनाकर काव्य का नवीन रूप प्रस्तुत किया था।

विषय, भाषा और छन्दो के सम्बन्ध मे यद्यपि परिवर्तन अवश्य प्रस्तुत हो चुके थे, तथापि प० श्रीधर पाठक के 'एकान्तवासी योगी' ने परिवर्तन के इस नूतन क्षेत्र मे एक नया अध्याय ही जोड लिया। लावनी छन्द मे खडी बोली का प्रयोग कर कवि ने एक स्वच्छन्द प्रेम-कथा को प्रस्तुत किया। इस कथा का आदर्श रीतिकालीन प्रेम-कथाओ से भिन्न था। इससे परम्परागत रूढियो के विरोध मे इस रचना से स्वच्छन्दतावादी भावना का सूत्रपात हो गया।

---

१ 'प्रेमघन सर्वस्व', हर्षादर्श, पृष्ठ २६८–२६९, सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण १९९६ वि०।

काव्य के चिर-प्रचलित भाव और विपय आदि को वदलने का श्रेय भारतेन्दु को है, किन्तु काव्य की भापा और छन्द आदि वदल देने का पूर्ण श्रेय महावीर-प्रसाद द्विवेदी को है। छायावाद की पृष्ठभूमि मे यही वह काल था जिसने छन्द और भाषा के क्षेत्र मे आमूल क्राति उपस्थित कर दी।

भारतेन्दु के उपरान्त महावीरप्रसाद द्विवेदीजी का ही महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व है, जिसने हिन्दी-साहित्य की प्रगति को एक विशेप दिशा प्रदान की। द्विवेदी-जी ने 'सरस्वती' के सम्पादन का कार्यभार १९०२ ई० से सँभाला था। वस्तुत इस वर्ष से ही उन्होने हिन्दी का सुधार करना प्रारम्भ किया और गद्य तथा पद्य की भाषा को खडी बोली से ही विभूपित करने का प्रयत्न किया। काव्य के क्षेत्र मे भी सस्कृत और मराठी के काव्य के अनुसार अन्त्यानुप्रास-विहीन काव्य रचने की प्रणाली का उन्होने प्रचार किया और सस्कृत वृत्तो को भी अपनाने का प्रोत्साहन प्रदान किया। उपर्युक्त प्रगतियो को द्विवेदीजी द्वारा सवर्धन मिला और आदर्शस्वरूप उन्होंने प्रत्येक सिद्धान्त के लिए स्वय की रचनाएँ भी प्रस्तुत की। इससे उन्ही के नाम से इस युग का नामकरण 'द्विवेदी-युग' हुआ। द्विवेदी-युग का समय १९०० ई० से १९२० ई० तक का माना जाता है।

इस सम्बन्ध के विवेचन को अग्रसर करने से पूर्व यह समझ लेना उचित ही होगा कि द्विवेदी-युग की सामयिक परिस्थितियाँ भी वही थीं, जो भारतेन्दु-युग की थी। हाँ, यह अवश्य सत्य है कि वे परिस्थितिया अपने विकसित रूप मे ही द्विवेदी-युग मे उपस्थित हुई —

भारतेन्दु ने जिसकी अक्षय अमर नींव पर
प्रथम शिला का गौरव स्थापित किया पूर्वतर,
कुशल शिल्पि बहुविधि कीर्तिस्तम्भों से सुन्दर
महिमा सुषमा जिसे दे गये स्तुत्य यत्न कर,
भारत की वाणी का वह भव्योच्च सौध वर
अतर्नयनों मे क्या है आचार्य, पूर्ण तर,
उद्भासित हो उठा आपके दिव्य रूप धर ?[1]

द्विवेदी-युग की प्रवृत्तियो पर विचार कर लेने से द्विवेदीजी की अन्त-प्रेरणाओ और सेवाओं पर प्रकाश पडना स्वाभाविक हो सकेगा।

---

१. सुमित्रानन्दन पत, 'युगवाणी' 'आचार्य द्विवेदी के प्रति', पृष्ठ ९३, भारती भण्डार, प्रयाग।

भाषा और वृत्तो के सम्बन्ध मे आचार्य द्विवेदीजी भारतेन्दु-युग की अपेक्षा कही अधिक क्रान्तिकारी थे। यद्यपि इनमे परिवर्तन उपस्थित करने का सूत्रपात भारतेन्दु-युग से ही प्रारम्भ हो चुका था, किन्तु द्विवेदीजी और द्विवेदीजी के मण्डल के साहित्यकारो का इस ओर विशेष आग्रह रहा। काव्य की भाषा मे अभी तक व्रजभाषा का ही प्राधान्य था, किन्तु द्विवेदीजी ने गद्य और पद्य दोनो मे ही खडी बोली के प्रयोग का सन्देश प्रदान किया। इसके साथ-ही-साथ अभी तक भक्तिकाल और रीतिकाल के छन्दो का ही विशेष प्रयोग होता चला आ रहा था। किन्तु द्विवेदीजी ने सस्कृत के वृत्तो को अपनाने और अन्त्यानुप्रास-विहीन काव्य रचने का आदर्श भी प्रस्तुत किया। यद्यपि द्विवेदीजी मे कवि-सुलभ अधिक प्रतिभा नही थी, तथापि अपने दृष्टिकोण की सफलता के लिये उन्होने स्वय ही सस्कृत वृत्तो और खडी बोली मे रचनाए की।

सुरम्यरूपे, रसराशि रजिते,
विचित्र वर्णाभरणे कहाँ गई?
अलौकिकानन्दविधायिनी महा—
कवीन्द्र-कान्ते, कविता अहो कहाँ?
नहीं कहीं भी भुवनान्तराल मे,
दिखा पड़े है तव रम्यरूपता।
सजीव होती यदि जीवलोक मे,
कभी कहीं तो मिलती अवश्य ही॥[1]

कवि कवित्व के सम्बन्ध मे सशकित है। यद्यपि कविता की प्रगति चलती रही, किन्तु खडी बोली की रचनाओ का अभी प्रारम्भ ही हुआ था। इसी से कवि के जीवन मे शका का भाव विद्यमान है। उपर्युक्त पक्तियो मे 'दिखा पड़े है' क्रियापद का प्रयोग अशुद्ध है। द्विवेदीजी का इस ओर बढने का प्रयास होने पर भी इस प्रकार के प्रयोग उनकी खडी बोली की अपरिपक्वता ही सिद्ध करते हैं।

उन्होने सस्कृत वृत्तो को भी अपनाया था :—

व्योमाम्बु भूमि अनिलानल तत्व माही।
जाकी कला कुशल व्यापक है सदा हीं।

१ द्विवेदी-काव्य-माला, 'हे कविते', १९०१ मे सरस्वती मे प्रकाशित।

विश्वेश्वरी जननि सो जग आदि माया।
राखै निरोग सब काल हमारि काया।[1]

उपर्युक्त मे हमारे सस्कृत काव्य के वसततिलका छन्द का प्रयोग है। इस दिशा मे अयोध्यासिंह उपाध्याय अपने 'प्रियप्रवास' मे कही अधिक सफल रहे हैं। भाषा मे प्रवाह और सरसता का पूर्ण स्वरूप विद्यमान है —

प्यारे आवें सुवयन कहें, प्यार से गोद लेवें।
ठडे होवें नयन दुख हो दूर मैं मोद पाऊं।
ए भी हैं भाव मम उर के और ए भाव भी हैं।
प्यारे जीवें जग हित करें गेह चाहे न आवें॥[2]

हरिऔधजी की पक्तियाँ सस्कृत वृत्तो का पूर्ण साफल्य निहित किये है। उपर्युक्त उद्धरण में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग है। कविता मे कवि की भावनाएँ सफल रूप मे विद्यमान भी हैं। 'प्रियप्रवास' के कुछेक स्थलो पर जहाँ दुरूह तत्सम पदावली का प्रयोग है, आलोचक नाक-भौं सिकोडा करते हैं, किन्तु उन स्थलो पर भी काव्य मे प्रवाह है और एक विशेष माधुर्य है, जिसकी वे उपेक्षा कर जाते हैं। द्विवेदीजी के काव्य की अपेक्षा हरिऔधजी का काव्य अधिक सफल है। उनका 'प्रियप्रवास' खडी बोली का एक सुरम्य और सुदृढ स्तम्भ है।

देश-भक्ति की रचनाओ के सम्बन्ध मे यह युग भारतेन्दु-युग की अपेक्षा अधिक सम्पन्न है। उस युग मे देश-भक्ति की अपेक्षा भारतीय वाणी मे राजभक्ति का अधिक समावेश था। जन-समाज को अँग्रेजी न्याय और सुशासन में आस्था थी। इससे देश का प्रश्न उपेक्षित ही था। १८८५ ई० में राष्ट्रीय (नेशनल) कांग्रेस की स्थापना से देश मे राष्ट्रीयता को समझने की क्षमता आने लगी थी। इसी से राष्ट्रीय भाव का स्पष्ट रूप विकसित होने लगा। श्री मैथिलीशरण गुप्तजी ने अपनी 'भारत भारती' के समर्पण मे ही श्रीमान् राजा रामपालसिंह जी को लिखा था कि :—

जैसा कुछ हो सका, आपका यह आज्ञापालन है, लीजै,
भारत माता की सेवा मे इसे आप ही अर्पित कीजै।

---

१ द्विवेदी काव्य माला, 'देवी स्तुतिशतक', पृष्ठ १४३, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, प्रथम सस्करण, १९४०।

२ हरिऔध, 'प्रियप्रवास', षोडस सर्ग—६१।

मेरी प्रभु से यही विनय है—स्वावलम्ब हम सबको दीजे,
मा की इस सुख-दु ख कथा से सब पुत्रो का हृदय पसीजे।[1]

अग्रेजो के शासन ने अपनी विश्वासघाती नीति से हमारे देश का सर्वस्व लूट लिया। यहाँ का जन-समाज दाने-दाने के लिए तरस उठा, उसकी दिगम्बर दशा किस सहृदय को पीडित न करती थी! 'भारत भारती' देश के भूत, वर्तमान और भविष्य की गीता थी, जिसने लोगो के हृदय मे जागृति की भावना का प्रादुर्भाव किया। 'भारत भारती' राष्ट्रीय चेतना के उद्दीपन के लिए हिन्दी की सर्वप्रथम सबल रचना रही —

ससार रूप शरीर मे जो प्राण रूप प्रसिद्ध था,
सब सिद्धियों मे जो कभी सम्पूर्णता से सिद्ध था।
हा हन्त, जीते जी वही, अब हो रहा म्रियमाण है,
अब लोक-रूप-मयक मे भारत कलंक समान है॥[2]

गुप्तजी से पूर्व भारत-भूमि के सौंदर्य और उसके अतीत गौरव के सम्बन्ध मे श्रीधर पाठक, रामचरित उपाध्याय तथा रामनरेश त्रिपाठी अपनी सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत कर चुके थे। देश की निर्धन दशा तथा कृषक-वर्ग की सब प्रकार की हीनता भी कवियो के काव्य-विषय बन चुके थे। गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' तथा मैथिलीशरण गुप्त के काव्य इस सम्बन्ध मे विशेष कारुणिक रहे :—

हो न अगर विश्वास आप गावों मे जाएँ।
देखें यदि दुर्दशा कलेजा थामे आएँ॥
आती हैं नित नई सिरो पर हाय बलाएँ।
बच्चे बाधे हुए बगल मे भूखी माएँ॥
भग्न हृदय है नग्न-सी खेत निराने में लगीं।
साग-पात जो कुछ मिला उसके खाने मे लगीं॥[3]

देश की दीन-हीन दशा वस्तुत: बडी ही मार्मिक थी, जिसके चित्रण से देश के राष्ट्रीय आन्दोलन को अग्रसर करने मे काफी सहयोग मिला।

---

१ मैथिलीशरण गुप्त, 'भारत भारती', नवम सस्करण, पृष्ठ ८४, साहित्य सदन, चिरगाव।

२. मैथिलीशरण गुप्त, 'भारत भारती', नवम सस्करण, पृष्ठ ८४, साहित्य सदन, चिरगांव।

३. सनेही, 'दुखिया किसान', सरस्वती, खण्ड १६, स० १२, १९१८ ई०।

आचार्य शुक्ल के इतिहास में विशेष महत्ता प्राप्त युग

रीति और आधुनिक दोनों युगो के मध्य में भारतेन्दु एक कडी हैं। उनकी प्रतिभा एव भावधारा को ही यह श्रेय है कि प्रथम विश्राम उपलब्धि करने लगता है और द्वितीय नवीन भावधारा और वैविध्य को लेकर एक उमग के साथ जीवन का अनुभव कर अग्रसर हो उठता है।

राजा लक्ष्मणसिंह एव राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिन्द' हिन्दी-गद्य को लेकर जो गगा-जमुनी बहा रहे थे, उनके मध्य मे मध्य मार्ग की सरस्वती लेकर भारतेन्दु ने हिन्दी का बडा उपकार किया। उन्होने गद्य को प्रगतिशील बनाया और पद्य मे भी खडी बोली का सम्मिश्रण कर और उसे नवीन विषयो की ओर मोडकर उसे स्वच्छन्द मार्ग पर चलने के लिए जीवन प्रदान किया। भाग्य से उनके सहयोगी भी ऐसे मिले जो उनके इगित पर इस साहित्यिक महत्ता को समझ सके। हास्य एव वीररसो के आलम्बन आदि भी अपनी नवीन छटा के साथ काव्य मे प्रचलित हुए।

"इस नई धारा की कविता के भीतर जिन नये-नये विषयो के प्रतिबिम्ब आए वे अपनी नवीनता से आकर्षित करने के अतिरिक्त नूतन परिस्थिति के साथ हमारे मनोविकारों का सामजस्य भी घटित कर चले। काल-चक्र के फेर से जिस नई परिस्थिति के बीच हम पड जाते हैं उसका सामना करने योग्य अपनी बुद्धि को बनाये बिना जैसे कवि नही चल सकता वैसे ही उसकी ओर अपनी रागात्मिका वृत्ति को उन्मुख किए बिना हमारा जीवन फीका, नीरस, शिथिल और अशक्त रहता है।"[1]

वस्तुत उपर्युक्त सुयोग ने हिन्दी-काव्य मे एक नवीन प्रगति का प्रचार किया। इस समय के नवीन विषय और भाव नवीन विधान का आश्रय लेकर चले। वीरगाथा, भक्ति एव रीति-युगो के काव्य के कथानक इतिहास और पुराणो से लिये गये थे और उनका वर्णन छप्पयो, सवैयो, पदो एव घनाक्षरियो आदि छन्दो मे किया गया था। इस नवीन उत्थान मे विषयो के अनुसार छन्द के विधान भी बदले और विषयो मे जो प्रबन्धात्मकता का अश रहा वह अधिकाशत भावात्मक ही था या उनके विषय हमारे समीप के सामाजिक थे।

"विषयो की अनेकरूपता के साथ-साथ उनके विधान का भी ढग बदल

---

१ प० रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', 'नई धारा', प्रथम उत्थान, पृ० ५८८।

चला। प्राचीन धारा मे मुक्तक और प्रबन्ध की जो प्रणाली चली आती थी उससे कुछ भिन्न प्रणाली का भी अनुसरण करना पडा।"[1]

भाषा का प्रश्न भी हिन्दी के समक्ष उपस्थित हुआ। अभी तक काव्य मे ब्रजभाषा का ही प्राधान्य रहा, परन्तु जब गद्य मे खडी बोली का स्वागत किया गया तब पद्य भी अछूता न रह सका। भारतेन्दु एवं उनके साथियो ने खडी बोली का पद्य मे सफल प्रयोग किया। नवीन धारा के प्रथम उत्थान तक हम देखते हैं कि श्रीधर पाठक खडी बोली मे अपना 'एकान्तवासी योगी' काव्य प्रस्तुत कर चुके थे।

सुनिये झाडखण्ड वनवासी, दयाशील हे वैरागी।
करके कृपा बतादे मुझको कहाँ जले है वह आगी॥
मैं भटका फिरता हूँ वन मे भूल गया हूँ राह।
तू जो मुझे वहाँ पहुँचादे यह गुण होय अथाह॥
निपट अकेला भ्रान्त चित्त अति थकित मन्द गति फिरता हूँ
विकट असीम महा जगल मे परिभ्रमण मैं करता हूँ
ज्यों-ज्यों आगे धरता हूँ पग अन्तरहित यह देश
बढ़ता ही जाता है प्रति पद दीर्घ विशेष विशेष।[2]

इस प्रकार काव्य की यह नवीन प्रगति हिन्दी के उस युग मे बडी ही आशाजनक रही। भाषा का वैषम्य आदि मिट चला। काव्य जो अब तक हमारे मनोविनोद का साधन था और जिसमे नवीन सूक्तियो का खिलवाड ही पसन्द किया जाता था, स्वाभाविकता को अपनाकर चल उठा। उसमे हमे अपने अपनत्व के प्रथम बार दर्शन हुए।

इस प्रकार आलोच्य काल सक्रान्ति-युग के उपादानो का सवहन करता हुआ एक विशेष दिशा की ओर उन्मुख होने के कारण विशेष महत्वपूर्ण है।

आचार्य शुक्ल द्वारा श्रीधर पाठक की मान्यता

हिन्दी काव्य मे विषय-सम्बन्धी नूतनता लाने का श्रेय भारतेन्दु को है। भाषा-विषयक प्रगति को वह वस्तुत आगे नही ले जा सके। इस सम्बन्ध मे श्रीधर पाठक ने काव्य का नूतन मार्ग प्रदर्शन किया। काव्य की नई धारा

---

१. पं० रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नई धारा, प्रथम उत्थान, पृष्ठ ५८९

२. श्रीधर पाठक, 'एकान्तवासी योगी', पृष्ठ १—२

(१८६८ ई०–६३ ई०) के मध्य मे श्रीधर पाठक अपना 'एकान्तवासी योगी' प्रस्तुत कर चुके थे। इस काव्य की शैली की तो विशेषता थी ही, भाव-विषयक विशेषता भी कम महत्वपूर्ण नहीं रही —

"उसकी (एकान्तवासी योगी) सीधी-सादी खडी बोली और जनता के बीच प्रचलित लय ही देखने योग्य नही है, किन्तु उसकी कथा की सार्वभौम मार्मिकता भी देखने योग्य है।

"सीधी-सादी खडी बोली मे अनुवाद करने के लिए ऐसी प्रेम-कहानी चुनना जिसकी मार्मिकता अपढ स्त्रियो तक के गीतों की मार्मिकता के मेल मे हो, पण्डितों की बँधी हुई रूढि से बाहर निकलकर अनुभूति के स्वतन्त्र क्षेत्र मे आने की प्रवृत्ति का द्योतक है।"[1]

इस प्रकार युग की अवस्था के अनुसार 'एकान्तवासी योगी' के अनुवाद को लावनी छन्द में प्रस्तुत करना पाण्डित्य शैली से परे साधारण जनता की मानसिक भावधारा के अनुकूल था। मूलत इसके द्वारा काव्य मे नवीन आदर्श उपस्थित हो गया और काव्य मे स्वच्छन्दतावाद का मार्ग भारतेन्दु-युग से अधिक प्रशस्त हो उठा।

"जब-जब शिष्टों का काव्य पण्डितो द्वारा बधकर निश्चेष्ट और सकुचित होगा तब-तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छन्द बहती हुई प्राकृतिक भावधारा से जीवन-तत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा।"[2]

पाठक जी की अन्य रचनाएँ भी इस स्वच्छन्दतावादी धारा मे प्रगति उत्पन्न करती हैं, जिनका प्रतिपादन उनके काव्यों की विवेचना से व्यक्त हो सकेगा। पाठक जी की इस प्रकार की भावधारा के कारण ही आचार्य शुक्ल उन्हें हिन्दी का प्रथम स्वच्छन्दतावादी कवि ठहराते हैं —

"हरिश्चन्द्र के सहयोगियो मे काव्यधारा को नये-नये विषयों की ओर मोडने की प्रवृत्ति तो दिखाई पडी पर भाषा ब्रज ही रहने दी गई और पद्य के ढाँचो, अभिव्यजना के ढग तथा प्रकृति के स्वरूप-निरीक्षण आदि मे स्वच्छन्दता के दर्शन न हुए। इस प्रकार की स्वच्छन्दता का आभास पहले-पहल प० श्रीधर

---

१. रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नई धारा, द्वितीय उत्थान, पृष्ठ ६०० ।

२. ,, ,, नई धारा, द्वितीय उत्थान, पृष्ठ ६०१ ।

पाठक ने ही दिया। उन्होंने प्रकृति के रूढिबद्ध रूपो तक ही न रहकर अपनी आँखो से भी उसके रूपो को देखा।"[1]

काल-निर्धारण

१८७५ ई० से १९२५ ई० तक के मध्य का ५० वर्ष का काल आधुनिक युग मे हिन्दी की साहित्यिक प्रगति के लिए बडा ही महत्त्वपूर्ण है। १८५७ ई० का गदर, अग्रेजो की साम्राज्यवादी नीति तथा निर्धनता के कारण देश की जर्जरता ने साहित्य को नूतन दिशाओ की ओर उन्मुख किया। इस नूतन परिवर्तन काल मे भारतेन्दु-युग ने १९०० ई० तक साहित्य-क्षेत्र का नेतृत्व किया। भारतेन्दु जी ने मौलिक साहित्यकार के रूप मे गर्व करने के लिए हिन्दी को बहुत कुछ प्रदान किया। अन्य साहित्यकार जो उनके ससर्ग मे आए भी उनकी प्रेरणा से साहित्य-क्षेत्र मे प्रवृत्त हुए। भारतेन्दु-युग मे वस्तुत प्राचीन और नवीन युग का सुन्दर समन्वय है। भारतेन्दु-युग के उपरान्त द्विवेदी-युग का पदार्पण होता है। इस युग का प्रतिनिधित्व आचार्य प्रवर प० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किया। भारतेन्दु-युग की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ इस युग मे निस्सदेह अधिक विकासशील है। बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री और द्विवेदी जी ने खडी बोली के लिए जो चेष्टाएँ की थी, उससे खडी बोली को काव्य और साहित्य-क्षेत्र मे सामान्य प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। मूलत द्विवेदी जी सुधारक और नीतिवादी थे। फलत. भाषा का सुधार और साहित्य-क्षेत्र मे अन्य प्रयोग सफलता से हुए। इन विशेषताओ के साथ काव्यगत इतिवृत्तात्मकता का प्राधान्य द्विवेदी-युग की समाप्ति (१९२० ई०) तक रहा। अनन्तर इस युग की प्रवृत्तियो की प्रतिक्रिया १९२५ ई० से छायावादी काव्य द्वारा हुई।

काव्य-विमर्श के दृष्टिकोण से काव्य की प्रगति मे भी क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित हुए। काव्य के शास्त्रीय प्रवाह के साथ स्वच्छन्दतावादी प्रवाह भी अग्रसर हुआ। यद्यपि स्वच्छन्दतावादी प्रवाह के समक्ष व्यवधान भी आए, किन्तु यह धारा भी अपना अस्तित्व सुरक्षित किये ही रही। प० श्रीधर पाठक स्वच्छन्दतावादी क्षेत्र के सर्वश्रेष्ठ अग्रदूत थे। उनके द्वारा कितनी ही स्वच्छन्दतावादी रचनाएँ प्रस्तुत की गई। इसके अतिरिक्त अन्य लोगो ने भी उनके मार्ग का अनुसरण कर स्वच्छन्दतावादी साहित्य का निर्माण किया।

---

१. प० रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नई धारा, द्वितीय उत्थान, पृष्ठ ६०२।

भारतेन्दु के पूर्व तक रीति और भक्ति-समन्वित काव्य का अबाध निर्माण हो रहा था। आदर्शों मे अणुमात्र भी परिवर्तन नही हुए थे, किन्तु जैसा निवेदन किया जा चुका है कि भारतीय विद्रोह (१८५७ ई०) और अग्रेजो की स्वार्थ-नीति से भारतीय समाज की सुषुप्त चेतना को ही आघात नही लगा, किन्तु साहित्य-क्षेत्र मे भी नवीन स्फूर्ति की जाग्रति हुई। उसके अन्तर्गत काव्य ने भी नवीन दिशाओ की ओर अग्रसर होना प्रारम्भ कर दिया, जिससे प्राचीन काव्य-परम्परा के साथ ही कवि ने नवीन भाव और विषय अपनाए तथा अपने चारो ओर के विषयो को भी कविता के विषय बनाने के लिए प्रेरणाएँ ली। हिन्दी का युगोपरान्त यह प्रथम सौभाग्य था। अब हमारे कवि परम्परागत भावो और विषयो की निधि त्यागकर आगे बढे।

इस ओर वे विभूतियां ही अग्रसर हुईं जिन्हें अपने देश के प्रति ममत्व था और जो देश की पराधीनता, निर्धनता तथा अग्रेजो के बढते हुए स्वार्थ से मर्माहत थे। उनके कवि-हृदय की वाणी प्रस्फुटित हो उठी। भारतेन्दु इस प्रकार के ही आदर्श साहित्यिक और देशभक्त थे। उनकी वाणी से प्राचीन परम्परानुकूल काव्य के साथ ही देशभक्ति, समाज, मातृभाषा तथा अन्य सुधारो के नवीन विषय भी प्रस्फुटित हुये जिनसे भारत मे नव ज्योति की किरणें फूट उठीं।

"भारतेन्दु-युग मे देश के शासक बदल गए थे; किन्तु जीवन और इतिहास मध्य-युग का ही था। कला भी पुरानी थी, ब्रजभाषा और सस्कृत के सपर्क मे एक प्रकार से भारतेन्दु-युग पिछले ससार का ही हिन्दी-रूपान्तर था। आधुनिक काल तो तब नवजात शिशु मात्र था। इस शिशु का ज्यो-ज्यो आत्म-विस्तार होता गया त्यो-त्यो साहित्य का उससे भी परिचय होता गया, उसके मगल-अमगल का बोध होता गया। आधुनिक काल के प्रथम बोध में साहित्य मे जितनी नवीनता सम्भव थी, भारतेन्दु-युग ने अपनी प्राचीन परिधि मे उसे भी ग्रहण किया। यो कहें, भारतेन्दु-युग एक आधुनिक क्लासिकल युग था।"[1]

भारतेन्दु का काव्य-मदिर इस प्रकार मध्य-युग की विचारधाराओ की शिलाओ पर निर्मित था, जिस पर नवीन विचार तथा विधान-विषयक आडी-वेडी रेखाओं के चित्र अकित हो गए थे। प्राचीन के साथ नवीन का यह समावेश ही काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो की ओर इगित करता है। ये

---

१ श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, 'युग और साहित्य', पृष्ठ १२ (इण्डियन प्रेस, प्रयाग) १९४१।

प्रवृत्तियाँ विषयों, छन्दो तथा भाषा के क्षेत्र मे अकुरित हो रही थी। ये प्रवृत्तियाँ काव्य को मानवीय लोक-भूमि पर लाने की प्रेरणाएँ दे रही थी।

विषय और काव्य-विधान के दृष्टिकोण से भारतेन्दु और उनके युग के कलाकारो की रचनाओ के दो विभाजन सरलतापूर्वक हो सकते है। प्रथम के अन्तर्गत विगत शृ खला से क्रमबद्ध शृङ्गार तथा भक्तिपरक शास्त्रीय रचनाएँ और द्वितीय के अतर्गत राष्ट्रीय तथा तद्विषयक स्वच्छन्दतावादी कृतियाँ।

"इन्होंने (भारतेन्दु ने) अभावो की व्यष्टिगत वेदना को राष्ट्रीय व्यापकता दी। जाति और सम्प्रदायगत दु खो को समूचे देश की असहनीय समस्या का रूप दिया। अपनी वर्तमान हेय अवस्था के प्रति जनता के हृदय मे असतोष उत्पन्न करने वालो के भारतेन्दु अग्रणी हुए। भारत की उस दयनीय स्थिति की ओर सारे देश की जनता का ध्यान आकृष्ट करना उनकी वाणी का एक मुख्य वैभव रहा, उनकी इस विशेषता की ओर लोगो ने कम ध्यान दिया है। शताब्दियो का हृत दर्प पराजित जाति के हृदय मे स्वाभिमान की चेतना और जीवन की स्फूर्ति भरने वाले तथा काव्य-क्षेत्र मे देशानुराग, मातृभाषा-भक्ति और राष्ट्रीय-प्रेम की नई भावनाओ को ओज एव गति देने वाले पहले कवि। सच्चे अर्थ मे पहले राष्ट्रकवि भारतेन्दु ही है।"[१]

नवीन विषयो के क्षेत्र मे देशभक्ति का स्वर बडा ही उच्च था। भारतेन्दु-युग मे भारतेन्दु जी एव अन्य प्रमुख कवियो के द्वारा यह बडी सफलता से उच्चरित हुआ। इस युग मे देश, समाज, धर्म तथा सस्कृति मे जहाँ कही कवियो द्वारा अभाव परिलक्षित हुए उन्होने कारुणिक ढग से उनका चित्रण किया। राजभक्ति की भावनाएँ भी भारतेन्दु एव अन्य कवियो के काव्यो मे उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार की भावनाओ का देश की चेतना के साथ अपना महत्व है। वह भारतीयो की परम्परागत राजनिष्ठा के परिणामस्वरूप थी। इन्हे देशद्रोही भावना इसलिए न कहा जाएगा क्योकि अभी तक देशभक्ति के अकुर फूट भी न सके थे।

भारतेन्दु ने नवीन विषयो के साथ भाषा के स्वरूप को भी परिवर्तित करने का सूत्रपात कर दिया था। यह अवश्य सत्य है कि इस सम्बन्ध की प्रमुखता

---

१. श्री राजेन्द्रनारायण शर्मा, 'राष्ट्रीय चेतना के प्रवर्तक कवि भारतेन्दु'—'भारतेन्दु जन्म-शती अक', नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५५, स० [illegible]

द्विवेदी-युग की सजीवता थी। 'दशरथ-विलाप' मे ही भारतेन्दु ने खडी बोली का सफल प्रयोग किया था।

कहाँ हो ऐ हमारे राम प्यारे। किधर तुम छोडकर हमको सिधारे।
बुढ़ापे मे ये दुख भी देखना था। इसी के देखने को मैं बचा था।

इसके अतिरिक्त भारतेन्दु जी ने अपनी उर्दू की कविता मे भी खडी बोली के प्रयोग किए हैं। भारतेन्दु के अतिरिक्त उनके समकालीन प्रेमघन जी ने भी खडी बोली को काव्य की अभिव्यजना का विषय बनाया था।

चला चल चरखा तू दिन रात।
चलता चरख बनाता निसदिन ज्यों ग्रीषम बरसात ॥
मन मन मत्र जपाकर मन मे सुन न किसी की बात।
कात कात कर सूत मैनचिस्टर को कर दे मात ॥[1]

इस प्रकार खडी बोली में कविता का सूत्रपात हो गया था। भारतेन्दु तथा उनके साथियो ने खडी बोली के नवीन पदो का प्रयोग भी प्रारम्भ कर दिया था। छन्दो के सम्बन्ध मे भी भारतेन्दु ने स्वच्छन्दता का प्रदर्शन किया था। उनका भक्ति तथा रीति-काव्य वही प्राचीन छन्द-पद्धति पर आधारित है, किन्तु भारतेन्दु और उनके साथियो ने नवीन छन्दो को भी अपनाया और साधारण जन-समाज मे प्रचलित लोक-छन्दो को भी अपनाया। भारतेन्दु ने अपने 'प्रात समीरन' (१८७४ ई०) में बगला के पयार छन्द का सफल प्रयोग किया है '—

मन्द मन्द आवै देखो प्रात समीरन,
करत सुगन्ध चारो ओर विकीरन,
गात सिहरात तन लगत सीतल,
रैन निद्रालस जन सुखद चचल ॥
◇ ◇ ◇

प्रलय पीछे सृष्टि सम जगत लखाय,
मानो मोह बीत्यो भयो ज्ञानोदय आय।
प्रात-पौन लागे जाग्यो कवि 'हरिचंद',
ताकी स्तुति करि कहो यह बग छन्द ॥[2]

इसके अतिरिक्त भारतेन्दु ने कितने ही उर्दू के छन्दो तथा लावनी आदि लोक-प्रचलित छन्दो को अपनाया था। प्रेमघन जी ने विविध प्रकार की

१ प्रेमघन सर्वस्व भाग १, 'चरखे की चमत्कारी', पृष्ठ ६३२।
२. भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग २, 'प्रात समीरन', पृष्ठ ६८६-६८९।

'कजली', 'ख्याल', 'लावनी' तथा प्रचलित सगीत-प्रणाली मे भी अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की थी।

उपर्युक्त के सम्बन्ध में विशद विवेचन आलोच्य विषय के अन्तर्गत ही सन्निहित है। इससे यहाँ पर भारतेन्दुयुगीन स्वच्छन्दतावाद का सक्षिप्त विवरण ही अपेक्षित है। विषय, भाषा तथा छन्द आदि सभी ही क्षेत्रो मे भारतेन्दु और उनके साथियो ने नूतन भावनाओ और विधानों को अपनाकर काव्य को लोक-भूमि पर अवतरित करके हमारी दैनिक समस्याओ का चित्र खीचा। इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद के लिए इन लोगो ने एक पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

"भारतेन्दु ने प्रकृति-चित्रण भी किया है। किन्तु स्वच्छन्द रूप मे प्रकृति की सवेदनशीलता का अनुभव करके नही। भारतेन्दु तथा ठाकुर जगमोहन सिंह, श्रीधर पाठक एव राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' के प्रकृति-चित्रणों मे महान् अन्तर है।

"भारतेन्दु ने हिन्दी काव्य को केवल नये-नये विषयो की ओर ही उन्मुख किया। उसके भीतर किसी नवीन विधान अथवा प्रणाली का सूत्रपात नही किया। दूसरी बात उनके सम्बन्ध मे ध्यान देने की यह है कि वे केवल 'नर प्रकृति' के कवि थे। वाह्य प्रकृति की अनन्तरूपता के साथ उनके हृदय का सामजस्य नही पाया जाता।"[1]

भारतेन्दु के 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक मे 'गगा-वर्णन' तथा चन्द्रावली नाटिका मे 'यमुना-वर्णन' अवश्य आए हैं; किन्तु इनमे भी परम्परागत पद्धति ही अधिक है।

भारतेन्दु के उपरान्त ठाकुर जगमोहनसिंह ने प्रकृति का स्वच्छन्द निरीक्षण कर उसे उद्दीपन-क्षेत्र के बाहर प्रतिष्ठित किया। भाषा के प्रश्न मे ठाकुर साहब व्रजभाषा के अनुयायी ही थे। खडी बोली उनके समक्ष प्राण-प्रतिष्ठा न प्राप्त कर सकी थी। यदि खडी बोली उनके काव्य का आधार हो पाती तो इसमे सन्देह नही कि ठाकुर साहब का अपना स्थान प्रकृति-चित्रण के क्षेत्र मे सर्वोपरि होता। तथापि उनका प्रकृति-प्रेम उसी प्रकार का रहा जिस प्रकार वर्ड्सवर्थ अथवा वाल्टर स्कॉट का था। इस प्रकार उनकी काव्योपासना मे भी स्वच्छन्दतावादी धारा का सम्पोषण होता रहा।

इस सन्धि-युग मे जब काव्य अपनी निश्चित दिशा के शोध मे दत्तचित्त था और उसके अभिभावक विविध प्रकार के प्रयोग उस पर कर रहे थे तब

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ ५९० ।

श्रीधर पाठक स्वच्छन्दतावादी काव्य के महाप्रणेता के रूप मे हिन्दी-विश्व के समक्ष अवतरित हुए। उन्होने प्रमुखरूपेण खडी बोली को अपने काव्य में प्रयुक्त किया और काव्य की अब तक की प्रचलित शास्त्रीय पद्धति की अवहेलना कर काव्य मे स्वच्छन्दतावाद को प्रोत्साहन दिया। इस सम्बन्ध मे उन्हे अग्रेजी काव्य के ऑगस्टन-युग (Augustan Period) तथा रोमाटिक नवोन्मेष (Romantic Revival) के मध्य के सन्धि-युग की काव्यगत प्रवृत्तियो से अत्यधिक प्रेरणाएँ मिली। इस सन्धि-काल के ही स्वच्छन्दतावादी कलाकार गोल्डस्मिथ का पाठक जी पर बडा ही प्रभाव पडा और सर्वप्रथम १८८६ मे उन्होंने गोल्डस्मिथ के Hermit नामक खण्डकाव्य का 'एकान्त-वासी योगी' के नाम से खडी बोली मे प्रचलित लावनी छन्द में अनुवाद कर डाला। वस्तुत इस काव्य से ही हिन्दी काव्य की स्वच्छन्दतावादी धारा का प्रारम्भ हो गया। कालान्तर मे उन्होने गोल्डस्मिथ के अन्य काव्यो का अनुवाद किया। इन अनुवादो के अतिरिक्त भी उन्होने अपनी निजी प्रतिभा का परिचय अपने स्वतन्त्र काव्यो द्वारा भी कराया। 'एकान्तवासी योगी' का प्रेमपरक वायु-मडल और सरल उपर्युक्त स्वच्छन्द भावना, जिसका विवेचन पाठक जी के काव्यो से उद्धृत अशो . ारा किया जाएगा, पाठक जी के जीवन-पर्यन्त (१९२८ ई०) तक प्रवाहशालिनी रही। पाठक जी अपने काव्य मे ही नही अपने गद्य मे भी स्वच्छन्दतावादी रहे। वह अपनी रचनाओ मे ही नही अपने व्यावहारिक जीवन मे भी इस पन्थ के पथिक रहे। युगो-युगो से रूढियो मे आबद्ध नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व के वह पूर्ण अनुयायी थे। वस्तुत उनके सम्पूर्ण साहित्य और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे स्वच्छन्द भावना का समावेश था, जिसका विशद विवेचन आगे के पृष्ठो मे किया जाएगा।

उपर्युक्त विवेचन से यह पूर्ण स्पष्ट है कि पाठक जी भारतेन्दु-युग की समाप्ति तक खडी बोली के काव्य मे अपना स्थान निर्मित कर चुके थे। दूसरे शब्दो मे यह भी कहा जा सकता है कि भारतेन्दु ने जिन सामयिक परिस्थितियो से प्रभावित हो अपने काव्य को नवीन दिशाओं की ओर मोडा, पाठक जी ने उस मार्ग को प्रशस्त किया। भारतेन्दु की भक्ति और रीति की पद्धति जो उनमे तथा उनके सामयिक कवियो मे प्राण-प्रतिष्ठा प्राप्त किए रही, उसको रत्नाकर जी ने अपनी शास्त्रीय भावनाओ द्वारा सजीव रखा। रत्नाकर जी ापरिवर्तनकारी कवि थे। इससे उनके काव्य का टेकनीक भी वही प्राचीन ही ः ।। पाठक जी का काव्य यद्यपि खडी बोली की अपेक्षा ब्रजभाषा मे अधिक

है तथापि उनका उद्देश्य खड़ी बोली को ही सम्पन्न और नवीन विषयो से समाविष्ट करने का ही प्रतीत होता है। इससे रत्नाकर जी और पाठक जी के विचारो मे पर्याप्त अन्तर है। प्रथम शास्त्रीय पक्ष के अधिनायक है तो द्वितीय स्वच्छन्दतावादी के।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के 'सरस्वती' मे आगमन से पूर्व ही पाठक जी खड़ी बोली मे नवीन विषयो पर रचनाएँ कर चुके थे। इस प्रकार द्विवेदी जी के काव्यक्षेत्र मे उतरने पर खडी बोली के साफल्य के लिए पाठक जी एव द्विवेदी जी दो प्रमुख विभूतियाँ थी। काव्य-क्षेत्र का एक क्षेत्र होते हुए भी पाठक जी तथा द्विवेदी जी विषय एव उनके विधान के सम्बन्ध मे वैषम्य रखते थे। द्विवेदी जी मे नीतिवादिता, इतिवृत्तात्मकता, उपदेश-भावना एव काव्य-विधान के सम्बन्ध मे सस्कृत के वृत्त तथा वही प्राचीन अभिव्यजना शैली थी। पाठक जी मे स्वच्छन्दता की पूर्ण सामग्री थी। विषयो के क्षेत्र मे उनकी वैयक्तिकता एव स्वच्छन्द भावना (काश्मीर-सुषमा) अधिक मुखर हो गई। छन्द आदि के लिए उनका द्विवेदी जी के समान कोई आग्रह नही रहा। उनके द्वारा लोक-प्रचलित छन्द एव सरल तथा सरस भाषा का प्रयोग किया गया।

इन दोनो गुरुओ के अखाडो मे दो प्रकार के शिष्य भी उतरते हैं। जयशकर 'प्रसाद' एव मैथिलीशरण गुप्त। प्रसाद जी ने पाठक जी की प्रवृत्तियों का आधार लेकर स्वच्छन्दतावाद को आगे बढाया और गुप्त जी ने अपने आचार्य के वरद हस्त के सकेत पर काव्य का शास्त्रीय मार्ग अपनाया। द्विवेदी जी का व्यक्तित्व भाषा आदि के निर्माण के कारण विशेष रूप से प्रशस्त था और सर्व-ग्राह्य भी था। इससे पाठक जी की स्वच्छन्द परम्परा के अनुयायियो पर भी विना प्रभाव पडे नही रहा। इससे तत्कालीन युग का नामकरण ही 'द्विवेदी-युग' हुआ।

द्विवेदी-युग मे स्वच्छन्दवादिता की प्रगति स्पष्टरूपेण देखी जा सकती है। १९०० ई० से १९२५ ई० तक हिन्दी काव्य पर आचार्य द्विवेदी जी की भावनाओ का पूर्ण एकाधिपत्य था। १९२५ ई० के उपरान्त छायावाद और रहस्यवाद तीव्र गति से प्रवाहित हो उठे। इस युग पर गान्धी-रवीन्द्र की विचार-धाराओ का भी प्रभाव था तथा पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन से भी नवीन प्रवृत्तियो का सन्निवेश हुआ।

इस पच्चीस वर्षो के समय को सरलतापूर्वक हम दो भागो मे विभाजित कर सकते है। (१) १९०० ई० से १९१६ ई० तक की काव्यप्रगति जिसमे

शैली-विषयक शैथिल्य-परित्याग का प्रयास किया गया और नवीन विषयो के प्रयोग किये गये। (२) १९१६ ई० से १९२५ ई० तक का काव्योत्कर्ष काल जो पाश्चात्य आदर्श और काव्य के सिद्धान्तो पर आधारित रहा।

(१) प्रथम १६ वर्ष के समय में अभ्यासस्वरूप खड़ी बोली को व्याकरण आदि से अनुशासित कर साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र मे उपयोग के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया गया। सर्वप्रथम इसका प्रयोग गद्य-क्षेत्र मे किया गया। अनुवादित उपन्यासो, नाटको एव गोपालराम गहमरी, किशोरीलाल गोस्वामी, रामचन्द्र शुक्ल एव बग महिला की कहानियो मे इसका शुद्ध रूप निखर आया। कालान्तर मे कवियो ने भी गद्य को पद्य मे स्थान देने का सफल प्रयोग किया। उन्होने अपनी शैली को भी गद्यात्मक (Prosaic) कर लिया। रीतिकालीन काव्य की शृगार की भौतिक अभिव्यक्ति, अलकार-बहुलता तथा रससिद्धि के कृत्रिम प्रयास—इन सभी की उपेक्षा कर दी गई।

यह सुन्दरी कहाँ से आई, सुन्दरता अति अद्भुत पाई।
सूरत इसकी अति भोली है, और न इसकी हमजोली है।
इसका चरित बाण ने गाया, जिसने कादम्बरी बनाया।
यह कोमल किन्नर-कन्या है, रूप-राशि गुण-गण धन्या है॥[1]

कवि को केवल विषय-प्रतिपादन की ही चिन्ता है। वह सरलतापूर्वक सरल गद्य मे ही सगीतात्मक लय देकर अग्रसर होता जाता है। उसमे अन्य काव्य-गुण भरने का किसी प्रकार का आग्रह नही है।

१९०८ ई० के उपरान्त से ही काव्य के क्षेत्र मे सुव्यवस्था का समय आने लगता है। इस समय उनके समक्ष दो आदर्श प्रस्तुत थे। (१) सस्कृत काव्य मे प्रयुक्त भावधारा और आदर्श तथा (२) पाश्चात्य काव्य की भावधारा एव उनके विधान एव आदर्श।

हिन्दी के कवि एव विद्वान् इस समय दोनो भावधाराओं के सम्मिश्रण से अपनी रचनाओ को सुशोभित करते थे। श्रीधर पाठक एक ओर सस्कृत काव्य पर आसक्त हो कालिदास के 'ऋतु सहार' से प्राच्य आदर्श काव्य मे प्रसूत कर रहे थे —

वारि फुहार भरे बदरा,
सोइ सोहत कुंजर हैं मतवारे।

१. महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'द्विवेदी काव्यमाला' महाश्वेता, पृष्ठ ३७९।

बीजुरी जोति धुजा फहरे,
घन गर्जन शब्द सोई हैं नगारे।
रोर को घोर को ओर न छोर,
नरेसन की सी छटा छवि धारे।
कामिन के मन को प्रिय पावस,
आयो प्रिये नव मोहिनी डारे॥[1]

दूसरी ओर —

'Far far away, thy children leave the land
Ill fairs the land, to hastening ills a prey,
Where wealth accumulates and men decay
Princes and lords may flourish or may fade
A breath can make them as a breath has made
But a bold peasantary, their country's pride
When once destroyed, can never be supplied [2]

घन वैभव जहँ बढ़त प्रजा छीजत जहँ जाई
नहिं मगल तेहि भूमि अमंगल नित नियराई
कुमर और उमराय बने बिगरे कछु नाहीं,
फूँक माहिं वे बनत, फूँक ही सों मिट जाहीं
पै दृढ कृषक समाज देस को सांचो गौरव
नास भये एक बार फेरि उपजन नहिं सभव।[3]

उपर्युक्त पक्तियों द्वारा अंग्रेजी-काव्य का हिन्दी-काव्य मे रूपान्तर भी कर रहे थे।

यद्यपि रामचन्द्र शुक्ल भारतीय सस्कृत काव्य-शास्त्र के परम अनुयायी थे तथापि 'शिशिर-पथिक' मे उन्होने यथार्थवाद का ही समावेश किया है '—

कँपत आय भयो छिन मे खडो
दृढ़ कपाट लगे एक द्वार पै।
सुनि परयो 'तुम कौन ?' कह्यो तबै,
'पथिक दीन दया एक चाहतो।'

---

१ श्रीधर पाठक, 'ऋतु संहार', वर्षा वर्णन, मनोविनोद, द्वितीय भाग, पृ० १७, शिमला, १६-६-१६०३।

2 Goldsmith—'The Deserted Village'

३ प० श्रीधर पाठक, 'ऊजड़ ग्राम', १६०६।

खुलि गये झट द्वार धड़ाक लें,
धुनि परी मधुरी यह कान मे—
'निकसि आय बसो यहि गेह में,
पथिक बेगि सकोच बिहाय कै।'
लखि फिरी दिसि आवन हार के
विमल आसन इंगित सों दयो,
अतिथि बैठि असीस दयो तबै—
'फलवती सिगरी तव आस हो।'
मृदु हँसो करुणा रस सों मिली
तरुण आनन ऊपर धारि कै
कहति 'हाय पथी, सुनु बात रे,
उकठि बेलि कहाँ फल लावई।'[1]

वैज्ञानिक विकास के दृष्टिकोण से मानव बौद्धिक और तार्किक हो उठा था। कोरे आदर्श मे उसका विश्वास घट चला था। यही कारण रहा कि काव्य के विषय सामाजिक हो उठे। साहित्य हमारे जीवन की आलोचना होता है—इस नूतन प्रगति से यह प्रमाणित हुआ। राम एव कृष्ण मे परमात्म तत्व का ही केवल समावेश न आँका गया, उनमे अन्य मानवीय गुण भी आँके गए। 'प्रिय प्रवास' मे 'हरिऔध' जी ने राधाकृष्ण के सामाजिक रूप को ही प्रमुखता दी है।

(२) १९१६ ई० के उपरान्त आलोच्य-काल का द्वितीय भाग प्रारम्भ होता है। इस समय का नवीन खेवे का काव्य पाश्चात्य सिद्धान्तो का अनुकरण कर चला। वस्तुत चित्र-कल्पना, नाद एव प्रतीक शैली सभी के लिए वे अग्रेजी काव्य की ओर उन्मुख हुए। इस काल की साहित्यिक प्रगति मे तीन बातों का प्राधान्य है —

१—गद्य एव पद्य दोनों क्षेत्रों मे पाश्चात्य आदर्शों का अनुकरण।
२—गीतकाव्य का प्राधान्य।
३—कला के नवीन मापदण्ड।

हिन्दी के कवि पर पाश्चात्य काव्य-सिद्धान्त का ही नही अपितु वहाँ की सामाजिक, सास्कृतिक एव वैज्ञानिक परिस्थितियो का भी प्रभाव पडा। फलत

१ प० रामचन्द्र शुक्ल, 'शिशिर-पथिक', कविता-कौमुदी, पृष्ठ ३९४–९५, स० रामनरेश त्रिपाठी।

हिन्दी का कवि भी व्यक्तिवादी हो उठा। वाह्य जीवन को समाप्त कर उसे भी अन्तर मे आनन्द आने लगा।

सुमित्रानन्दन पन्त की १९१८ की निम्न पंक्तियाँ वाह्य से अपना सम्बन्ध स्थापित रखने के लिए कितनी आकुल हैं —

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल-जाल मे कैसे उलझा दूँ लोचन ?
भूल अभी से इस जग को।
तजकर तरल तरंगों को
इन्द्र-धनुष के रंगो को
तेरे भ्रूभगों से कैसे बिंधवा दूँ निज मृग-सा मन ?
भूल अभी से इस जग को।
कोयल का वह कोमल बोल
मधुकर की वीणा अनमोल,
कह, तब तेरे ही प्रिय स्वर से कैसे भरलूँ सजनि, श्रवन ?
भूल अभी से इस जग को।
ऊषा सस्मित किसलय दल
सुधा रश्मि से उतरा जल,
ना, अधरामृत ही के मद मे कैसे बहला दूँ जीवन ?
भूल अभी से इस जग को।

१९२२ ई० की पन्त की 'मधुकरी' कविता भी देखिए —

सिखादो ना, हे मधुप कुमारि,
मुझे भी अपने मीठे गान।
कुसुम के चुने कटोरों से
करादो ना कुछ-कुछ मधुपान
नवल कलियों के धोरे झूम,
प्रसूनों के अधरों को चूम,
मुदित कवि-सी तुम अपना पाठ,
सीखती हो सखि जग मे घूम,

सुनावो ना, तब हे सुकुमारि,
मुझे भी ये केसर के गान।

पन्त की प्रथम कविता व्यक्त करती है कि कवि प्रकृति के प्रिय वातावरण से इतना हिला है कि 'बाला' की माया और उसके आकर्षण का प्रकृति के समक्ष कुछ भी गुरुत्व नही। इससे कवि दृढता से प्रकृति के पाश मे ही अपने को आबद्ध रखना चाहता है। दूसरे शब्दो में हम यह भी कह सकते हैं कि पन्त का प्रकृति-प्रेम जो जन्म से उनके साथ लगा है इस काल तक अक्षुण्ण है। लोक प्रकृति के उस कवि को भटकाना चाहता है, परन्तु वह अपने श्रद्धेय के प्रति विश्वस्त है। पन्त का यह प्रकृति-प्रेम उनके 'पल्लव' काव्य का मेरुदण्ड है। द्वितीय कविता मे ऐसा लगता है कि कवि अपने युगो की निधि को विश्व मे खो बैठा है। आज उसी खोई निधि को पुन प्राप्त करने के लिए वह आकुल है।

समाज के दृष्टिकोण जब सीमित हो गये और व्यक्ति केवल अपने व्यक्तित्व को ही प्रधान मान बैठा तब वह निज के ही गीत अलाप उठा। गीतितत्व का ही प्राधान्य हो उठा। स्वय ही कवि अपने काव्य-क्षेत्र का नायक हो उठा —

छिल-छिल कर छाले फोड़े
मल-मल कर मृदुल चरण से,
घुल-घुल कर वह रह जाते
आँसू करुणा के कण से।
इस विकल वेदना को ले
किसने सुख को ललकारा,
वह एक अबोध अकिंचन,
बेसुध चैतन्य हमारा।
अभिलाषाओं की करवट,
फिर सुप्त व्यथा का जगना,
सुख का सपना हो जाना,
भीगी पलकों का लगना।[1]

कवि भक्ति-काल एव रीति-काल के नायक एव नायिकाओ के स्थान पर निज को जो हृदय में बन्द था, काव्य की भूमि पर ले आया। गीतो की हिन्दी-काव्य में बाढ-सी आ गई।

---

१ जयशकर प्रसाद, 'आँसू', पृष्ठ १६।

तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चचल गति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मैं कान्त कामिनी कविता॥
तुम प्रेम और मैं शान्ति, तुम सुरापान घन अंधकार
मै हूँ मतवाली भ्रान्ति।[1]

उपर्युक्त परिवर्तन के समान ही काव्यकला पर भी प्रभाव पडा। छन्द-गीत-लय आदि को कवि ने नवीन ढग से देखा —

'अहे वासुकि सहस्र फन,
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर
छोड रहे हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर
शत-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर।
मृत्यु तुम्हारा गरल दन्त, कचुक कल्पान्तर
अखिल विश्व ही विवर
वक्र कुण्डल।
दिङमण्डल॥[2]

उपर्युक्त पन्त के 'परिवर्तन' का एक अश है। कवि ने परिवर्तन का प्रतीक वासुकि को मानकर उसका चित्रण किया है। 'स्फीत फूत्कार भयकर' शब्दो से सर्प की फुसकार का अनुभव होता है। छन्दो को भी कवियो ने अपनी भाव-धारा के अनुसार चुना। १९१५ ई० के लगभग निराला ने 'जूही की कली' के लिए निम्न मुक्तक छन्द को अपनाया :—

विजन-वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल-कोमल-तनु तरुणी, जूही की कली
दृग बन्द किये, शिथिल पत्रांक मे।[3]

इस प्रकार १९१६ ई० से १९२५ ई० का काल काव्य के निर्माण के दृष्टिकोण से भक्तिकाल के कुछ ही पीछे पडेगा। ३०–४० वर्ष की कवियों की साधना ने खडी बोली को माँजकर ब्रजभाषा के समान ही मधुर बना दिया। छायावाद एव रहस्यवाद भी हमारे काव्य के अतर्गत आ गए।

१. निराला—'तुम और मैं'।
२. पन्त—'परिवर्तन'।
३. निराला—'जूही की कली'।

हिन्दी साहित्य में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो का प्रारम्भ

विगत पृष्ठो द्वारा भारतेन्दु एव द्विवेदी-युग की मूल प्रवृत्तियो को स्पर्श करने का प्रयास किया गया है। आधुनिक-युग जव भारतेन्दु जैसे अधिनायक के नेतृत्व मे सचरणशील हुआ तव रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ पराभूत हो उठी और स्वच्छन्दवादिता द्विवेदी-युग को पार करती हुई छायावाद के प्रारम्भ काल के पूर्व तक चलती चली आई। इस प्रकार इस आलोच्य विपय का सम्वन्ध १८७५ ई० से १९२५ ई० तक प्रवाहित स्वच्छन्दवादिता का विवेचन करना है। इन दोनो युगो के मध्य मे रूढियो के सवसे अधिक विरोधी के रूप मे प० श्रीधर पाठक आते हैं। उन्होने अपने साहित्य एव विचारो से सनातनी शृखलाओ को सस्मित हो तोडा है, इसमे उनके सम्पूर्ण साहित्य का अनुशीलन भी इस आलोच्य विषय का अग वना लिया गया है।

भारतेन्दु एव उनका युग प्राचीन और नवीन का समिश्रण रहा है। इस युग की जो रचनाएँ भक्ति और रीतिपरक हैं उनमे कृत्रिमता है और वे जीवन की व्याख्या से कोसो दूर हैं।

आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई
न तु राधिका-कन्हाई-सुमिरन को वहानो है।

—पक्तियाँ भारतेन्दु-युग की न होती हुई भी इस युग की प्रवृत्तियो (भक्ति एव रीति) का छिछलापन सिद्ध करती हैं। कवि अपने विश्वास को खो वैठा था और हृदय के विकारो के साथ आँख-मिचौनी खेल रहा था। स्वच्छन्दतावादी भावना ऐसी कृत्रिम भावनाओ की उपेक्षा करती है। इससे इनके अध्ययन के सन्निवेश को नमस्कार कर भारतेन्दु-युग के उसी स्वाभाविक अश को लिया गया है जिसमे जीवन का स्पन्दन है और हृदय का उपयोग है। भारतेन्दु-युग का नवीन स्वच्छन्दतावादी अश जिसे भारतीय क्रान्ति (१८५७) से प्रेरणा मिली थी तथा देश की निर्धनता और जर्जरता, मातृभाषा का अपमान एव समाज की पतनशीलता आदि-आदि ऐसे विषय थे जिन्हें वे अपने नेत्रों से देखकर वर्णन करने का प्रोत्साहन प्राप्त करते थे—इस विवेचन के अश वना लिए गये हैं। भाषा के क्षेत्र में खडी वोली विषयो के क्षेत्र मे नित्यप्रति के व्यावहारिक एव छन्दों के क्षेत्रो में लावनी एव कजली आदि लोक-प्रचलित छन्द तथा युगो-युगो की सुपुप्त राष्ट्रीयता को इस अध्ययन मे सम्मिलित कर लिया गया है।

भारतेन्दु का स्वच्छन्दवादिता के प्रति जितना प्रोत्साहन था, महावीरप्रसाद द्विवेदी उस भावना से उतने ही दूर थे। उनकी नीतिवादिता और उपदेशात्मक

इतिवृत्तात्मकता ने भारतेन्दु-युग की पल्लवित स्वच्छन्दवादिता का गला ही घोट दिया। भाषा-सस्कार का उनका आग्रह इतना अधिक वढा कि सस्कृतगर्भिता भाषा का प्रयोग समीचीन समझा जाने लगा। लोक-प्रचलित भाषा का जो स्वरूप भारतेन्दु एव प्रेमघन जी ने रखा था और श्रीधर पाठक ने 'एकान्तवासी योगी' एव 'जगत सचाई सार' द्वारा जिसे पोषित किया था, वह उपेक्षित हो गया। इस प्रकार वस्तुत. स्वच्छन्दवादिता के लिए सकट भी आ गया, परन्तु श्रीधर पाठक जैसे सफल साधक और सम्पोषक ने उसे म्रियमाण न होने दिया। स्वच्छन्दवादिता को उनसे आश्वासन मिला। पाठक जी ने उसे सकट से ही मुक्त नही किया ; किन्तु उसे अपने काव्यो द्वारा प्रगति दी। कालान्तर मे रामनरेश त्रिपाठी तथा अन्यो ने अपने स्वच्छन्दतावादी काव्य द्वारा उक्त धारा को चिरजीवी वनाया।

यह स्वच्छन्दतावादी धारा आगे भी अग्रसर होती है, जिसके स्पष्ट लक्षण प्रसाद, पन्त एव निराला के प्रारम्भिक काव्यो मे उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार हमारे आलोच्य विषय की सीमा छायावाद के प्रारम्भिक युग तक आती है।

प० श्रीधर पाठक ने भारतेन्दु-युग मे जब काव्य की स्पष्ट रूपरेखा सामने न आ पा रही थी उस समय 'एकान्तवासी योगी' द्वारा भाव, भाषा एव छन्द आदि का नूतन विधान रखा था, जिससे उस युग ने इस काव्य को काव्य की कसौटी समझ लिया था। 'काश्मीर-सुषमा', 'वनाष्टक' एव 'सान्ध्य अटन' नाम्नी रचनाओ ने ठाकुर जगमोहनसिंह की सवेदनशील प्रकृति-काव्य परम्परा को अग्रसर किया। प्रकृति का यह निरीक्षण भी स्वच्छन्दतावादी काव्य का प्राण है। इस प्रकार पाठक जी को हम सभी प्रकार से स्वच्छन्दतावादी काव्य की साधना से पुष्ट पाते हैं। इसी से द्विवेदी-युग मे उक्त काव्य के समक्ष जो भी व्यवधान थे उनकी उपेक्षा करते हुए उन्होंने अपना मार्ग वनाया था।

उपर्युक्त सक्षिप्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि १८७५ ई० से १९२५ ई० तक स्वच्छन्दधारा प्रवाहित रही है। वह वडी ही महत्त्वपूर्ण है और साथ मे प० श्रीधर पाठक का व्यक्तित्व भी महामहिम है। इससे उक्त पचास वर्ष के स्वच्छन्दतावादी काव्य के अध्ययन मे पाठक जी के जीवन एव उनकी कृतियो का अनुशीलन भी सम्मिलित कर लिया गया है।

* * *

शास्त्रीय एवं स्वच्छन्दतावादी काव्य का सैद्धान्तिक मतभेद

ललित कलाओ के मध्य मे तो काव्य का सर्वोच्च स्थान है ही। उपादेयता के दृष्टिकोण से भी वह विज्ञान की अपेक्षा मानव-सस्कृति के लिए कम महत्त्वपूर्ण नही है। विज्ञान विश्व के सत्य को ही मानव के समक्ष प्रस्तुत कर पाता है। काव्य की भी यही प्रक्रिया होती है, किन्तु प्रथम का सत्योद्घाटन निरपेक्ष होता है जब कि द्वितीय का सापेक्ष। विज्ञान विश्व के किसी पदार्थ के सबन्ध मे उसके अणु-परमाणु एव अन्य तत्व जिनसे वह निर्मित है, स्पष्ट विश्लेषण कर देता है। जब कि काव्य उस सत्य का उद्घाटन मनोमोहक रूप-विधान द्वारा करता है। विज्ञान का सत्य नग्न सत्य होता है, काव्य का सत्य आवृत सत्य होता है। कवि के मानस के अन्तरतम में प्रसूत भावनाएँ ही किसी काव्य के आवरण होते हैं, जिनका आधार लेकर कवि अपने मानस-पटल के सत्य को प्रकट करने मे आकुल हो उठता है।

कवि सामाजिक प्राणी है। उसके निज के मनोविकार एव भावनाएँ भी समाज की होती हैं। इससे वह उन भावनाओ को काव्य द्वारा समाज के सामने प्रकट कर देता है। प्रत्येक प्रकार की कला-निष्पत्ति के मूल में यही भावना काम करती है।

काव्य का प्रारम्भ कब से है ? निश्चयात्मक ढग से कह सकना एक समस्या है। अन्य बातो के समान ही काव्य के प्रारभ के सम्बन्ध मे जन-समाज आस्तिक भाव का पक्ष ग्रहण कर उसे दैवी प्रसाद ही मानता है। आज बौद्धिक एव तार्किक होकर हम भले ही उपर्युक्त सिद्धात से सहमत न हो, परतु विकासवाद के सिद्धात से सहमत होकर यह मानने मे हमे जरा भी कठिनाई नही कि काव्य का प्रारभ मानव के आदि सवेदनो तथा मनोविकारो से है। सर्वप्रथम उसके समक्ष जब किसी स्थायी भाव का प्रादुर्भाव हो गया होगा वह उस भाव से अभिभूत हो मूक न बैठा रहा होगा। अवश्य ही उसने अपने मनोविकारो के प्रदर्शन के लिए अपने मुख की भगिमा, दैहिक सचालन एव वाणी का आधार लिया होगा। क्रौंच-युग्म के पुरुष पक्षी के असामयिक निधन पर स्त्री-पक्षी के कारुणिक रव से महर्षि वाल्मीकि भी मूक न रह सके :—

मा निषाद प्रतिष्ठात्वमगमः शाश्वती समा
यत्क्रौंच-मिथुनादेकमवधी काममोहितम्।

इस कारुणिक घटना के सम्बन्ध मे मनोविकार का स्थायी भाव शोक महर्षि के मानस मे उत्पन्न हुआ और उनकी वाणी तत्काल ही मुखरित हो

उठी। यहीं से भारतीय काव्य-सृजन की एक स्पष्ट रूपरेखा हमारे सामने आ उपस्थित हुई। भारतीय साहित्य मे केवल उपर्युक्त प्रस्फुटन के आधार पर महर्षि वाल्मीकि आदि-कवि के पद पर आसीन हैं; परन्तु उनसे विगत काल में भारतीयों की सवेदनशीलता अवश्य चलती रही होगी। वे जड न रहे होगे। फलतः काव्य अपने लक्षण उन्हीं सवेदनाओ मे अन्तर्निहित किये हैं। यह निस्सदेह सत्य है कि उनका इतिहास और उनकी प्रक्रिया आदि हमारे समक्ष प्रस्तुत नही, जिससे हम अधिकारपूर्वक भारतीय काव्य के सूत्रपात के काल को और पीछे ले जाएँ। विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार उपर्युक्त सभी काव्यो के मूल मे घटित हुआ है, जो विश्वस्त भी है।

आदि का काव्य बिना किसी बन्धन और विधि-विधान के प्रस्फुटित होता रहा—प्रवाहशीला सरिता के जीवन के समान ही काव्य का जीवन भी अबाध-रूप से प्रगतिशील रहा। कवि बनाये नही जाते, जन्मजात होते हैं (Poets are born not made) की लोकोक्ति काव्य के इसी सरल जीवन का परिचय कराती है। काव्य का इतिहास यही पर समाप्त न होकर आगे मोड लेता हुआ चलता है। कालान्तर मे 'करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान' की भावना भी विवेकी मानव के समक्ष अवश्य आई होगी। उसने काव्य के सिद्धान्त निर्मित किये और आदर्शवाद का अमोघ शस्त्र जनसमाज के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। रीति-ग्रन्थो की परम्परा इसी परिपाटी का पोषण करती है। किसी भी साहित्य में रीति-पद्धति उसकी शास्त्रीय कसोटी होती है, जिस का अनुशीलन शास्त्रीय परिपाटिया करती हैं। सस्कृत साहित्य मे वामन, दडी एव मम्मट और पाश्चात्य साहित्य मे अरस्तू, होरेस एव सिसरो आदि इसी प्रकार के आचार्य थे, जिन्होंने जनवर्ग के समक्ष रीति-ग्रन्थो के स्तम्भ खडे कर दिये। कलाकारो ने उनका अनुकरण भी किया।

वस्तुत शास्त्रीय (Classicism) एव स्वच्छन्दवादिता (Romanticism) मे स्वरूपगत एव प्रवृत्तिगत अन्तर है। अठारहवी शताब्दी में योरोपीय महाद्वीप की जागीरदारी प्रथा, कैथोलिक धर्म एव स्वेच्छाचारी साम्राज्यवादिता आदि की प्रतिक्रियास्वरूप स्वच्छन्दवादिता का जन्म हुआ। वाल्टेयर एव रूसो ने सरल मानवीय विचारधाराओ का आधार लेकर सामन्तीयता की जड़ें हिला दीं और शास्त्रीयता के विरुद्ध स्वच्छन्दवादिता का बीज-वपन किया। क्रमशः यह विचारधारा जर्मनी से फ्रान्स और अनन्तर फ्रान्स से इगलैण्ड में प्रवाहित हुई।

योरोप के वे साहित्यिक जो ग्रीस की प्राचीन साहित्यिक परम्परा के अनुयायी है तथा प्राचीन लैटिन एव अग्रेज़ी साहित्य के अनुकरण पर अपनी साहित्यिक प्रगति चिरजीव रखते हैं शास्त्रीय कवि अथवा साहित्यिक (Classics) कहे जाते हैं। इस श्रेणी के लोग पौराणिक एव धार्मिक प्रवृत्ति के होते हैं और वैसे ही पात्रों ,का वे चित्रण करते हैं। वे लोग आदर्श एव सुधारवादी भावना को स्वच्छन्द मानवीय भावना से अधिक सम्मान प्रदान करते हैं। इनकी काव्यात्मक अभिव्यजना शैली भी विशेप प्रकार की होती है। परम्परा के समक्ष जीवन की नवीन परिस्थितियो और सघटनो का इन लोगो के समक्ष अधिक मूल्य नही।

वाल्टेयर और रूसो की मानवीय विचारधाराओं ने ललित कलाओं के क्षेत्र मे भी नवीन प्राण फूंक दिये। कृत्रिमता के स्थान पर अकृत्रिमता और यथार्थ का चित्रण साहित्य के सत्य की कसौटी समझी गई। लोकप्रचलित भापा-शैली, मानवीय चरित्र, स्वाभाविक अभिव्यजना शैली, हृदयगत स्वच्छन्द कल्पना-प्रधान भावनाओ का स्वच्छन्दवादिता के क्षेत्र मे अधिक मूल्य समझा गया।

शास्त्रीयता (Classicism) मे भले ही आदर्श और परम्परा का देवता निवास करता हो, किन्तु मानव मानव ही रहता है। इससे स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) मे ही नवीन मानवता को सरक्षण मिला। योरोपीय प्रदेशों के समान अवशेष विश्व ने भी इस भावना का सम्मान किया। स्टाडार्ड (Stoddard) के शास्त्रीय (Classic) एव स्वच्छन्द (Romantic) काव्यो के विधि-विधान के सम्बन्ध मे निम्न कथन युक्तियुक्त है। इस कथन से दोनो की भावनाओं का अन्तर भी स्पष्ट हो जाता है —

"विशुद्ध शास्त्रीय रचना रूप (अग-सगठन), आशय (लक्ष्यपरता) या सम्बन्ध (बौद्धिकता) के नियमो का अनुवर्तन करती है। शास्त्रीय बौद्धिकता रूप, आशय या सम्बन्ध के सिद्धान्त-स्वीकृति की ही स्थिति होती है। शास्त्रीय रचना की पृष्ठभूमि मे एक स्थिर आदर्श, स्वीकृत अग-सगठित लक्ष्य, सुचारुता, योग्यता और एक तारतम्य रहा करते हैं। इस प्रकार के आदर्श की स्वीकृति शास्त्रीय एकता या वस्तु-सन्तुलन की सूचना देती है। इसके वाह्य लक्षण क्रमवद्धता, आनुपगिकता, नियमानुवर्तिता, आलकारिकता होते हैं। काव्य की शास्त्रीय पद्धति का सूत्रपात वैधानिक है। इसका परिपोषण अनुशासित वाक्यो से होता है, इसके आदर्श ज्ञात होते हैं। शास्त्रीय कवि अपरिवर्तनवादी होता है। स्वच्छन्दवादिता का प्रमुख भाव स्वीकृति नहीं अस्वीकृति है। स्वच्छन्दतावादी

इतिवृत्ति की उपेक्षा करता है और अन्योक्ति की शरण लेता है। प्रत्यक्ष को छोडकर यह अप्रत्यक्ष की जिज्ञासा करता है। यह निर्णीत को त्यागकर गहन तत्व का अनुसधान करता है। स्वीकृत विधान के प्रति असन्तोष मे स्वच्छन्दवादिता का जन्म होता है। यह निरन्तर सजग होकर एक ऐसी नवीन व्यवस्था की खोज करता है, जो पुरानी और मान्य व्यवस्था का अतिक्रमण कर सके। अत परम्परावादी कवि की तुलना में स्वच्छन्दतावादी कवि अनुपात, सन्तुलन एव परिष्कार के गुणो की न्यूनता लेकर आता है। शास्त्रीयतावाद शालीन स्वीकृति है जब कि स्वच्छन्दतावाद उद्दाम आकाक्षा है।"[1]

उपर्युक्त पक्तियो से इतना तो अवश्य ही स्पष्ट है कि शास्त्रीय काव्य परिपाटियो के बन्धन से आबद्ध परतन्त्र जीवन-यापन करता है। उसकी प्रेरणा और चेतना आदर्श एव मर्यादा पर आधारित रहती है। गाडी के पहियो के समान उक्त काव्य एक पिटी हुई लीक को पकडकर चलता है। उस पथ से वह विपथ भी नहीं हो सकता। स्वच्छन्दतावादी काव्य ठीक इसकी विपरीत प्रकृति

1. **Stoddard** :—A purely classical work is a portrayal strictly in consonance with a law of form, motive or relation A classical attitude of mind is an attitude of acceptance of laws of form, motive or relation Behind the classical work seems to stand a fixed ideal, a recognised ideal of proportion, grace, fitness, harmony The acceptance of such an ideal as a guide indicates a classical harmony, spirit, of it the outward indication is order, harmony, system, light Classicism is born of law , it is nourished by authority, its ideals are known The classicist is the conservative in literature. The cardinal notion of romanticism is not acceptance, but rejection. Romanticism rejects the literal and seeks the allegorical , it leaves the seen and searches the unseen, it casts aside the evident and seeks a symbol of the deeper thought Romanticism is born of dissatisfaction with the canons of authority , it constantly and consciously searches for a new law in place of that which has ruled So to the classicist, the romantic work lacks proportion, harmony, finish Classicism is cultured acceptance, romanticism is unschooled desire
—K. K. Sharma—An Introduction to the Poetry of the Romantic Revival (Students' Friends, Allahabad) से उद्धत

का होता है। उसकी अन्तर्भावनाएँ मुक्त पक्षी-सी लोकभूमि पर पोषित होती हुई भी मुक्त वायुमण्डल मे फडफडाती रहती हैं। बन्धन एव मर्यादा मे वस्तुत उसका निधन अन्तर्निहित है।

इस प्रकार 'शास्त्रीय' एव 'स्वच्छन्दतावादी' शब्द विषयपरक ही न होकर साधन और शैली पर भी आश्रित होते हैं। यो तो कोई भी स्वच्छन्दतावादी विषय शास्त्रीय एव कोई भी शास्त्रीय विषय स्वच्छन्दतावादी हो सकता है। यह तो जीवन-दृष्टि और शैली के ही दो भेद हैं जो किसी भी काव्य को शास्त्रीय अथवा स्वच्छन्दतावादी बना देते हैं।

स्वच्छन्दतावादी काव्य की सामाजिक प्रेरक स्थितियां

लैफकैडियो हर्न (Lafcadio Hearn) का कथन है—"साहित्यिक सघर्ष के प्रत्येक परिवर्तन का परिणाम स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का शास्त्रीय और शास्त्रीय प्रवृत्ति का स्वच्छन्दतावाद मे परिणति ही परिलक्षित होता है। परम्परा के विरोध द्वारा ही उनमे से प्रत्येक एक दूसरे से अनुप्रेरित है।"[1]

उपर्युक्त धारणा के अनुसार यदि काव्य की प्रगति को युगो पूर्व ले जाया जा सके तो यह निस्सन्देह सत्य है कि काव्य अपने प्रारम्भिक स्वरूप मे सरल और अकृत्रिम तथा उसका आधार कवि की मानसिक वासना ही प्रमाणित होगी। कवि ने इस स्थिति मे जो कुछ कहा भी है उसमे आवेश, वैयक्तिक भावना तथा प्रकृति के प्रति अनन्य अनुराग ही उपलब्ध होगा। मूलतः यह काव्य स्वच्छन्दतावादी कोटि मे रहेगा। सभ्यता के आदि-युग मे स्वच्छन्दतावादी भावना उस समय तक अविरल गति से प्रवाहित रही जब कोविदो द्वारा इस प्रवाहित काव्य की परीक्षा करके उसके सृजन के सम्बन्ध मे आदर्श तथा विधि-विधानों का निर्माण प्रस्तुत कर दिया गया। विश्व-साहित्य मे रीति-परम्परा उसके सस्कार का ही प्रयास है। यह सस्कारवादी काव्य ही शास्त्रीय कक्षा मे रखा जा सकेगा।

---

1 Lafcadio Hearn says Every alteration of the literary battle seems to result in making the romantic spirit more classic and the classic spirit more romantic. Each learns from the other by opposing it

—K K Sharma, 'An Introduction to the Romantic Revival' से उद्धृत

अन्य देशों के काव्य के समान हमारे देश मे भी पूर्णत· परम्परावादी शास्त्रीय काव्य सृजित नही हुआ है। कवि ने जहाँ-जहाँ मानवीय स्तर की भावनाओं से काव्य की रचना प्रारम्भ की वहाँ-वहाँ ही वैयक्तिकता के साथ स्वच्छन्दतावादी भावना अभिव्यक्त हुई। सस्कृत मे कालिदास आदि के कुछेक काव्य और उसी प्रकार हिन्दी के भक्तिकालीन काव्य का कुछ अंश ही स्वच्छन्दतावादी कहा जायेगा। अनन्तर रीतिकालीन काव्य से इसका स्रोत लुप्त हो गया था। जिसका पुन. प्रस्फुटन १८५७ ई० के उपरान्त हुआ और जो द्वितीय विश्व-महायुद्ध तक अबाध गति से प्रवाहित रहा।

काव्य-प्रवृत्ति के अनुसार स्वच्छन्दतावादी काव्य मे व्यक्तिवादी भावना प्रधान होती है जिसके मूल मे रोमाटिक चेतना काम करती है। इस विशेष चेतना के सम्भार मे क्रान्ति की भावनाओ को प्रमुखता मिलती है। स्वच्छन्दतावादी कवि केवल रूढिवादी विचारधाराओ का ही विद्रोही नही होता; किन्तु वह विश्व की प्रत्येक प्रकार की परम्पराओ एव रूढियो का विरोधी होता है। उसके सृजित काव्य मे सवेदनशीलता और वैयक्तिक अनुभूति रहती है।

प्रत्येक प्रकार के काव्य के तीन अग होते हैं—(१) प्रतिपादित सामग्री (२) कवि की प्रवृत्ति तथा (३) काव्य के साधन। स्वच्छन्दतावादी काव्य के सम्बन्ध में भी उपर्युक्त तीनो अगो को लेकर विचार करने से उसकी सामाजिक स्थितियों पर प्रकाश पड सकेगा। इन अगो के तत्वो को लेकर डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अपने निम्न दृष्टिकोण हैं ·—

"रोमाण्टिक कवियो द्वारा निबद्ध वक्तव्य वस्तु (प्रतिपादित सामग्री) मे निम्नलिखित बातें बताई जाती हैं—(१) शास्त्र-बहिर्भूत कल्पित देशो, मध्य-युग या अतीत-युग के राष्ट्रीय गौरव के आकर्षक दृश्य तथा मोहक सस्कृति का लोभनीय चित्रण, (२) सामान्य की अपेक्षा विशेष पर जोर—रगगत सामञ्जस्य की अपेक्षा उत्तेजक एकागी रगो पर बल देना, (३) प्रकृति को व्यक्तिगत और अव्यवहृत प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय समझना और विशेष भाव से उसके उद्धत और उद्दाम वेग वाले रूप पर बल देना, (४) रहस्यवाद और अतिप्राकृत तत्व मे विश्वास, (५) कालरात्रि, श्मशान, मकबरा, विनाश, नियति-चक्र, प्रलय, झझा आदि भूरिश आक्रमण और (६) स्वप्नलोक, अवचेतन चित्त और आवेशावस्था की बातें।

"लेखक की प्रवृत्तियो का भी छायावादी कवियो से अधिक मेल है। ये प्रवृत्तियाँ (कवि की प्रवृत्तियाँ) इस प्रकार बताई जाती हैं—(१) अत्यन्त

वैयक्तिक दृष्टिकोण, (२) इनके द्वारा निबद्ध नायक या तो वेदनाग्रस्त, विरक्तिक्लान्त, आत्म-केन्द्रित व्यक्ति होता है या समाज के विरुद्ध भभकता हुआ विद्रोही, और दोनो ही अवस्था मे उसका व्यक्तित्व रहस्यमय होता है। (३) कवि द्वारा निबद्ध काव्य-नायक तो इस प्रकार का व्यक्ति होता है, किन्तु स्वय कवि अन्तर्दर्शी मर्मज्ञ व्यक्ति होता है, (४) वह तर्क की अपेक्षा भावावेग को, यथार्थ की अपेक्षा आदर्शवाद को, परिस्थितियो से समझौता करने की अपेक्षा महत्वाकाक्षा को अधिक गौरव देता है।

"जहाँ तक अभिव्यक्ति शैली (काव्य के साधन) का प्रश्न है, रोमाण्टिक कवि भी हिन्दी के छायावादी कवि की ही भाँति (१) नियमो और रूढियो से स्वतन्त्र रहने का दावा करता है (२) स्वत. प्रवृत्त भावावेग पर बल देता है (३) दिवास्वप्न जैसी अलीक कल्पना या असलग्न चिन्ता-प्रवाह, अस्पष्टता, युगपत सौन्दर्यानुभूति तथा कलात्मक प्रक्रिया की पौनपुनिकता की ओर प्रवृत्त होता है।"[१]

स्वच्छन्दतावादी काव्य मे जैसा निवेदन किया जा चुका है व्यक्ति प्रधान हो जाता है और समाज गौण। ऐसे काव्य मे लोकादर्श, लोक-भावना एव लोक-नीति आदि तिरोहित हो जाते हैं। उनके समक्ष केवल व्यक्ति और उसकी क्रान्तिकारी भावना रह जाती है। वह अपने लोक का स्वय ही अधिनायक होता है और निर्णायक भी। स्वच्छन्दतावादी काव्य के एकच्छत्र साम्राज्य मे वह किसी प्रकार के बन्धन का अनुभव न कर अपने को मुक्त पक्षी-सा स्वच्छन्द समझता है। उसे रूढिवादिता का बन्धन असह्य लगता है। वह भोडी और कृत्रिम परम्पराओ को केवल तोडता ही नही, किन्तु चुनौती देता हुआ सामाजिको को उनकी यथार्थता दिखलाता है और बतलाता है—देख लो अपने चर्म-चक्षुओ से जिसे तुम अपने लोक-जीवन की आधार-शिला समझे हो वह भीतर से कितनी खोखली और असत्य है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य मे व्यक्ति ही काव्य का विषय, व्यक्ति ही कवि की प्रवृत्ति और व्यक्ति ही अभिव्यजना का साधन है। इस प्रकार यह काव्य व्यक्ति का इतिहास सरक्षित रखने के कारण विशेष लोभनीय हो जाता है। अब देखना यह है कि महत्वपूर्ण स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रेरक स्थितियाँ क्या हैं जिनसे इसके सृजन और विकास मे पूर्ण सहयोग मिलता है।

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, छायावादी कविता की प्रेरणा-भूमि, 'अवन्तिका' पटना, काव्यालोचनाक, वर्ष २, अक १ (जन० १९५४), पृष्ठ २१२।

व्यक्ति-प्रधान इस प्रकार के काव्य की प्रेरक स्थितियो मे पूंजीवाद एव राष्ट्रीयता का प्रमुख स्थान है। यही वे परिस्थितियां हैं जिनसे मानव को अपने मानसिक विकास एव स्वतन्त्र विचार-धाराओ के निर्माण मे सहयोग मिलता है।

पूंजीवाद को ही इसका श्रेय है कि वह सामन्तशाही को ध्वस्त करके मानव को उनके उत्पीडन से मुक्त कराता है। इस प्रतिक्रिया मे निस्सदेह सत्य है कि सपूर्ण पूंजी कुछेक पूंजीपतियो के समीप ही एकत्रित हो जाती है। समाज मे भी व्यक्ति स्वतन्त्र हो जाते हैं और सामन्तीय आदेशो के पालन करने मे वे कभी भी वाध्य नही होते। इसके अतिरिक्त पूंजीवादिता के प्रसार से समाज मे शोपण और दमन भी प्रारम्भ हो जाता है। मजदूर और गरीब जो पूंजीपतियो के चाकर होते हैं भरपूर वेतन प्राप्त न करने के कारण भुखमरी के शिकार होते हैं। इस प्रकार शेप समाज मे त्राहि-त्राहि हो उठती है और सामन्तवादी परतन्त्रता के समक्ष मानवता का हनन और भी दयनीय तथा करुण हो उठता है।

इस पूंजीवाद के विकास के साथ कवि की कविता मे भी परिवर्तन उपस्थित हो जाते हैं। काव्य-निर्माण मे यह नवीन परिपाटी अपनाने के लिए प्रेरित हो जाता है। उसका कवि-कर्म दो रूपो में हमारे सामने आता है। प्रथम मे वह पूंजीवादी समाज के साथ सामन्तीयता का विरोध करके व्यक्तिवाद के निर्माण मे भरसक सहायक होता है। इस व्यक्ति-स्वातत्र्य के सम्बन्ध मे वह आत्माभिव्यक्ति कर उठता है, जिससे स्वच्छन्दतावाद का सम्पोषण होता है। कालान्तर मे यह पूंजीवादी व्यक्ति-स्वातन्त्र्य मृगतृष्णा-सा निराशाजनक लगता है। पूंजीपतियो का शोपण असह्य मनोव्यथा का कारण वन जाता है, जिससे कवि जीवन से निराश और उदासीन हो उठता है।

" पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था की भांति पूंजीवाद की स्वच्छदतावादी कविता में भी जहां एक ओर क्रान्तिकारी तत्व होते हैं वहां दूसरी ओर असामाजिक प्रतिक्रियावाद के वीज भी होते हैं, जो पूंजीवाद के अन्तर्विरोध की वृद्धि के साथ अकुरित और पल्लवित होते हैं। जव तक वह पुरानी सामन्तीय सस्कृति के वन्धनो को तोडने का कार्य करती है, तव तक क्रान्तिकारी और प्रगतिशील रहती है। किन्तु जव वह नये पूंजीवादी वन्धनो का कारण वनती और ह्रासशील होकर उन वन्धनो को स्थिर रखने मे सहायता करती है तव उसका रूप प्रतिक्रियावादी हो जाता है। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर स्वच्छन्दतावादी

कविता का अन्तर्विरोध ही उसे यथार्थवाद की नई दिशाओ मे मुडने के लिए विवश करता है।"[१]

राष्ट्रीयता भी स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रेरक स्थिति है। समाज की विकास और परिवर्तनशील परिस्थितियो मे राष्ट्रीयता का स्वरूप भी बदलता रहता है। पूंजीवाद समाज के रूप को बदलता है और समाज का रूप राष्ट्रीयता की भावना को जन्म देता है। इस प्रकार पूंजीवाद से राष्ट्रीयता भी अनुप्रेरित रहती है। राष्ट्रीयता का विकास उसी के आधार पर होता है। समाज मे शोषण के कारण राष्ट्रीयता का जन्म होता है। यह शोषण जितना ही प्रबल होगा राष्ट्रीयता का विकास भी उसी उद्दाम प्रगति से होगा।

राष्ट्रीयता के जन्म और विकास मे कवि को नव-चेतना मिलती है। समाज की परिस्थितियो से विवश वह अपने साथ मानवता की निष्कृति के लिए छटपटा उठता है। समाज का एक वर्ग शोषण करे—वह आजन्म शोषित रहे। कवि को यह असह्य हो उठता है। वह व्यक्तिवादी होकर व्यक्ति-प्रधान काव्य का सृजन करने लगता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पूंजीवादिता और राष्ट्रीयता व्यक्तिवादी भावना को अग्रसर करती है। व्यक्तिवादी भाव से ही अप्रतिम स्वच्छन्दतावादी काव्य सृजित होता है। फलत ये दोनो स्थितियाँ ही मूलत उसके सृजन मे भावुक कवियो को प्रेरणा देती रहती हैं।

स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ

उपर्युक्त विवेचन से स्वच्छन्दतावादी काव्य की निम्न प्रवृत्तियो एव उपकरणो पर प्रकाश पडता है :

(१) इस प्रकार के काव्य मे बन्धनहीनता स्वाभाविक होती है। निज की भावनाओं और अनुभूतियों के आधार पर कवि अपने स्वच्छन्द मार्ग का निर्माण करता है।

(२) इस प्रकार के काव्य मे शैली सरल एव पूर्णरूपेण स्वाभाविक होती है। कवि अपनी हृदयगत अनुभूतियो को मुक्त छन्द और स्वतन्त्र अभिव्यजना शैली से गु फित कर स्वाभाविक सगीत द्वारा व्यक्त करता है।

(३) इस क्षेत्र के नायक-नायिकाएँ तथा अन्य पात्र सामान्य जीवन मे ही

---

१. शम्भूनाथसिंह, 'छायावाद के आविर्भाव के सामाजिक कारण', 'अवन्तिका', काव्यालोचनांक, जनवरी, १९५४ (वर्ष २, अक १) पटना, पृ० २०३।

पल्लवित होते हैं। जीवन के बनाव-शृगार तथा आडम्बर मे विश्वास न होने के कारण स्वच्छन्दतावादी कवि कृत्रिम जीवन के पात्र नही चुनता है।

(४) इस प्रकार की कविताओ मे प्रकृति का प्रमुख स्थान रहता है। प्रकृति को दर्शक की भाँति न देखकर वह उसके अन्तस्तल मे वैठकर उसको देखता है। उसके इस देखने मे आत्मीयता की एक झलक प्राप्त होती है।

(५) स्वच्छन्दतावादी काव्य मे उसका काव्य-सौष्ठव कवि की अन्तर्ज्योति से आभासित रहता है। शव्द, छन्द एव अलकार आदि के निर्माण मे वह पूर्ण स्वतन्त्र रहता है।

उपर्युक्त प्रकार की काव्य-प्रवृत्तियाँ सम्पूर्ण स्वच्छन्दतावादी काव्य मे उपलव्ध होती हैं।

'स्वच्छन्दवादिता' की परिभाषा

योरुप महाद्वीप मे रोम और ग्रीस दोनो राष्ट्रो ने अन्य प्रदेशो से सर्वप्रथम प्रवुद्ध एव प्रगतिशील होकर काव्य तथा अन्य ललित कलाओ के लिए चिन्तन-सामग्री प्रस्तुत की। मौलिकता के अतिरिक्त यह सामग्री अनुकरणीय भी थी। फलत. १५वी-१६वीं शताव्दी मे योरुप के 'पुनर्जाग्रति-युग' (रेनेशा) मे ललित कलाओ के उपासको ने उनसे अनुप्रेरित हो अपने क्षेत्र मे प्रगति की। साहित्य-क्षेत्र में भाव, भाषा, पात्र एवं कथानक आदि सभी की योजनाओ और अनुशासन के सवध मे सम्पूर्ण योरुप उन्ही पर आधारित था। इससे नवीन साहित्य-सृजन पर प्राचीनता और पौराणिकता की अमिट छाप थी। फलस्वरूप उस साहित्य को क्लासिक सज्ञा प्रदान की गई और उनके अनुकरण पर जो साहित्य सृजित हुआ उसे क्लासिकल साहित्य के नाम से अभिहित किया गया।

१६६० ई० से लेकर १७९८ ई० तक का अग्रेजी काव्य शास्त्रीय युग (Classical Age) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस युग मे ड्रायडन, पोप, एडिसन एव जॉनसन आदि प्रमुख आचार्य थे। जिनके सिद्धान्तो एव विचारो से सम्पूर्ण अग्रेजी काव्य प्रभावित था। ये आचार्य भी काव्य के अन्तरग एवं वहिरग दोनों स्वरूपो के लिए अरस्तू, होमर, वरजिल एव होरेस के सिद्धान्तो के अनुकरणकर्त्ता थे।

भारतीय काव्य-भूमि मे आदि-कवि वाल्मीकि की रामायरण एव महर्षि वेदव्यास का महाभारत—दोनो महाकाव्य ही अनुकरणीय वने। कवीर, सूर, तुलसी आदि की वारिणयाँ यद्यपि लोक-भाषा और भावना के द्वारा यथार्थ

स्वच्छन्दतावादी स्तर पर उतर आई थी, तथापि आगे चलकर उन्ही के आधार पर शास्त्रीय काव्य रचा गया। हिन्दी का रीति-काव्य तो सस्कृत आचार्यों के रीति-सिद्धान्तो का भण्डार ही है। इससे उसके शास्त्रीय न होने का प्रश्न उठता ही नही।

हिन्दी के आदि-काल से लेकर रीतिकाल की समाप्ति (१०५० वि० स० से १९०० वि० स०) तक अधिकतर शास्त्रीय काव्य-परम्परा का स्वरूप ही सर्वोपरि रहा है। भारतेन्दु-युग के प्रारम्भ होने पर देश-काल और समाज की परिस्थितियो ने मानव को जीवन के यथार्थ का परिचय कराया, जिनका अतिक्रमण करना युगो-युगो के विनीत भारतीय के लिए असम्भव नही, दुष्कर अवश्य हो गया। फलत भाषा, छन्द एव भाव आदि सभी क्षेत्रो मे परम्परागत शास्त्रीयता की प्रतिक्रिया हुई और स्वच्छन्दवादिता (Romanticism) का सूत्रपात हो गया।

उपर्युक्त के समान योरुपीय वातावरण मे भी युगो से प्रचलित शास्त्रीयता (Classicism) का विरोध हुआ है। फ्रास की राज्यक्रान्ति, औद्योगिक क्रान्ति, विज्ञान एव मानवता आदि के नवीन विकास के कारण योरुपीय साहित्य शास्त्रीयता के सकुचित कटघरो मे बन्द न रह सका।

"विभाजन रेखा की एक ओर जो घटित हुआ उसमे प्राचीन के प्रति निष्ठा थी, दूसरी ओर जो घटित हुआ वह नवीन विचारो और शब्दो पर आधारित है। प्राचीन प्रकार के विचार और अभिव्यजना-शैली का सम्बन्ध कार्नीले, पोप, एडिसन और जॉनसन से है और नवीन का सम्बन्ध है लैसिग, गेटे, कालरिज, वर्डस्वर्थ और एकान्त-जीवी ब्लैक से। प्रथम का सम्बन्ध अतीत से है और द्वितीय का वर्तमान से।"[1]

---

1. All that happened on one side of the dividing line has the flavour of the antique, all that happened on the other side is vibrating with modern thought-currents and modern words To the old way of thought and expression belong Corneille, Pope, Addison and even Johnson—to the new Lessing, Goethe, Coleridge, Wordsworth and the solitary Blake The first belong to the past the second to the present

—R A Scott-James 'The making of Literature—Classic and Romantic, Page 161

इस नवीन भावना को ही इसका श्रेय है कि १६वी शताब्दी मे १७६८ ई० से १८५० ई० तक योरुप के काव्य मे शास्त्रीयता पृष्ठभूमि मे जा पडी और उसके स्थान पर स्वच्छन्दवादिता (Romanticism) सुशोभित हो उठी। इस युग के प्रारम्भ हो जाने पर काव्य के क्षेत्र मे नवीन विषयो के समावेश के साथ ही अभिव्यजना-शैली मे भी आशातीत परिवर्तन हुए। उपेक्षिता प्रकृति और मानवता की उपासना हो उठी और कृत्रिमता के स्थान पर लोक-भूमि के यथार्थ का चित्रण हो उठा।

स्वच्छन्दवादिता (Romanticism) को विद्वानो और विचारको ने अपने-अपने दृष्टिकोण से देखा और उसकी विविध परिभाषाएँ दी हैं।

विक्टर ह्यूगो स्वच्छन्दवादिता को 'साहित्य मे स्वतन्त्र भावना'[१] वाट्स डण्टन 'काव्य और कला मे कुतूहल की भावना का पुनर्जन्म'[२] डा० हेज 'स्वच्छदवादिता का मूलतत्व भाव-प्रवणता है।'[3] स्टॅंडार्ड ने उसकी यो परिभाषा दी है—"स्वच्छन्दवादिता का सच्ची भावना मे—नवीन विधान, नवीन तथ्य, अनुरूपता एव नवीन स्वरूप के अन्वेषण मे विधान, तथ्य, अनुरूपता और स्वरूप से विदा लेना है।"[४] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का रोमाण्टिक साहित्य के सम्बन्ध मे यह कथन है—"रोमाटिक साहित्य की वास्तविक उत्सभूमि वह मानसिक गठन है जिसमे कल्पना के अविरल प्रवाह से घन सश्लिष्ट-निविड आवेग की ही प्रधानता होती है। इस प्रकार कल्पना का अविरल प्रवाह और निविड आवेग—ये दो निरन्तर घनीभूत मानसिक वृत्तियाँ ही इस व्यक्तित्व-प्रधान साहित्यिक रूप की प्रधान जननी हैं।"[५]

स्वच्छन्दतावाद और परम्परावाद का स्वरूपगत अन्तर आचार्य नन्ददुलारे

---

1 Victor Hugo 'Liberalism in literature'

2. Watts Dunton 'The renascence of the feeling of wonder in poetry and art.'

3 Dr Hedge 'The essence of romanticism is inspiration'

4 Stoddard 'Romanticism in its noblest expression is a departure from law, from fact, from harmony, from perspective, in quest of new law, a new fact, a new harmony, a new perspective'

५ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—देवराज उपाध्याय, 'रोमाटिक साहित्य शास्त्र' भूमिका, पृष्ठ २ (आत्माराम एण्ड सस, देहली)।

वाजपेयी जी ने इन शब्दो मे प्रकट किया है। इन्हें उक्त दोनो वादो की सामान्य परिभाषा भी कह सकते हैं—

"यह काव्य-धारा जो काव्य और कला के व्यक्त सौन्दर्य-प्रसाधनो, सुन्दर शब्दो और आकृतियो आदि का आग्रह करके चलती है, क्लासीसिज्म की प्रतिनिधि कही जाती है। दूसरी अतिवादी स्थिति तब आती है, जब वह निर्माण-सम्बन्धी नियमो मे बध जाती है और स्वतन्त्रतापूर्वक हाथ-पैर भी नहीं हिला सकती। इसी प्रकार जो काव्य-धारा अत्यन्त अनियमित पद्धति, सयम-रहित प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देती है, वह रोमाटिक गति की सूचक है। काव्य में भावना के अतिरेक से जो असयम आता है, नियमो की भी अवहेलना होती है, रोमाटिसिज्म की अति का परिचायक है। एक मे (क्लैसिक अतिवाद मे) काव्य के शरीर पक्ष का आग्रह सीमा को पार कर जाता है और दूसरे मे (रोमाटिक अति मे) शरीर पक्ष या आकृति की पूर्ण उपेक्षा होने लगती है।"[1]

उपर्युक्त विविध दृष्टिकोणो से स्वच्छन्दतावादी काव्य की निम्नलिखित परिभाषा, सर्वमान्य हो सकती है :—

"स्वच्छन्दतावादी काव्य, काव्य की वह विशेष सर्जना है जो कल्पना और आवेग से युक्त परम्परागत विधान और वाह्यांग नियन्त्रण से विमुक्त और मानसिक सरलता तथा अकृत्रिमता से सम्पन्न मानसिक तथा लोक-भूमि की भावनाओ से युक्त हो।"

---

१. श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, 'स्वच्छन्दता और परम्परा', 'आधुनिक साहित्य', पृष्ठ ३८८, लीडर प्रेस, प्रयाग (प्रथम संस्करण, स० २००७)।

अध्याय २

आधुनिक हिन्दी साहित्य में स्वच्छन्दतावाद की पृष्ठभूमि

विषय-प्रवेश

अ—अंग्रेजी राज्य पर विहंगम दृष्टि

भारत मे अंग्रेजो के आगमन एव राज्य-सस्थापन से देश मे एक नवीन युग का प्रारम्भ होता है। मुगल-साम्राज्य की केन्द्रीय शक्ति के शिथिल हो जाने का अंग्रेजो ने पूर्ण लाभ उठाया। धीरे-धीरे भारतीय राजाओ और नवाबो को पराजित करते हुए उन्होंने सम्पूर्ण देश पर अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लिया और अपने विधि-विधान से देश का शासन आरम्भ कर दिया। विजयी शक्ति के समक्ष विजित देश की सभ्यता, सस्कृति एव उसके विधान उपेक्षित कर दिये गए। भारतीय अपने अधिकारो को खोकर अपमानित होकर रह गये। साधन ही क्या था? सभी प्रकार से अशक्त थे और सर्वत्र ही राष्ट्रीय अनैक्य था।

अंग्रेजी साम्राज्य के सूत्रपात के साथ-साथ अंग्रेजी सभ्यता, अंग्रेजी विचार-धारा, अंग्रेजी सस्कृति एव अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार एव प्रसार का सुअवसर भी आया। आँख के अन्धे स्वार्थी भारतीयो ने उपर्युक्त प्रगतियो को प्रोत्साहन देने में अपना गौरव समझा। देश की सभ्यता एव सस्कृति निस्सन्देह पृष्ठभूमि में जा पडे। भारत जैसे अतीत के प्रशस्त राष्ट्र के लिए इस प्रकार का पतन निस्सन्देह लज्जास्पद था।

भारतीय एव अंग्रेजी सभ्यता तथा सस्कृति के सम्मिलन से देश का केवल

अहित ही नही हुआ, किन्तु भारत की सुषुप्त प्रगति और चेतना अंग्रेजी सभ्यता एव सस्कृति से टकराकर उद्बुद्ध हो उठी। इस जागरण से देश, जो अब भी अपनी मध्यकालीन रीति-नीति और विचारधाराओ मे अपनी निष्कृति समझता था, सतर्क हो उठा। उसकी प्राचीन परम्पराओ को एक धक्का लगा, राष्ट्र के कोने-कोने और विचारधारा के प्रत्येक क्षेत्र मे नव-चेतना की अनुभूति हुई और सम्पूर्ण देश नवीन विकास की ओर अग्रसर होने के लिए उद्यत हो गया।

इस नवीन जागरण से देश के राष्ट्रीय, धार्मिक एव ललित कलाओ के जीवन मे एक क्रान्ति उपस्थित हो उठी। इन क्षेत्रो मे आत्मविश्वास एव शास्त्रीयता का क्रमश उन्मूलन हो उठा और इनके स्थान पर तर्क एव यथार्थ का स्वागत किया जाने लगा।

१८५७ ई० का गदर इस नवचेतना एव जागरण का प्रथम प्रभात था। देश मे यदि राष्ट्रीय एकता एव सामूहिक प्रयास होता तो निस्सन्देह देश का इतिहास आज कुछ और ही प्रकार का होता।

देश की साहित्यिक एव सास्कृतिक प्रगति मे तद्देशीय राजनीतिक, धार्मिक एव आर्थिक आदि स्थितियो का अमिट प्रभाव पडता है। इनकी उत्पन्न परिस्थितियों से मानव अनुशासित होता रहता है, जिससे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उसमे विकार उपन्न होते रहते हैं। साहित्य का निर्माण शत-प्रतिशत मानवीय भावनाओ पर आधारित रहता है। इससे किसी भी प्रकार की साहित्यिक प्रगति जानने के लिए अन्य बाह्य परिस्थितियो का अध्ययन आवश्यक ही नही अनिवार्य भी हो जाता है।

ब—आलोच्य-काल का विभाजन

प्रबन्ध का आलोच्य विषय १८७५ ई० से १९२५ ई० तक के अध्ययन को प्रस्तुत करता है। यह पचास वर्ष का समय भी भारतेन्दु-युग (१८७५ ई० से १९०० ई०), द्विवेदी-युग (१९००-१९२० ई०) एव छायावादी-युग (१९२०-१९२५ ई०) तीन विभागो मे सरलतापूर्वक विभाजित किया जा सकता है। यो भारतेन्दु-युग हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे १८६८ ई० से प्रारम्भ होता है, किन्तु हमारा आलोच्य विषय १८७५ ई० से प्रारम्भ होता है, इससे १८७५ ई० से १९०० ई० तक के २५ वर्ष के समय को ही मैंने 'भारतेन्दु-युग' माना है। साथ ही छायावादी युग के सम्बन्ध मे यह निवेदन करना है कि यह युग हिन्दी-साहित्य मे १९२५ ई० से प्रारम्भ होता है। द्विवेदी-युग की समाप्ति के

उपरान्त यह पांच वर्ष का समय छायावाद के लिए उर्वर क्षेत्र तैयार करता है। यो इसके लक्षण १९१५ ई० के आस-पास रवीन्द्र बाबू की 'गीताञ्जलि' के प्रभाव और मैथिलीशरण गुप्त की 'झंकार' और मुकुटधर पाण्डेय की रचनाओ के प्रकाशन से प्रस्फुटित हो उठे थे। अब यह देखना है कि प्रत्येक युग मे इन वाह्य परिस्थितियो की क्या प्रगति रही, जिससे देश का मानसिक सस्थान निर्मित हुआ। इनके प्रभाव के कारण साहित्य अपनी शास्त्रीयता को त्यागने के लिए वाध्य हुआ और उसके स्थान पर जीवन की यथार्थ एव स्वच्छन्द भाव-धारा को अपनाकर अपने को गौरवान्वित समझा।

(क) भारतेन्दु-युग (१८७५ ई०–१९०० ई०)

भारतेन्दु जी का जन्म ९ सितम्बर सन् १८५० ई० मे और मृत्यु ६ जनवरी, सन् १८८५ ई० को हुई थी। उनके काव्य मे मध्यकालीन परम्पराओ का पालन और नवीन युग के सूत्रपात के नूतन लक्षण विद्यमान थे। इस प्रकार प्राचीन एव नवीन का सम्मिश्रण भारतेन्दु-काव्य की विशेषता है। यह विशेषता आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के सरस्वती-सम्पादन के कार्य को प्रारम्भ करने के पूर्व तक रही। यद्यपि भारतेन्दु जी का निधन १८८५ ई०मे ही हो गया था तथापि उनके काव्य की प्रवृत्तियाँ १९०० ई० तक अपरिवर्तित रूप मे चलती रही।

१—राजनीतिक प्रगति

(क) अंग्रेजी साम्राज्यवादिता

मई १८२१ ई० के 'एशियाटिक जर्नल' मे कारनेटीकस का कथन है —

"हमे यह तत्काल मान लेना चाहिये कि प्रत्येक युद्ध मे हमारी भारत की विजय उत्तम कृत्यो की अपेक्षा एशियायी स्वभाव की दुर्बलता के कारण हुई। इसी सिद्धान्त के आधार पर हम निश्चित रूप से यह मान सकते हैं कि जब कभी भारतीय जनवर्ग का बीसवाँ भाग भी हमारे समान ही अग्रदर्शी एव योजना-विधायक हो जायगा हम उसी अनुपात से पूर्ववत् महत्वहीन हो जायेंगे।"[1]

---

1. We must at once admit that our conquest of India was through every struggle more owing to the weakness of the Asiatic character than to the bare effect of our own brilliant achievements ... on the same principle we may set down as certain that whenever one-twentieth part of the population of India becomes as provident and as scheming as ourselves, we shall run back again in the same ratio of velocity, the same course of our original insignificance —Carnaticus in Asiatic Journal, May 1821, (कर्मवीर श्री सुन्दरलाल लिखित 'भारत मे अंग्रेजी राज' भाग ३ से उद्धृत)

राजपूत-काल के उपरान्त से ही मुस्लिम शासन के अन्तर्गत रहने के कारण भारतीयो की आत्माएँ मर सी गई थी। यही कारण था कि मुसलमानो के आगमन पर एकता के सूत्र मे बँधकर वे मुसलमानो को देश के बाहर न निकाल सके। एक शक्ति दूसरी शक्ति से विरोध रखती थी। इससे विदेशी आक्रान्ता के समक्ष भी मिलकर वे उसका सामना करने मे विवश हो गये। एक-एक कर सभी राजे कुचल दिये गये और उन्हे अधीनता स्वीकार करने के लिये बाध्य होना पडा। यह भारतीय चरित्र की बहुत बडी दुर्बलता थी। इसके कारण ही वे स्वाधीनता का मूल्य खो बैठे थे। जो त्रुटि मुस्लिम काल मे हुई थी वही त्रुटि अग्रेजों के समय मे पुन दुहर गई। अग्रेजी शासन के जमाने मे निस्सदेह पारस्परिक द्वेष-भाव ने बहुत योग दिया और देश के दुर्भाग्य से बहुत से अमीचन्द और मीरजाफर भी जीवित थे, जिन्हे देश की स्वतन्त्रता बेचने मे ज़रा भी भय और लज्जा न थी।

१८५७ ई० के ग़दर तक सम्पूर्ण देश अग्रेजो के अधीन हो चुका था। जो लोग अधीनता को घृणित समझते थे और जिनका स्वतन्त्रता के प्रति आकर्षण था, वे शक्तियाँ गदर मे अग्रेजो की विरोधी बन उनसे भिड गईं और एक-एक करके कुचल डाली गईं।

विद्रोह के उपरान्त आलोच्य काल के प्रारम्भ तक केनिंग (१८५६–६१), एल्गिन (१८६२–६३), लारेन्स (१८६४–६६), मेयो (१८६६–७२), नार्थब्रुक (१८७२–७६), का शासन पूर्ण शान्त रहा। राजनीतिक दृष्टिकोण से यह सभी अफग़ानिस्तान की समस्याओ मे ही उलझे रहे। १८६३ ई० मे अफगानिस्तान के अमीर दोस्त मुहम्मद के मर जाने के बाद उसके उत्तराधिकारियो में एक प्रकार का असन्तोष फैल गया। अग्रेजो को रूस के आक्रमण का भय था। इससे विवश हो उन्हें उधर आकर्षित होना पडा। लार्ड लारेन्स की निष्क्रियता की नीति (Masterly Inactivity) से अग्रेजो की प्रतिष्ठा को काफी धक्का पहुँचा। इस नीति से लार्ड नार्थब्रुक भी असफल रहे। उसके अनन्तर १८७६ ई० मे लार्ड लिटन भारत के वायसराय नियुक्त हुए। लिटन की अग्रगामी नीति के कारण अफगानिस्तान से अग्रेजी युद्ध का सूत्रपात हुआ। यद्यपि वहाँ के अमीर शेरअली के निधन के उपरान्त उसके पुत्र याकूब खा ने अग्रेजो से सन्धि कर ली, पर यह सन्धि सामयिक ही सिद्ध हुई। थोडे ही समय मे अफग़ानो की स्वतन्त्र भावना के कारण अग्रेजी राजदूत केवेनगरी की हत्या के कारण तृतीय 'अफगान युद्ध' प्रारम्भ हुआ। विजय अग्रेजों के ही पक्ष मे

हुई। इस युद्ध-काल मे लार्ड रिपन भारत के वायसराय होकर पधारे। वह बड़े शान्तिप्रिय शासक थे। भारतेन्दु, श्रीधर पाठक एव राधाकृष्णदास आदि ने उनकी उदारता की भूरि-भूरि प्रशसा की। लार्ड डफरिन, लेन्सडाउन एव कर्जन के समय मे भी अफगानिस्तान एव पश्चिमोत्तर सीमा का प्रश्न चलता रहा। इसी समय चितराल और भूटान के उपद्रवो को भी शान्त किया गया और थीवो के विरुद्ध युद्ध करके उत्तरी ब्रह्मा अग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। लार्ड डफरिन के शासन-काल मे ही १८८५ ई० मे अखिल भारतीय राष्ट्रीय समिति (All-India National Congress) की स्थापना हुई थी, जिसका यथा-स्थल वर्णन किया जायेगा।

सन् १८९९ ई० मे लार्ड कर्जन के भारत मे पधारने पर देश मे प्लेग और दुर्भिक्ष का प्रकोप था। जनता मे इन सामयिक कष्टो के कारण त्राहि-त्राहि मची हुई थी। लार्ड कर्जन ने देश मे भ्रमण कर इन कष्टो के निवारणार्थ प्रयत्न भी किया, किन्तु अग्रेजो की स्वार्थ-नीति के कारण देश मे असन्तोष ही रहा। कर्जन के शासन-काल मे वङ्ग-भङ्ग की घटना ने उसे विशेष अप्रिय बना दिया।

(ख) भारतीय राष्ट्रीयता

१८८५ ई० से पूर्व भारतवर्ष मे राष्ट्रीय जीवन का चिह्नमात्र भी न था। राष्ट्रीयता के नाते स्वराज्य या सरकार के विषय मे कोई सोचता भी न था। ब्रिटिश शासन मे सभी प्रसन्न थे और विदेशी सत्ता के अधीन रहने मे भारतीय किसी प्रकार के अपमान और पतन का अनुभव भी न करते थे, किन्तु धीरे-धीरे राष्ट्रीयता के बीज वपन हुए और आगे चलकर इसी राष्ट्रीय भावना ने देश को स्वतन्त्र किया।

राष्ट्रीय जागरण की सहायक परिस्थितियाँ

(अ) धार्मिक जाग्रति :—१८८५ ई० से पूर्व भारतीयो की आध्यात्मिक एव सास्कृतिक जाग्रति ने देश को राष्ट्रीयता के प्रति जागरूक किया। भारतीय राष्ट्रीय जाग्रति का बहुत कुछ श्रेय राजा राममोहनराय को है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी भारतीयो मे स्वतत्रता, स्वदेश एव स्वदेशी के प्रति अनुराग जगाया। थियोसोफिकल सोसायटी के द्वारा कर्नल आलकाट, मेडम ब्लेवेस्की एव एनीबेसेन्ट ने भारत के गौरवपूर्ण अतीत एव ब्रह्म-ज्ञान का गान कर राष्ट्रीयता का प्रचार किया। इस प्रकार स्वामी रामकृष्ण परमहस एव उनके

शिष्य विवेकानन्द से इस ओर अधिक प्रोत्साहन मिला।

(आ) पश्चिमी शिक्षा .—पश्चिमी शिक्षा एव साहित्य के ससर्ग से भी भारतीय राष्ट्रीयता के जन्म होने मे सहयोग मिला। मिल्टन, वर्क, मिल, मेकाले और हर्बर्ट स्पेन्सर के साहित्य ने भारतीयो मे राष्ट्रीयता एव स्वराज्य के विचार भर दिये। अग्रेजी साहित्य मानवता, न्याय और स्वतन्त्रता की भावना से ओत-प्रोत था। इससे भारतीय युवको का उनका उपासक बनना स्वाभाविक होगया।

(इ) आर्थिक कारण —देश क्रमश निर्धन हो रहा था। घरेलू उद्योग-धधो के नष्ट हो जाने से भारतीयो मे बेकारी फैल रही थी। इससे शिक्षित भारतीयो को अग्रेजो की साम्राज्यवादी नीति का विरोध करने के लिये उद्यत होना पडा।

(ई) साम्राज्यवादी नीति :—राष्ट्रीयता के जन्म मे अग्रेजी साम्राज्यवादिता का भी बहुत बडा हाथ था। १८३३ ई० के एक्ट के अनुसार भारतीयो को योग्य होने पर भी उच्च सरकारी पदो पर आसीन नही किया गया। १८५८ ई० की महारानी विक्टोरिया की घोषणा से भी भारतीयो के प्रति सहृदयता-पूर्ण व्यवहार न किया गया। इससे भी भारतीय अपनी निष्कृति का उपाय सोचने लगे।

उपर्युक्त तथा अन्य परिस्थितियो के कारण इण्डियन नेशनल काग्रेस की स्थापना ह्यूम महोदय द्वारा १८८५ ई० मे की गई। प्रारम्भ मे सर फीरोज-शाह मेहता और दादाभाई नौरोजी से इसे सम्पोषण मिला। १८८५ ई० मे काग्रेस का प्रथम अधिवेशन श्री उमेशचन्द्र बनर्जी के सभापतित्व मे हुआ। उसके प्रारम्भिक काल मे सुधार-सम्बन्धी प्रश्न भी किये जाते थे। व्यवस्थापिका सभा मे सुधार करना इसका एक खास कार्य था। १८९० ई० मे इसने व्यवस्थापिका सभा मे जनतन्त्रात्मक सुधार एव प्रतिनिधित्व के लिये अपना एक प्रतिनिधि मण्डल इगलैंड भेजा था। काग्रेस ने पचास प्रतिशत जनता के प्रतिनिधित्व के लिये माँग की। दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, फीरोजशाह मेहता, महादेव गोविन्द रानाडे, गोपालकृष्ण गोखले एव मदनमोहन मालवीय नरम दल (Liberal) के नेता थे, जो शासन-विधान में क्रमश सुधार चाहते थे। उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम वर्ष मे लोकमान्य तिलक, राष्ट्रीय आन्दोलन के अग्रणी हुए। इनके द्वारा राजनीतिक आन्दोलन जन-आन्दोलन बना दिया गया।

२—सांस्कृतिक प्रगति

भारतीय स्वतन्त्रता के अपहरण से उसके समाज और सस्कृति की विशुद्धता भी लोप हो गई थी। वस्तुतः योरुपीय सभ्यता एव संस्कृति द्वारा यहाँ की संस्कृति एव सभ्यता झकझोर डाली गई।

भारतीय अपनी धार्मिक भावनाओ के लिए वेदो, उपनिषदो, ब्राह्मण-ग्रन्थो, महाकाव्यो एव पुराणों पर पूर्णरूपेण आधारित थे। पूर्ववत् वैष्णवता एव शैववाद का पूर्ण प्रचार था। इस युग मे भी बहुदेववाद, मूर्तिपूजा, भाग्यवाद, एव तीर्थ-यात्रा आदि मे उनकी पूर्ण आस्था थी। समाज मे प्रचलित गुरुडमो से धर्म के मूल सिद्धान्तो का उन्मूलन हो चुका था।

भारतीय धर्म-ग्रन्थ सस्कृत मे थे। अग्रेजो के आगमन से पूर्व सस्कृत की हिन्दू समाज में मान्यता थी, किन्तु मुसलमानो के समय से ही अरबी और फारसी राजकीय भाषा के पद पर आसीन कर देने के कारण इसका ह्रास हो उठा था। अग्रेजी काल मे अग्रेजी शिक्षा का माध्यम होने से सस्कृत के विकास का अवसर ही समाप्त हो गया। सस्कृत के विद्वान् राजकीय सेवा के अयोग्य समझे जाते थे। सामाजिक सस्कार एव अन्य भारतीय समारोहो के अवसर पर कुल-पुरोहितों द्वारा सस्कृत मे सस्कार कराये जाते थे। फिर पुरोहितो और धर्म के ठेकेदारो में अपने पूर्वजों के समान सयम, अध्ययन एव विद्वत्ता भी न रह गई थी। इससे वे भी स्वार्थ के वशीभूत हो वाग्जाल फैलाकर समाज को ठगने लगे।

वैदिक काल से ही वर्ण-व्यवस्था एव सम्मिलित कुटुम्ब भारतीय समाज के प्रमुख आधार रहे हैं। इन दोनो ने ही वैयक्तिक प्रतिभा एव व्यक्तिगत उत्थान की रेढ मारी है। जिस जाति मे वह जन्म लेता है उसी के निर्धारित सामाजिक घट्टो पर वह चलता चला जाता है। यदि वह अन्यथा करता है तो रूढियाँ उसे मसल देती हैं। फलत. मानव घुट-घुटकर रह गया। पाश्चात्य सभ्यता मे व्यक्ति की महत्ता का प्रदर्शन जब उसके समक्ष हुआ, तब भारतीय व्यक्ति ने भी अपने स्वच्छन्द अस्तित्व को समझा और वह भी नियन्त्रणो को तोड़ फेंकने के लिए आकुल हो उठा। धर्म और समाज के ठेकेदारो के समक्ष ही उनके सिद्धान्तो की धूल हो उठी। उस समय ही कुछ धार्मिक सुधारक धर्म के मूल सिद्धान्तो के प्रतिपादन के लिए अग्रसर हुए।

(अ) ब्रह्मसमाज :—सामाजिक, धार्मिक एव राष्ट्रीय क्षेत्र के अग्रणी राजा

राममोहनराय (१७७२–१८३३) ने १८२८ ई० मे ब्रह्मसमाज की स्थापना कर देश को नवचेतना का सन्देश दिया। ईस्ट इडिया कम्पनी की नौकरी में ईसाई पादरियो के ससर्ग से उन्हें मूर्ति-पूजा, बाल-विवाह, सती-प्रथा, बहु-विवाह एव छुआछूत बडे ही पाखडपूर्ण लगे। उनके हृदय मे सच्चे हिन्दू-धर्म एव भारतीय सास्कृतिक निधि के लिए उच्च स्थान था। उन्होने वेद और उपनिषदो से प्रेरणा लेकर समाज मे प्रसारित कृत्रिमता और अन्ध-विश्वासो को नष्ट करने का बीडा उठाया। उनका ब्रह्मसमाज एक सहनशील सस्था थी, जिसमे दया, उदारता तथा अन्य सभी धर्मों के विश्वस्त सिद्धान्तो का समावेश था।

राजा राममोहनराय के धार्मिक उत्तराधिकारी महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर (१८४२ ई०) थे। उन्होंने अपने साधु-जीवन से इसे बडा विकासशील बनाया। बंगाल के बाहर भी ब्रह्मसमाज की शाखाएं स्थापित हुईं। १८६२ ई० मे दूसरे महान् व्यक्ति केशवचन्द सेन भी ब्रह्मसमाज में सम्मिलित हो गये। इनके द्वारा ब्रह्मसमाज ईसाई धर्म की ओर झुका।

१८७८ ई० से ब्रह्मसमाज की तीन शाखाएँ हो गई "आदि ब्रह्मसमाज" जिससे टैगोर-परिवार सम्बन्धित है, जिसमे भारतीयता प्रमुख है, "नव विधान" जिसमे ईसाई धर्म का अधिक प्रभाव है, इन सब मे "साधारण समाज" सबसे अधिक प्रभावशाली और क्रियाशील है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी ब्रह्मसमाजी थे। उनका साहित्य मुख्यत गीताजलि, जिसने भारतीय काव्य को रहस्यवादी प्रेरणा दी, इसी समाज की एकेश्वरवादिता से ओत-प्रोत है।

(ब) **आर्य-समाज** —सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र मे ब्रह्मसमाज से भी अधिक क्रान्ति लाने का श्रेय 'आर्य-समाज' को है जिसके प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२४-१८८३) थे। उन्होंने १८७५ ई० मे आर्य-समाज की स्थापना की थी। दयानन्द सरस्वती वेद को ही प्रमाण मानते थे। इससे वैदिक सास्कृतिक भावना का ही उनके द्वारा प्रचार हुआ। वह भी मूर्ति-पूजा, छुआ-छूत, जाति-भेद एव बाल-विवाह के विरोधी थे। आर्य-समाज के दार्शनिक सिद्धान्तो ने उत्तर भारत मे विकास की नवीन चेतना दी।

"गतानुगतिकता के विरोध और बौद्धिकता के समावेश मे आर्य-समाज और ब्रह्मसमाज दोनो समान हैं, किन्तु जहाँ "ब्रह्म समाज" समाज के उच्च स्तर मे बौद्धिक और आत्मिक चेतना ला सका, वहा आर्य-समाज ने निम्न स्तर मे भी जागरण को स्थान दिया।"[1]

---

१. डा० सुधीन्द्र—'हिन्दी कविता मे युगान्तर', पृष्ठ १४।

आर्य-समाज ने धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं राजनीतिक सभी क्षेत्रो मे देश को नवीन स्फूर्ति प्रदान की।

(स) थियोसोफिकल सोसायटी :—मेडम ब्लेवेस्की एव कर्नल आलकाट ने १८७५ मे इसकी स्थापना न्यूयार्क मे की थी। कालान्तर मे यह दोनो सस्थापक भारत मे भी पधारे और देश का भ्रमण कर भारतीयो को उनके गौरवपूर्ण अतीत का ध्यान दिलाया और हिन्दू-धर्म में जो भी बुराइया प्रचलित थीं उनको दूर करने का उपदेश दिया। इस प्रकार इस सोसायटी ने भारतीयों को राष्ट्रीय धर्म का सम्मान कराना सिखाया। अनन्तर एनीबेसेन्ट (१८९३) ने आकर इस सोसायटी का बडा कार्य किया। सर वैलेण्टायन चिरोल ने अपने "इण्डियन अनरेस्ट" में लिखा है :

"मेडम ब्लेवेस्की और कर्नल आलकाट के नेतृत्व मे थियोसोफिस्टो के आने से हिन्दू जाग्रति को एक नई शक्ति मिली और किसी भी हिन्दू ने इस आन्दोलन को सगठित एव व्यवस्थित करने के लिये उतना काम नहीं किया जितना एनी-बेसेन्ट ने। उन्होंने सेण्ट्रल हिन्दू कालेज, बनारस और मद्रास के समीप अदयार-वाली थियोसोफिकल सस्था द्वारा पश्चिमी भौतिक सभ्यता के सामने हिन्दू-धर्म की महानता की घोषणा कर दी है। हिन्दुओ का हमारी सभ्यता की तरफ से मुँह मोड लेना तक क्या आश्चर्य की बात है जब कि एक योरुपीयन महिला जो बहुत ही पढी-लिखी और बुद्धि में तेज व भाषण देने की असाधारण शक्ति वाली हैं, आकर उन्हें यह बताती है कि सर्वोच्च ज्ञान की कुजी उन्ही के पास है और हमेशा से रही है। उनके देवता, उनके तत्वदर्शन और उनकी नैतिकता विचार की उससे भी ऊँची सीमा पर है, जहाँ पच्छिम कभी पहुँचा है।"

(द) रामकृष्ण-मिशन—ब्रह्म-समाज और आर्य-समाज के समान रामकृष्ण-मिशन ने भी देश को नवीन दिशा की ओर जाग्रत किया। रामकृष्ण परमहस (१८३४-१८८६) के सिद्धान्तों एव थियोसोफिकल सोसायटी के सिद्धान्तों ने देश में ईसाई-धर्म के प्रचार को रोका। रामकृष्ण परमहस के सिद्धान्त भार-तीय आध्यात्मिक जीवन के सम्पोषक थे। इस मिशन द्वारा हिन्दू-शास्त्रो के विचारों को सरल और ज्ञानप्रद व्याख्या द्वारा समाज तक पहुँचाया गया। स्वामी विवेकानन्द इसके दृढ स्तम्भ थे।

उपर्युक्त धार्मिक सुधारो से देश को अपना अस्तित्व समझने का बल मिला। भारतवासी समझ सके कि अतीत के पुण्य, जो उनमे अब भी अवशेष हैं, उनके आधार पर जीवन मे उत्थान हो सकता है, वही सत्य भी हुआ।

देश नये विकास और नई विचारधारा को स्वीकार करने के लिये तैयार हो गया।

३—आर्थिक प्रगति

अंग्रेजो के आगमन से राष्ट्रीय जीवन के समान ही आर्थिक जीवन को भी बड़ा धक्का लगा। अंग्रेज ने नवीन आविष्कारो से सभी प्रकार के उत्पादनो को बढाकर भारत को अपना बाजार बनाया। वे सदैव से ही सफल व्यापारी थे। व्यापार के साथ वे राजनैतिक चालो का भी प्रयोग करते थे। इससे दोनो क्षेत्रो मे उनका एकाधिपत्य हो गया।

भारत मे आदि-काल से आर्थिक जीवन परस्पर के आदान-प्रदान पर निर्भर था। ग्रामो और नगरो मे पूर्ण समृद्धता थी। पटना, ढाका, मुगेर, बनारस, कन्नौज, आगरा और इटावा आदि बहुत काल तक व्यापारिक केन्द्र रहे, किन्तु उनका उत्पादन मशीनो के उत्पादन की प्रतियोगिता मे खडा न हो सकने के कारण बाजार मे उपेक्षित हो उठा।

"गाँवो के धन्धो की बर्बादी से इन लोगो को बहुत बडा धक्का लगा। कृषि और उद्योग का सतुलन बिगड गया। श्रम का परम्परा से चला आया विभाजन टूट गया और अलग-अलग काम करने वाले आदमियो की बहुत बडी सख्या को किसी काम मे आसानी से नही लगाया जा सकता था।"[१]

भारत के माल की खपत न हो सकने के कारण यहाँ का उत्पादन समाप्त हो गया। भारतीय कारीगर जैसे जुलाहे आदि मशीनो की प्रतियोगिता के स्थिर न हो सकने के कारण भूखों मरने लगे, युगो से परतन्त्रता की बेडियों मे आबद्ध भारतीय अपनी राष्ट्रीय भावना को खो ही चुके थे, फिर उनका ध्यान अपने इस अहित की ओर कैसे आकृष्ट होता।

देश की इस शोचनीय आर्थिक परिस्थिति के लिये अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति ही उत्तरदायी है। देश मे भुखमरी फैल गई। ग्रामीण क्षेत्र का सुख और आनन्द सदैव के लिये तिरोहित हो गए। १८६१ ई० से १८९९ ई० तक देश मे ६-७ दुर्भिक्ष पडे।

"१८६० ई० मे पश्चिमोत्तर प्रान्त एव अलवर राज्य मे, १८६६-१८६७ ई० मे कलकत्ता से मद्रास तक सभी समुद्री किनारों पर, १८६८-६९ ई० मे

१ जवाहरलाल नेहरू—'हिन्दुस्तान की कहानी', पृष्ठ ३७३ (सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली)

पंजाब और राजपूताना मे, १८७३ ई० मे विहार मे, १८७६-७८ ई० मे मद्रास, मैसूर, हैदरावाद, वम्बई तथा अवध मे, १८८०-९६ ई० मे सम्पूर्ण देश मे तथा १८९६-९७ मे अवध, विहार, मध्यभारत, मद्रास, बम्बई तथा पजाब मे अकाल पडे।"[1]

समाज की आर्थिक स्थिति वास्तव मे बडी ही शोचनीय थी :—

अग्रेज राज सुख-साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी॥
ताहू पै मँहगी काल रोग विस्तारी।
दिन-दिन दूने दुख ईस देत हा हा री॥[2]

० ० ०

जहाँ कृषी वाणिज्य शिल्प सेवा सब माहीं।
देसिन के हित कछू तत्व कहूँ कैसहु नाहीं॥[3]

काग्रेस के आन्दोलन का मूलाधार भी देश की बढती हुई निर्धनता को रोकना था।

४—युग का स्वच्छन्दतावादी काव्य

रीतिकाल मे काव्य की जिन प्रवृत्तियों का प्रारम्भ केशवदास, चिन्तामणि एव मतिराम द्वारा किया गया था, उनका अवाध प्रवाह पद्माकर तक आते-आते मन्द पड चुका था। काव्य जीवन की व्याख्या है—कवि इसे भूल चुका था। इससे जीवन से दूर विलास-भवन एव केलि-उद्यान के गान-गाने मे ही वह प्रवृत्त रहा। वियोग-जनित नायिकाओ की निश्वासो और अभिसारिकाओं की साज-सज्जा मे उसने अपने को भुला दिया। काव्य अपनी वास्तविक भूमि से भटक गया।

धीरे-धीरे परिस्थितियो मे परिवर्तन उपस्थित हुए। राजनीतिक परिवर्तनों के उपस्थित होने के कारण भारतीय परम्पराओ और उसकी सस्कृति को धक्का लगा। अग्रेज़ो के अत्याचार एव अनाचारो से समाज मे 'टिक्कस' वढे और

१. भारत का इतिहास, भाग २—डा० ईश्वरीप्रसाद, पृष्ठ ४९७-९८ (इण्डियन प्रेस, प्रयाग)।
२. भारत दुर्दशा, 'भारतेन्दु ग्रंथावली' भाग १, पृष्ठ ४७० (ना० प्र० स०, काशी)।
३. 'प्रेमघन सर्वस्व'—भूमिका, पृष्ठ १० (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)।

देश नये विकास और नई विचारधारा को स्वीकार करने के लिये तैयार हो गया ।

३—आर्थिक प्रगति

अग्रेजो के आगमन से राष्ट्रीय जीवन के समान ही आर्थिक जीवन को भी बडा धक्का लगा । अग्रेज ने नवीन आविष्कारो से सभी प्रकार के उत्पादनो को बढाकर भारत को अपना बाजार बनाया । वे सदैव से ही सफल व्यापारी थे । व्यापार के साथ वे राजनैतिक चालो का भी प्रयोग करते थे । इससे दोनो क्षेत्रो मे उनका एकाधिपत्य हो गया ।

भारत मे आदि-काल से आर्थिक जीवन परस्पर के आदान-प्रदान पर निर्भर था । ग्रामो और नगरो में पूर्ण समृद्धता थी । पटना, ढाका, मुगेर, बनारस, कन्नौज, आगरा और इटावा आदि बहुत काल तक व्यापारिक केन्द्र रहे, किन्तु उनका उत्पादन मशीनो के उत्पादन की प्रतियोगिता मे खडा न हो सकने के कारण बाजार मे उपेक्षित हो उठा ।

"गाँवो के धन्धों की बर्बादी से इन लोगो को बहुत बडा धक्का लगा । कृषि और उद्योग का सतुलन बिगड गया । श्रम का परम्परा से चला आया विभाजन टूट गया और अलग-अलग काम करने वाले आदमियो की बहुत बडी सख्या को किसी काम मे आसानी से नही लगाया जा सकता था ।"[१]

भारत के माल की खपत न हो सकने के कारण यहाँ का उत्पादन समाप्त हो गया । भारतीय कारीगर जैसे जुलाहे आदि मशीनो की प्रतियोगिता के स्थिर न हो सकने के कारण भूखो मरने लगे, युगो से परतन्त्रता की बेडियो मे आबद्ध भारतीय अपनी राष्ट्रीय भावना को खो ही चुके थे, फिर उनका ध्यान अपने इस अहित की ओर कैसे आकृष्ट होता ।

देश की इस शोचनीय आर्थिक परिस्थिति के लिये अग्रेजो की साम्राज्यवादी नीति ही उत्तरदायी है । देश मे भुखमरी फैल गई । ग्रामीण क्षेत्र का सुख और आनन्द सदैव के लिये तिरोहित हो गए । १८६१ ई० से १८९९ ई० तक देश में ६-७ दुर्भिक्ष पडे ।

"१८६० ई० मे पश्चिमोत्तर प्रान्त एव अलवर राज्य मे, १८६६-१८६७ ई० मे कलकत्ता से मद्रास तक सभी समुद्री किनारो पर, १८६८-६९ ई० में

१ जवाहरलाल नेहरू—'हिन्दुस्तान की कहानी', पृष्ठ ३७३ (सस्ता साहित्य मडल, दिल्ली)

पजाब और राजपूताना मे, १८७३ ई० मे विहार मे, १८७६-७८ ई० मे मद्रास, मैसूर, हैदराबाद, वम्बई तथा अवध मे, १८८०-९६ ई० मे सम्पूर्ण देश मे तथा १८९६-९७ मे अवध, विहार, मध्यभारत, मद्रास, वम्बई तथा पजाब मे अकाल पड़े।"[1]

समाज की आर्थिक स्थिति वास्तव मे बडी ही शोचनीय थी :—

अग्रेज राज सुख-साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी॥
ताहू पै मँहगी काल रोग विस्तारी।
दिन-दिन दूने दुख ईस देत हा हा री॥[2]

० ० ०

जहाँ कृषी वाणिज्य शिल्प सेवा सब माहीं।
देसिन के हित कछू तत्व कहूँ कैसहु नाहीं॥[3]

काग्रेस के आन्दोलन का मूलाधार भी देश की वढती हुई निर्धनता को रोकना था।

४—युग का स्वच्छन्दतावादी काव्य

रीतिकाल मे काव्य की जिन प्रवृत्तियो का प्रारम्भ केशवदास, चिन्तामणि एव मतिराम द्वारा किया गया था, उनका अवाध प्रवाह पद्माकर तक आते-आते मन्द पड चुका था। काव्य जीवन की व्याख्या है—कवि इसे भूल चुका था। इससे जीवन से दूर विलास-भवन एव केलि-उद्यान के गान-गाने मे ही वह प्रवृत्त रहा। वियोग-जनित नायिकाओ की निश्वासो और अभिसारिकाओ की साज-सज्जा मे उसने अपने को भुला दिया। काव्य अपनी वास्तविक भूमि से भटक गया।

धीरे-धीरे परिस्थितियो मे परिवर्तन उपस्थित हुए। राजनीतिक परिवर्तनो के उपस्थित होने के कारण भारतीय परम्पराओ और उसकी सस्कृति को धक्का लगा। अग्रेजो के अत्याचार एव अनाचारो से समाज मे 'टिक्कस' वढे और

---

१. भारत का इतिहास, भाग २—डा० ईश्वरीप्रसाद, पृष्ठ ४९७-९८ (इण्डियन प्रेस, प्रयाग)।
२. भारत दुर्दशा, 'भारतेन्दु ग्रंथावली' भाग १, पृष्ठ ४७० (ना० प्र० स०, काशी)।
३. 'प्रेमघन सर्वस्व'—भूमिका, पृष्ठ १० (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)।

अकालो की सख्या बढ गई। अग्रेजी साहित्य के संसर्ग से भी देश-वासियो को प्रेरणाएँ मिली। अभी तक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे सामन्त-भावना प्रधान थी; किन्तु नवीन परिवर्तनो के कारण मानव को जीवन का सत्य एव न्याय समझने के लिये बाध्य होना पडा। इससे परिस्थितियो के अनुरूप ही जागरण के गान-गाने के लिए कवि को बाध्य होना पडा।

भारतेन्दु के समय से ही वर्तमान हिन्दी काव्य की जो धारा बही है, उसमे प्राचीन काव्य-धारा की कई प्रवृत्तियो जैसे वैष्णव-भक्ति एव शृगार आदि के साथ कुछ नई भावनाओ का भी समावेश हुआ। इनमे सबसे प्रधान राष्ट्रीयता, देश-प्रेम अथवा स्वतन्त्रता की भावनाएँ हैं। राष्ट्रीय वीरो के गान, राष्ट्र-पतन के लिए दु ख, समाज की अवनति के लिए क्षोभ, कुरीतियो के परिहार के लिए अधीरता और तत्परता आदि भारतेन्दु-युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ थी।

इस प्रकार विषयो के क्षेत्र मे शास्त्रीय विषयो के साथ-साथ स्वच्छन्दतावादी विषयो का समावेश भी अनिवार्य हो गया। यह स्वच्छन्दवादिता (Romanticism) केवल विषयो के क्षेत्र तक ही सीमित न रही, किन्तु छन्द एव भाषा के क्षेत्र मे भी उसका सफल प्रयोग हुआ। अभी तक छन्दो के क्षेत्र मे कवित्त, सवैया एव पदो का ही प्रयोग था, किन्तु अब लावनी, ख्याल, कजली एव होली आदि छन्दो का भी प्रयोग होने लगा। भाषा के क्षेत्र मे भी परिवर्तन उपस्थित हुए, अभी तक ब्रजभाषा ही काव्य की भाषा थी, किन्तु अब सरल और स्वाभाविक बोल-चाल की भाषा को भी काव्य मे प्रयुक्त किया जाने लगा। नवीन भाव-धारा के अनुकूल ही यत्र-तत्र खडी बोली का प्रयोग कवि की स्वच्छन्द-भावना को ही व्यक्त करता है।

उपर्युक्त स्वच्छन्दवादिता भारतेन्दु, डा० जगमोहन सिंह, प्रेमघन एव श्रीधर पाठक में उपलब्ध होती है। इस सम्बन्ध मे डा० रघुवश का कथन है —

"भारतेन्दु-युग की कविता मे कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नही हुआ, ऐसा माना जाता है पर यदि उसकी मूल भावना पर विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जाय कि इस युग मे ही आगे के विद्रोही युग की भूमिका की नीव पड चुकी थी। यद्यपि इस युग की कविता मे भाषा, भाव तथा शैली सभी कुछ एक प्रकार से प्राचीन परम्परा का है, पर यदि ध्यान दिया जाय तो नव-चेतना का उद्बोधन इस युग के कवियों में पाया जाता है। ब्रजभाषा के साथ खडी बोली का प्रयोग होने लगा था, प्राचीन छन्दो के स्थान पर लोक-प्रचलित छदों—जैसे

कजली, विरहा, रेखता तथा मलार आदि का प्रयोग किया गया। इस काव्य मे नवीन आदर्शों के प्रति आग्रह भी मिलता है। रीतिकालीन रूढिगत प्रेम के आदर्श के स्थान पर इस युग मे प्रेम को अधिक स्वस्थ तथा उन्मुक्त वातावरण मिला है। व्यक्ति-स्वातत्र्य तथा राष्ट्रीय भावना की भी अपने ढग से अभिव्यक्ति हुई है, यद्यपि इस समय उनको आज के अर्थ मे नही समझा जा सकता। इन कवियो मे मस्ती तथा निर्द्वन्द्वता कल्पनाशील तथा सवेदनशील होने के साक्षी हैं। वर्तमान परिस्थिति के प्रति असन्तोष, परम्परागत रूढियो के प्रति विद्रोह तथा सामाजिक वन्धनो के प्रति क्षोभ इस युग मे जन्म ले रहा था, जिस भूमिका पर रोमांटिक काव्य विकसित होता है। परन्तु देश की राजनीतिक तथा सास्कृतिक प्रगति देशी सामन्तवाद तथा विदेशी साम्राज्यवाद के दो किनारो से टकराकर आगे वढ रही थी।"[1]

(ख) द्विवेदी-युग (१९००–१९२० ई०)

हिन्दी-साहित्य के इतिहास के आधुनिक युग मे 'द्विवेदी-युग' सुधारवादी प्रवृत्तियो के कारण अपनी महत्ता रखता है। यद्यपि विषय, छद एवं भाषा के सवध मे क्रान्ति के वीज भारतेन्दु जी के समय ही से अकुरित हो उठे थे, किन्तु भाषा का शैथिल्य एव लचरपन पूर्ववत् ही था। भाषा मे एकरूपता अभी तक न आ पाई थी। इससे एक शब्द विविध रूपो मे प्रयुक्त होता था। शब्दो और वाक्यो के निर्माण मे भी किसी भी प्रकार का अनुशासन न था। द्विवेदी-युग में महावीर-प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व से यह सुधार कार्यान्वित हुए और युग मे साहित्य की प्रत्येक शाखा पर द्विवेदी जी का प्रभाव अक्षुण्ण था, इससे उन्ही के नाम से यह युग प्रसिद्ध हुआ।

द्विवेदी जी का प्रभाव सरस्वती-सम्पादन के प्रारम्भ से साहित्य-क्षेत्र पर पडने लगा था और उनके सम्पादन-काल मे एक नवीन सजीवता थी। यो उनके द्वारा उसका सम्पादन फरवरी, १९०३ ई० से प्रारम्भ हुआ और जनवरी, १९२१ ई० में उनका सम्पादन-काल समाप्त हुआ, किन्तु साहित्य-क्षेत्र मे उनके अवतरित होने से पूर्व भाषा का सुधार आवश्यक ही नही अनिवार्य समझा जाने लगा था। इससे इस युग का प्रारम्भ १९०३ ई० से न करके १९०० ई० से करते हैं और उनके पूर्ण सम्पादन-काल को न लेकर १९२० ई० तक उसे सीमित करते हैं।

---

१. डा० रघुवंश—'हिन्दी काव्य की प्रवृत्तिया' भूमिका अंश, पृष्ठ २ (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली)।

१. राजनीतिक प्रगति

(क) अंग्रेजी साम्राज्यवादिता

लार्ड कर्जन का शासन-काल भारतीय जनता के लिए बड़ा ही असन्तोष-जनक रहा। उसने अपने हठी स्वभाव से भारतीयो को रुष्ट कर दिया। भारतीयो ने अग्रेजी शासन का विरोध करना निश्चित कर लिया। वैधानिक साधनो से सफलता मिलते न देखकर उन्होने हिंसात्मक ढगो को भी अपनाना प्रारम्भ कर दिया। १९०५ ई० मे जापान ने रूस को परास्त कर दिया, इससे भारत एव अन्य परतन्त्र देशो को अपने स्वतत्र होने की बड़ी प्रेरणाएँ मिली, क्योकि इस पराजय से अजेय योरुप के सम्मान को काफी धक्का लगा था।

इस समय ही अफ्रीका और इगलैण्ड आदि मे रहने वाले भारतीयो के प्रति बड़े ही अनादर एव उपेक्षापूर्ण व्यवहार किये गये। इससे भी भारत-निवासियो को बड़ी ही व्यथा और क्षोभ हुआ। देश की आन्तरिक स्थिति भी प्लेग, दुर्भिक्ष एव महामारी के कारण बड़ी जर्जरित थी। इससे भारतीयो ने अपने को स्वतन्त्र करने का दृढ निश्चय कर लिया। इन असन्तोषों के कारण १९०५ ई० मे मिण्टो वायसराय नियुक्त हुए। मिण्टो और भारत-सचिव मार्ले ने मिलकर १९०९ ई० मे कुछ सुधार "मिण्टो-मार्ले सुधार" के नाम से घोषित किये। केन्द्रीय एव प्रान्तीय धारा-सभाओ मे सदस्यो की सख्या अवश्य बढ़ा दी गई, किन्तु जनता को किसी प्रकार का सतोष न हुआ। यह सुधार अग्रेजो की दुर्बलता ही समझी गई। फलत राष्ट्रीय आन्दोलन और भी प्रबलता से प्रगतिशील हुआ। १९०९ ई० के सुधारो से हिन्दू-मुस्लिम विभाजित प्रणाली के निर्वाचन की स्वीकृति से मुस्लिम लीग को अपना अस्तित्व जमाने मे प्रोत्साहन अवश्य मिला, किन्तु देश का भाग्य भी उसी क्षण से फूट गया।

लार्ड हार्डिज के समय मे १९११ ई० मे जार्ज पचम एव उनकी सम्राज्ञी मेरी के पधारने पर दिल्ली मे दरबार किया गया। इसमे हुई घोषणा के अनुसार भारत की राजधानी कलकत्ता मे हटाकर दिल्ली बनाई गई तथा विभाजित बगाल पूर्ववत् एक कर दिये गये। १९१२ ई० मे जब लार्ड हार्डिज नवीन राजधानी दिल्ली मे प्रवेश कर रहे थे, उनके ऊपर बम फेंका गया। यह घटना ही व्यक्त करती है कि जनता अग्रेजी शासन से बड़ी क्रुद्ध थी।

इसी समय १९१४ ई० मे योरुपीय महायुद्ध का प्रारम्भ हो गया। अग्रेजो ने इस युद्ध के उद्देश्य स्वतन्त्रता, जनतन्त्र एव नागरिक अधिकारो के सरक्षण बतलाए। उन्होने युद्ध के उपरान्त भारत को स्वतन्त्र कर देने का

वचन भी दिया। फलत: कांग्रेस ने अंग्रेजो की जन-धन से सहायता भी की। किन्तु युद्धोपरान्त भारत को कुछ न मिला।

(ख) भारतीय राष्ट्रीयता

१८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना अवश्य हो गई थी, किन्तु १९०५ ई० तक कांग्रेस ने कोई भी प्रमुख रूप धारण न कर पाया।

"कांग्रेसियो के दिलो में कभी-कभी कुछ उत्तेजना और रोष के भाव आ गये हो, पर इसमे कोई शक नही कि ठेठ १८८५ ई० से १९०५ ई० तक कांग्रेस की जो प्रगति हुई उसकी बुनियाद थी—वैध आन्दोलन के प्रति उनका दृढ और अंग्रेजो की न्यायप्रियता पर अटल विश्वास ही।"[1]

१९०५ ई० में जब कर्जन द्वारा बंग-भंग हुआ तब अंग्रेजो के दमन ने भारतीयो के विश्वास को कुचल डाला।

"बंग-भंग ने बंगाली भाषा-भाषी जनता को उनकी इच्छाओ के विरुद्ध दो प्रान्तो मे बाँट दिया था। इसके परिणामस्वरूप जहाँ जनता मे एक व्यापक और जबर्दस्त आन्दोलन प्रारम्भ हुआ वहाँ सरकार ने भी उग्रता से दमन शुरू कर दिया। जुलूस, सभा तथा अन्य प्रदर्शन किये जाते थे, उधर सरकार उन्हे रोक देती थी। हडतालें होती थी और विद्यार्थी तथा नागरिक एक-सी सजा पाते थे।"[2]

"इस आन्दोलन मे विद्यार्थियो ने भी सहयोग दिया, किन्तु जब सरकार द्वारा विद्यार्थियो को सहयोग देने से रोका गया तब अंग्रेजी स्कूलो और कालेजो का बहिष्कार किया गया और राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार को प्रमुखता दी गई। इसमे विपिनबाबू और अरविन्दबाबू ने सक्रिय भाग लिया। १९०६ ई० मे कांग्रेस के सभापति-पद से दादाभाई नौरोजी ने 'स्वराज्य' को कांग्रेस का लक्ष्य बतलाया। १९०७ ई० के सिडीसम-एक्ट के कारण सभाएँ राजद्रोही सिद्ध की गईं तथा १९०८ ई० के 'न्यूज पेपर्स एक्ट' द्वारा तत्कालीन प्रगतिशील 'वन्देमातरम्', 'युगान्तर' और 'सध्या' आदि बहुत से पत्र बन्द हो गये। इसी एक्ट के अन्तर्गत 'केसरी' के सम्पादक लोकमान्य तिलक पर मुकदमा चला। उनका ६ मास का निर्वासन हुआ तथा एक हजार रुपये का आर्थिक दण्ड दिया गया।"[3]

---

१. डा० पट्टाभि सीतारमय्या—'कांग्रेस का इतिहास' भाग १, पृ० १५।
२. " " " " पृ० ५८।
३ डा० ईश्वरीप्रसाद—'भारत का इतिहास' भाग २, पृ० ५५०।

१९११ ई० मे जार्ज पचम के राज्याभिषेक-महोत्सव पर विभाजित बगाल एक कर दिया गया। 'माण्टफोर्ड' सुधारो से देश को अच्छे भविष्य की आशा जान पडी, किन्तु लार्ड हार्डिज पर बम फेंके जाने के कारण दमन जोरो से चला। यद्यपि काग्रेस के सभापति-पद से इस पर दुःख प्रकट किया गया और सहानुभूति का तार भी लार्ड हार्डिज के पास भेजा गया।

१९१३ ई० मे १९०६ ई० की स्थापित मुस्लिम लीग ने भी स्वराज्य प्राप्त करना अपना उद्देश्य बतलाया। सौभाग्य से इसी समय टर्की का बादशाह कमाल पाशा, जो मुसलमानो का खलीफा भी था, अपने राज्य से अग्रेजी साम्राज्यवादिता को समूल नष्ट कर देने के लिये अग्रसर हुआ। इस कारण भारतीय मुसलमानो का दृष्टिकोण भी अग्रेजो के विरुद्ध हो गया। फलतः काग्रस और मुस्लिम लीग दोनो ने एक होकर अपने स्वराज्य आन्दोलन को आगे बढाया।

१९१४ ई० मे एनीबेसेन्ट काग्रेस मे सम्मिलित हुईं और १९१५ ई० मे महात्मा गाधी अफ्रीका से भारत मे पधारे। सत्य और अहिंसा उनके प्रचण्ड अस्त्र थे। इस प्रकार उनके पधारते ही देश की राष्ट्रीयता के साथ इन तत्वों का भी स्वतः सम्मिश्रण हो गया।

२. सांस्कृतिक प्रगति

सामाजिक एव धार्मिक क्षेत्र मे द्विवेदी-युग मे हम किसी प्रकार का परिवर्तन नही पाते हैं। भारतेन्दु-युग की जो भी प्रगतियाँ थी अथवा उस युग मे या उससे पूर्व भी सुधार-प्रवर्तक नवीन सन्देश लेकर अवतरित हुये थे वे सब विचार-धाराएँ इस युग मे भी विकासशील रही। भारतेन्दु-युग के साहित्य के समान द्विवेदी-युग का साहित्य भी इन प्रगतियो से प्रभावित रहा है।

द्विवेदी-युग (१९००–१९२०) मे इस प्रकार की एक नवीन शक्ति का जन-वर्ग को निश्चय हुआ, जिसका प्रभाव अब तक अजर और अमर है। इस शक्ति ने भारत को ही नही, किन्तु सम्पूर्ण विश्व को बन्धुत्व, मानवता, सत्यता एव अहिंसा का पाठ पढाया है। यह शक्ति थी महात्मा गाधी का 'अहिंसावाद'।

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को नवीन मोड देने का श्रेय महात्मा गान्धी को है। उन्होंने सत्य एव अहिंसा जैसे गुणो को अपनाया और सत्याग्रह को देश के इस स्वातत्र्य-सग्राम के लिये अपना अस्त्र बनाया। गाधी जी ने जब भी अन्याय एव अत्याचार देखा उन्होंने उसका घोर विरोध किया। उनका 'सत्याग्रह'

बुद्ध एव ईसा के अहिंसावाद पर आधारित था। इससे इस प्रकार के आन्दोलनो मे उन्हे सुख का अनुभव होता था।

महात्मा गाधी ने अपनी उपर्युक्त धार्मिक विचारधारा को राजनीतिक विचारधारा से जोड दिया था। उनका विश्वास था, जिस प्रकार जीवन से राजनीति सम्बन्धित है उसी प्रकार राजनीति से धर्म सम्बन्धित है। यो १९१५ ई० में महात्मा गाधी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन मे सम्मिलित हुए थे, किन्तु धर्मपरक उनके राजनीतिक सिद्धान्तो का परिचय देश को १९०८—९ से ही होने लगा था। अफ्रीका के गोरो के विरुद्ध गाधी जी की विजय इन्ही धर्म-प्रधान राजनीतिक विचारो के कारण हुई थी।

थोडे समय मे गाधी जी के विचारो से सम्पूर्ण देश प्रभावित हो उठा। राष्ट्रीय आन्दोलन का उनके द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया।

महात्मा गाधी के अहिंसावादी सिद्धान्तो का साहित्य पर भी काफी प्रभाव पडा। १९१५ ई० के उपरान्त के साहित्य मे गाधी-विचारधारा का प्रभाव अक्षुण्ण है। आधुनिक-युग के काव्य और कला को रवीन्द्र बाबू से तथा राजनीति मे गाधी जी से प्रेरणाएँ मिली हैं। इससे 'आधुनिक-युग' को 'गाधी-रवीन्द्र-युग' की सज्ञा भी दी गई है।

३. आर्थिक प्रगति

देश की आर्थिक प्रगति पूर्ववत् ही असन्तोषजनक थी। अकाल और भुखमरी से देश बडा पीडित और जर्जरित था। कृषको एव कारीगरो की दशा दिनानुदिन शोचनीय हो रही थी। अग्रेजी सरकार स्वार्थ-प्रधान थी। इससे उनके द्वारा सहृदयतापूर्वक देश की दीन-हीन दशा को सुधारने का प्रयास किया ही नही गया।

४. युग का स्वच्छन्दतावादी काव्य

ब्रजभाषा काव्य मे १९वी शताब्दी के उपरान्त किसी प्रकार का विकास नही है। बीसवीं शताब्दी मे काव्य के क्षेत्र मे ब्रजभाषा के स्थान पर खडी बोली का प्रयोग किया गया। इस प्रकार के नवीन प्रयोग भारतेन्दु जी द्वारा अपने नाटको मे और श्रीधर पाठक द्वारा काव्यो मे प्रयुक्त हुये थे। २०वी शताब्दी मे तो अधिकाशत. कवियो का खडी बोली के प्रयोग का आग्रह ही रहा है। संस्कृत वृत्तो के प्रयोग एवं अतुकान्त रचना करने का सकेत भी द्विवेदी जी ने

अपने अनुयायियो को दिया है, इन क्षेत्रों मे वह स्वय भी बढे और दूसरो को बढने का सन्देश भी दिया। द्विवेदी-युग मे इतिवृत्तात्मक काव्य का प्राधान्य है। उन्होने भाषा के क्षेत्र मे नवीनता का आग्रह अवश्य किया; परन्तु द्विवेदी जी की विचारधाराओ मे शास्त्रीयता का पूर्ण प्रतिपादन है। उनके शास्त्रीय सिद्धान्तो का पालन मैथिलीशरण गुप्त, माधव शुक्ल रामचरित उपाध्याय एव लोचन प्रसाद पाण्डेय आदि ने किया है।

उपर्युक्त कवियो के द्वारा भारतेन्दुयुगीन स्वच्छन्दतावादी धारा की प्रगति में व्यवधान अवश्य पडा; परन्तु यह धारा पूर्ण अवरुद्ध नही हो पाई। इससे स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रगति क्रमश प्रवाहशील बनी ही रही। स्वच्छन्द-वादिता के क्षेत्र मे स्वय श्रीधर पाठक अपने मौलिक एव अनूदित काव्यो द्वारा उसे बल और जीवन प्रदान कर रहे थे।

डा० रघुवश ने 'द्विवेदी-युग' की स्वच्छन्द भावना की प्रगति के सम्बन्ध मे निम्न विचार प्रकट किये हैं —

"द्विवेदी-युग रोमाण्टिक काव्य का स्वच्छन्द युग न होकर पुनरुत्थान की भावधारा को सामने लाया। सुधारवादी आन्दोलनो से प्रेरणा ग्रहण कर काव्य जीवन के व्यापक स्तर पर उतरने लगा, यह भावना केवल पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से विकसित हुई हो, ऐसी बात नही है। यह काव्य जिस मध्यवर्ग से सम्बन्धित है वह अपनी भावनाओ, आकाक्षाओ तथा आदर्शों को अभिव्यक्ति का रूप दे रहा था। इसमे भी वर्तमान के प्रति बहुत बडा क्षोभ और असन्तोष है और रूढियो के प्रति विद्रोह की भावना भी है, पर वे कवि नवीन मूल्यो तथा आदर्शों की स्थापना के लिये गौरवपूर्ण अतीत की ओर मुड गये हैं। इस मोड के कारण साहित्य मे रोमाण्टिक काव्य की उन्मुक्त तथा स्वच्छन्द मनोवृत्ति दब गई है और उनके स्थान पर आदर्श, मर्यादा तथा नीतिमत्ता का आग्रह बढ गया है। पर इस युग के काव्य मे शुद्ध रोमाण्टिक धारा भी रक्षित रही है। श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय आदि मे भाषा शैली के साथ-साथ जीवन तथा जगत् के प्रति रोमाण्टिक दृष्टिकोण मिलता है।"[१]

---

१. डा० रघुवंश—'हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियां,' भूमिका अश, पृष्ठ ३। (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली)

(ग) छायावादी युग (१९२०–१९२५)

आचार्य द्विवेदी की प्रेरणा से 'द्विवेदी-युग' मे स्थूल इतिवृत्तात्मक काव्य प्रभूत मात्रा में रचा जा चुका था। उपदेशात्मक एव नीतिवादी काव्य से वातावरण तृप्त दिखलाई पडता था। इससे उसकी प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक थी। फलस्वरूप कवि सूक्ष्म भावो से युक्त विषयो को लेकर चला। यह नवीन परिवर्तन बडा आशाजनक तथा प्रगतिशील सिद्ध हुआ।

स्थूल की प्रतिक्रिया-स्वरूप सूक्ष्म मनोभावो का प्रतीकात्मक शैली मे काव्य-सृजन छायावादी काव्य की प्रवृत्ति है। दु खवाद, व्यक्तिवाद, मानव-गौरव, स्वदेश-प्रेम एव प्रकृति मे मानवीय भावों का आरोपादि छायावादी काव्य की काव्यगत विशेषताए हैं। इस शैली मे जब ईश्वर की अजर और अमर शक्ति की ओर कवि अपने काव्य में सकेत करता है, तब रहस्यवादी काव्य का सृजन हो उठता है।

रवीन्द्र बाबू की गीताजलि ने इस प्रकार के काव्य की प्रेरणा हिन्दी को प्रदान की। वस्तुतः १९१५ ई० मे मुकुटधर पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त एवं बदरीनाथ भट्ट के काव्य मे मुक्तक एव छायावादी काव्य के लक्षण प्रसूत होने लगे थे। इस प्रकार १९२५ ई० तक छायावादी काव्य अपना स्थान बनाने मे प्रवृत्त रहा है। इसके प्रारम्भिक स्वरूप को प्रस्तुत करने मे प्रसाद, पन्त और निराला सभी व्यस्त हैं। १९२५ ई० के उपरान्त तो छायावादी काव्य का अबाध प्रवाह ही बह उठता है, जो १९४० ई० तक विद्यमान रहता है।

अब हमे छायावाद की पृष्ठभूमि को देखना है, जिससे अभिप्रेरित हो छायावादात्मक काव्य के सृजन की प्रेरणाए मिली हैं। देश की राजनीतिक, सास्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितिया इस भावधारा को लाने मे अत्यधिक उत्तरदायी भी हैं।

१—राजनीतिक प्रगति

(क) अंग्रेजी साम्राज्यवादी नीति

निवेदन किया जा चुका है कि योरुपीय महायुद्ध मे भारतीयो ने अपने उन्मुक्त हृदय से अग्रेजो को सहयोग दिया था। भारतीय युवक देश की निष्कृति के लिए योरुपीय भूमि पर साहस और वीरता से अपना रक्त बहा रहे थे। देश

के राजे-महाराजे और धनी-मानी गण्यमान व्यक्ति धन-जन से सहायता देकर भविष्य की सदाशा मे थे, किन्तु १९१९ ई० मे 'माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट' के आधार पर जो सुधार मिले, वे पूर्ण रूप से अपर्याप्त थे। केवल इन सुधारो से केन्द्रीय एव प्रान्तीय धारासभाओ मे भारतीय सदस्यो की सख्या की ही अभिवृद्धि हुई थी। वायसराय एव गवर्नरो के अधिकार अभी पूर्ववत् ही थे। फलत भारतीय खिसियाकर रह गये। खिलाफत के प्रश्न पर मुसलमान चिढ़े हुए थे। इतना होने पर भी सरकार देश के वैधानिक एव राजनीतिक सघर्ष को भी कुचलने के लिये तुली हुई थी। जलियाँवाले वाग के अमानुपिक हत्याकाण्ड एव पजाव के सैनिक शासन से भारतीयों के असतोष की वृद्धि ही हुई।

१९१९ ई० के सुधारो की प्रतिक्रिया देखकर १९२४ ई० मे 'मुडीमैन कमेटी' की स्थापना की गई। १९२५ ई० मे उस कमेटी की रिपोर्ट पर धारासभा मे विचार हुआ। मोतीलाल नेहरू ने द्वैध शासन प्रणाली को अनुपयुक्त सिद्ध किया। देश मे हिन्दू-मुस्लिम साप्रदायिक दगे निरन्तर चल रहे थे, जिससे लाभ उठाकर अग्रेज अपने को शक्तिशाली बनाये हुए था। देश का ऐक्य भाव नष्ट हो रहा था, जिससे राष्ट्रीयता का ह्रास होना स्वाभाविक ही था तथापि महात्मा गाधी के नेतृत्व मे जनता को सतोप और धैर्य था। सामयिक व्यवधानो के होते हुए भी देश भविष्य मे मुक्ति की आशा से अग्रेजो से जूझता चला आ रहा था।

(ख) भारतीय राष्ट्रीयता

अंग्रेजी साम्राज्यवादिता की खोखली नीति से 'माण्टेग्यू-चैम्स्फोर्ड' के सुधार एव 'रॉलेट एक्ट' से जनता का असतोप वढा ही। पजाव के हत्याकाण्डो की जाच के लिए सरकार ने 'हण्टर कमेटी' स्थापित की थी। काग्रेस ने भी इसकी अलग से जाच करवाई थी। काग्रेस की रिपोर्ट से अग्रेजी सत्ता की पोल खुल गई। राष्ट्रीय आन्दोलन पुन वेग से चल पडा। .... काग्रेस का अगला आन्दोलन महात्मा गाधी के नेतृत्व मे चला और स्वतन्त्रता उपलब्धि तक काग्रेस के जितने भी आन्दोलन हुए सभी उन्ही के निरीक्षण मे चले। इससे १९२० ई० से देश के इतिहास मे 'गाधी-युग' का सूत्रपात होता है।

१९२० ई० के काग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में गाधी जी के असहयोग आन्दोलन के सिद्धान्तो को स्वीकार कर लिया गया। इस आन्दोलन के वशीभूत होकर वडे-वडे उपाधिधारी, व्यापारी, विद्यार्थी तथा किसानो आदि ने अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता को पुन. प्राप्त करने के लिये अपना सर्वस्व लगा दिया।

देश को नया वल मिला। असहयोग आन्दोलन के कारण अलीभाई, अबुल-कलाम आजाद, मोतीलाल नेहरू तथा लाला लाजपतराय को जेलें हुई। चौरी-चौरा तथा अन्य हत्याकाण्डो के कारण गाधी जी ने इस आन्दोलन को स्थगित कर दिया। १० मार्च १६२२ ई० को गाधी जी कैद कर लिये गये और छ वर्ष का उनको कारावास मिला।

इस समय वहुत से लोग गाधी जी की असहयोग नीति को पसन्द भी न करते थे। इसका फल यह हुआ कि आन्दोलन को नवीन दिशा की ओर उन्मुख करने के लिये देशवन्धु चितरजनदास और मोतीलाल नेहरू ने काग्रेस के अतर्गत ही 'स्वराज्य पार्टी' की स्थापना करली। इन लोगो ने धारा-सभाओ और कौसिल मे जाकर वैधानिक प्रगति की सफलता के लिए प्रयास किये। काग्रेस इस समय अपने जीवन के चौराहे पर खडी थी। जिन्ना काग्रेसियो के समान त्याग करने को उद्यत न थे। इससे उन्होंने अपने को अलग कर लिया। उनके द्वारा मुस्लिम लीग को साप्रदायिक मोड दी गई। इस समय देश मे हिन्दू-मुस्लिम दगे चल रहे थे। इन दगो के विरोध मे गाधी जी ने २१ दिन का अनशन भी किया था।

१६२५ ई० मे देश की वडी ही कारुणिक स्थिति थी। मुख्यतः मुस्लिम लीग की असहयोग नीति से देश को वडे ही दुर्दिन देखने पडे। फिर भी गाधी जी की प्रेरणाए देश के साथ थी। इससे देशभक्त निराश भी न थे।

देश की राष्ट्रीय प्रगति ने भावुक कवियो को भी प्रेरणाए दी। फलत श्रीधर पाठक, नाथूराम शकर शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त तथा सनेही आदि की रचनाओ मे देशभक्ति और राष्ट्रीय चेतना का प्रस्फुटन दृष्टिगोचर हुआ।

२—सांस्कृतिक प्रगति

१६०६ ई० के मार्ले-मिण्टो के सुधारो के द्वारा साम्प्रदायिक चुनावो का प्रस्ताव आचुका था। राष्ट्रीय व लोकतन्त्र दोनो के विरोध के कारण काग्रेस भी साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के पक्ष मे न थी तथापि १६१६ ई० मे काग्रेस को मुस्लिम लीग के सामने झुकना पडा। अनन्तर साम्प्रदायिक चुनाव का क्षेत्र वढता गया। फल यह हुआ कि केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा-सभाओ तथा देश मे सर्वत्र जहाँ भी इस प्रकार के प्रतिनिधियो का सम्मिलन हो जाता था, परस्पर द्वेष-भाव से लड उठते थे, जिससे देश को काफी क्षति उठानी पडी।

३—आर्थिक प्रगति

पिछले युगो के समान देश की आर्थिक परिस्थिति शोचनीय ही थी। उनमे किसी भी प्रकार का सुधार नही था। फलत अभावो से पीडित जनता मे त्राहि-त्राहि मची हुई थी। पराधीनता के दुष्प्रभाव इस समय के काव्य मे उपलब्ध होते हैं, जिनका वर्णन यथास्थल किया जावेगा।

४—युग का स्वच्छन्दतावादी काव्य

द्विवेदी-युग की समाप्ति पर ही कल्पनायुक्त मनोरम काव्य प्रसूत हो उठा था; किन्तु योरुपीय महायुद्ध (१९१४-१८) के पश्चात् हिन्दी काव्य स्वच्छन्द गति से अग्रसर हुआ।

"भारतेन्दु-काल के कवियों ने जिन जर्जर रूढ़ि-शृखलाओ को हिला दिया था उनको तोडने मे 'द्विवेदी-काल' के कवि सफल नही हुए क्योंकि उनके विचार अधिकतर पुराने ही थे। वे सुधारवादी विचार और व्यवहार मे थोडा अन्तर रखते थे। छायावाद के कवि सुधार मात्र से सन्तुष्ट न थे, बल्कि वे उन रूढियो को हटाकर एक नवीन सस्कृति की प्रतिष्ठा करना चाहते थे। फलतः व्यक्तिगत, सामाजिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिये उनके हृदय मे अदम्य उत्साह दिखाई देता है और उनकी वाणी में विद्रोह का स्वर सुनाई पडता है।"[1]

इस प्रकार व्यक्ति-प्रधान काव्य के सृजन के अवसर देश के सामने आये। हिन्दी काव्य मे इस समय सौन्दर्य-भावना, प्रेम-भावना, करुणा एव दु खवाद की भावना, प्रकृति-भावना, देश-प्रेम, नीति-विद्रोह आदि को लेकर रचनाएं प्रस्तुत हुईं, जिनमे स्वच्छन्दतावादी काव्य के लक्षण पूर्ण रूप से विद्यमान थे।

---

१. विजय शकरमल्ल—'हिन्दी काव्य मे प्रगतिवाद', पृष्ठ १८-१९ (सरस्वती [illegible])।

अध्याय ३

भारतेन्दु-युग एवं तत्कालीन स्वच्छन्दतावादी प्रेरक प्रवृत्तियाँ

विषय-प्रवेश

कालगत परिस्थितिया भावजगत् मे सदैव ही विकार प्रस्तुत करती रही हैं। विश्व के महान् से महान् परिवर्तन एव क्रान्तिया भी इन्हीं पर आधारित रही हैं। इससे साहित्य तथा अन्य ललित कलाओ मे जो परिवर्तन उपस्थित भी होते हैं, मूलतः उनके लिये यह परिस्थितिया ही उत्तरदायी हैं।

अग्रेजो की साम्राज्यवादिता ने जिस प्रकार देश को जर्जरित और विवश कर दिया, उसका चित्रण पिछले अध्याय मे किया जा चुका है। १८५७ की भारतीय क्रान्ति अवश्य अग्रेजो के विरुद्ध उठी, किन्तु देश के अनैक्य और राष्ट्रीय भावनाओ के अभाव के कारण वह क्रान्ति कुचल दी गई। अग्रेजो की स्वेच्छाचारिता पूर्ववत् चलती रही। इस क्रान्ति का सामयिक लाभ अवश्य परिलक्षित नही हुआ, किन्तु यह सत्य है कि इस क्रान्ति ने देश-वासियो को अपने को समझने के लिये बाध्य किया, जिससे देश के इतिहास मे आधुनिक युग का सूत्रपात हो उठा।

उपर्युक्त प्रभाव हमे हिन्दी-साहित्य मे भी उपलब्ध होता है। भारतेन्दु जी आधुनिक काल की नव चेतना और जागरण का सफल प्रतिनिधित्व करते हैं। देश अपनी दयनीय अवस्था के कारण आठ-आठ आँसू रोता था। भारतेन्दु एव उनकी गोष्ठी के कवियो ने उसे सान्त्वना प्रदान की। उसे अपने पर विश्वास करने का अमोघ मन्त्र दिया। भारत के अतीत के गौरव, सामयिक पतन तथा शोचनीय स्थितियो के चित्रणो से इन लोगो ने देश के प्रति करुणा का उद्रेक

करते हुए भारतीयो मे जीवन का साहस तथा देशोत्थान की भावना भरी। यह कवि भावुक होने के कारण विशेष मर्माहत भी थे। इससे इन महत्वपूर्ण भावनाओं की उपेक्षा कर परम्परागत भक्ति एव रीति की पद्धतियो मे सोलहो आने लगे रहना, उन्हें समय का अपव्यय लगा। इन कवियो ने समझ लिया था कि कृत्रिम भावनाओं से युक्त रीतिकाल, जो अब भी मोहिनी डालने का प्रयास कर रहा था, समाज के लिये हितकर न था।

"उसमे चपल वारवनिता का क्रीत विलास और कृत्रिम शृगार ही अधिक था, अभिजात कुल-वधू की प्रकृत अग-सुषमा और स्वाभाविक हृदय-सौन्दर्य की बहुत कमी थी।"[१]

इस प्रकार का कृत्रिम काव्य उनके लिए छलावा ही होता, इससे उन्होने ऐसे काव्य का परित्याग ही कर दिया। उनके सामने काव्य के नवीन उपादान उपस्थित हुए। नवीन भाव, नवीन भाषा तथा नवीन लोक-छन्दो को उन्होंने प्रधानता दी।

यह अवश्य सत्य है कि प्रस्तुत विषयो की ओर उन्मुख होते हुए भी, भारतेन्दु एव उनकी गोष्ठी मे प्राचीन परम्परा-पालन का भी आग्रह है। वह पूर्णरूपेण अपने को परम्परागत साहित्य से दूर न ले जा सके, यह इसलिये अस्वाभाविक न था कि एक साथ ही किसी प्रवृत्ति को नही बदला जा सकता। नवीन प्रवृत्ति की भित्ति प्राचीन प्रवृत्ति पर ही बनती है। यह साहित्य का अमर सत्य है। क्योंकि साहित्य का प्रवाह अविच्छेद होता है।

"उस सन्धिकाल के कवियों मे ध्यान देने की बात यह है कि यह प्राचीन तथा नवीन का योग इस ढग से करते थे कि कही से जोड नहीं जान पडता था, उनके हाथ मे पड़कर नवीन भी प्राचीन का ही एक विकसित रूप जान पडता था।"[२]

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि भारतेन्दु-युगीन काव्य-साहित्य मे प्राचीन और नवीन का अभिन्न गठबन्धन था। यह दोनो परम्पराए अपने मध्य मे एक विभाजन रेखा प्रस्तुत किये हुये अबाध रूप से भारतेन्दु एव द्विवेदी-युग को पार करती हुई छायावादी युग के प्रारम्भ (१९२५ ई०) तक चली गई हैं।

---

१. डा० श्यामसुन्दरदास, 'हिन्दी-साहित्य' (आधुनिक काल), पृष्ठ २३५ (इण्डियन प्रेस)।

२ 'प्रेमघन-सर्वस्व' भाग १, भूमिका, पृष्ठ ९, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य सम्मेलन)।

प्राचीन परम्परा-पालन मे भारतेन्दु-युग मे हमे भारतेन्दु और समकालीन कवियो मे रीतिपरक रचनाओ का ही वाहुल्य मिलता है। कवि अपने कविकर्म मे वडा सकीर्ण और रूढिवादी है। द्विवेदी-युग मौलिक न होते हुए भी भारतेन्दु-युग का ही एक अग है। इससे भारतेन्दु-युग की प्रवृत्तिया ही कुछ परिवर्तित रूप मे द्विवेदी-युग मे प्रस्तुत हो जाती हैं। इस प्राचीन परम्परा-पालन मे भारतेन्दु-युग की भक्ति एव रीतिपरक रचनाओ की प्रवृत्तिया द्विवेदी-युग की जीवन-निर्माण सम्वन्धी उपदेश-मूलक और सुधारवादी प्रवृत्तियो की ओर झुक जाती हैं। राम और कृष्ण तथा अन्य ऐतिहासिक एव पौराणिक कथावृत्तो को लेकर द्विवेदी-युग चला। इनमे नीतिवादिता और इतिवृत्तात्मकता का वाहुल्य था। द्विवेदी जी द्वारा भाषा-सुधार की जो समस्या उठाई भी गई, वह सुधारवादी और सास्कृतिक सिद्ध हुई।

प्राचीन और नवीन के मध्य की विभाजक रेखा के एक ओर परम्परा-पालन का आग्रह चल रहा था—यह जीवन के यथार्थ और स्वाभाविकता से कोसो दूर था। नवीन धारा जो प्रस्फुटित भी हुई उसमे जीवन की सामयिक समस्याए और राष्ट्रोद्धार की भावनाए थी। यह नवीन प्रवृत्ति ही काव्य की नवीन प्रगति की प्रेरणा थी। इस युग मे ही समाज के यथार्थ चित्रण के उपरान्त कवि क्रमश व्यक्तिवादी हो गया। वस्तुत स्वच्छन्दतावादी काव्य के यह दोनो पहलू भी भारतेन्दु-युग मे स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। विषय, भाषा और छन्द मे जिस परम्परा का त्याग उपलब्ध होता है, वह सीधे रूप से स्वच्छन्दवादिता नही है। भारतेन्दु और उनकी गोष्ठी मे इस सम्वन्ध की जो उन्मुखता है वह वस्तुत स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रेरक प्रवृत्तिया हैं। ये केवल उस प्रवृत्ति के लिए आधारशिला ही प्रशस्त कर देती हैं। फलस्वरूप भारतेन्दु एव उनकी गोष्ठी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के सहायक प्रेरक के ही रूप मे आते हैं। उन्ही को स्वच्छन्दतावादी कहने लगना साहित्यिक त्रुटि होगी। हाँ, हिन्दी काव्य की स्वच्छन्दवादिता का प्रारम्भ इन्हीं प्रेरणाओ पर अवश्य आधारित है, यह सत्य है। इस काव्य के अस्तित्व मे वैयक्तिकता की महत्ता ही विशेपरूपेण मान्य होती है। यह वैयक्तिकता ही इस काव्य की प्राण है। भारतेन्दु-युग मे इस प्रकार की स्वच्छन्दवादिता का प्रथम प्रस्फुटन यो प० श्रीधर पाठक मे स्पष्ट रूप से मिलता है, जिसके लिए आचार्य शुक्ल जी ने उन्हे प्रथम स्वच्छन्दतावादी कवि माना है। किन्तु पाठक जी से पूर्व ठाकुर जगमोहन सिंह जी का व्यक्तित्व भी नही भुलाया जा सकता। ठाकुर साहव मे यो पाठक जी के समान स्वच्छन्दतावादी काव्य की

प्रवृत्तिया अवश्य नही हैं। उनमे भाषा और छन्द का मोह भी वही पुराना का पुराना ही है; किन्तु प्रकृति-काव्य के उन्होने जो सश्लिष्ट चित्रण दिये हैं, वही उनकी मौलिकता है। इसके अतिरिक्त उनके काव्य मे प्रेम का स्वरूप भी बडा ही उदात्त है। प्रेम एव प्रकृति का सूक्ष्म-दर्शन स्वच्छन्दतावादी काव्य की विशेष प्रवृत्तिया हैं। फलस्वरूप ठाकुर साहब का व्यक्तित्व भी स्वच्छन्दतावादी काव्य मे महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। यो भारतेन्दु जी मे भी प्रकृति-चित्रण (यमुना और गगा का वर्णन) आदि हैं, किन्तु वह रीतिकालीन परम्परा से भाराक्रान्त हैं। इससे स्वच्छन्दवादिता के नाम पर उसमे कोई तथ्य नही।

भारतेन्दु-युग के आगे द्विवेदी-युग और छायावादी-युग के प्रारम्भ तक यह स्वच्छन्दवादिता चलती चली जाती है। प० श्रीधर पाठक तो इस विशेष धारा के जनक ही थे। वह द्विवेदी-युग मे भी पूर्ववत् चलते रहे। पाठक जी के अतिरिक्त राय देवीप्रसाद पूर्ण, रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पाण्डेय एव मुकुटधर पाण्डेय आदि ने इस धारा को अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित रखा।

१९२५ ई० के उपरान्त जब हम छायावादी-युग में प्रवेश करते हैं तब हम देखते हैं कि छायावाद इसी स्वच्छन्दवादिता पर अपनी भित्ति बनाता है। प्रसाद, पन्त और निराला आदि मे उनकी निजी मौलिकताएँ भी हैं, किन्तु उनके युग-सस्थापन का आधार यह स्वच्छन्दवादिता ही थी। उपर्युक्त महत्ता के कारण ही इस प्रवाहित स्वच्छन्दवादिता की प्रगति का अध्ययन आवश्यक ही नही अनिवार्य हो जाता है। स्वच्छन्दवादिता की प्रेरक प्रवृत्तियाँ १८७५ ई० के इधर-उधर भारतेन्दु जी की प्रेम-सरोवर (१८७३), प्रेमाश्रु-वर्णन (१८७३), प्रेम-माधुरी (१८७५), कर्पूर-मजरी (१८७६) प्रेम-तरग (१८७७) एव प्रेम-प्रलाप (१८७७) आदि रचनाओ द्वारा व्यक्त होने लगती हैं। इसी से भारतेन्दु-युग से हमारा चलना आवश्यक हो गया है।

इस स्थल पर यह स्पष्ट करना भी उचित ही होगा कि मेरे इस आलोच्य विषय का अध्ययन प० श्रीधर पाठक और उनकी कृतियो के अनुशीलन को प्रधानता देकर चला है। इससे प० श्रीधर पाठक के स्वच्छन्दतावादी काव्य का विवेचन इस प्रवन्ध मे न भारतेन्दु-युग मे सम्मिलित किया गया है और न द्विवेदी-युग मे ही। इनमे तो उनका सकेत ही मिलेगा। पाठक जी के व्यक्तित्व एवं उनकी कृतियो के अनुशीलन का विवेचन अलग से दिया गया है।

अ—स्वच्छन्दवादिता के प्रेरक तत्व

१. विषयों के क्षेत्र में

देश मे मुसलमानो के आगमन और उनके आतको से परम्परागत भारतीय सस्कृति, समाजगत परिस्थितियो तथा ललित कलाओ के अस्तित्व की प्रगति मे दारुण सघात लगे थे। उसी प्रकार अग्रेजो के आगमन से उनकी अविश्वासी कूटनीति और स्वार्थ के कारण भारत को, जो मुसलमानो के शिथिल शासन मे कालयापन कर रहा था, दुस्सह आघात लगे। अग्रेजो की अधीनता देश को सर्वनाश की ओर लिये जा रही थी। फलत उसके दुर्वह भार को उतार फेंकने के लिये भारतीयो ने १८५७ ई० के विद्रोह के रूप मे अपना असतोष प्रकट किया था; किन्तु उसके परिणाम मे अग्रेज ही भाग्य के धनी सिद्ध हुए।

देश के इस प्रकार के ह्रास और अध पतन के मूल मे केवल केन्द्रीय शक्ति का दुर्बल होना ही नही था, उसके साथ धार्मिक, साम्प्रदायिक और वर्णाश्रमी विषमताए तथा पारस्परिक एकता के अभाव आदि ऐसे कारण थे, जिससे देश की इस प्रकार की शोचनीय स्थिति का होना स्वाभाविक ही था।

भारतेन्दु जी भी देश के इस पतन का अनुभव कर दुखी थे —

बैर फूट ही सों भयो सब भारत को नास।
तबहु न छाडत याहि सब बँधे मोह के फांस ॥[1]

राधाकृष्णदास जी के भी इस सम्बन्ध में निम्न विचार थे —

पृथ्वीराज जयचद कासु प्रेरण सों बैर बढ़ाई।
आयुस मे कटि मरे विदेशी यवनहि लियो बुलाई ॥
वाही दिन भारत स्वतन्त्रता जड़ मे तेल मिलाई।
बैठे आप तमाशा देखत फिरै सबै बिलखाई ॥
मथि लीने सब सहज प्राकृतिक गुण भारतवासिन के।
रहि गये सीठी छाछ सदृश ये दर-दर चुनते तिनके ॥[2]

उपर्युक्त वचनो के आधार पर हमे यह कहते जरा भी सकोच नही कि अपनी पराधीनता और परवशता के मूल मे हमी ही कारण थे। यदि राष्ट्रीय

१. 'भारतेन्दु ग्रंथावली' भाग २, पृष्ठ ७३८ (हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान)।
२ 'राधाकृष्ण ग्रथावली' विजयिनी विलाप, स० श्यामसुन्दर दास (इण्डियन प्रेस)।

एकता और अपनत्व की भावना से हमने व्यवहार किया होता तो सम्भवतः देश का इतिहास ही कुछ अन्य प्रकार का होता। न हम मुसलमानो के पराधीन हुए होते और न अग्रेजो के। अपने इस परिणाम-स्वरूप हम स्वय अपने ब्रह्म के समक्ष भी लज्जित थे।

केहि विधि वैदिक कर्म होत कब कहा बखानत रिक, यजु, साम,
हम सपनेहू मे नहिं जाने रहैं पेट के बने गुलाम॥
तुमहि लजावत जगत जनम धरि दुहुँ लोकन में निपट निकाम।
कहैं कौन मुख लाय हाय फिर ब्रह्मा बाबा तृप्यंताम्॥[1]

देश की सामयिक स्थिति वस्तुत जीवन की कटु सत्य थी। उससे पीछा छुडा सकना एक अनहोनी घटना होती। फलत देश पराधीनता की बेडी मे फँसा हुआ, निष्प्राण होता हुआ घुट रहा था। देश की इन दयनीय परिस्थितियों ने भारत को वस्तुस्थिति का ज्ञान करने का मार्ग अवश्य सुलभ कर दिया। अभी तक कल्पना और विलासमय जीवन के कारण वे क्या थे—इस प्रश्न पर विचार हुआ ही न था, किन्तु अब उस मार्ग पर चल सकना कठिन था। इससे उन्हें जीवन के यथार्थ सत्य को टटोलना भी परमावश्यक हो गया।

१९०० विक्रमीय सम्वत् तक हिन्दी-काव्य मे रीति-युग का अस्तित्व सुरक्षित है। इस युग की काव्य-प्रगति मे हमे कृत्रिमता और व्यर्थ की आलकारिकता का अनुभव होता है। काव्य नायक और नायिकाओ के विलास और शृगार मे ही खो गया था। इस रीति-विषयक शास्त्रीय काव्य के कारण काव्य का वास्तविक स्वरूप जो जीवन की व्याख्या होता है, धूमिल हो उठा था। लोक-भावनाए काव्य मे स्थान पाने की अधिकारिणी ही न थी।

"रीति-ग्रन्थो की इस परम्परा द्वारा साहित्य के विस्तृत विकास मे कुछ बाधा भी पडी। प्रकृति की अनेकरूपता, जीवन की भिन्न-भिन्न चिन्त्य बातो तथा जगत के नाना रहस्यो की ओर कवियो की दृष्टि नही जाने पाई। वह एक प्रकार से बद्ध और परिमित-सी हो गई, उसका क्षेत्र सकुचित हो गया। वाग्धारा बँधी हुई नालियो मे प्रवाहित होने लगी, जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रस-सिक्त होकर सामने आने से रह गये। दूसरी बात यह हुई कि कवियों की व्यक्तिगत विशेषता की अभिव्यक्ति का अवसर बहुत कम रह गया। कुछ कवियो के बीच भाषा-शैली, पद-विन्यास, अलकार-विधान आदि

---

१. प्रतापनारायण मिश्र, तृप्यताम, खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर, १८९० ई०।

वाहरी वातो का भेद हम थोडा-वहुत दिखा सकें तो दिखा सकें पर उनकी ग्राभ्यन्तर प्रकृति के अन्वीक्षरण मे समर्थ उच्च कोटि की आलोचना की सामग्री वहुत पा सकते हैं।"[1]

इस काल के शास्त्रीय काव्य मे केवल शृङ्गार, अलकार एव नायिका-भेद के विपयो को ही प्रधानता दी गई है। छन्द वैविध्य की ओर भी ध्यान न दिया गया। केवल कवित्त एव सवैये ही उपर्युक्त विषयो के अनुरूप प्रमुखता प्राप्त कर सके। भाषा इस प्रकार अलकारों के अभिसार से परिपूर्ण थी कि काव्य के मूल सौंदर्य को देख और परख सकना दुर्लभ था। काव्य की भाषा (व्रजभाषा) की कक्षा ही निर्मित हो गई थी, जिससे लोकभाषा आदि का कोई स्थान ही नही था। उपर्युक्त प्रवृत्तियो से ही पता चल जाता है कि यह शास्त्रीय काव्य भले ही काव्य के लिये हो, किन्तु साहित्य की सज्ञा को विभूपित करने के लिए यह थोडा-सा भी अनुकूल न था। इससे उपर्युक्त प्रवृत्तियों का परित्याग परम आवश्यक हो गया, जो स्वाभाविक भी था।

भारतेन्दु और उनकी गोष्ठी के कवि आधुनिक युग के सक्राति युग के कवियो की कक्षा मे स्थान पाते हैं। इन सभी ने काव्य की विगत प्रवृत्तियो को भी काव्य मे स्थान दिया और साथ मे नवीन विपय भी व्यवहृत किए। इस प्रकार प्राचीन और नवीन का समन्वय वडा ही महत्वपूर्ण रहा। नवीन विपयो का जहाँ तक सवध था कवि अपने ससर्गी विपयो का अनुभव करके चले, जिनके सम्वन्ध मे निम्न पक्तियो मे विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा। शास्त्रीय विपयो की उपेक्षा कर इस प्रकार के यथार्थ विपयो को अपनाना स्वच्छदतावादी काव्य की प्रेरक भावना का ही द्योतक है। यह स्वच्छन्दतावादी भावना केवल विपयो तक ही सीमित न रह कर भाव और छन्द को भी प्रभावित किए बिना न रही। यही आधुनिक हिन्दी काव्य मे स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का प्रारम्भ है।

मुसलमानो के अत्याचार और साम्प्रदायिक कट्टरता को भारतीय अभी तक भूले नही थे और औरगजेव की नगी खूनी तलवार उस समय भी भारतीयो को दहला देती थी। अग्रेजो के राज्य मे इस प्रकार के भयभीत होने की कोई आशका ही न उठती थी। सभी आनन्द और सुख का अनुभव करते थे। इससे समाज अग्रेजो के शासन को सम्मान की दृष्टि से देखता था।

इस युग के सभी ही कवियो मे अग्रेजो की प्रशंसा-सूचक पक्तियाँ उपलब्ध

---

१. रामचन्द्र शुक्ल—'हिन्दी साहित्य का इतिहास', रीतिकाल—सामान्य परिचय।

होती हैं। इन पंक्तियो में राजभक्ति की चेतना का अनुभव होता है। राधाकृष्ण दास महारानी विक्टोरिया के निधन पर देश-व्यापी दु.ख और शोक प्रकट करते हैं। तत्कालीन देश मे राष्ट्रीय भावनाओ का प्रस्फुटन न होने के कारण अंग्रेजों के शासन मे देशवासियो को पूर्ण विश्वास था। उनके क्रिया-कलापो को हिन्दू और मुसलमान राजाओ के समान प्रजा-हित में ही देखते हैं।

कहा तुम्हें नहिं खबर, खबर अनरथ की आई।
भारतेश्वरी विजयिनी यह जग छोडि सिधाई॥

*   *   *

मातृहीन सब प्रजावृन्द करि जगत रुलाई।
मातु विजयिनी हाय-हाय सुरलोक सिधाई॥
भई अनाथिनि दिग-दिगन्त लौं पृथ्वी सारी।
सब भू-मण्डल आज शोक की मूरति धारी॥
हाय दया की मूर्ति हाय विकटुरिया माता।
हा! अनाथ भारत को दुख में आश्रय-दाता॥[1]

राजभक्ति और राजनिष्ठा की उपर्युक्त बातें आज के किसी भी राष्ट्र-प्रेमी को निकृष्ट ही लगेंगी, किन्तु परिस्थिति को देखते हुए यह सब क्षम्य है। भारतीयो मे अपने राजा के प्रति महान् विश्वास और भक्ति के तत्त्व सदैव ही रहे हैं। वही उनके अंग्रेजो के प्रति भी हैं। राष्ट्रीय चेतना के अकुर अभी जन-समाज के मानस-पटल पर प्रस्फुटित भी नहीं हुए थे, इससे भी यह विकार क्षम्य ही है।

राजभक्ति-समन्वित इन पक्तियो का अन्य साहित्यिक मूल्य भी हो सकता है। अभी तक का कवि-कुल प्रेम और शृगार-विषयक रचनाओ की सर्जना मे ही दत्तचित्त था, किन्तु इन विचारधाराओ ने उन्हे एकान्त विषयो की अपेक्षा समाजगत विषयो की ओर दृष्टिपात करने की प्रेरणा दी। यह विषय परिवर्तन ही कवि को वस्तुत लोकभूमि के विषयो को चित्रित और वर्णित करने के लिये एक क्षेत्र प्रस्तुत कर सके हैं।

भारतेन्दु-युग के कवि क्रमश जीवन की अन्य समस्याओ को लेकर भी अग्रसर हुए। देश पराधीनता की बेडियो मे ग्रस्त था, जिससे आर्थिक स्थिति बडी शोचनीय होती जाती थी। देश को वाह्य रूप से कुचलने मे अंग्रेजो ने कुछ

१. 'राधाकृष्ण ग्रथावली', पृष्ठ ६ (इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद)।

उठा न रखा था। यहाँ के व्यापार, उद्योग तथा कलाओ को मिटाकर भारतीय सम्पन्नता को उन्होंने मटियामेट कर दिया था। पाश्चात्य रहन-सहन एव सभ्यता के दृष्टिकोण अग्रेजो के सहवास के कारण भारतीयों मे प्रविष्ट हो चुके थे। दासता के कारण अपनी प्राचीन सभ्यता और विचारधाराओ को खो बैठने के कारण फैशन और दिखावे की वस्तुओ में ही देश का अधिक से अधिक धन विदेश में जाने लगा। वैज्ञानिक विकास के कारण पाश्चात्य देश विभिन्न प्रकार की उपयोगी भडकीली चीजें बनाकर इस देश मे भी भेजते थे, जिनका प्रयोग अग्रेजी सभ्यता के कारण अनिवार्य-सा था। आंख के अन्धे गांठ के मोटे, इस देश के नौनिहाल अपने को नियन्त्रित न कर सके। फल यह हुआ कि स्वदेशी वस्त्र और पदार्थ हमारे आकर्षण के विपय रह ही न गए। देश के मानसिक पतन के साथ उसका आर्थिक पतन भी हुआ।

भारतेन्दु और उनकी गोष्ठी के कवि देशव्यापी इस अर्थ-सकट को समझते थे। उन्होने वस्तुस्थिति को स्पष्ट करने का यथासाध्य प्रयास भी किया।

भीतर-भीतर सब रस चूसैं,
हँसि-हँसि के तन-मन-धन मूसैं।
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि सज्जन नहिं अंग्रेज।[1]

विजित देश होने के कारण अग्रेजो का भारत के प्रति किसी प्रकार का ममत्व भी न था। फलत उचित और अनुचित सभी प्रकार के साधनो से वे देश को जर्जरित कर रहे थे।

मारकीन मलमल बिना चलत कछु नहिं काम।
परदेसी जुलहान के मानहुं भए गुलाम॥
वस्त्र कांच कागज कलम चित्र खिलौने आदि।
आवत सब परदेस सों नितहि जहाजन लादि॥
इत की रुई सींग अरु चरमहि नित लै जाय॥
ताहि स्वच्छ करि वस्तु बहु भेजत इतहि बनाय॥
तिनही को हम पाइकै साजत निज आमोद।
तिन बिन छिन तृन सकल सुख स्वाद विनोद प्रमोद॥

---

१. नये जमाने की मुकरी—'भारतेन्दु ग्रंथावली', भाग २, पृष्ठ ८११ (ना० प्र० सभा)।

कछु तो वेतन में गयो कछुक राज-कर माँहि ।
बाकी सब व्योहार में गयो रह्यो कछु नाँहि ।।
निरधन दिन-दिन होत हैं भारत भुवि सब भाँति ।
ताहि बचाय न कोउ सकत निज भुज-बुधि-बल काँति ।।[1]

लूटि विलायत भारत खाय । माल ताल बहु विधि फैलाय ।।
ताको मासूली छूटि जाय । जामैं लागै लाभ दिखाय ।।
देसी मालन इहाँ बिचाय । घाटा भारत के सिर जाय ।।
रहै विलायत जो हरखाय । भारत सौं धन रोज कमाय ।।
चैन करैं जो मजे उड़ाय । तिसका टिक्कस भी छुटि जाय ।।
यह अचरज देखो तो आय । सोचत बुद्धि विकल ह्वै जाय ।।[2]

देश के इस प्रकार से दीन-हीन होने से व्यथा का एक कारुणिक विकार सम्पूर्ण भारतीय वायुमण्डल पर छाया हुआ था ; परन्तु भारतीय इस प्रकार विवश थे कि उसका अनुभव करके ही रह जाते थे । परतन्त्रता को उतार फेंकना उनके लिए असम्भव था ।

अंग्रेजों के संसर्ग से भारतीय अपनी आन्तरिक स्थिति को क्रमशः समझने लगे थे, जिसके फलस्वरूप अपना ही अहित अपने नेत्रों के समक्ष होते देखना, उन्हें असह्य हो उठा । देशवासियों की इस प्रकार की विचारधारा का ही परिणाम १८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना है, जिसकी प्रगति सम्पूर्ण राष्ट्र की राष्ट्रीय भावनाओं को जागरूक करने में प्रमुख रही है ।

देश अपनी तत्कालीन परिस्थितियों में सभी प्रकार से ही दीन-हीन था । उसके समक्ष वर्तमान में कुछ भी ऐसा न था, जिसको लेकर वह गर्व करता । आज वह योग्य होते हुए भी अयोग्य था, धनी होते हुए भी निर्धन था तथा सुशासक होते हुए भी शासन से वंचित था । वर्तमान में तो वह लड़खड़ा रहा ही था, उसका भविष्य भी अन्धकार और चिन्तामय ही था । पूर्वजों का अब भी कुछ पुण्य अवशेष था । जिसके बल पर निर्जीव और निष्प्राण होते हुए भी उसे अपने को सजीव और सप्राण समझने का साहस हुआ । फलतः तत्कालीन कवियों ने पूर्व पुरुषों की विभूतियों और महत्ताओं का गान गाकर अपनी वाणी को विभूषित किया और सहृदयों को अपने को समझने के लिए प्रभूत सामग्री

१ भारतेन्दु ग्रंथावली—'हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान', पृष्ठ ७३५–३६ ।
२. प्रेमघन-सर्वस्व—'होली की नकल या मोहर्रम की शक्ल', पृष्ठ १८५ ।

प्रदान की। देश की राष्ट्रीय भावनाओ की जाग्रति की पृष्ठभूमि मे मूलत पूर्वजो के गौरव-गान की यह सामग्री ही थी, जिसने सम्पूर्ण देश को राष्ट्रीय भावनाओ से ओत-प्रोत कर दिया।

राष्ट्रीय चेतना का इस प्रकार का बीज-वपन भारतेन्दु और उनकी मडली के कवियों द्वारा सम्पादित हुआ जो आगे चलकर अकुरित होकर पल्लवित भी हुआ।

१८८२ ई० मे अग्रेजो द्वारा प्रेषित भारतीय सेना ने मिश्र प्रदेश पर गौरव-पूर्ण विजय प्राप्त की। इस विजय से मुसलमान एव अग्रेजो से परास्त भारतीय जो युगो से विनत एव निष्प्रभ थे, आह्लादित हो उठे। आज पूर्वजो के समान ही वे अपने वीरत्व एव शूरत्व को व्यावहारिक रूप से प्रदर्शित कर फूले न समाते थे। भारतेन्दु की इस सम्बन्ध मे निम्न पक्तिया द्रष्टव्य हैं —

कित अरजन कित भीम कित करन नकुल सहदेव।
कित विराट, अभिमन्यु कित द्रुपद सल्य नरदेव॥
कित पुरु, रघु, अज, यदु कितै परशुराम अभिराम।
कित रावन सुग्रीव कित हनुमान गुनधाम॥

* * * *

कहहु लखहिं सब आय निज सतति को उत्साह।
सजे साज रन को खरे मरन हेत करि चाह॥
तुमरी कीरति कुल-कथा साची करिबे हेत।
लखहु लखहु नृपगन सबै फहरावत जय-केतु॥[1]

भारत मे श्रेष्ठ वीर, विद्वान् एव नृपति थे जिनके कृत्यो से भारत विश्व-विश्रुत था; किन्तु पारस्परिक विद्वेष एव दुर्भाग्य के प्रकोप के कारण दिग-दिगत में परिव्याप्त भारत का वह गौरव एव यश भस्मसात् हो गया। चौधरी बद्री-नारायण प्रेमघन इस प्रकार के पतन से महान दुखी हैं—

सदा सत्रु सों हीन, अभय सुरपति छवि छाजत।
पालि प्रजा भारत के राजा रहे विराजत॥
पै कछु कही न जाय, दिनन के फेर फिरे सब।
दुरभागिन सों इत फैले फल फूट बैर जब॥

१. 'भारतेन्दु ग्रंथावली' विजयिनी विजय-वैजयन्ती, पृष्ठ ८०१।

भयो भूमि भारत में महा भयंकर भारत।
भये वीरबल सकल सुभट एकहि सग गारत॥
मरे विवुध, नरनाह, सकल चतुर गुन मडित।
बिगरो जन समुदाय विन पथ दर्शक पडित॥
सत्य धर्म के नसत गयो वल विक्रम साहस।
विद्या बुद्धि विवेक विचाराचार रह्यो जस॥[1]

भारत की विद्या, कला एव कौशल सभी ही महत्तम थे। इनके उत्कर्ष से देश सर्वप्रकारेण सुख-सम्पन्न था। विश्व भी उसकी इन महत्ताओ के कारण उसके समक्ष विनत था और उसे जगद्गुरु समझता था, किन्तु आज सभी ही विलोम हैं।

जाकी विद्या, कला और कौशल की छटा लुभाई।
इक टक देखत रहत जगत मोहित ह्वै सुधि विसराई॥
होई यवन-पद-दलित सोई सब माटी ही ह्वैं जैहे।
चारहु दिसि मूढ़ता बेवसी कछु दिन माहि लखैहे॥
जा भारत प्रताप दिसि लख जग चख चकचौंधी लागै।
हाय, कहा सो लुटिहैं पद-तर सोचत ही बुधि भागे॥[2]

पूर्वजो के इस ज्ञान से भारतीयो की धमनियो में राष्ट्र के प्रति नव चेतना का प्रस्फुटन हो उठा। यह चेतना और राष्ट्रीय जागरण अबाध रूप से आज तक प्रवाहित है। इस परम्परा का पोषण श्रीधर पाठक जी द्वारा हुआ और आगे चलकर मैथिलीशरण गुप्त के काव्य मे इस राष्ट्रीय चेतना का श्रेष्ठतम उत्कर्ष एव विकास हुआ।

देश की सुगति एव सुख-सुविधा के लिए इस समय के कवि अपने हृदयो में ईश्वर के प्रति आस्था रखे हुए अर्चना और वन्दना करने में व्यस्त हैं। ईश्वर से प्रार्थना के अतिरिक्त उनके समक्ष और साधन ही क्या थे? इसी से यह भाव-धारा भी तत्कालीन कवियो के काव्य मे समान रूप से प्रवाहित है।

भारत सभी प्रकार से पतन को प्राप्त कर अपने अस्तित्व को मिटा रहा है। भारतवासी स्वय इस पतन का समाधान ढूढ नही पा रहे हैं। इसी से भारतेन्दु जैसे भावुक एव शालीन कवि ईश्वर से निवेदन करते हैं —

---

१. 'प्रेमघन-सर्वस्व'—हार्दिक हर्षादर्श, पृष्ठ २६८–६९।
२ 'राधाकृष्ण ग्रथावली'—पृथ्वीराज प्रयाण, पृष्ठ १३।

डूबत भारत नाथ वेगि जागो अब जागो।
आलस-दव एहिन दहन हेतु चहुँ दिसि सों लागो ॥
महा मूढ़ता वायु बढावत तेहि अनुरागो।
कृपा-दृष्टि की वृष्टि बुझावहु आलस त्यागो ॥
अपुनो अपुनायो जानिकै करहु कृपा गिरिवर-धरन।
जागो वलि वेगहि नाथ अव देहु दीन हिन्दुन सरन ॥[1]

उपर्युक्त पक्तियो मे राष्ट्रीय चेतना का केवल स्फुरण मात्र ही उपलब्ध होता है। इससे अधिक आगे जाने का उनके पास न अवकाश था और न क्षेत्र ही। अग्रेजो के ससर्ग से अपने सामाजिक अहित को वे देख सके थे। इससे उन्ही का उल्लेख करके वे रह गये। राष्ट्र-सेवा के लिए किसान, मजदूर, धार्मिक सहिष्णुता एव मानवीय प्रेम आदि कितनी समस्याएँ थी जिनको काव्य का विषय वनाना आवश्यक ही नहीं नितात अनिवार्य भी था, किन्तु भारतेन्दु-युग ने इन समस्याओ को स्पर्श न करके द्विवेदी-युग की राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए इन्हे छोड दिया। द्विवेदी-युग मे काग्रेस मे गाधी जी के सन्निवेश से ये सभी ही प्रवृत्तिया जागरूक होकर उत्कर्ष पर पहुँचती दिखाई पडती हैं। इनका विवेचन आगे के अध्याय के लिए सुरक्षित है।

राष्ट्रीय भावना की सहयोगी भावना वस्तुत भाषा की विचारधारा भी होती है। जब-जब राष्ट्रोत्थान होता है तद्देशीय भाषा भी उसके साथ जाग्रत होती है। भाषा किसी भी राष्ट्र की सस्कृति की प्रतीक होने के कारण राष्ट्रीय भावना के साथ ही अन्योन्याश्रित होकर चलती है। मुस्लिम-शासन-काल मे यद्यपि हिन्दी भाषा के साहित्य का स्वाभाविक विकास हुआ, किन्तु उर्दू एक नवीन भाषा का रूप लेकर खडी हो गई। अरबी एव फारसी मिश्रित होकर वह मुसलमानो की भाषा वनी और हिन्दी के समकक्षीय होकर वह भी देश मे अपनी प्रगति और अस्तित्व के लिये ताल ठोकती चली। उर्दू के प्रचलन से तो हिन्दी का अहित हुआ ही; किन्तु अग्रेजी के राष्ट्रभाषा हो जाने से हिन्दी दूर पृष्ठभूमि मे पहुँच गई। भारतेन्दु-युग मे यह भाषा की भावना वल लेकर चली। तत्कालीन अधिकाश कवियो मे यह भावना उपलब्ध होती है।

उर्दू, अग्रेजी आदि के कारण हिन्दी और उसके काव्य की वडी ही शोचनीय परिस्थिति थी, जिसके कारण भारतेन्दु जी वडे ही निराश थे।

---

१. भारतेन्दु ग्रथावली, भाग २—'प्रवोधिनी', पृष्ठ ६८३।

भोज मरे अरु विक्रमहू किनको अब रोइ के काव्य सुनाइये ।
भाषा भई उरदू जग की अब तो इन ग्रथन नीर डुबाइये ।।
राजा भये सब स्वारथ पीन अमीर हू हीन किन्हे दरसाइये ।
नाहक देनी समस्या अबै यह "ग्रीषमै मे प्यारे हिमन्त बनाइये ।।"[१]

हताश और निराश होने पर भी अब राष्ट्रीय जागरण के साथ भाषा के सरक्षण का अनुभव भी किया गया ।

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल ।।
इक भाषा इक जीव इक मति सब घर के लोग ।
तबै बनत है सबन सों मिटत मूढता सोग ।।
निज भाषा उन्नति बिना कबहुँ न ह्वैहै सोय ।
लाख अनेक उपाय यों भले करो किन कोय ।।[२]

मातृभाषा के पोषण एव सरक्षण से ही हम सभी का कल्याण और सम्मान है । इस सम्बन्ध मे प्रतापनारायण मिश्र की निम्न पक्तिया स्मरणीय हैं—

चाहहु जु साँचो निज कल्याण । तो सब मिलि भारत सन्तान ।।
जपो निरन्तर एक जबान । हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ।।
जबहि सुधरिहै जन्म निदान । तबहि भलो करिहै भगवान ।।
जब रहिहै निस दिन यह ध्यान । हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ।।[3]

जन-समाज में हिन्दी के प्रति अनुराग जगाने पर उसका विकास हो उठा । उर्दू जो अभी तक राजरानी के रूप मे सिंहासनारूढ थी अपने पतन के प्रारम्भ को देखकर उसका विलाप करना स्वाभाविक हो उठा—

"जो हो बहर हाल हमे उर्दू का गम वाजिब है तो हम भी इस स्यापे का प्रकरण यहाँ सुनाते हैं । हमारे पाठको को रुलाई न आवे तो हँसने की भी सौगंद है, क्योकि हाँसा तमाशा नही बीबी उर्दू तीन दिन की पट्ठी अभी जवान कट्ठी मरी है ।"

---

१. 'भारतेन्दु ग्रथावली' भाग २—स्फुट कविताएँ, पृष्ठ ८६६ ।
२ 'भारतेन्दु ग्रथावली' भाग २—हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान ।
३ 'कविता कौमुदी' भाग २—हिन्दी की हिमायत, पृष्ठ ५, (स० रामनरेश त्रिपाठी) ।

है है उर्दू हाय हाय। कहाँ सिधारी हाय हाय॥
मेरी प्यारी हाय हाय। मुंशी मुल्ला हाय हाय॥
बाल फरोशी हाय हाय। वह लस्सानी हाय हाय॥
अरब जुबानी हाय हाय। शोख बयानी हाय हाय॥
फिर नहिं आना हाय हाय।[1]

उर्दू के विरोध और हिन्दी के सम्पोषण मे उस समय एक आन्दोलन ही चल रहा था। उर्दू लिपि की बुराइयाँ बतलाते हुए यह आन्दोलन आगे बढाया गया था। हिन्दी और उर्दू दोनो का ही क्षेत्र उत्तर-प्रदेश होने के कारण यहाँ ही उस आन्दोलन की प्रगति विशेषरूपेण दिखलाई पडी। प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास, महावीरप्रसाद द्विवेदी एव बालमुकुन्द गुप्त आदि के द्वारा हिन्दी पक्ष की रचनाए सृजित हुईं।

भारतीय विद्रोह एव अग्रेजी ससर्ग से भारतीय समाज एव धर्म दोनो ही प्रभावित हुए। अभी तक इन क्षेत्रो मे कृत्रिमता और आडम्बर का पूर्ण साम्राज्य था। रूढिवादी भावनाएँ समाज की धमनियो मे इस प्रकार प्रविष्ट हो गई थी कि सनातनी विचारधाराओ के अतिरिक्त अन्य साधन सोचे ही नही जा सकते थे। वेद, पुराण तथा अन्य शास्त्रो मे जो भी शास्त्रीय दृष्टिकोण थे वे ही केवल अनुकरणीय थे। इधर १९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ब्रह्मसमाज, थियोसोफिकल सोसाइटी एव आर्यसमाज के निर्मित हो जाने से सुधारवादी भावनाएँ प्रबल हो गईं। पाश्चात्य सभ्यता में रँगे हुए भारतीय कट्टर एव सनातनी विचारधाराओ का अनुकरण करने मे अपने को पूर्ण असमर्थ पाकर इन्ही के अनुयायी बने।

समाज एव धर्म दोनो ही क्षेत्रो मे कट्टरता के स्थान पर शीलता एव समदर्शिता आवश्यक थी। तत्कालीन कवियो ने भी इन क्षेत्रो को अछूता न छोडा। उस समय समाज मे स्थित निर्धनता, टैक्स, विद्वेष, अकाल, कायरता तथा धर्मान्धता आदि ऐसे कितने ही कारण थे, जिनको दूर करने के लिये उपदेशात्मक काव्य का आधार लिया गया। इस प्रकार के नैतिक काव्य का सस्थापन केवल समाजगत विकारो एव अभावो के कारण ही था। आगे चलकर द्विवेदी-युग मे भी नैतिक काव्य की यह धारा अक्षुण्ण रही।

देश के क्लेशप्रद इन पतनो को देखकर राधाकृष्णदास जी मार्मिक शब्दों मे प्रार्थना करते हैं—

---

१. 'भारतेन्दु ग्रंथावली'—"उर्दू का स्यापा" पृष्ठ, ६७७-६७८।

प्रभु हो पुनि-पुनि भूतल अवतरिये।
अपुने या प्यारे भारत को पुनि दुख वारिद हरिये।
धरम गिलानि होति जब ही जब तब-तब तुम बपु धारत।
दुष्टन हरि साधुन निरभय करि तबहीं धरम उबारत।
महा अविद्या राच्छस ने या देसहि बहुत सतायो।
सारथ पुरुषारथ उद्यम धन सब ही निधिन गँवायो।[1]

ब्रह्मसमाज एव आर्यसमाज ने समाज के दूषित विकारों को देखकर उन्हे दूर करने का भरसक प्रयास किया, किन्तु 'हरिऔध' जी इन मतो को व्यर्थ बतलाते हैं।

ब्रह्मो समाज आरज समाज मतवाले।
कहने ही को बनते हैं भारत वाले॥
दुनियाँ भर से हैं इनके ढग निराले।
इन लोगों ने अपने ही घर हैं घाले॥
यह निज मनमानी सदा किया चहते हैं।
हिन्दू रहकर ही भारत के रहते हैं॥[2]

समाज एव धर्म आदि मानव के अभिन्न अग हैं। कालगत प्रभावो के कारण उनमे विकारो का समुपस्थित हो जाना स्वाभाविक है। अनन्तर यथा-समय ही उनमे सुधार भी उपस्थित हो जाते हैं जिससे जितने भी कलक और अभाव आ जाते हैं, सब भस्मसात हो जाते हैं। मानव ही इन सभी प्रकार के उत्थान-पतनो का प्रणेता होता है। फलत भारतेन्दु-युग मे कवि-वर्ग ने आर्य-धर्म की आलोचना करके एक नूतन पथ निर्मित करने का प्रयास किया। यह पथ मानवता एव बन्धुता का था, जिसको अपनाना देश की भावी प्रगति के लिये परम आवश्यक था।

भारतेन्दु-युग मे 'प्रकृति-चित्रण' की ओर भी विशेष अनुराग प्रदर्शित हुआ। भारतेन्दु से पूर्व सम्पूर्ण रीतिकाल मे प्रकृति-वर्णन सस्कृत की पद्धति पर ही होता रहा। विशेषरूपेण शृगार के अन्तर्गत उद्दीपन के लिए ही इसका उपयोग हुआ। कवि ने प्रकृति के स्वतन्त्र उपयोग की ओर कभी ध्यान ही नही दिया। इसी से तत्सम्बन्धी काव्य का सृजन न हो सका। रीति-परि-

१. राधाकृष्ण ग्रथावली—पृष्ठ ६१ (इडियन प्रेस, प्रयाग)।
२. हरिऔध—काव्योपवन, खड्ग विलास प्रेस, बाकीपुर।

पाटी के आधार पर प्राकृतिक पदार्थों की गणना कराके शृ गार के लिये इनके द्वारा साज-सज्जा की पृष्ठभूमि ही तैयार की जाती रही है। निस्सन्देह इस भावना के कारण प्रकृति-सम्बन्धी स्वच्छन्द काव्य अवश्य निर्मित नहीं हो सका—यह हिन्दी काव्य का अवश्य दुर्भाग्य है; किन्तु भारतेन्दु-युग मे प्रकृति-काव्य पर भी ध्यान दिया गया।

" दूसरी बात उनके (भारतेन्दु के) सम्बन्ध मे ध्यान देने की यह है कि वे केवल नर-प्रकृति के कवि थे, वाह्य प्रकृति की अनेकरूपता के साथ उनके हृदय का सामजस्य नही पाया जाता।" इसके आगे ही आचार्य शुक्ल का कथन है—"नाटको मे दो एक जगह उन्होंने जो प्राकृतिक वर्णन रक्खे हैं (सत्य हरिश्चन्द्र मे 'गगा-वर्णन' तथा चन्द्रावली मे 'यमुना-वर्णन') वे केवल परम्परा-पालन के रूप मे हैं। उनके भीतर उनका हृदय नही पाया जाता। वे केवल उपमा और उत्प्रेक्षा के लिये लिखे जान पडते हैं।"[1]

आचार्य शुक्ल द्वारा इगित परम्परा-पालन के लिये लिखे गये दोनो स्थल द्रष्टव्य हैं।

काशी मे गगाजी के घाटो पर घूमते हुए राजा हरिश्चन्द्र गगा जी के सौंदर्य का वर्णन करते हैं—

नव उज्ज्वल जल-धार हार हीरक सी सोहति।
बिच-बिच छहरति बूँद मध्य मुक्ता-मनि पोहति॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन-मन विविध मनोरथ करत मिटावत॥
सुभग स्वर्ग-सोपान सरिस सब के मन भावत।
दर्शन-मज्जन-पान त्रिविध भय दूर मिटावत॥
श्री हरि-पद-नख-चन्द्रकान्त-मनि द्रवित सुधारस।
ब्रह्म कमण्डल-मण्डन भव-खण्डन सुर-सरवस॥[2]

उपर्युक्त के समान ही ललिता चन्द्रावली की प्रतीक्षा मे खडी हुई यमुना के सौन्दर्य का वर्णन करती है—

तरनि-तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल-परसन-हित मनहुँ सुहाये॥

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ ५६०।
२. 'भारतेन्दु नाटकावली,' सत्य हरिश्चन्द्र, पृष्ठ ७२-७३ (रामनारायण लाल, प्रयाग)।

किधौं मुकुर मे लखत उझकि सब निज-निज शोभा ॥
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा।
मनु आतप वारन तीर कों सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि-सेवा-हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत ॥[1]

आचार्य शुक्ल के कथनानुसार निस्सन्देह ही यह सत्य है कि गगा और यमुना का यह वर्णन प्रकृति-चित्रण के दृष्टिकोण से नही किया गया है और पंक्तिया उपमा और उत्प्रेक्षा का भार ही वहन करती हैं, तथापि यह सत्य है कि प्रकृति, जो शृगार के उद्दीपन विभाव के विधान मे खो-सी गई थी, पुन उपमा, उत्प्रेक्षा एव अप्रस्तुत-विधान का आश्रय लेकर अपना अस्तित्व सरक्षित कर लेती है। शताब्दियो के उपरान्त प्रकृति का यह रूप काव्य को नवीन दिशा की ओर उन्मुख करता है। दूसरे शब्दो मे यह कहना भी युक्तियुक्त है कि प्रकृति का इस प्रकार का उपयोग उद्दीपन विभाव वाले उपयोग की अपेक्षा अधिक लोक-सग्रही एव व्यापक है।

भारतेन्दु के अतिरिक्त ठा० जगमोहनसिंह, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्ण-दास एव बालमुकुद गुप्त मे प्रकृति के प्रति उपासना का भाव उपलब्ध होता है। राधाकृष्णदास जी के 'भारत बारहमासा' मे परम्परागत बारहो महीने का चित्रण है, किन्तु पृष्ठभूमि मे प्रत्येक मास की प्राकृतिक स्थिति का वर्णन करते हुए देश-दशा का चित्रण भी समन्वित कर दिया गया है। यह भावना भी प्रकृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करने मे जागरूक है।

माघ मास बसन्त आयौ हम बसन्त निजै भये।
खोइ सब धन मान विद्या फूलि के उमँगे नये॥
पतझार सब धन होइगो अरु पीयरे हमहीं भये।
अरु आम से बौरे हमी दुख रोग चारहु दिसि छये॥[2]

भारतेन्दु-काल मे ठाकुर जगमोहनसिंह प्रकृति-वर्णन के प्रति विशेष अभिरुचि लेकर हिन्दी काव्य-क्षेत्र मे उतरते हैं। इनके काव्य के सम्बन्ध मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का कथन है.

"यद्यपि ठाकुर जगमोहनसिंह जी अपनी कविता को नये विषयो की ओर नहीं ले गये, पर प्राचीन सस्कृत काव्यो के प्राकृतिक वर्णनो का सस्कार मन

---

१ 'भारतेन्दु नाटकावली'—श्री चन्द्रावली, पृष्ठ २४४-४५ (रामनारायण लाल, प्रयाग)

२ 'राधाकृष्ण ग्रथावली, 'भारत बारहमासा', पृष्ठ १५-१६।

मे लिये हुए, प्रेमचर्या की मधुर स्मृति से समन्वित विन्ध्य प्रदेश के रमणीय स्थलो को जिस सच्चे अनुराग की दृष्टि से उन्होने देखा है, वह ध्यान देने योग्य है। उसके द्वारा उन्होने हिन्दी काव्य मे एक नूतन विधान का आभास दिया था।"[1]

ठाकुर जगमोहनसिंह के प्रकृति-वर्णन मे शिशिर-सम्बन्धी यह छन्द देखने योग्य है

आई शिशिर वरोरु शालि अरु ऊखन सकुल धरनी।
प्रमदा प्यारी ऋतु सोहावनी क्रौंच रोर मन हरनी॥
मूँदे मन्दिर उदर झरोखे भानु किरन अरु आगी।
भारी बसन हसन मुख बाला नव यौवन अनुरागी॥[2]

ठाकुर जगमोहनसिंह के प्रकृति-वर्णन के रूप को यदि हम ध्यान से देखें तो हमे यह कहने मे जरा भी सकोच नही कि उपर्युक्त मे जरा भी परम्परा-पालन नही, किन्तु प्रकृति का सीधा-सादा सूक्ष्म दर्शन है।

भारतेन्दु-युग मे इस प्रकार हम देख चुके हैं कि किस प्रकार भारतेन्दु एव उनके सहयोगी अपने काव्यो मे नवीन विषयो का समावेश कर चले हैं। भारतेन्दु अपने युग के सूत्रधार रहे हैं। उनके द्वारा साहित्य की प्रत्येक धारा को उनसे प्रेरणाएँ मिली और उन्होने सफल मार्ग-प्रदर्शन भी किया। इस युग मे भी यद्यपि राधाकृष्ण के शृंगार-परक माधुर्य का परित्याग नही किया जा सका; किन्तु कवियो ने उनके समान ही राजनीतिक, सामाजिक, भाषा-विषयक, धार्मिक आदि नवीन विषयो को अपनाने मे सकोच नही किया। इस प्रकार प्राचीन के साथ नवीन का सम्मिश्रण काव्य को विशेष दिशा की ओर ले चला।

इस प्रकार विषयो के क्षेत्र मे हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि शृंगारात्मक रीतिकालीन जो शास्त्रीय परिपाटी भारतेन्दु जी तक प्रवाहित हो कर आती है, उसमे नवीन विषयो का यह सन्निवेश स्वच्छन्दतावादी धारा की प्रेरक प्रवृत्तियो का द्योतक है।

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—'हिन्दी साहित्य का इतिहास,' पृष्ठ ५६४।
२. ठा० जगमोहनसिंह—'द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रंथ'।

आ—स्वच्छन्दवादिता के प्रेरक तत्व

२. भाषा के क्षेत्र मे

जब लौं भारत भूमि मध्य आरज कुल वासा।
जब लौं आरज धर्म माँहि आरज विश्वासा॥
जब लौं गुण आगरी नागरी आरज-बानी।
जब लौं आरज बानी के आरज अभिमानी॥
तब लौं यह तुम्हरो नाम थिर चिरजीवी रहिहै अटल।
नित चन्द सूर सम सुमिरिहैं हरिचन्दहु सज्जन सकल॥[1]

१८८० ई० के 'सारसुधा निधि' मे श्री हरिश्चन्द्र को 'भारतेन्दु' नामक उपाधि देने का सर्वग्राह्य और सवप्रिय प्रस्ताव प्रस्तुत किया था, जिसे तत्काल ही देश ने सर्वसम्मत रूप से स्वीकृत कर लिया। उनका व्यक्तित्व लोकोपयोगी एव लोकसग्रही था। उनका तन-मन-धन समाज, राष्ट्र, साहित्य और धर्म के लिये सदैव प्रस्तुत रहता था। फलत साहित्य-सेवा के लिये उन्होने परिवार की चिन्ता न की और न अग्रेजी सरकार की। बगला मे उनकी अच्छी पैठ थी। साथ ही हिन्दी, सस्कृत और उर्दू पर उनका समान अधिकार था। बारह वर्ष की अवस्था मे ही उन्होंने नव रसो के स्थान पर चार अन्य रसो का विद्वत्तापूर्ण प्रतिपादन किया था, जिसके कारण प्रौढ कवि एव आलकारिक प० ताराचन्द तर्करत्न को अपने 'शृगार रत्नाकर' मे—"हरिश्चन्द्रस्तु वात्सल्य सख्य भक्तयानन्दाख्यमधिक रस चतुष्टय मन्यते"—लिखने के लिए बाध्य होना पडा।

विचारो एव विषयो के क्षेत्र मे वह पूर्ण मौलिक और क्रान्तिकारी थे। राष्ट्रीयता का बीज जिसे उन्होने अपने जीवन मे वपन किया था, उनके निधन-सवत्सर १८८५ ई० मे राष्ट्रीय समिति (Indian National Congress) की स्थापना के रूप मे अकुरित हुआ। हिन्दी क्षेत्र मे द्विवेदी-युग मे इसका चरम उत्कर्ष वस्तुत भारतेन्दु जी का ही चिर आभारी है।

भारतेन्दु-युग हिन्दी के आधुनिक काल के लिए सक्रान्त-युग था। जिन विचार-धाराओ को २०वी शताब्दी के युग-प्रतिनिधियो ने प्रमुखता दी, उन सभी को भारतेन्दु एव उनकी मण्डली के कवि-कलाकार प्रारम्भ कर चुके थे, जिनका संकेत और विवेचन पिछले पृष्ठों मे किया जा चुका है। जिस प्रकार प्राचीन

---

१. श्रीधर पाठक—'हरिश्चन्द्राष्टक'—(१८८८ ई०)।

विषयो के मध्य मे नवीन विषयो को काव्य मे स्थान देकर उन्होंने परम्परा पर आघात किया था, उसी प्रकार काव्य मे ब्रजभाषा के समक्ष खडी बोली के प्रयोग का आदर्श रख भाषा के क्षेत्र मे भी उन्होने नवीनता की प्रेरणा दी थी।

भारतेन्दु के साहित्य मे प्राचीन और नवीन का सुन्दर सामजस्य था, जिन्हे सरलतापूर्वक क्रमश आदर्श और यथार्थ की सज्ञा दी जा सकती है। भाषा के रूप मे ब्रजभाषा ही उन्हें और उनके गोष्ठी के सदस्यो को पैतृक धरोहर के रूप मे मिली, जिसका उन लोगो ने भक्ति एव रीतिपरक रचनाओ मे सफलतापूर्वक उपयोग किया। राधाकृष्ण-विषयक शास्त्रीय काव्य द्वारा उन्होंने निस्सदेह परम्परागत आदर्श की रक्षा कर ली, किन्तु देश की तत्कालीन परिस्थितियो ने उन्हे स्वप्निल न रहने दिया। जीवन के कटु सत्यो को देखकर वे उसकी उपेक्षा न कर सके। फलत यथार्थ की ओर उन्मुख होने के लिए उन्हे बाध्य होना पडा। काव्य के विषय बदले, भाषा का माध्यम भी बदल चला।

"इसलिए हिन्दी मे भी यदि कुछ परिवर्तन हो तो स्वाभाविक ही समझना चाहिए क्योकि भाषा और भाव का परिवर्तन समाज की अवस्था और आचार-विचार से अधिक सम्बन्ध रखता है। अब ब्रजभाषा के दिन बीत गये। इसलिए सस्कृत की भाति उसका मान तो अवश्य करना चाहिये, पर उसे राष्ट्र-भाषा बनाने की और नायिका-भेद और अलकार-शास्त्र बढाने की चिन्ता छोड देनी चाहिए। ब्रजभाषा और खडी बोली की उत्पत्ति करीब-करीब साथ-साथ ही हुई। मुसलमानो के आने पर उर्दू की नीव पडी थी। उस समय उस मे कविता खडी बोली की ही होती थी। फारसी-मिश्रित उर्दू खडी बोली का ही रूपातर है।"[1]

भारतेन्दु जी ने भी खडी बोली का प्रयोग करना प्रारम्भ किया, किन्तु यह अभ्यास गद्य-साहित्य तक ही सीमित रहा। पद्य-साहित्य मे खडी बोली के प्रयोग उन्होंने प्रारम्भ भी किये थे, किन्तु उन्हें सफलता न मिली थी। इस सम्बन्ध मे उन्होने 'भारत-मित्र' के सम्पादक को लिखा था।

"पश्चिोत्तर देश की जनता की भाषा ब्रजभाषा है, यह निश्चित हो चुका है। मैंने आप कई बेर परिश्रम किये कि खडी बोली मे कुछ कविता बनाऊँ पर

---

१ बदरीनाथ भट्ट—'खडी बोली की कविता', सरस्वती, मार्च १९१२।

वह मेरी चित्तानुसार नही बनी। इससे यह निश्चय होता है कि ब्रज-भाषा ही मे कविता करना उत्तम होता है। × × × तीन भिन्न छन्दो मे यह अनुभव करने के ही लिये कि किस छन्द मे इस भाषा (खडी वोली) का काव्य अच्छा होगा, कविता लिखी है। मेरा चित्त इसमे सन्तुष्ट न हुआ और न जाने क्यो ब्रजभाषा से मुझे इसके लिखने मे दूना परिश्रम हुआ, इस भाषा की दीर्घ क्रियाओ मे दीर्घ मात्रा होने के कारण बहुत असुविधा होती है।"[1]

ब्रजभाषा और खडी बोली के इस सघर्ष मे प्रतापनारायण मिश्र एव राधाचरण गोस्वामी ब्रजभाषा के पक्ष मे थे जब कि श्रीधर पाठक खडी बोली के पक्ष मे। एक लम्बा वाद-विवाद कालाकाँकर से प्रकाशित 'हिन्दोस्तान' मे चला।

भारतेन्दु के उपरान्त द्विवेदी-युग मे ब्रजभाषा के अनन्य प्रेमी नित्यानन्द की 'होली मे खडी बोली' कविता बदरीनारायण भट्ट द्वारा मार्च १९१३ की 'सरस्वती' मे प्रकाशित 'खडी बोली की कविता' मे उद्धृत की गई है।

बोल-चाल की भाषा मे है कविता करना खेल नहीं।
अविकृत शब्दों का छन्दो से मिलता मेल नहीं॥
भारतेन्दु जी तक ने इसको इसीलिये था छोड दिया।
हार मानकर अब हमने भी है इससे मुँह मोड लिया॥

विचारणीय यह है कि कवि खडी बोली का विरोधी है, किन्तु स्वय उपर्युक्त पक्तियो को खडी वोली ही मे प्रस्तुत कर रहा है।

पूज्य भारतेन्दु जी ने प्राकृत श्लोक के आश्रय पर 'कर्पूर-मञ्जरी' मे बहुत ठीक कहा है—

जामैं रस कछु होत है पढत ताहि सब कोय।
बात अनूठी चाहिये भाषा कोऊ होय॥[2]

इन पक्तियो के आधार पर यह पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि काव्य की भाषा के सम्बन्ध मे भारतेन्दु का किसी प्रकार का आग्रह नही था। काव्य के क्षेत्र मे भाषा-विषयक उस समय दो विचार-धाराएँ थी।

---

१. 'भारत-मित्र' (काशी) १ सितम्बर, १८८१।
२ राधाकृष्ण-ग्रथावली, 'भाषा कविता की भाषा', पृष्ठ १४२ (इ० प्रे०)।

"कुछ लोगो की मम्मति है कि व्रजभाषा के अतिरिक्त प्रचलित बोलचाल की भाषा मे कविता हो ही नही मकती और कुछ कहते हैं कि व्रजभाषा की कविता हिन्दी भाषा की कविता ही नही है। वह केवल एक प्रान्त की भाषा-कविता कही जा सकती है; कविता जब खडी बोली मे होगी तभी वह हिन्दी कविता कहलाने योग्य होगी।"[1]

भारतेन्दु और उनकी मण्डली के कवि व्रजभाषा-काव्य के शत-प्रतिशत पोषक थे, किन्तु शास्त्रीय विषयो की रक्षा में नवीन लोकोपयोगी विषयों को रखकर जिस प्रकार उन्होंने स्वच्छन्दतावादी भावना की प्रेरणा का सूत्रपात किया था, उसी प्रकार काव्य की भाषा के रूप मे लोकभाषा खडी बोली को स्थान देकर उन्होंने भाषा के क्षेत्र मे भी स्वच्छन्द भावना को एक नवीन प्रेरणा दी।

भारतेन्दु जी ने प्राचीन और नवीन विषयो को भी अधिकाशत व्रजभाषा मे ही लिखने का प्रयास किया, तथापि उस समय तक खडी बोली मे जो छन्द प्रचलित थे उन्हे उन्होने अपनाया और खडी बोली का सफल आदर्श प्रस्तुत किया।

भारतेन्दु जी ने उर्दू के छद-गजलो को अपनाया था, जिसमे उर्दू शब्दो का बाहुल्य था। भारतेन्दु ने उर्दू कविता के लिए अपना 'रसा' नाम रख छोडा था।

उसको शाहनशाही हर बार मुबारक होवे।
कैसरे हिन्द का दरबार मुबारक होवे॥
बाद मुद्दत के हैं देहली के फिरे दिन या रब।
तख्त ताऊस तिलाकार मुबारक होवे॥
बागबा फूलों से आबाद रहे सहने चमन।
बुलबुलों गुलशन बे खार मुबारक होवे॥
एक इस्तूद में हैं शेखो बिरहमन दोनों।
सिजद. इनको उन्हें जुन्नार मुबारक होवे॥[2]

इस शैली मे निस्सदेह अरबी-फ़ारसी के शब्दो का प्राधान्य मिलता है; किन्तु आगे चलकर हिन्दी शब्दो के समावेश से खडी बोली का रूप प्रमाणित होने लगता है।

जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है।
उसी का सब है जलवा जो जहाँ मे आशकारा है॥

---

१. राधाकृष्ण ग्रथावली, 'भाषा कविता की भाषा', पृष्ठ १३१ (इं० प्रे०)।
२. भारतेन्दु ग्रंथावली भाग २, 'गजल मादये तारीख', पृष्ठ ७४७।

भला मखलूक खालिक़ की सिफत समझे कहाँ कुदरत।
इसी से नेति नेति ऐ यार वेदों ने पुकारा है॥
न कुछ चारा चला लाचार चारो हारकर बैठे।
बिचारे वेद ने प्यारे बहुत तुमको विचारा है॥[1]

काव्य मे अभी तक अमीर खुसरो की मुकरिया बडी ही प्रसिद्ध थी। अरबी, फारसी तथा खडी बोली के शब्दों के समन्वय से निर्मित यह बडी ही सजीव थीं, किन्तु विषय बदलने एव नवीन परिस्थितियो के घटित होने से भारतेन्दु जी ने "नए ज़माने की मुकरी' भी लिखी। इन मुकरियों मे खडी बोली के प्रयोगो का आधिक्य है।

सब गुरुजन को बुरो बतावै।
अपनी खिचडी अलग पकावै॥
भीतर तत्व न झूठी तेजी।
क्यो सखि, सज्जन? नहिं अगरेजी॥

सीटी देकर पास बुलावै।
रुपया ले तो निकट बिठावै॥
ले भागे मोहि खेलहि खेल।
क्यों सखि सज्जन? नहिं सखि रेल॥

मुँह जब लागै तब नहिं छूटै।
जाति मान धन सब कुछ लूटै॥
पागल करि मोहि करै खराब।
क्यों सखि सज्जन? नहीं सराब॥[2]

कबीर द्वारा प्रचलित 'रेखता' की परिपाटी पर भारतेन्दु जी ने भी लिखा है। इन पक्तियो मे खडी बोली के शब्दो का ही प्रयोग किया गया है।

मोहन पिय प्यारे टुक मेरे ढिग आव।
वारी गई सूरत के वदन तो दिखाव॥
तरस गये अंग-अंग गर में लपटाव।
तेरी मैं चेरी मुझे मरत सों जिलाव॥

---

१ भारतेन्दु ग्रथावली, भाग २, 'स्फुट कविताए', पृष्ठ ८५१ (ना० प्र० स०)।
२. „ 'नये जमाने की मुकरी', पृष्ठ ८१०-११।

वही रूप वही अदा दीने निज घाव।
प्यारे 'हरिचन्दहि' फिर आज भी दरसाव ॥[१]

◇ ◇ ◇

बचे रहो जरा यह बनाम फाग है।
आँखों की भी हमसे तुमसे लाग है॥
इस ब्रज का तो सभी चवाई लोग है।
आँख लगाना यहाँ वडा एक रोग है॥
मेरी तेरी प्रीति बहुत मशहूर है।
तिसमे भी होरी चकनाचूर है॥[२]

इस समय तक गद्य खडी बोली मे लिखा जाने लगा था जो सर्व-सम्मत था, किन्तु काव्य के क्षेत्र मे व्रजभाषा का ही एकच्छत्र साम्राज्य था। साहित्य के इन दो अगो को लेकर भाषाओ मे जो वैषम्य था यह कम अखरने वाला नही था। भारतेन्दु जी के जीवन काल से ही यह विषमता चिन्तनीय थी। खडी बोली के समर्थन मे प्रतापनारायण मिश्र के प्रतिवादस्वरूप श्रीधर पाठक का कथन है—

"हम यह नही कहते कि नवीन हिन्दी की कविता व्रजभाषा की कविता से मधुर होती है। हमारा तो केवल इतना ही मन्तव्य है कि नवीन हिन्दी मे जैसे गद्य है वैसे पद्य भी होना चाहिये। यह कभी भूल से मत बोलना कि खडी हिन्दी कविता के उपयुक्त नही है। गद्य और पद्य की भिन्न भाषा होना हमारे लिये उतना अहकार का विषय नही है जितना लज्जा और उपहास का है कि जिस भाषा मे हम गद्य लिखते है उसमे पद्य नही लिख सकते।"[३]

अब तक खडी बोली की व्यावहारिकता पर कविजनो को विश्वास हो चला था। स्वय भारतेन्दु जी की गोष्ठी के प्रमुख कवि प्रेमघन ने खडी बोली मे काव्य का निम्न आदर्श प्रस्तुत किया—

हुआ प्रबुद्ध वृद्ध भारत निज आरत दशा निशा का।
समझ अत अतिशय प्रमुदित हो तनिक तब उसने ताका॥

---

१. 'भारतेन्दु ग्रंथावली' भाग २, प्रेम तरंग, पृ० २०८ (ना० प्र० स०)।
२. " " होली, पृ० ३७९ "
३ हिन्दोस्तान, ८ मार्च, १८८८ ई०।

अरुणोदय एकता दिवाकर प्राची दिशा दिखाती।
देखो नव उत्साह परम पावन प्रकाश फैलाती॥[1]

खड़ी बोली के प्रति कवि-समाज आश्वस्त हो उठा था। क्रमश' ब्रजभाषा जो शास्त्रीय भाषा थी, के स्थान पर खड़ी बोली का सम्मान बढने लगा। श्रीधर पाठक ने खड़ी बोली को प्रशस्त करने के लिये उसमें 'एकान्तवासी योगी' की सफल अनूदित रचना १८८६ ई० मे प्रस्तुत की। यह रचना खड़ी बोली के काव्य के विकास मे महत्वपूर्ण पद-चिह्न थी।

प्राण पियारे की गुन-गाथा, साधु कहाँ तक मैं गाऊँ।
गाते-गाते चुके नहीं वह चाहे मैं ही चुक जाऊँ॥
विश्व निकाई विधि ने उसमे की एकत्र बटोर।
बलिहारौं त्रिभुवन धन उस पर वारौं काम करोर॥[2]

इस प्रकार खड़ी बोली क्रमश समाज मे सम्मानित हो उठी। भारतेन्दु के उपरान्त श्रीधर पाठक जी के सहयोग से अयोध्याप्रसाद खत्री ने १८८८ ई० मे खड़ी बोली का आन्दोलन प्रारम्भ किया। उन्होने घूम-घूमकर खड़ी बोली के गान गाये। लोगो के समक्ष खड़ी बोली के अंशो को रखकर उसे व्यावहारिक रूप देने के लिए बाध्य किया।

उपर्युक्त प्रगति खड़ी बोली के पक्ष मे बड़ी ही आशाजनक थी। इस समय से पद्य के क्षेत्र मे भी इसका व्यवहार एव उपयोग बढा और लोग इसी समय से उसे राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन देखने के स्वप्न देखने लगे।

खड़ी बोली लोक-भाषा के रूप मे अपना अस्तित्व सुरक्षित किये थी। वस्तुत. ब्रजभाषा के स्थान पर उसके प्रत्यावर्तन ने काव्य का स्वाभाविक स्वरूप ही प्रस्तुत किया। लोकभाषा की सफलता एव बोधगम्यता सर्वसुलभ होती है। इससे काव्य लोक-भाषा मे विभूषित होकर अपने को गौरवान्वित करने मे कृतकृत्य हुआ और स्वच्छन्दतावादी भावना के संरक्षण के लिये लोक-भाषा का माध्यम प्राप्त कर फूला न समाया।

इ—स्वच्छन्दवादिता के प्रेरक तत्व

३. छन्दों के क्षेत्र में

भारतेन्दु-युग 'रीतिकाल' और 'आधुनिक काल' के मध्य की एक कड़ी है।

---

१. 'प्रेमघन-सर्वस्व', आनन्द अरुणोदय, पृ० ३७३ (साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)।
२. श्रीधर पाठक—'एकान्तवासी योगी'।

काव्य मे प्रयुक्त विषय, भाषा और छन्द के सम्बन्ध मे कवियो का परम्परा-पालन मे केवल प्राचीन के प्रति ही अनुराग नही रहा। उन्होने उनके नवीन स्वरूपो की भी प्रतिष्ठा की थी। विषय और भाषा के क्षेत्र मे जो नवीनताए समाविष्ट हो चुकी थी उनका विवेचन पिछले पृष्ठो मे हो चुका है। अब देखना है—परम्परागत छन्दो मे—क्या प्रगति रही है और इस सम्बन्ध मे भारतेन्दु-युगीन कवियो ने स्वच्छन्दवादिता के विकास मे कहाँ तक प्रेरणा दी है।

भारतेन्दु एव उनकी गोष्ठी के कवि अपनी पृष्ठभूमि मे भक्ति एव रीतिकाल को छोड चुके थे। फलत विषयो के साथ-साथ छन्दो की निधि उनके समक्ष प्रस्तुत थी, जिसका उन्होने अनुकरण किया। कवित्त, सवैया, दोहा, चौपाई, सोरठा, चौपई, मालिनी, द्रुतविलम्बित आदि छन्द परम्परागत परिपाटी के अनुसार इन लोगो ने ग्रहण किये। फलत इस युग का काव्य-निर्माण इन्हीं छन्दो के अन्तर्गत हुआ है। नवीन विषयो के वर्णन के लिए रोला एव छप्पय छद तथा समस्या-पूर्तियो के लिए घनाक्षरी एव सवैया छन्दो को विशेष मान प्राप्त हुआ है। शास्त्रीय-साहित्य के अतिरिक्त इस युग मे जन-साहित्य का भी सृजन हुआ है, जिसमे लोक-प्रचलित छन्द अपनाये गये हैं। खडी बोली, उर्दू एव उर्दू-मिश्रित हिन्दी-काव्य के लिए लावनी, गजल एव रेखता आदि छन्दो के सफल प्रयोग हुए हैं। कजली एव कबीर छन्दो के प्रयोग ने तो कवि को लोक-भूमि पर ही आसीन कर दिया।

इस युग के राधाकृष्ण-विषयक जो भी पद लिखे गये सब भक्तिकालीन 'पद शैली' पर आधारित हैं।

सवैयो मे दुर्मिल, किरीट, अरसात एवं मत्तगयद सवैये तथा दोहा, चौपाई, झूलना आदि सभी छन्द-शास्त्र की प्राचीन परिपाटी पर ही अपनाये गये हैं। छन्दो के सम्बन्ध मे भारतेन्दु ने एकाध अवश्य नवीन प्रयोग किये हैं।

वर्णिक छन्दो मे भारतेन्दु ने बगला के 'पयार' छन्द का प्रयोग किया है। इसका निर्माण आठ और छः वर्णों के सहयोग से होता है।

मन्द-मन्द आवै देखो प्रात समीरन।
फरत सुगन्ध चारो ओर विकीरन॥
गात सिहरात तन लगत सीतल।
रैन निद्रालस जन-सुखद चचल॥[1]

१. 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' भाग २, 'प्रात समीरन', पृष्ठ ६८६ (ना० प्र० स०)।

'अय बगला गान' मे भारतेन्दु जी ने कई छन्दो का प्रयोग किया है। आठ और छ वर्णों की अर्द्धालिया जोडकर कवि ने कितने ही बगला के छन्द बनाये हैं।

शुनियाछी तव कृपा पतित गामिनी। (८+६ वर्ण)
पाइये कोथाये तबे पतित अमार तुल्य। (८+८ वर्ण)
पाप मात्र कर्मजार दिवस यामिनी। (८+६ वर्ण)
सर्वस्व स्वरूप जार मिथ्याचार व्यवहार। (८+८ वर्ण)
हिंसा छल द्यूत मद्य मास ओ कामिनी।[1] (८+६ वर्ण)

इसी प्रकार आठ और छ वर्णों की टेक देकर प्रत्येक चरण मे १६ (८+८) वर्ण रखकर नया छन्द बनाया गया है।

ओहे श्याम आछे कि आर आमाय मने।
सुन हे श्याम त्रिभग दिया ए प्रनय भग।
सेथाय कुबजा सग भूले ए दुखिनी जने।
सुन हरि प्रानघन आमार ए निवेदन।
बार कि ओहे दर्शन दिबे नाए बृन्दाबने।[2]

किसी-किसी छन्द मे ६। ५। ११ वर्णों की टेक देकर ६-६ वर्णों की चार अर्द्धालियो को मयुक्त कर चौबीस वर्णों के चरण रचित हैं —

अमार नाथ बड दयामय।
करुना-आकर दयार सागर दयामय नाम जगत भीतर।
एक मुखे गुन वर्णना जे आर कहि छे चन्द्रिका-भाविया हृदये।[3]

उपर्युक्त प्रकार मे हिन्दी मे बगला का पयार-छन्द प्रयुक्त हुआ है और बगला-भाषा मे पयार छन्द को लेकर पदो के चरणो का निर्माण हुआ है। भारतेन्दु इम प्रकार के प्रयास मे अप्रतिम रहे हैं। हिन्दी-काव्य मे इस सम्बन्ध मे उनका अनुकरण नही किया गया है।

इसी प्रकार से अन्य अनुकरणीय प्रयोग भारतेन्दु जी ने सस्कृत-भाषा मे भी किये हैं। सस्कृत को उन्होने छन्द और लोक-छन्द (लावनी) मे प्रयोग किया है। कही-कही अभिनव जयदेव की छन्द-शैली को भी उन्होने ग्रहण किया है।

---

१. भारतेन्दु ग्रथावली, भाग २—'अथ बगला गान', पृष्ठ २१८ (ना० प्र० स०
२ ,, ,, ,, ,, २१९ ,,
३ ,, ,, ,, ,, २१२ ,,

दोहा-शैली पर—

तद्वन्दे कनकप्रभं किमपि जानकीधाम।
मत प्रसादतस्सार्थतामेति राम इति नाम ॥[1]

लावनी छन्द मे—

कुंज कुंज सखि सत्वर।
चल-चल दयितः प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदर ॥
सर्वा अपि सगता।
नो दृष्ट्वा त्वां तासु प्रिय सखि हरिणाऽहं प्रेषिता ॥
मानं त्यज वल्लभे।
नास्ति श्री हरिसदृशो दयितो वच्मि इद ते शुभे ॥[2]

अभिनव जयदेव की सस्कृत-वृत्त-शैली पर—

हरिरिह विलसति सखि ऋतुराजे।
मदन महोत्सव वेषविभूषित वल्लभरमणि समाजे ॥[3]

उपर्युक्त पद्धति पर ही भारतेन्दु जी ने सस्कृत मे कजली भी लिखी है।

हरि हरि हरिरिह विहरति कुंजे मन्मथ मोहन वनमाली।
श्री राधाय समेतो शिखिशेखर शोभाशाली ॥
गोपीजन-विधुवदन-वनज-वन मोहन मत्तालो।
गायति निज दासे 'हरिचन्दे' गल-जालक माया-जाली ॥[4]

उपर्युक्त छन्दो के प्रयोग मे भारतेन्दु जी अप्रतिम ही रहे हैं। इन सभी विशेष प्रयोगो मे भारतेन्दु की विद्वत्ता एव अध्ययन-शीलता ही स्पष्ट व्यक्त होती है।

इस युग मे प्रमुख कवियो द्वारा लोक-गीतों मे भी रचनाएँ की गई हैं। ग़ज़ल, लावनी एव कजली आदि इस समय के बडे ही लोकप्रिय छन्द थे। लावनियाँ भारतेन्दु जी, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी एव बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' आदि के द्वारा लिखी गई हैं। कजली जैसे लोकप्रिय छन्द में भारतेन्दु के अतिरिक्त अन्य कवियो ने भी इस सम्बन्ध मे विशेष सफलता प्राप्त की।

---

१. भारतेन्दु ग्रथावली—श्री सीतावल्लभ स्तोत्र, पृष्ठ ७६६ (ना० प्र० स०)
२ भारतेन्दु ग्रंथावली—सस्कृत लावनी, पृष्ठ ६६६ ,,
३. भारतेन्दु ग्रथावली—संस्कृत राग वसन्त, पृष्ठ ४३० ,,
४. भारतेन्दु ग्रंथावली—वर्षा-विनोद, पृष्ठ ४९२ ,,

खडी वोली के प्रगति-काल मे कवि-वर्ग का ध्यान उर्दू भाषा की ओर भी गया था। उन्होने केवल भाषा से ही काव्य को विभूषित नही किया, किन्तु उसके छन्दो को भी अपनाया। इन छन्दो में से ग़ज़ल को ही प्रमुखता प्राप्त हुई। उर्दू का काव्य रचने मे भारतेन्दु को बडी सफलता मिली थी।

कलक की ग़ज़ल 'बाद अज फना तो रहने दे इस खाकसार को' पर भारतेन्दुजी ने चार शेर कहे हैं:—

अल्ला रे लुत्फे जवह की कहता हूँ बार-बार।
कातिल गले से खींच न खजर की धार को॥
तड़पा न करदे जवह मुझे बानिए-जफ़ा।
कुरबाँ गले प फेर दे खजर की धार को॥
दे दो जवाव साफ कि किस्सा तमाम हो।
दौडाते किस लिये हो इस उम्मीदवार को॥
होगी कशिश वहाँ से पस अज़ मर्ग जो 'रसा'।
पायगी गर हवा मेरे मुश्ते-गुबार को॥[1]

◇ ◇ ◇

कूचये दिलदार से वादे सवा आने लगी।
जुल्फ मुश्की रुख प बल खा खा के लहराने लगी॥टेक॥
देखकर दर पर खडा मुझ नातवाँ को वो परी।
खींचकर तेगे अदा बेतहं झु झलाने लगी॥
जुल्फ मुश्की मार की वढ-बढ के अब तो पैर तक।
नातवाँ नाकाम उशाको को उलझाने लगी॥[2]

* * *

विषादी बढ़े हैं यहाँ कैसे-कैसे।
कलाम आते हैं दरमियाँ कैसे-कैसे॥
जहाँ देखिए म्लेच्छ सेना के हाथों।
मिटे नामियों के निशाँ कैसे-कैसे।

१ 'भारतेन्दु ग्रथावली' भाग २—स्फुट कविताएँ, पृष्ठ ८५८-५९ (ना० प्र० स०)।
२. 'प्रेमघन सर्वस्व'—उर्दू विन्दु, पृष्ठ ४६५ (हि० सा० सम्मेलन)।

वने पढ के गौरण्ड-भाषा द्विजाती।
मुरीदाने पीरे मुगां फँसे-फँसे ॥[1]

हिन्दी-काव्य के साथ कवियो के द्वारा उर्दू को भी प्रोत्साहन मिल रहा था। भारतेन्दु की उर्दू की पक्तियाँ उर्दू के वडे-वडे कवियो के लिए भी अनुकरण का विषय रही। भाषा एव साहित्य के दृष्टिकोण ने इस प्रकार के काव्य से हिन्दी को कोई विशेष लाभ भले ही न हुआ हो, किन्तु यह सत्य है कि उर्दू भाषा में जो चुलबुलापन और प्रवाह है उसको सीखने की आवश्यकता थी। वस्तुत खडी बोली के प्रचार मे इस प्रकार के उर्दू-काव्य रचने की भावना पृष्ठभूमि मे आती है, जिससे खडी बोली का काव्य अपने अस्तित्व को स्थिर करने मे सफल हो सका।

भारतेन्दु-युग मे लावनी छन्द का भी प्रचार होता है। आचार्य शुक्ल जी के अनुसार मिर्जापुर-निवासी तुकनगिरि गोसाई ने सधुक्कडी भाषा मे ज्ञानोपदेश देने के लिए लावनी की लय चलाई। धीरे-धीरे इसका काव्य-क्षेत्र मे भी प्रवेश हुआ और इस छन्द मे सभी ही प्रमुख कवियो ने कविताएँ की। इस छन्द मे खडी बोली का ही प्रयोग होता था। कही-कही खडी बोली और उर्दू-मिश्रित भाषा का भी प्रयोग हुआ है।

विना उसके जल्वा के दिखाती कोई परी या हूर नहीं।
सिवा यार के, दूसरे का इस दुनियाँ मे नूर नहीं॥
जहाँ मे देखो जिसे खूबरू वहाँ हुस्न उसका समझो।
झलक उसी की सभी माशूकों मे यारो मानो।[2]

* * *

तुकनगिरि गोसाईं का उद्देश्य लावनी के द्वारा निर्गुण एव सगुण दोनो भक्ति-पद्धतियो को प्रोत्साहन देना था। इन पक्तियो के द्वारा 'यार' अथवा श्याम के सर्वव्यापकत्व का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

प्रेमघन जी अपने प्रियतम की रूप-माधुरी पर मोहित हैं—

क्या कहूँ चाँद से मुखडे की छवि तेरे।
पाता हूँ नहीं मिसाल जगत मे हेरे।
गुल दोपहरी लखि मधुर अधर मुरझेरे।
दाने अनार दाँतो को रे।

---

१ प्रतापनारायण मिश्र—'कविता कौमुदी', भाग २, पृष्ठ ६०।
२. 'भारतेन्दु ग्रथावली'—प्रेम-तरग, पृष्ठ १६४ (ना० प्र० स०)।

खुश रग अग द्युति दामिन देखि लजानी ।
मन मेरा मस्त हो दिलजानी ॥[1]

भारतेन्दु जी के निधन के उपरान्त इसी लावनी छन्द मे श्रीधर पाठक जी ने १८८६ ई० मे गोल्डस्मिथ के The Hermit का 'एकान्तवासी योगी' के नाम से अनुवाद किया था ।

आधुनिक काव्य-धारा के द्वितीय उत्थान मे 'एकान्तवासी योगी' अपनी सार्वभौम मार्मिक कथा के कारण स्वच्छन्दतावादी धारा मे प्रमुख स्थान रखता है । केवल कथा के कारण ही इस काव्य को इतनी मान्यता नही प्राप्त हुई, किन्तु इसका श्रेय लोकप्रिय लावनी की लय पर भी आधारित है ।

लावनी के समान ही कजली मे भी काफी साहित्य रचा गया है । इस राग के निर्माण और प्रचार का क्षेत्र वस्तुत मिर्जापुर ही रहा है। इस के द्वारा कान्तित प्रदेश के गहरवार राजा दादूराय एव उनकी पत्नी नागमती की कीर्ति अक्षुण्ण रही है । इस राग के नामकरण का कारण उक्त गहरवार वश के राजा का कजलीवन और पुराण-वर्णित कज्जली तीज है । यह कजलियाँ श्रावण मास मे विशेष रूप से गाई जाती हैं । इसमे भी लावनी के समान ही लौकिक-अलौकिक सयोग और वियोग के चित्रण प्रस्तुत किये जाते रहे हैं ।

अगगग अगगग अगगग घन गरजै ।
सुनि-सुनि मोरा जिय लरजै ॥
जुगनू चमकै बादल रमकै ।
बिजुरी दमकै झमकै तरजै ॥
ऐसो समय चले परदेसवाँ ।
पिय नहिं मानत मोरी अरजै ॥
ऐसन नहि कोइ पटुका गहिकै ।
पिय 'हरिचन्दहि' जो बरजै ॥[2]

प्रेमघन जी का निवास-स्थान मिर्जापुर मे था । इससे उनकी कजलियो की सफलता विशेष स्तुत्य है । उनके द्वारा कजली के मूल एव उसके विकृत रूप के

---

१ प्रेमघन सर्वस्व, लावनी—पृष्ठ ४७६ (हि० सा० सम्मेलन, प्रयाग)

२ 'भारतेन्दु ग्रंथावली'—वर्षा विनोद, पृष्ठ ४८७, (ना० प्र० स०) ।

कजली को सामाजिक सुधार के लिए भी प्रयुक्त किया गया है। अनमेल-विवाह के सम्बन्ध मे प्रेमघन जी का कथन है—

नैहर में देवै बिताय वरु विरथा वैस जवानी रामा।
हरि, हरि का करबै लै ई छोटा साजनवाँ रे हरो ॥[1]

* * *

चेतो हे हे बामन भाई, सुधि बुधि काहे रहे गँवाय।
तुमरेई पुरखे मनु, पाणिनि, भृगु, कणाद, मुनि राय।
व्यास, पतजलि, याज्ञवल्क्य, गुरु गये शास्त्र जे गाय॥

* * *

बूडत देस तुमारेहि आलस अधरम्म तापन ताय।
विप्र वस मिलि सबै प्रेमघन सोचहु बेगि उपाय॥[2]

प्रेमघन जी कजली के इस प्रकार के प्रयोग मे पूर्ण मौलिक थे। उनकी कजलियो मे लौकिक प्रेम और माधुर्य का अपूर्व समावेश है। पक्तियो मे वियोग के सबध मे नायिकाओ मे नारी-सुलभ आकुलता एव भावुकता है। उनकी सरस एव ललित भावनाएँ हृदय से छलकी पडती हैं।

साधारण लोगो के गान के लिए होली के उपलक्ष मे प्रेमघन जी ने 'कबीर' भी लिखे हैं —

कबीर भर र र र र र र हाँ,
विजय काग्रेस की भई अटी-अटी खाय,
पकड़ि गई पडि-पड़ि वह सुसकत मुंह बाय,
भला सब देस के बैरी रोवत हैं।[3]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भक्ति एव शृगार-विषयक काव्य अब भी पूर्णरूपेण शास्त्रीय पद्धति पर परम्परागत छन्दो मे ही रचा जा रहा था, किंतु परिस्थितिवश कवियो को काव्य के लिए नवीन विषय चुनने के लिए बाध्य होना पडा। फलत नवीन विषयो के साथ नवीन छन्दो के विधान पर भी ध्यान जाना स्वाभाविक हो गया। भारतेन्दु युग के कवियों मे जहाँ तक नवीन विषयो

---

१ 'प्रेमघन सर्वस्व', पृष्ठ ५४६, (हि० सा० सम्मेलन, प्रयाग)।
२. „ पृष्ठ ५५०-५१ „ „
३. 'प्रेमघन सर्वस्व', कजली, पृष्ठ ६२६ „ „

के चित्रण का सम्बन्ध है वे अकृत्रिम हैं और अपनी अभिव्यञ्जना मे भी आडम्बर-विहीन हैं। उनके द्वारा लौकिक-प्रेम के गीत विशेष मादकता से गाए गए हैं, जिनमे तज्जनित भावनाओ का सगुम्फन जीवन की सरल स्वच्छन्दवादिता का अनुभव कराए विना नही रहता। इस प्रकार के गान अथवा चित्रणो का समाज पर सीधा प्रभाव पडा। इस प्रकार विषय के माध्यम का प्रश्न लौकिक जन-गीतो के द्वारा पूर्ण कर लिया गया। फलत उपर्युक्त छन्द-विषयक प्रवृत्तियो मे स्वच्छन्दतावादी भावना व्यक्त होती है।

अध्याय ४

भारतेन्दु-युग में स्वच्छन्दतावादी काव्य और ठाकुर जगमोहनसिंह

भारतेन्दु-युग जीवन की नवीन परिस्थितियो एव नव चेतना को लेकर आया। उससे पूर्व के काव्य मे मध्ययुग (रीतिकाल) की सामन्तीय भावना का प्रचार और कृत्रिम भावात्मक आदर्श का बाहुल्य था। यथार्थ जीवन का भाव एव विचारो की सत्यता तिरोहित थी, किन्तु भारतीय विद्रोह (१८५७) एव अग्रेजो के आतक ने भारतीयो को जीवन मे यथार्थ निरीक्षण का बल दिया। इस समय के काव्य मे रूढिवादिता का विरोध, प्राचीन भारतीय सस्कृति एव राष्ट्रीयता के प्रति आकर्षण तथा सामाजिक विकारो का उल्लेख आदि साहित्य के विषय थे। इन प्रवृत्तियो मे ही हिन्दी का गद्य और पद्य साहित्य सृजित हो रहा था। इस प्रकार की नूतन प्रेरणाओं का सन्निवेश होने पर भी काव्य-कला के सम्बन्ध मे कविवर्ग मध्ययुगीन ही था तथापि नव-युग की अरुणिमा भावुको को सुखप्रद थी और वे सतोष का अनुभव कर रहे थे।

परम्परागत एव नूतन प्रगतियो को लेकर कवि-वर्ग मे उस समय दो विभाजन थे। एक वर्ग पूर्ण परम्परावादी और प्राचीनतावादी तथा द्वितीय वर्ग परम्परावादी और नूतनतावादी था। प्रथम वर्ग मे रूढिवादिता का आग्रह था और द्वितीय वर्ग रूढ़िवादिता के साथ नवीन परिस्थिति-विषयक भावनाओ का सन्निवेश करता था। यदि प्रथम वर्ग भक्ति एव शृगारिक आदि विषयो का और पद, कवित्त एव सवैया आदि छन्दों का आधार लेकर चलता था तो द्वितीय इनके अतिरिक्त देश की निर्धनता, अकाल, महँगी, कलह, आलस्य, कायरता, टैक्स, अनैक्य, पुलिस के अत्याचार, फैशन, घूँस, नैतिक पतन एव विविध कुप्रथाओ

आदि का भी वर्णन करता था। छन्दों में भी उन्होंने लावनी, ख्याल, होली, कजली, रेखता एव अन्य लोक-प्रचलित छन्दो को अपनाया। व्रजभाषा के स्थान पर लोक-प्रचलित खडी बोली को भी उन्होने काव्य में प्रयोग किया। उपर्युक्त प्रवृत्तियो के सम्बन्ध मे पर्याप्त उदाहरण इस अध्याय के विगत पृष्ठो मे मिलेंगे। इससे इस स्थल पर उनकी सूचनामात्र ही दी जा रही है।

प्रमुखरूपेण इस स्थल पर युग की स्वच्छन्दतावादी भावना के सम्बन्ध में यह विचार करना है कि यह किस मात्रा तक इस युग मे सुरक्षित है। यो प्राचीन-परम्परावादी कवियो, (स्वय भारतेन्दु जी एव उनकी गोष्ठी) मे यह प्रवृत्ति उतनी उभरी हुई नही है, जितनी अकेले प० श्रीधर पाठक के काव्य मे है। कहना यो चाहिये मानो भारतेन्दु-युग ने स्वच्छन्दतावादी काव्य के युग-प्रतिनिधि के रूप मे पाठक जी को प्रस्तुत कर दिया। उपर्युक्त विभूतियो मे स्वच्छन्दता का अश न होते हुए भी उनकी काव्य-प्रवृत्तियो ने पाठक जी की स्वच्छन्दतावादी भावना के लिये क्षेत्र अवश्य तैयार कर दिया। ये काव्य-प्रवृत्तियाँ स्वच्छन्दतावादी काव्य-क्षेत्र के लिये उर्वर थी। इस उद्देश्य को लेकर भी विगत पृष्ठो मे विवेचन किया जा चुका है।

स्वच्छन्दतावादी हिन्दी-काव्य के अन्तर्गत प० श्रीधर पाठक, उनका जीवन एवं उनकी कृतियो का अनुशीलन आदि मेरे आलोच्य विपय हैं। इससे प० श्रीधर पाठक के काव्य को भी इस स्थल पर छोड दिया गया है। इनके सम्बन्ध मे विशद विवेचन अगले पृष्ठो मे मिलेगा। पाठक जी जैसे स्वच्छन्दतावादी कवि को जन्म देकर वस्तुत. भारतेन्दु-युग ने हिन्दी-काव्य को चिर आभारी किया है। अब देखना यह है कि स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ किस अंश तक भारतेन्दु-युग के अवशिष्ट काव्य मे उपलब्ध होती हैं।

भारतेन्दु जी के समय तक प्राचीन परिपाटी पर कविता करने वाले कवियो मे सेवक, रीवाँ-नरेश रघुराजसिंह, ललित किशोरी, राजा लक्ष्मणसिंह एव लछिराम (ब्रह्म भट्ट) प्रमुख थे। इन कवियो मे सभी रूढिवादी एव प्राचीनतावादी रहे हैं। अकेले राजा लक्ष्मणसिंह ने परम्पराओ को तोडने का प्रयास किया है। यद्यपि भाषा एव छन्द-योजना के सम्बन्ध मे वह अपरिवर्तनवादी हैं। फिर भी उनमे विषय-परिवर्तन की अभिरुचि है। भारतेन्दु-युग मे केवल उन्ही को यह श्रेय है कि उन्होंने परम्परागत विषयो के बाहर देखने की चेष्टा की। उस युग मे उनके

द्वारा कालिदास विरचित 'अभिज्ञान शाकुन्तल' (१८६१ ई०) एव 'मेघदूत' (२४ जून, १८८२ ई०) के सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत किये गये। अनूदित 'शकुन्तला' के प्रथम सस्करण मे काव्याश नही थे, किन्तु १८८६ ई० के द्वितीय सस्करण मे यह सभी सन्निविष्ट कर दिये गये थे। इन दोनो अनुवादो ने हिन्दी-काव्य को नवीन दिशा प्रदान की।

यो युग मे प्रचलित एव वर्णित शृगारात्मक प्रेम ने राजा लक्ष्मणसिंह को, सम्भव है, इन रचनाओ का अनुवाद प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी हो तथापि कालिदास की इन कृतियों मे जो प्रेम का स्वरूप है वह पूर्ण मानवीय है अमानवीय नही। उनमे कृत्रिमता लेशमात्र नही है।

चक्रवर्ती अधिपति दुष्यन्त एव कण्व ऋषि के सरक्षण मे पोषिता शकुन्तला दोनो ही समाज के शिष्ट एव सम्मानित वर्ग से थे। मानवीय प्रेम ने उन्हे चचल कर दिया। इस प्रकार कालिदास की 'शकुन्तला' विश्व के अमर प्रेम का सदेश प्रदान करती है। 'मेघदूत' मे भी यक्ष ने अपनी पत्नी के प्रति अगाध प्रेम और उत्कठा प्रकट की है, जिससे वह अपने स्वामी कुबेर की सेवा मे त्रुटि कर बैठा। फलस्वरूप कुबेर के आदेश से अलकापुरी त्यागकर उसे दक्षिण मे रामगिरि पर्वत पर निवास करने के लिये बाध्य होना पडा। जब वहाँ आषाढ़ मे आकाश मे उडते हुए मेघ दिखलाई पडे तब अपनी प्रियतमा को प्रेम-सन्देश भेजने के लिए वह बाध्य हो गया।

समाज मे प्रचलित मर्यादित प्रेम के स्थान पर इन दोनो कृतियो मे जिस प्रेम का सन्निवेश है, उसमे हृदय अवश्य है। इसमे किसी प्रकार की मर्यादा एव नियन्त्रण नही है। प्रेम अपने उन्मुक्त स्वरूप मे विश्व के समक्ष प्रस्तुत होता है। यही प्रेम का स्वच्छन्दतावादी स्वरूप है, जो 'शकुन्तला' एव 'मेघदूत' मे व्यक्त हुआ है।

मण्डप है माधवीलता को रमणीक तहाँ,
सुन्दर कुरे की वारि ओर-पास छाई है।
नेरे ही अशोक लाल सोहे लोल पल्लव लै,
दूजी ओर केशर हू ठाढो सुखदाई है।
दोहद बहाने एक तेरी वा सखी को पाँव,
बायों छ्यवो को आस मेरी सी लगाई है।

प्यारी मुख आसव के लेन काज दूसरे मे,
ताही मिस मेरी भाँति लालसा समाई है ।[1]

यक्ष मेघ को अपनी प्रियतमा के निवास के सम्बन्ध मे परिचय प्रदान करता है । माधवी लता का मण्डप है और उसके चतुर्दिक कुरवक की वाडी है । इस श्लोक मे कालिदास ने अशोक एव केशर (वकुल) के सुन्दर पुष्पो का वर्णन दिया है । इनके सम्बन्ध मे जो कवि-प्रसिद्धियाँ हैं कवि ने उनका सदुपयोग किया है । अशोक सौभाग्यवती युवती के बायें पैर के स्पर्श एव वकुल युवती के मुख के कुल्ला से प्रफुल्लित हो उठता है । इन दोनो पौधो के हृदय मे यक्ष के समान ही उत्कठा एव लालसा है । यक्ष के हृदय मे जो उदात्त प्रेम है उसके आधार पर ही कवि उस सुन्दरी के अस्तित्व को प्रमाणित कर देता है ।

राजा दुष्यन्त कण्व ऋषि के आश्रम मे सद्भावना लेकर गये थे, किन्तु राज-रानियो को भी लज्जित करने वाले स्वाभाविक सौन्दर्य को देखकर उन्हें महान् कौतूहल हुआ । शकुन्तला के अप्रतिम सौन्दर्य का माधुर्य-पान करते हुए भ्रमर के भनभनाने से उसके मुख पर जो भगिमाएँ प्रस्फुटित होती हैं—कवि उनका सफल वर्णन करता है ।

दृग चौंकत कोए चलें बहुधा अंग वारहि वार लगावत तू ।
लगि कानन गूंजत मन्द कछू मनो मन की वात सुनावत तू ।
कर रोकती को अधरामृत लै रति को सुख सार उठावत तू ।
हम खोजत जातिहि पाति मरे धनि रे धनि भोर कहावत तू ।[2]

---

१. रक्ताशोकश्चल किशलय' केशरश्चात्र कान्तः
प्रत्यासन्न कुरुवकवृतेर्माधवो मण्डपस्य ॥
एक सख्यास्तव सह मया वाम पादाभिलाषी,
काक्षत्यन्यो वदनमदिरा दोहदच्छद्मनास्या. ॥
(मेघदूत–७७)

२ चलापागा दृष्टिं स्पृशसि वहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः ।
करं व्याधुन्वत्या पिवसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्वान्वेषान्मधुकर, हतास्त्वं खलु कृती ।।
—कालिदास, 'अभिज्ञान शाकुन्तल' अंक १–२१

इस प्रकार कालिदास की ये दोनो रचनाएँ ही प्रेम के स्वच्छन्दतावादी स्वरूप को काव्य मे प्रस्तुत कर देती हैं। सम्भवत इन काव्यो के अनुवादो ने प० श्रीधर पाठक को गोल्डस्मिथ के अंग्रेजी काव्य Hermit का 'एकान्तवासी योगी' (१८८५ ई०) नाम से अनुवाद करने की प्रेरणा दी हो।

भारतेन्दु एव उनकी गोष्ठी मे स्वच्छन्दतावादी भावना स्पष्ट नही है। यो भाव, भाषा एव छन्द आदि के सम्बन्ध मे उनके काव्य मे नूतनता अवश्य है, जो रूढिवादिता को विनष्ट करती है, किन्तु स्वच्छन्दवादिता की प्रवृत्तियाँ स्पष्ट नही हो सकी थी। १८७५ ई० के पूर्व और अनन्तर भारतेन्दु जी के साहित्य मे, 'प्रेम' के विषयों का वाहुल्य उपलब्ध होता है। १८७५ ई० मे भारतेन्दु जी ने राजशेखर-कृत 'कर्पूर-मजरी' का अनुवाद किया था और उसी सम्वत् मे 'प्रेम-माधुरी' काव्य की मौलिक रचना हुई थी। उससे पूर्व भारतेन्दु जी ने 'प्रेम-सरोवर' (१८७३ ई०) प्रेमाश्रुवर्षण (१८७३ ई०) एव अनन्तर 'प्रेम-तरग' (१८७७ ई०) तथा 'प्रेम-प्रलाप' (१८७७ ई०) आदि रचनाएँ प्रस्तुत की थी। प्रेम मे रूढिवादिता का ही पालन है। उसमे स्वच्छद प्रेम की अनुभूति नही है।

भारतेन्दु के काव्य मे अपने युग के किसी भी कवि से अधिक गभीरता और व्यापकता थी। स्वच्छन्दतावादी भावना के दृष्टिकोण से बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भारतेन्दु से कुछ आगे पडेंगे। प्रेमघन जी की कजलियाँ एव लावनियाँ अधिक लौकिक और ग्रामीण हैं। अवशिष्ट कवियो मे नवीन परिस्थितियो का समावेश ही मिलेगा। अन्य कोई उल्लेखनीय बात नही। केवल काव्य मे प्राकृतिक दृश्यो मे सश्लिष्ट योजना के कारण ठाकुर जगमोहनसिंह का व्यक्तित्व ही उल्लेखनीय है। स्वच्छन्दतावादी काव्य के लिए प्रकृति का इस विशेष प्रकार से निरीक्षण परमावश्यक है।

उपर्युक्त महत्ता के कारण ही ठाकुर जगमोहनसिंह का काव्य हिन्दी-साहित्य मे वडा ही महत्वपूर्ण है। उनकी इस महत्ता के सम्वन्ध मे आचार्य प० रामचद्र शुक्ल की निम्न पक्तियाँ दृष्टव्य हैं :—

"यद्यपि ठाकुर जगमोहनसिंह जी अपनी कविता को नये विषयो की ओर नही ले गये, पर प्राचीन सस्कृत-काव्यो के प्राकृतिक वर्णनो का सस्कार मन मे लिये हुये प्रेमचर्या की मधुर-स्मृति से समन्वित विन्ध्य प्रदेश के रमणीय स्थलो को जिस सच्चे अनुराग की दृष्टि से उन्होने देखा है, वह ध्यान देने योग्य है। उसके

द्वारा उन्होंने हिन्दी काव्य मे एक नूतन विधान का आभास दिया था। × × × संस्कृत के प्राचीन कवियो की प्रणाली पर हिन्दी काव्य के संस्कार का जो संकेत ठाकुर साहब ने दिया, खेद है कि उसकी ओर किसी ने ध्यान न दिया। × × × प्राकृतिक दृश्यो की ओर यह प्यार भरी सूक्ष्म दृष्टि प्राचीन संस्कृत काव्य की एक ऐसी विशेषता है जो फारसी या अरबी के काव्य-क्षेत्र मे नही पाई जाती।"

श्रीधर पाठक तो मेरे अध्ययन के विषय हैं ही, किन्तु ठाकुर साहब का व्यक्तित्व एव काव्य भी कम महत्वपूर्ण नही है। इससे मैं उनके सम्बन्ध मे भी अपना अध्ययन प्रस्तुत करके देखूँगा कि प्रेम एव प्रकृति आदि की प्रवृत्तियाँ किस मात्रा तक उनके काव्य मे विद्यमान थी।

ठाकुर जगमोहनसिंह

जीवन-वृत्त एवं व्यक्तित्व

ठाकुर जगमोहनसिंह के कवि-जीवन मे भारतेन्दु-युग के कवियो के समान ही परम्परा-पालन था, किन्तु अपनी इस प्रवृत्ति मे उनमें उतना आग्रह न था जितना अन्यो मे था। इस प्रकार अपने सहयोगियो एव सहकर्मियो के साथ रहते हुए भी उनमे नूतन भावनाओं का विशेष समावेश था।

प्रकृति एव प्रेम को लेकर उन्होने काव्य-क्षेत्र मे नवीन प्रयोग किये थे। इस सम्बन्ध मे वह अपने किसी भी समकालीन से अधिक मौलिक थे। उनके काव्य मे अधिक व्यावहारिकता और लोकरूपता विद्यमान थी। प्रकृति-काव्य मे संश्लिष्ट योजना और प्रेम-काव्य मे स्वानुभूति ने स्वच्छन्दतावादी काव्य मे उनके जीवन को महामहिम बना दिया था।

ठाकुर जगमोहनसिंह के जीवन-वृत्त एव व्यक्तित्व के अध्ययन के लिये अन्त साक्ष्य के आधार पर ठाकुर साहब की दैनन्दिनी एव उनके काव्य और वहि साक्ष्य के आधार पर उनके प्रमाणपत्र, द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रथ मे राय-बहादुर हीरालाल बी० ए० लिखित 'कविवर ठाकुर जगमोहनसिंह' तथा जबलपुर-

निवासी श्री रामेश्वरप्रसाद गुरु के समीप सोहागपुर, मध्य-प्रदेश के श्री देवीप्रसाद गुप्त का १६ जनवरी, १९५५ का पत्रादि की सामग्री प्रस्तुत की जा सकती है।

यो वहि साक्ष्य से अन्त साक्ष्य की सामग्री अधिक प्रमाणित एव विश्वस्त होती है। यदि प्रथम मे वाह्य जीवन-विषयक सामग्री की वहुलता है तो द्वितीय मे मानसिक विचारधारा से भी अवगत हुआ जा सकता है। यदि यह सामग्री उपलब्ध हो सके तो एक व्यक्तित्व के अध्ययन में इस प्रकार की सामग्री अत्यधिक मूल्यवान है। उक्त सामग्री के प्रकाश मे न आ सकने के कारण जीवन की कितनी ही घटनाएँ और विचारधाराएँ दवी ही रह जाती है।

उपर्युक्त कठिनाइयो के कारण ही ठाकुर साहव की दैनन्दिनी के वृत्त इस स्थल पर मेरे उपयोग के साधन न वन सके। इस स्थल पर यह कहना भी असगत न होगा कि भारतेन्दु एव द्विवेदी-युग की कितनी ही साहित्यिक विभूतियो के वृत्त एव कृतियाँ उपर्युक्त मनोवृत्ति के कारण दवी पडी हैं। यदि वे सभी प्रकाश मे आ सकें तो इन दोनो युगो पर पर्याप्त प्रकाश पड सकता है। फलत जो सामग्री उपलब्ध हो सकी है उसी का इस स्थल पर उपयोग किया जा सका है।

ठा० जगमोहनसिंह अपनी वशीय परम्परा के सम्बन्ध मे राठौर आमेराधिपति के वशज थे। यह वश 'लहुरे भाई' की परम्परा मे होने के कारण केवल जागीरें ही प्राप्त करने का अधिकारी हो सका। पारिवारिक सघर्प आदि के कारण इस वश का एक स्वाभिमानी व्यक्ति अपनी 'घाट-खुटेटा' नामक जागीर का ममत्व छोडकर बुन्देलखड मे पन्ना-नरेश की शरण मे आया। उसने अपने पराक्रम एव वीरत्व से पन्ना-नरेश को प्रसन्न कर लिया। उसने युद्ध-क्षेत्र मे ही वीरगति प्राप्त की। उसके पौत्र वेणीसिंह नें, जो अपने पितामह की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान और वीर था, पन्ना-नरेश को राज्याभिवृद्धि मे पूर्ण सहयोग दिया। फलस्वरूप मुडवारा (वर्तमान कटनी के समीपस्थ) मे उन्हे पन्ना-नरेश से जागीरें मिली। अतत मैहर की जागीर प्राप्त होने पर वेणीसिह का एक पुत्र दुर्जनसिंह उस जागीर की व्यवस्था करने लगा। दुर्जनसिंह के विष्णुसिंह एव प्रयागदाससिंह दो पुत्र थे। पिता के निधनोपरान्त दोनो भ्राताओ मे सघर्प प्रारम्भ हो गया। अग्रेजी सरकार ने मैहर-राज्य के दो समान विभाजन कर दिये। विष्णुसिह मैहर मे रहे और प्रयागदाससिंह अपने प्राप्त

प्रदेश के अन्तर्गत विजयराघवगढ के दुर्ग को स्थापित कर उसमे रहने लगे।[१]

ठा० प्रयागदासिंह ने १८२६ ई० मे एक नवीन वस्ती वसाकर उसमें एक दुर्ग वनवाया था। इस दुर्ग के भीतर श्री विजयराघव की स्थापना की गई थी। इसी से इष्टदेवता के नाम पर इस वस्ती का नाम विजयराघवगढ पडा। प्रयागदासिंह का यह राज्य वघेलखण्ड एव वुन्देलखण्ड की सीमाओ से स्पर्श करता था। ठाकुर साहव ने अपने पराक्रम द्वारा और अग्रेजों को सहायता प्रदान कर अपने राज्य की अभिवृद्धि की थी। ठाकुर साहव उन्नीस वर्ष वडी योग्यता से राज्य कर १८४६ ई० मे मृत्यु को प्राप्त हुए। मृत्यु के समय उनके पुत्र सरयूप्रसादसिंह केवल ५ वर्ष के थे। अल्पवयस्कता के कारण यह राज्य कोर्ट आव वार्ड्स के शासन मे चला गया। १८५७ ई० के ग़दर मे वहाँ नियुक्त सरकारी मैनेजर उपद्रवियो द्वारा मार डाला गया, जिससे यह राज्य अग्रेजी राज्य मे मिला लिया गया। सरयूप्रसादसिंह को कालेपानी का दण्ड हुआ। उन्होंने स्वय आत्महत्या कर ली।

इन्ही सरयूप्रसादसिंह के पुत्र ठा० जगमोहनसिंह थे। इनका जन्म श्रावण सुदी चतुर्दशी सम्वत् १९१४ वि० को विजयराघवगढ मे हुआ था। नौ वर्ष की अवस्था मे सरकार की ओर से उन्हे पढने के लिये Wards Institute Queen's College, Benares भेजा गया। उन्होने वहा वडी तत्परता और अध्यवसाय से अध्ययन कर हिन्दी, सस्कृत एव अग्रेजी मे योग्यता प्राप्त की। इस सम्बन्ध मे उनके निम्न प्रमाण-पत्र वडे ही महत्वपूर्ण हैं। ये प्रमाण-पत्र ठा० जगमोहनसिंह के पुत्र ठा० व्रजमोहनसिंह के पास सुरक्षित है।

Wards' Institution
Benares

Certified that Thakur Jagmohan Singh joined the Wards' Institution, Benares on the 19th of March, 1866 He is now the most advanced ward in the Institution and reads in the First class, Anglo-Sanskrit Department of the Benares College. He has acquired a very fair knowledge of English, Sanskrit and Hindi He can compose Sanskrit and Hindi

---

१ 'द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रथ', रायवहादुर हीरालाल वी० ए०।

verses with facility and correctness His conduct, to the best of my behalf, is an exceptionable

Sd Kedarnath Paladhi
Superintendent
Counter signed
Sd Archibald E Gough
Offg Principal of the Benares College

The llth of December, 1876

राजकुमार विद्यालय,
वनारस ।

प्रमाणित किया जाता है कि ठाकुर जगमोहनसिंह १६ मार्च १८६६ ई० को राजकुमार विद्यालय मे प्रविष्ट हुए थे। अब वह विद्यालय मे अवस्था प्राप्त राजकुमार हैं और वनारस कालेज के अग्रेजी-सस्कृत विभाग की प्रथम श्रेणी मे अध्ययन करते हैं। उन्होने अग्रेजी, सस्कृत और हिन्दी मे सुन्दर योग्यता प्राप्त कर ली है। वह सस्कृत और हिन्दी की कविताए वडी ही सरलता और विशुद्धता से रच सकते हैं। मेरे विश्वासानुसार उनका आचरण अनुकरणीय है।

ह० प्र० केदारनाथ पालधि
अधीक्षक
ह० प्र० आरची वाल्ड ई० गफ
स्थानापन्न प्रधानाचार्य,
वनारस कालेज, वनारस।

राजकुमार विद्यालय
वनारस
११ दिसम्बर, १८७६ ई०

वनारस कालेज के सस्कृत-विभाग ने भी ठाकुर साहव को उनके सस्कृत अध्ययन एव योग्यता आदि के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रमाणपत्र दिया था—

"मध्यदेशस्य जव्वलपुर मण्डलान्तर्गत विजयराघवगढाधिपति श्री ठक्कुर सरयूप्रसाद सिंहस्यात्मज श्री ठक्कुर जगमोहनसिंहेऽमरकोश लघुकौमुदी चाधीत्यधिक वोध मपिपादयिषया चतु षष्ठ्याधिकाष्टादशशततमेऽब्दे वाराणसीस्थ राजकीय सस्कृत विद्यालयेऽध्येतु प्रविष्ट । काव्ये कुमारसम्भव, रघुवश मेघदूत-ऋतुसहार महाकाव्यं किरातार्जुनीय नैषधचरित नाटकेऽभिज्ञान शाकुन्तल विक्रमोर्वशीय मालविकाग्निमित्र वेणीसहार मालतीमाधवमुत्तररामचरितमलकारे कुवलयानन्द छन्दसि श्रुतबोध छन्दोमजरी चाध्यैष्ट । अध्ययन समयेच सदाचारेण नियतोपपस्थित्याध्ययनानुवृत्या च गुरुन् समतोषयत् । अथ काव्य नाटक ग्रन्थेषु

समीचीन व्युत्पत्ति समासादितवान्। अस्य मध्यदेशीय भाषा ज्ञानमप्यति समीचीन। अनेन खल्वेतत् प्रशसापत्र लाभात्पूर्वं मेघदूतमृतुसहार प्रभृतय कतिपये ग्रन्था छन्दोबद्ध मध्यदेशीय भाषाया सम्यगवतारिता। इत्येतत्सकलार्थ बोधकमिद प्रशसापत्रयस्मैसत्कुलोत्पन्नाय सुशीलाय मेधाविने च निम्ननिवेशितनामधेया· पण्डितवर्य्याश्च साहेववर्याश्च वितरन्ति।

Sd. G. Thibaut
Anglo-Sanskrit Professor

ह० प्र० वेचनराम त्रिपाठी	ह० प्र० काली प्रसाद शर्मा
ह० प्र० वापूदेव शास्त्री	ह० प्र० शिवकुमार शर्मा मिश्र
ह० प्र० प० शीतला प्रसाद त्रिपाठी	ह० प्र० कैलाशचन्द्र शर्मा
ह० प्र० प० वाल शास्त्री	ह० प्र० राममिश्र शास्त्री
ह० प्र० वामनाचार्य्यः	ह० प्र० देवकृष्ण शर्मा
ह० प्र० प० वैंकटेश	ह० प्र० विन्ध्येश्वरी प्रसाद शर्मा

उपर्युक्त प्रमाणपत्रो मे यह स्पष्ट है कि वह अपने विद्यार्थी-जीवन से ही मेधावी और अध्यवसायी थे। हिन्दी, सस्कृत और अग्रेजी का उन्होंने समुचित ज्ञानार्जन कर लिया था। इन भाषाओ मे रचना करने की भी क्षमता उनमे आ चुकी थी।

अपने 'देवयानी' (१८८५ ई०) काव्य मे ठाकुर साहव ने अपने सम्वन्ध के कुछ विवरण दिये हैं।

हाँ नरेस सुत देस जवलपुर रेवा तट जो राजै।
विजैराघवगढ सो सुन्दर घन जन सों वहु छाजै ॥४८॥

० ० ०

उपर्युक्त विवरण के अतिरिक्त ठाकुर साहव ने अपनी प्रारम्भिक रचनाओ के सम्वन्ध मे यो उल्लेख किया है—

रचे अनेक ग्रथ जिन वालापन मे काशीवासी।
द्वादस वरस विताय चैन सों विद्यारस गुन राशी ॥५१॥
प्रथम पजिका अग्रेजी में पुनि पिंगल ग्रथ विचारा।
करै भजिका मान विमानन प्रमिताक्षर कवि सारा ॥५२॥
वाल प्रमाद रची जुग पोथो खची प्रेम रस खासी।
दोहा जाल प्रेम रतनाकर सो न जोग परकासी ॥५३॥

कालिदास के काव्य मनोहर उलथा किये विचारा ।
रितु सहारहि मेघदूत पुनि सभव ईश कुमारा ॥५४॥
अत बीसईं बरस रच्यो पुनि प्रेम हजारा खासो ।
जीवन चरित रामलोचन को जो मम प्रान सखासी । ५५॥[1]

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि अपने विद्यार्थी-जीवन मे ही वह पजिका-जत्री (१८७०-७१ ई०), दोहावली (१८७० ई०), प्रेम-रत्नाकर (१८७३ ई०), प्रमिताक्षर दीपिका (१८७४ ई०), ऋतु-सहार अनुवाद (१८७४ ई०), प्रेम-हजारा (१८७६ ई०) आदि रचनाएँ हिन्दी-साहित्य को भेंट कर चुके थे ।

"विद्याध्ययन पूरा करने पर सरकार ने आपको तहसीलदार के पद पर नियुक्त किया, जिससे आपको मध्यप्रदेश के अनेक भागो मे भ्रमण करने और वनश्री का प्रकृत-सौन्दर्य देखने का अवसर मिला । आप सरकारी नौकरी मे आदि से अन्त तक तहसीलदार ही बने रहे, क्योकि आप बडी स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे—डिप्टी कमिश्नरो अथवा कमिश्नरो की भी कुछ परवा न करते थे ।"[2]

ठाकुर साहब के व्यक्तिगत जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डालने के लिए सोहागपुर (म०प्र०) निवासी श्री देवीप्रसाद गुप्त का १६-१-५५ का पत्र, जो जबलपुर के साहित्यिक जीवन के प्राण श्री रामेश्वर प्रसाद गुरु के लिये लिखा गया था, बडा ही महत्वपूर्ण है । श्री गुरु ने ठाकुर साहब के जीवन-वृत्त एव उनकी रचनाओ के सम्बन्ध में परिचय प्राप्त करने के लिए उन्हें पत्र लिखा था, उसके उत्तर-स्वरूप उन्हे निम्नाकित पक्तियाँ प्राप्त हुई थी ।

सोहागपुर
१६-१-५५

"प्रिय रामेश्वर गुरु,

'श्यामा-स्वप्न' नामी पुस्तक सरस्वती विकास प्रेस, नरसिंहपुर मे छपी है । इसकी एक प्रति मेरे पास थी जो कदाचित् स० वि० प्रे० नरसिंहपुर से ही मुझे प्राप्त हुई थी । दीमक ने मेरी प्रति साफ कर दी । कदाचित् अब भी उक्त प्रेस के अधिकारियो से वह पुस्तक तुम्हें मिल सके ।

---

१. ठाकुर जगमोहनसिंह—'देवयानी' (१८८६) भारत जीवन प्रेस, बनारस, पृष्ठ ९५ ।

२. रायबहादुर हीरालाल बी० ए०—'कविवर ठाकुर जगमोहनसिंह', द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृष्ठ १४६ (ना० प्र० स०) ।

(२) सुनने मे आया है कि गीता का छन्दोबद्ध अनुवाद भी उन्होने किया था और वह पुस्तक नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ मे छपी थी।

(३) उनके कई नीति के दोहे भी मैंने कही पढे थे। जहाँ तक ख्याल आता है, वे भी पुस्तकाकार थे और नवलकिशोर प्रेस मे ही छपे थे।

(४) उनके कुछ नीति के दोहे तुमको स्कूलो मे प्रचलित पुरानी पाठ्य पुस्तको मे भी मिलेंगे। दूसरी, तीसरी, चौथी कक्षाओ मे पढाई जाने वाली पुस्तको मे जरा ढूँढो।

ठाकुर साहब के विषय मे अन्य जो जानकारी प्राप्त हुई है, वह इस प्रकार है —(१) ठाकुर साहब तहसीलदार होकर सोहागपुर आये, लगभग ४ वर्ष यहाँ रहे। फिर तबादला होकर होशगाबाद चले गये (या शायद और कही)। मुन्शी कृष्णकुमार जो कायस्थ थे और सोहागपुर के ही निवासी थे, उनके अभिन्न मित्रो मे से थे। कृष्णकुमार पेंशन लेकर सोहागपुर आ गये थे। दूसरी बार ठाकुर साहब कदाचित् १८९८ ई० मे कृष्णप्रसाद तहसीलदार की जगह पर आये। कृष्णप्रसाद तहसीलदार का देहान्त सोहागपुर मे ही हुआ। वे विष खाकर मरे। कारण यह बताया जाता है कि होशगाबाद का अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर उनको गाली दे बैठा था और उन्होने भी कुछ उलटा-सीधा बोल दिया था। रात को वे जहर खाकर सो गये। इनके रिक्त स्थान पर ठाकुर जगमोहनसिंह जी दुबारा आये और लगभग एक साल तहसीलदार रहकर उनका अकस्मात देहान्त हो गया।

(२) जिस समय वे दुबारा आये उस समय उनके मित्र मुन्शी कृष्णकुमार रिटायर्ड तहसीलदार यही रहते थे। यह मुलताई (जिला बेतूल) से रिटायर होकर अपने घर सोहागपुर आ गये थे। दोनो की बहुत ही घनिष्ठता थी। मुन्शी कृष्णकुमार की प्रेमिका पहले एक कलारिन थी, जिसको वे साथ रखते थे। मुलताई से जब वे आये तब एक राजपूत जाति की स्त्री को वही से ले आये थे। ठाकुर साहब की प्रेमिका श्यामा थी जो जाति की सुनारिन थी। वह उनके साथ ही रहती थी। उस राजपूतिन और श्यामा का भी बहुत अधिक मेल-जोल था और दोनो का हमेशा बैठना-उठना, आना-जाना, खेलना-कूदना और घनिष्ठता का व्यवहार रहता था।

(३) ठाकुर साहब श्यामा के हाथ का बना हुआ भोजन न करते थे। बालाराम ब्राह्मण उनका चपरासी था और एक भोले नाम का ब्राह्मण उनकी रसोई बनाता था। कृष्णकुमार भी राजपूतिन के हाथ का भोजन नही करते

थे। उन दिनो अक्सर कृष्णकुमार और ठाकुर साहब भोले के हाथ का पका हुआ भोजन साथ-साथ ही करते थे।

(४) इसी श्यामा के प्रेम मे 'श्यामा-स्वप्न' पुस्तक की रचना ठाकुर साहब की लेखनी से हुई थी। तुमने 'श्यामा-सरोजिनी' एक नाम नया लिखा है। यदि इस नाम की कोई पुस्तक उनकी लिखी हुई है तो वह भी श्यामा के प्रेम मे ही लिखी हुई होनी चाहिये। श्यामा को वे विजयराघवगढ नही लाये थे। श्यामा के कारण उनकी स्त्री ठाकुर साहब के पास नही रहती थी। उनके मरने पर कृष्णकुमार के द्वारा खबर पाकर उनकी स्त्री-बच्चे सुहागपुर आये थे। जो कुछ पैसा-धेला-ज़ेवर आदि सम्पत्ति ठाकुर साहब ने कृष्णकुमार को सुपुर्दगी मे दे दी थी वह उन्होने उनकी स्त्री को उसके आने पर दे दी थी। उसके पश्चात् श्यामा का क्या हुआ और कहाँ गई इसका पता नही लगता।

(५) ४ मार्च १८९९ को उनका देहान्त हुआ। यह तिथि ठीक ही है। ठाकुर साहब के पण्डित सुहागपुर में प० हरकिसन नाम के थे। कुँआर वदी १ को ठाकुर साहब का देहान्त हुआ था अर्थात् पितृपक्ष आरम्भ होने के प्रथम दिन। कृष्णकुमार के भी यही पुरोहित थे। कृष्णकुमार ने पुरोहित को जमीन दी थी जो उनके पुत्र प० गुरुप्रसाद के पास अब भी है जो जिजवाडा में है।

(६) ठाकुर साहब की स्त्री-बाल-बच्चे उनका क्रिया-कर्म करके चले गये। बाद मे कृष्णकुमार ने ही एक छोटी-सी समाधि (स्मारक) बनवा दिया था। यह सूखा नदी और पलकमना नदी के सगम पर जहाँ उनकी चिता बनाई गई थी बनवाया था। उससे कोई तीस-चालीस हाथ दूर एक सेठ ब्रजपालदास का स्मारक था, जिसके ऊपर छतरी थी। सेठ तीर्थ करके लौटे थे। रेल मे ही हैजा हो गया, सुहागपुर के स्टेशन पर उतार दिये गये और यही उनका देहान्त हो गया था। दोनो स्मारको के भग्नावशेष सन् १९४३ तक थे। इस साल १९४३ मे दोनो नदियो का बहुत बडा पूर आया, जिसमें जो कुछ बचा था वह भी सब बह गया। अब कोई चिह्न तक नही है।

सोहागपुर मे प० गुरुप्रसाद की आयु का कोई भी आदमी ऐसा नहीं है जो कुछ भी ठाकुर साहब के विषय मे बता सके। मुन्शी कृष्णकुमार के वश मे एक सरस्वतीप्रसाद हैं, जिनसे पूछने पर मालूम हुआ कि कृष्णकुमार का देहान्त ३१

जून १९०४ को हुआ था अर्थात् ठाकुर साहब के लगभग दस वर्ष वाद ।

दे० प्र० गुप्त"

उपर्युक्त पत्र ठाकुर साहब के व्यक्तिगत, पारिवारिक एव अन्तिम जीवन के पूर्ण विवरण प्रस्तुत करता है। पत्र मे ठाकुर साहब की निधन-तिथि ४ मार्च १८९९ ई० है। यह तिथि द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रथ मे 'कविवर ठाकुर जगमोहनसिंह' के अन्तर्गत रायवहादुर हीरालाल द्वारा दी हुई निधन-तिथि से मिल जाती है। उक्त निवध में भी उनके तहसीलदार होने का उल्लेख है। सब से विशेष बात जिसका उल्लेख श्री देवीप्रसाद गुप्त ने किया है, वह है उनकी प्रेयसी श्यामा की बात। श्यामा प्रेयसी की बात भी पूर्णरूपेण सत्य है, क्योकि श्री रामेश्वरप्रसाद गुरु ने अपनी विजयराघवगढ की यात्रा मे ठाकुर साहब के चित्र-सग्रह (Album) मे श्यामा के चित्र देखे थे। वह अपने रूप मे अप्रतिम सुन्दरी थी। श्यामा के सम्बन्ध मे अधिक ज्ञात न होने के कारण विशेष विवरण नही दिये जा सकते हैं; किन्तु ठाकुर साहब-रचित 'ओंकार चन्द्रिका' मे इस पर कुछ प्रकाश पड जाता है। नीमाड मण्डलान्तर्गत ओंकार मान्धाता प्राचीन विख्यात तीर्थस्थान है। कवि ने वडी भक्ति-भावना से उस तीर्थ का वर्णन किया है। 'ओंकार चन्द्रिका' के काव्य में अन्तिम पृष्ठ पर कवि कहता है—

जब सों जान्यों सदा विषय कीन्हो अनुरागा।
परदारा अपहरन चाटु पटु यह रस मागा ॥७१॥
तुम्हरे सन्मुख किये सकल अपराध कबूला।
जो चाहो सो करो परो तुम्र चरनन मूला ॥७२॥
छमिहो जो तुम आशुतोष करि गहि अपनाई।
तो निहचै जग होय उमापति आपु बडाई ॥७३॥[1]

उपर्युक्त पक्तियो मे 'परदारा अपहरन' के उल्लेख मे सम्भव है कि ठाकुर साहब के मन मे श्यामा को लेकर ही यह भावना उठी हो। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों मे इस कर्म को पाप-कर्म समझ कर ही कवि का हृदय अपने देवता के समक्ष नत हो गया है। श्यामा किन परिस्थितियो मे उनकी हुई, इसके पूर्ण विवरण अनुपलब्ध हैं। इससे इस

१ ठा० जगमोहनसिंह—(ओंकार चन्द्रिका)' हरिप्रकाश प्रेस, वनारस, १८९४ ई०, पृष्ठ ८।

सम्बन्ध मे विशेष कहना अनधिकार चेष्टा होगी, किन्तु यह सत्य है कि ठाकुर जगमोहनसिंह का सम्पूर्ण प्रेमपरक काव्य श्यामा की प्रेम-माधुरी से अनुप्रेरित है। उनके काव्य मे भक्ति-भावना मान लेना एक साहित्यिक त्रुटि होगी।

छत्तीसगढ की शवरीनारायण तहसील मे वह तहसीलदार रहे थे। महानदी की बाढ से ही उन्हे 'प्रलय' (१८८९) नामक रचना प्रस्तुत करने की प्रेरणा मिली थी।

" 'वह बडे ही मधुर और विनोदी स्वभाव के थे'—आप बडे विनोदी और आशु कवि थे। एक बार आपकी अदालत में एक बडी तोदवाले बगाली कवि उपस्थित हुए। आपने मुकदमा लेने के पहले उनकी तोद पर कविता कर डाली, जिसको सुनकर अन्य लोग ही नही, वरन तोद वाले महाशय भी खुश हुए।"[1]

निस्सन्देह ठाकुर साहब का जीवन साहित्य की कितनी ही समस्याओ और तथ्यो को छिपाये है। यदि तत्सम्बन्धी सपूर्ण सामग्री मिल सके तो भारतेन्दु-युग पर नवीन प्रकाश पड सकेगा, किन्तु यह आशा अभी भविष्य के गर्भ मे अन्तर्निहित है। फिर भी यह सत्य है कि वह अपने हृदय से उदार और महान् थे तथा अपने समकालीन किसी भी साहित्यिक के समान ही भावनाओ के धनी थे।

ठाकुर साहब की कृतियों का परिचय

ठाकुर जगमोहनसिंह ने अपने किसी समसामयिक कवि के समान ही काव्य सृजन किया है। अभी उनका इतना हस्तलिखित अप्रकाशित साहित्य उनके आत्मज ठा० व्रजमोहन सिंह के पास सुरक्षित है। यदि वह सभी प्रकाश मे आ सके तो निस्सन्देह भारतेन्दु-युग का विद्यार्थी आश्चर्य-चकित हो जावेगा।

यो रायबहादुर हीरालाल बी० ए० ने 'द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रंथ' मे कविवर ठाकुर जगमोहनसिंह के जीवन-वृत्त के साथ उनकी कुछेक कृतियो का भी उल्लेख किया है। इस स्थल पर ठाकुर साहब की कृतियो मे आए विवरणों तथा श्री रामेश्वर गुरु से उनकी जिन रचनाओ के विवरण मिले हैं, उनके आधार पर उनकी कृतियो का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

१. पत्रा (पजिका) १८७० एव १८७१ ई०—ठाकुर साहब ने दो वर्ष के पत्रे अग्रेजी मे बनाये थे। १८७० ई० का पत्रा E I Lazrus से प्रकाशित भी हुआ था। १८७१ ई० का पत्रा अवश्य अप्रकाशित है।

---

१. द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रंथ, पृष्ठ १४६।

२. दोहावली (२८-३-१८७० ई०)—आठ पृष्ठ का यह काव्य है। इसमे बालोपयोगी दोहो का सग्रह है। २८-३-१८७० ई० को इसका प्रकाशन हुआ था। सोहागपुर के श्री देवीप्रसाद गुप्त इसका प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से बतलाते हैं।

३ प्रेम-रत्नाकर (१८७३ ई०)—इसका प्रकाशन ए० एन० एल० ब्रजभूषणदास प्रेस से हुआ था और कूच विहार के महाराजाधिराज के चचेरे भाई को यह समर्पित की गई थी। 'देवयानी' काव्य मे इस काव्य के सम्बन्ध मे निम्न दोहा उपलब्ध होता है —

> बाल प्रमाद रची जुग पोथी खची प्रेम रस खासी।
> दोहा जाल प्रेम-रतनाकर सो न जोग परकासी ॥

इससे ज्ञात होता है कि प्रेम के माहात्म्य पर लिखे हुए दोहों का यह सग्रह है।

४. प्रमिताक्षर-दीपिका (१८७४ ई०)—ठाकुर साहब द्वारा यह छन्द-शास्त्र पर लिखा हुआ काव्य है। इसके सम्बन्ध मे भी 'देवयानी' काव्य मे निम्न उल्लेख है—

> प्रथम पंजिका अग्रेजी मे, पुनि पिंगल ग्रंथ विचारा।
> करँ भजिका मान विमानन प्रमिताक्षर कवि सारा ॥

इस दोहे के आधार पर ही यह काव्य पिंगल ग्रथ सिद्ध है।

५. कालिदास—ऋतुसहार (१८७४–७५ ई०)—यह अनूदित काव्य है। कन्हौली राज्य के मैनेजर मगलीप्रसाद को समर्पित किया गया है। १८७६ ई० मे इसे प्रकाश मे आने का सौभाग्य मिला था।

६ पं० रामलोचन प्रसाद का जीवन (१८७६ ई०)—इसमे चौवीस पृष्ठ हैं और यह कन्हौली राज्य के बा० जमुनाप्रसाद को भेंट किया गया है। पी० सी० चौधरी के द्वारा न्यू मेडिकल हाल प्रेस, बनारस मे इसका मुद्रण हुआ था।

७. प्रेम-हजारा (१८७७-१८७८ ई०)—यह काव्य अब तक अप्रकाशित है। इसमे प्रेम सम्बन्धी स्फुट रचनाएँ हैं। 'अन्त बीसई बरस रच्यो पुनि प्रेम हजारा खासी'—से उसके रचना काल पर प्रकाश पडता है।

८. श्री विजयराघवगढ़ पचीसी—यह काव्य ठाकुर जगमोहनसिंह के पितामह ठा० प्रयागदास के द्वारा रचित है। ठा० जगमोहनसिंह द्वारा सपादित यह काव्य न्यू मेडिकल हाल प्रेस, बनारस से प्रकाशित हुआ था।

९. कालिदास—कुमारसम्भव (१८७६-१८८० ई०)—यह भी अनूदित काव्य है। ठाकुर साहब इसे अपने जीवन मे पूर्ण न कर सके थे।

१० प्रेम सम्पत्ति नाटिका (१८७९ ई०)—चार अंकों का यह अप्रकाशित नाटक है।

११ इक्केवाला-नाटक—चार अंक का यह अप्रकाशित प्रहसन है।

१२. दम्पति-विलाप—प्रथम बच्चे के देहान्त पर ठाकुर साहब द्वारा रचा हुआ यह मार्मिक शोक-काव्य है। यह शोक-काव्य अभी तक अप्रकाशित है।

१३. पवनदूत (१८७७ ई०)—३९ छन्दो का यह अप्रकाशित काव्य है।

१४. चित्रकूट वर्णन (१८७८)—अप्रकाशित काव्य है।

१५. कपोत विरहाष्टक (१८७७ ई०)—यह भी अप्रकाशित शोक-काव्य है। विडाल द्वारा कपोत के प्राणान्त कर दिये जाने पर कवि ने इस करुणा-प्रधान काव्य की रचना की थी।

१६ कालिदास—मेघदूत (१८८३ ई०)—यह भी अनूदित काव्य है। इसका प्रकाशन बेपेटिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता से हुआ था।

१७ सज्जनाष्टक (१८८४ ई०)—शिवरीनारायण (म० प्र०) के आठ सज्जनो का इसमे वर्णन है। 'देवयानी' मे इस काव्य के सम्बन्ध मे कवि का यह कथन है

'सज्जन अष्टक कष्ट माँहि मैं विरच्यो मति अनुसारा'

इस काव्य मे ६ पृष्ठ हैं और ३४ छन्दो मे पूर्ण विवरण सन्निविष्ट है। इसका प्रकाशन भारत जीवन प्रेस, बनारस से हुआ था।

१८ श्यामालता (१८८५ ई०) .—स्वय ठाकुर जगमोहनसिंह का इस काव्य के सम्बन्ध मे कथन है—"इसका आरम्भ मैंने २५ दिसम्बर, १८८४ ई० को किया था। आधे से अधिक सोनाखान के विदित पर्वतो के तट पर बनाया है। मुझे आशा है कि रसिक लोग इसे पढकर मेरे श्रम को सफल करेंगे × × × जिसके लिये यह कविता की है उसी को समर्पित भी है।" इसमें अनेक प्रकार के १३२ छन्द हैं। कवि की प्रेम की अधिष्ठात्री देवी श्यामा को यह काव्य समर्पित है। कवि ने श्री-स्वरूप श्यामा को स्वप्न मे देखा और कवि ने कहना प्रारम्भ किया—"मैं तुम्हे कितना चाहता हूँ—ईश्वर से पूछो क्योंकि वह सर्वव्यापी और अन्तर्यामी है। तुम चाहो या न चाहो।—यहाँ तेरे नाम की माला सदा जपते हैं—जपना क्या तेरा नाम मेरी हरएक हड्डी मे मुद्रित हो गया है। चाहे तो देख लेय—कहूँ वहाँ तक 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' और

जहाँ तक तुम्हें जाँच करनी हो कर लो। मेरी भक्ति इतने ही से जान लेना—'लोचन मगु रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी।' " कवि ने रचना-स्थल और रचना-समय के सम्बन्ध मे निम्न कथन किया है—

जगमोहनसिंह दीन स्त्रो सुरस श्यामालता
ललित गिरा रस लीन शवरिनरायन माँहि रहि।

शवरीनारायण (म० प्र०) मे इसकी रचना हुई थी। काल के सम्बन्ध मे कवि का कथन है—

नैन वेद ग्रह एक सम्वत् मास सुजेठ को।
विरच्यो सहित विवेक भूल चूक छमहूँ सकल॥

इस प्रकार ज्येष्ठ १६४२ वि० स० मे इस काव्य का निर्माण हुआ है। इसका प्रकाशन भारतजीवन प्रेस, बनारस से हुआ था। इसका निम्न-लिखित काव्य-विषय है—

लखी जौन दिन ते सखी मन्द-मन्द मुसकान।
छकी फिरत ता दिनन सों जकी रहत मनमान॥

फलस्वरूप नायिका के लिये वियोग उपस्थित हो उठा है—

कैसी करौं कहँ पाऊँ तुम्हें मन मोहि लियौ करिके बतियाँ।
बतियाँ करि हास-विलास किये बिनु मोल को मोलि लिये छतियाँ॥
छतियाँ न लगो उलटी यह रीति पिरीति की क्यों न लिखो पतियाँ।
पतियाँ न लिखो मुख से न कहो जगमोहन कैसे कटैं रतियाँ॥

प्रियतम को भी विरह की अनुभूति है। उसने अपने को प्रियतमा को समर्पित कर रखा है। अपने 'जीवन मूरि' को आया जान नायिका 'फूली फली हुलसी जगमोहन बाँधत द्वारन वन्दनवारे' की स्थिति मे है।

इस प्रकार श्यामालता 'सयोग' और 'वियोग' की मनोरम भावनाओ से परिपूर्ण है।

श्यामालता अनूप जोग वियोग विहार वन।
सींचहु घन अनिरूप नेह सलिल वरषाय महि।

१६ प्रेम-सम्पत्ति-लता (१८८५ ई०)—यह १७ पृष्ठ का काव्य है। इसमे ४७ सवैया और ४ दोहे हैं। इसका प्रकाशन भारतजीवन प्रेस, बनारस, से हुआ था। इस काव्य मे भी श्याम और श्यामा के पारस्परिक प्रेम का वर्णन है। श्याम के अप्रतिम सौन्दर्य ने श्यामा आकर्षित हो गई है। प्रथम नायिका वियोग का अनुभव करती है। अनन्तर नायक भी वियोग-व्यथा से ग्रस्त हो जाता

कपड़े पहन लिए। देवयानी ने दुर्वाक्य कहे। अन्त मे उसे कुएँ मे डालकर शर्मिष्ठा घर आई। नहुष के पुत्र ययाति ने उसे कुएँ से निकाला और उसके पिता की अनुमति से उससे विवाह कर लिया। देवयानी के एक पुत्र हुआ। ययाति का शर्मिष्ठा से भी प्रेम था, इससे उसके गर्भ से भी तीन पुत्र हुए। देवयानी को जब यह ज्ञात हुआ तब उसने अपने पिता के पास जाकर ययाति को एक हजार वर्ष के लिए वृद्धावस्था का शाप दिया। ययाति के पुत्र पुरु ने अपने पिता का यह शाप शिरोधार्य कर उन्हे विलास के लिए मुक्ति दी।

इस प्रेम-कथा मे भी श्यामा के प्रेम का स्वरूप विद्यमान है। "इस देवयानी और ययाति के सरल प्रीति के विवरण का सार तुम्ही (श्यामा) हो—किसी न किसी मिस से तुम्हारा जप, तप, और ध्यान कर ही लेता हूँ। इसमे भी हमारा-तुम्हारा प्रेम गाया गया है।"

श्यामा श्यामा नाम को जीह रटत दिन रैन।
श्यामा की मूरति अजों टरै न पल भर नैन॥

इस प्रकार यह काव्य भी प्रेम-भावना का एक आधार है।

२२ **श्यामा सरोजिनी** (१८८७ ई०)—इसका प्रकाशन भी भारत जीवन प्रेस, बनारस से हुआ था। इस रचना की तिथि के सम्बन्ध मे ठाकुर जगमोहनसिंह का निम्न कथन है—

चैत बदी तिथि नैन सुचैन सी श्यामा सरोजिनी श्रीपुर माही।
सवत् लोचन शकर वेद सु अक निशाकर सो हरखाही॥

इस प्रकार इस काव्य की रचना चैत्र बदी द्वितीया, १९४३ वि० स० को हुई थी। इसकी रचना आदि के सम्बन्ध मे ठाकुर साहब का कथन है "श्यामा स्वप्न के पीछे इसी मे हाथ लगाया और दक्षिण लवण के विख्यात गिरि कन्दरा और तुतुंरिया के निर्भरो के तीर इसे रचा, कभी-कभी महानदी के तीर, कभी जोंगी जिसका शुद्ध नाम योगिनी है उसके तीर, देवरी कुम्भकाल अथवा कुभाकार जिसका अपभ्रश नाम कोमलकाल है, काला जगल इत्यादि विकट पर्वतो के निकट मनोहर-मनोहर वनस्थलियो पर इसकी रचना की, प्रकृति की सहायता से सब ठीक बन गया। श्रीपुर मे इसको समाप्त कर बसन्तोत्सव भी समाप्त हुआ।"

इसमे भी श्यामापरक प्रेम का ही प्राधान्य है। श्यामा और श्यामसुन्दर के परस्पर के प्रेम एव सयोग-वियोग के इसमे मार्मिक चित्रण हैं।

२३. प्रलय (१८८९ ई०)—इसका काव्य-विषय महानदी की बाढ़ है।

जिसमे शिवरीनारायण एव श्रीपु आदि मध्य प्रदेश के प्रमुख नगर वह गये थे। इस रचना की तिथि आदि के सम्बन्ध मे ठाकुर साहब का कथन है—

सम्वत् वेद वेद ग्रह सूरज विरचि कथा सुख खानी।
श्री जगमोहनसिंह मित्रगन हेतु प्रकट फलवानी॥

इस प्रकार १६४४ वि०स० मे वेतूल मे इसकी रचना हुई थी। इस काव्य मे २१ पृष्ठ हैं और ११६ छन्द हैं।

२४ श्रोंकार चन्द्रिका (१८६४ ई०)—इसका प्रकाशन हरिप्रकाश प्रेस, बनारस से हुआ था। नीमार (जिला खण्डवा) मण्डलान्तर्गत श्रोकार मान्धाता प्राचीन विख्यात तीर्थ का वर्णन ही इस रचना का काव्य-विषय है। आठ पृष्ठ का यह काव्य ७५ दोहो मे समाप्त है। इस काव्य मे नगर एव शिव-मन्दिर आदि का बडा ही सजीव वर्णन है।

यह तीरथ अति रुचिर सुभग रेवा तहँ सोहै।
प्रगटायो प्राचीन रमापति कुल नृप जो है॥
मान्धाता सो नाम पुरानन प्रकटहि गायो।
जेहि श्री रघुकुल तिलक मनोहर सुभग बसायो॥
मन्दिर अति प्राचीन देवकर शैलन सुन्दर।
मेकल कन्या विमल नीर पावन बिच कन्दर॥
यह खँडवा के खड बीच नीमार कहावै।
राजपुतान रेल शाख ह्वँ सब कोउ जावै॥
अहै न यह अति दूर मोरटक्का सो भाई॥
केवल तीनइ कोस शकट मारग बनि आई॥

इस प्रकार प्रारम्भ मे नगर का वर्णन है। अनन्तर शिव-मन्दिर का बडा सुन्दर वर्णन किया गया है। कवि ने अन्त मे शिवजी से अपने पाप-शमन की प्रार्थना की है। इस प्रकार यह काव्य ठाकुर साहब की भक्ति-भावना से परिपूर्ण है। इनके रचनाकाल के सम्बन्ध मे इस काव्य मे निम्न पक्तियाँ उपलब्ध हैं —

गगन विहारी बान पंच कर मदन जरायो।
गौरी अकहि रोपि भाल शशि विक्रम भायो॥

इस प्रकार इसकी रचना १६५० वि० स० मे हुई थी।

२५. श्रवण विलाप—श्रवण विलाप मे श्रवणकुमार की कथा है।

"श्रवण विलाप साप लौ कीन्हों तन की ताप मिटाई।"

उपर्युक्त के अतिरिक्त ठाकुर साहब ने भामिनी-विलास, पचतत्र, बायनर के "प्रिज़नर ग्राव शिलन का शिलन" का वन्दी', हसदूत, भागवत एव वाल्मीकि रामायण आदि के सफल अनुवाद प्रस्तुत किये हैं। इसी प्रकार 'जब कभी' (१८९६) मे ठाकुर जगमोहनसिंह की यदा-कदा की रचनाएँ सम्मिलित हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त पक्तियो द्वारा ठाकुर साहब की यथासाध्य उपलब्ध कृतियो का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। यदि निकट-भविष्य मे ठाकुर साहब का सम्पूर्ण साहित्य प्रकाश मे आ जाता है तो उनकी कृतियो से हिन्दी साहित्य का बडा हित होगा, इसमे सन्देह नही।

ठाकुर साहब के काव्य मे स्वच्छन्दवादिता

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे नई धारा —प्रथम उत्थान (स० १९२५–१९५० वि०) के अन्तर्गत आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने ठाकुर जगमोहनसिंह के काव्य के सम्बन्ध मे अपनी निम्न धारणा प्रस्तुत की है।

"यद्यपि ठाकुर जगमोहनसिंह जी अपनी कविता को नये विषयो की ओर नही ले गये, पर प्राचीन सस्कृत काव्यो के प्राकृतिक वर्णनो का सस्कार मन मे लिये हुये, प्रेमचर्या की मधुर-स्मृति मे समन्वित विन्ध्य-प्रदेश के रमणीय स्थलो को जिस सच्चे अनुराग की दृष्टि से उन्होने देखा है वह ध्यान देने योग्य है। उसके द्वारा उन्होने हिन्दी-काव्य मे एक नूतन-विधान का आभास दिया था।"[1]

उपर्युक्त परम्परागत एव सामन्तीय प्रवृत्ति के सम्बन्ध मे ठाकुर साहब का राजकीय वश एव पारिवारिक परिस्थितियाँ अत्यधिक उत्तरदायी हैं। राजकीय वश के कारण उनमे स्वाभिमान और अहकार कूट-कूटकर भरा था। साधारण व्यक्तियो का, राजकीय वश के लिये जो परम्पराएँ अत्यावश्यक हैं उनका पालन किये बिना उनसे किसी प्रकार की भेंट करना कठिन था। परिवार की करुण परिस्थिति होने पर आज भी एक व्यक्ति को ठाकुर साहब के उत्तराधिकारी से भेंट करने के लिये परम्परागत मर्यादाओ का पालन करना पडता है। उपर्युक्त के अतिरिक्त ठाकुर साहब आजीवन तहसीलदार रहे। इससे भी जनता पर उनका आतक था। यही कारण है कि उनके काव्यो मे लोक-स्तर उपेक्षित मिलता है। भारतेन्दु जी एव उनके समकालीन कवियो के काव्यो मे देश की तत्कालीन परिस्थितियाँ, निर्धनता, अकाल, भुखमरी एव टैक्स आदि के विवरण

१ आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास,' पृष्ठ ५९४ (ना० प्र० सा०, काशी) सस्करण २००३ वि०।

मिलते हैं, जब कि ठाकुर साहब का काव्य इनसे विरहित है।

रीतिकाल की प्रचलित प्रवृत्तियाँ भारतेन्दु-युग से कुछ पूर्व ही समाप्त हुई थी। इससे उन प्रवृत्तियो का समावेश भारतेन्दु-युग के काव्य मे स्वाभाविक ही था; किन्तु जिस प्रकार ये प्रवृत्तियाँ स्वाभाविक थी उसी प्रकार वे समाज मे परिव्याप्त परिस्थितियो ने भी मुख न मोड सके। उन्होने उनका स्वागत किया। परम्परागत भाव, भाषा एव छन्द आदि के विधान मे परिवर्तन आवश्यक हो गये। तत्कालीन कवियो ने इन परिवर्तनो का स्वागत कर अपनी सहृदयता एव युग-प्रतिनिधित्व, जो एक कलाकार मे सदैव अपेक्षित है, को प्रमाणित कर दिखाया।

अब प्रश्न यह है कि क्या ठाकुर साहब पूर्ण अपरिवर्तनवादी थे ? क्या उनके काव्य मे नूतन सघटनों का समावेश न था ? उपर्युक्त प्रश्नो के उत्तर-स्वरूप यही कहना होगा कि किसी अन्य सहृदय कलाकार के समान वह भी युग के साथ थे। उनका काव्य भी भारतेन्दु-युगीन काव्य की एक सफल कडी थी।

रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्तियाँ भारतेन्दु-युग के अन्य कवियो के समान ठाकुर जगमोहनसिंह के लिये भी प्रोत्साहन एव आकर्षण के विषय थे, किन्तु इस स्थल पर यह ध्यान देने योग्य है कि अन्य कवियो ने रीति-परक शृगारात्मक काव्य की परम्पराओ को ज्यो-का-त्यो अपना लिया। इस सम्बन्ध मे वे परम्परा-वादी ही बने रहे। उनमे शृंगार का चित्रण था, किन्तु वह शृङ्गार शृङ्गार के लिये था। उसमे न उनकी अनुभूतियाँ थी और न थी वैयक्तिकता। ठाकुर साहब केवल इस प्रवृत्ति मे अपने समसामयिक कवियो से अधिक मौलिक थे। काव्य का व्यक्तिवाद जो स्वच्छन्दतावादी काव्य का प्राण है, वह भारतेन्दु-युग मे केवल ठाकुर साहब मे ही मिलता है अथवा ठाकुर साहब के द्वारा उस सम्बन्ध मे एक आदर्श प्रस्तुत किया गया।

प्रेम-परक शृगारी काव्य, जो प्रभूत मात्रा मे ठाकुर साहब के काव्य मे विद्यमान है, वस्तुत. अभूतपूर्व है। वह स्वय अपनी श्यामा के श्यामसुन्दर थे। श्यामा के 'नैन-शर' से वह स्वय भी न बचे थे। इसी से उस प्रेम-काव्य में जो सयोग-वियोग के चित्रण हैं, उनके पीछे ठाकुर साहब के जीवन का यथार्थ भी सन्निविष्ट है। केवल इसी आधार-शिला के कारण ठाकुर साहब के प्रेम-काव्य का स्वरूप बडा ही उदात्त हो गया है और वह स्वच्छन्दतावादी काव्य की भित्ति बन गया है।

प्रकृति-काव्य के सम्बन्ध में भी ठाकुर साहब ने सस्कृत काव्य की परम्परा

को अपनाकर हिन्दी को नवीन देन दी। प्रकृति का 'बिम्ब ग्रहण' जो सस्कृत कवियो की महान् सफलता थी, उसका हिन्दी-काव्य मे समावेश करने के कारण सर्वांशत वह मौलिक तो न कहे जावेंगे, किन्तु अग्रगन्ता अवश्य कहे जा सकते हैं। यो प्रकृति के सम्बन्ध मे उनका दृष्टिकोण हिन्दी-काव्य मे अवश्य नवीन था, इससे यदि इस सम्बन्ध मे उन्हें मौलिक भी कहा जाय तो ठाकुर साहब के लिये वह अतिशयोक्ति भी न होगी। इस प्रकार प्रकृति-काव्य मे वह अपने किसी भी समकालीन कवि से आगे थे। यह प्रवृत्ति ही आगे चलकर स्वच्छन्दतावादी काव्य के अग्रदूत प० श्रीधर पाठक मे प्रस्फुटित हो उठी थी। स्वय भारतेन्दु जी, प्रेमघन जी तथा अन्य समसामयिक कवि इस सम्बन्ध मे परम्परा का ही पालन कर रहे थे।

उपर्युक्त प्रवृत्तियों के अतिरिक्त उनमे दु खवाद की भी भावनाएँ थी तथा अन्य वैयक्तिकता-प्रधान काव्य भी उनके साहित्य मे उपलब्ध होता है। इन सभी दृष्टिकोणो से भारतेन्दु-युग में यदि किसी को स्वच्छन्दतावादी कह सकते हैं तो उसका श्रेय केवल ठाकुर जगमोहनसिंह को ही है। 'भारतेन्दु-युग' मे भाव, भाषा एव छन्द आदि के सम्बन्ध मे स्वच्छन्दतावादी प्रेरक स्थितियाँ अवश्य उत्पन्न हो गई थी, जिनका युग की माँग के अनुसार थोडा-बहुत अश प्रमुखत भारतेन्दु-युग के अधिकाश कवियो मे विद्यमान था।

भाषा एव छन्द आदि के सम्बन्ध मे ठाकुर साहब पूर्ण परम्परावादी ही थे। इस प्रकार उनमे शास्त्रीयता का पुट भी विद्यमान था।

ठाकुर साहब की काव्य-गत प्रवृत्तियो को जिनका उपर्युक्त पक्तियो मे सक्षिप्त विवेचन है, उनके काव्य-ग्रन्थो मे भी देखना होगा कि वे किस मात्रा मे वहाँ विद्यमान होकर हिन्दी के परम्परावादी काव्य को स्वच्छन्दतावादी बना रहे थे।

ठाकुर साहब मे काव्य-प्रतिभा थी और सौभाग्य से उन्हें अनुकूल वातावरण भी मिला, जिससे उनके काव्य का सफल विकास भी हुआ। भारतेन्दु एव जबलपुर के समीपस्थ गढा के अधिपति हिन्दी के नाटककार श्री अमानसिंह से उनकी घनिष्ठता थी। साहित्यकारो की इस मित्रता से ठाकुर साहब को काफी बल और साहस मिला था, जिससे काव्य-क्षेत्र के लिये वे सदैव अनुप्रेरित रहे। उपर्युक्त सुविधा के अतिरिक्त उन्हे अपने परिवार से भी काव्य-परम्परा उपलब्ध हुई थी। स्वय ठाकुर जगमोहनसिंह के पितामह ठाकुर प्रयागदाससिंह, जो एक सफल कवि थे, राम के अनन्य भक्त थे। कविता मे वह अपना उपनाम

'रामनिधि' रखते थे। रामकाव्य-सम्बन्धी उनका अन्य मार्मिक साहित्य भी है। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'श्री विजयराघव पचीसी' लिखी थी, जिसके यह निम्न अंश द्रष्टव्य हैं :—

घन घोर मढ्यो व्योम मण्डल में बिज्जली की छटा छहरावदा है।
नचैं मोर अटन्न मे माते चढ़े स्वर सारँग की चारु भावदा है॥
कर कंजन सों मंजु बीना लिये रामनिधि का चित्त चुरावदा है।
विजयराघव महल्ल के मध्य बैठा तान राग मल्लार की गावदा है॥

जहँ सावन कुंज सुहावत है घन घोर घमंड के घूमता था।
मृदु फूलन के स्वच्छ गुच्छन्न मे मकरन्द मलिंद मे झूमता था॥
वर्न कैसे कहै रामनिधि सोई छवि देखि मगन्न ह्वै भूलता था।
अँगवाये जनक्क लली को लिये विजराघो हिंडोरे में झूलता था॥

श्री विजयराघवगढ़ का यह सरस वर्णन स्वाभाविक अभिव्यंजना शैली मे होने के कारण विशेष आकर्षण का विषय था। फलस्वरूप काव्य-सर्जना मे वह अपने पितामह के अनुगामी बने।

श्यामा के साहचर्य के कारण ठाकुर साहब को प्रेम-तत्व की सच्ची अनुभूति हो चुकी थी। इसी से उनके साहित्य मे जो भी प्रेमकाव्य है उसमे श्यामा की ही प्रमुखता है। उसके आधार पर ही ठाकुर साहब संयोग-वियोग की भावनाओं को व्यक्त कर सके हैं।

प्रियतम के सौन्दर्य को देखकर प्रियतमा आनन्दविभोर है। उसके संयोग-सुख के लिये उसकी आत्मा छटपटा रही है। वियोग उसे विशेष पीडित किये है।

कैसी करौं कहँ पाऊँ तुम्हें मन मोहि लियो करि कै बतियाँ।
बतियाँ करि हास विलास कियो बिनु मोल को मोलि लिये छतियाँ॥
छतियाँ न लगो उलटी यह रीति पिरीति की क्यों न लिखो पतियाँ।
पतियाँ न लिखो मुख से न कहो जगमोहन कैसे कटैं रतियाँ॥

(श्यामालता—७)

वियोग अभिवृद्धि पर है, फलस्वरूप—

यह भाग की मेरी सदा गति री अति रोवति प्यासी रहैं अँखियाँ।
इनको न मिल्यो सुपने सुख हाय ए पातकी घातकी सी दुखियाँ॥

लगती नहि बेर इन्हें लगते लखते जगमोहन की सखियाँ।
सुख राम रच्यौ न इन्हें कबहूँ समुझावति कोउ नहीं सखियाँ ।।
(श्यामालता–९)

वियोग ने दोनो को पत्र-व्यवहार के लिये बाध्य कर दिया है। दोनो मे सयोग के लिये आकाक्षा बढी। प्रियतम प्रत्येक स्थल मे अपनी प्रियतमा के दर्शन कर उठा। जीवन की मादकता ने उसे भाव-विभोर कर दिया।

अबर मे जल मे थल मे जहाँ देखो तहाँ तरु की पतियान मे।
कानन की सरितान सरोज सरोवर सौरभ मैन कमान मे।।
मोर मे मीन मे किंशुक में शुक मे शशि अ'फल सुतियान मे।
झूलति है वह झूलनहार अजौ हिय में जिय मे अँखियान में।।
(श्यामालता–४७)

'हम तो हाय बिकाने तेरे हाथ'—प्रियतम की यह दशा है। प्रियतमा भी 'सुनि आगम निज मीत को छिन दुआर छिन गेह' के वशीभूत हो चचल हो उठी है। अपने 'जीवन मूरि' को आया जान 'फूली फली हुलसी जगमोहन बाँधन द्वारन वन्दनवारे'। वह विशेष पुलकित है। वियोग अधिक काल तक वियोग न रहकर सयोग मे बदल गया है, किन्तु वह सुख चिरस्थायी न रहा।

श्यामालता अनूप जोग वियोग विहार बन।
सींचहु घन अभिरूप नेह सलिल बरषाय महि।।
बरषहु घन घनश्याम जामे सो मुरझाय नहि।
श्यामालता ललाम दुसह विरह की आंच सो।।
(श्यामालता–१२४-१२५)

उपर्युक्त के समान ही 'प्रेम-सम्पत्तिलता', 'श्यामा-सरोजिनी' एव 'श्यामा-स्वप्न' की भी काव्य-सामग्री है। इन रचनाओ मे भी भारतीय प्रेम का स्वरूप विद्यमान है।

निशि द्यौस तिहारई सूरति श्यामली लेखिवे को अँखियाँ ललकैं।
तुव रूप सुधानिधि देखे विना कहुँ नीदहु मे न लगै पलकैं।।
जगमोहन मूरति जीवन मूरि विना तेहि प्यासी परी झलकैं।
नित तेरी गलीन की पावन धूरि को अंजन आंजि सदा कलकैं।।
(प्रेम-सम्पत्तिलता–३)

यह परिस्थिति ही संयोग मे परिवर्तित होकर पुन वियोग का सघटन प्रस्तुत कर देती है। प्रेम का यह स्वरूप ही ठाकुर साहब की 'देवयानी' मे भी उपलब्ध होता है। इस काव्य का समर्पण भी श्यामा को किया गया है, जिसके अन्तर्गत ठाकुर साहब ने अपनी निम्न भावना व्यक्त की है :—

"यह 'देवयानी' और ययात्युपाख्यान भी बड़ा विचित्र है। इसमे भी तुम्हारी प्रीति और स्नेह का वर्णन है—हाँ, तुम्हारा नाम भर नही प्रकट किया, क्योकि लोग देखे कल नही पाते, फिटकिरी के समान उनके नैनो मे गड रहे है, पर श्यामा एक तेरी दया की कोर चाहिये—फिर मैं इन्द्र को भी नही डरता। इस देवयानी और ययाति के सरल प्रीति के विवरन की सार तुम्ही हो—किसी-न-किसी मिस से तुम्हारा जप, तप और ध्यान कर ही लेता हूँ। इसमे भी हमारा तुम्हारा प्रेम गाया गया है • • ।"

श्यामा श्यामा नाम को जीह रटत दिन रैन।
श्यामा की मूरति अजौं टरै न पल भर नैन॥

देवयानी कच के सौन्दर्य पर मत्रमुग्ध थी। उसने अपने को उसे समर्पित कर दिया था। इसी भावना के वशीभूत होकर—

कबहुँ मदन बस गीतहि गावै।
कबहुँ ललित पद वचन सुनावै।
कबहुँक लाय रहैं मन मूरति।
पलक कपाट मूँदि सुइ सूरति॥

(देवयानी—४२)

कबहुँ चन्द्र मुख निरखि बहोरी।
जुगल नैन जिमि चितव चकोरी॥
अनमिख चितै सु बटु की ओर।
लेय तुरत ता मन कहँ चोर॥

(देवयानी—४३)

असुरो के द्वारा कच के मार दिये जाने पर भी देवयानी अपने पिता शुक्राचार्य से उसे जीवन-दान कराती है। उसने कच के प्रति अपने अनन्य प्रेम को अपने पिता के समक्ष भी व्यक्त किया था।

बिन कच जीवन फेर अँदेसा।
सत्य कहौं पितु हरहु कलेसा॥

प्रान पियारे फेरि जियावहु ।
जेहि लखि नैनन निजहि जुडावहु ॥

(देवयानी—६८)

उसने कच के समक्ष भी इस प्रकार अपने प्रेम का निवेदन किया—

तन मन सौंपि दियो मैं पहिले अब शरीर एक बाच्यों ।
सोऊ परसि तारिये मोकँह तुम सम और न जाच्यों ॥

निस्सन्देह कच पर देवयानी के कितने ही आभार भी थे । अब वह सजीवनी विद्या प्राप्त कर निश्चिन्त भी था और देवयानी की प्रार्थना के अनुसार—

'विधि सों मत्र वाँचि अब पकरहु हाथ करहु तन स्वारथ ।'

कच को लेकर देवयानी के हृदय मे कितनी ही भावनाएँ और आकाक्षाएँ थी; किन्तु कच की इस भावना से, 'भगिनी मोर धरम की सुन्दरि या मे कछु न बहाना' उसकी आशाएँ निराशा में परिणत हो गईं । फिर दोनो का जिस भाग्य से साक्षात्कार हुआ उसे इतिहास के सभी विद्यार्थी जानते हैं ।

यो ठाकुर साहब के सम्पूर्ण प्रेम-काव्य उनकी एक ही अन्तर्भावना से गुथे हुए हैं, फिर भी 'श्यामा-स्वप्न' मे उसका पूर्ण उत्कर्ष है । उसके अन्तर्गत कवि का प्रेम-दर्शन सप्राण हो उठा है । फलस्वरूप इस रचना के प्रथम याम के स्वप्न के अन्तर्गत प्रारम्भ मे ही ठाकुर साहब ने निम्न घनाक्षरी को स्थान दिया है ।

सोवत सरोज मुखी सपने मिली री मोहि
तारापति तारन समेत छिति छायो री ।
मडप वितान लता पातिन को तान तान
चातक चकोर मोर रोरहु मचायो री ॥
कजकर कोमल पकरि जगमोहन जू
अधर गुलाब चूमि मधुप लुभायो री ।
चकृत सों वैरिन कहा से खुली घों आँख
हाय प्रान प्यारी हाय कठ न लगायो री ॥

इस घनाक्षरी की भावना ही 'श्यामा-स्वप्न' के कथानक के साथ पूर्णरूपेण चरितार्थ है । श्यामा और श्यामसुन्दर का पारस्परिक परिचय गाढ़ प्रेम मे परिवर्तित होकर सयोग का साधन बनता है । अतत श्यामा गगा-प्रवाह मे बह जाती है । श्यामसुन्दर उसे प्राप्त करने के लिये उसी पथ के पथिक बनते हैं, किन्तु पुन उनका सम्मिलन नहीं हो पाता । इस प्रकार श्यामा स्वप्न का विषय

बन जाती है। अन्त मे इस उदात्त प्रेम के सम्बन्ध मे ठाकुर साहब इस निष्कर्ष पर पहुँचते है—

या जग नारि नैन के शर सों को बचि रह्यो बताओ।
आंखिन देखि पियत घट विष यह सो मदिरा बौराओ॥
यासो बार-बार कर जोरे कहहुं देखि सब रंगा।
विष पूतरि सम वाहि तरकिये तजि वाको परसगा॥

इस प्रकार श्यामास्वप्न की समाप्ति सुखान्त न होकर दुखान्त है। प्रेम, जिसकी अनुभूति इतनी दुखद और शोचनीय है, क्या यो ही स्वीकार्य है, मानव के समक्ष यही विचारणीय है।

अब इस स्थल पर यह भी विचारणीय है कि श्यामा किस सम्मान की अधिकारिणी है? 'श्यामालता' के 'समर्पण' मे ठाकुर साहब ने अपनी निम्न भावनाएं व्यक्त की है—

"मैंने तुम्हारे अनेक नाम घरे हैं क्योंकि तुम मेरे इष्ट हो न—और तुम्हारे तो अनेक नाम शास्त्र, वेद, पुराण, काव्य स्वय गा रहे हैं। तो फिर मेरे अकेले नाम घरने से क्या होता है। तुम्हारे सब से अच्छे नाम श्यामा, दुर्गा, पार्वती, लक्ष्मी, वैष्णवी, त्रिपुर-सुन्दरी, श्याम-सुन्दरी, मनमोहिनी, त्रिभुवनमोहिनी, त्रैलोक्य विजयिनी, सुभद्रा, ब्रह्माणी, अनादिनी, देवी, जगन्मोहिनी इत्यादि—इनमे से मैं तुम्हे कोई एक नाम से पुकार सकता हूं पर उपासना भेद से तथा इस काव्य को देख मैं इस समय केवल श्यामा ही कहूंगा। ' ···मुझे तूने बचाया —तूने मेरे प्रान बचाये। तू क्या जानती है कि मैं तुझे आज से जानता और मानता हूँ—नही नही यह बडी भूल है। पर तुझे क्या समझाकर कहना—तू तो अन्तर्यामिनी है। जिस दिन कर्म-वश पच भौतिक मे पचकर प्राण तन-पिंजरे मे आये उसी दिन मैं तेरा हो चुका था तू चाहे जान चाहे न जान पर न जानना कैसा—यह मेरी मूर्खता ही तो है। मैं तो 'तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा' यह कह चुका। कहा भी नही वरन सब जगत को दिखा भी चुका, देवि!"

श्यामा के सम्बन्ध मे इसी प्रकार की आध्यात्मिक आस्था और भक्ति ठाकुर साहब के अन्य प्रेम-काव्यो मे भी है। यदि यह सत्य है तो श्यामा हमारे दैवी सम्मान की ही अधिकारिणी है, किन्तु काव्य मे वर्णित प्रेम और ठाकुर साहब का व्यक्तिगत जीवन इस प्रकार की विचारधारा के लिये भ्रम अवश्य प्रस्तुत कर देते हैं। ठाकुर साहब की भक्ति-भावना के लिये केवल 'ओंकार चन्द्रिका' प्रस्तुत की जा सकती है, किन्तु उक्त काव्य के भी

अन्त मे कवि करुण पश्चाताप करता है। फिर यह रचना उतरते जीवन की है। उनके जितने प्रेम-काव्य हैं वे सब उनके अट्ठाईस से बत्तीसवें वर्ष के मध्य की रचनाएँ हैं। इस प्रकार मेरा अपना दृष्टिकोण है कि भले ही श्यामा राधा का प्रतीक हो, किन्तु उनके प्रेम-काव्यो मे उनके लौकिक प्रेम की प्रतिच्छाया विद्यमान है। इस प्रकार ठाकुर साहब अपनी श्यामा के श्यामसुन्दर हैं। इसी कारण उनके वर्णित सयोग-वियोग के चित्रणो मे सजीवता है और वे सप्राण हैं।

ठाकुर साहब के प्रेम-काव्यो की उपर्युक्त विवेचना से इतना अवश्य स्पष्ट है कि उनमे उदात्त लौकिक प्रेम विद्यमान है, जिससे उसे स्वच्छन्दतावादी काव्य की कोटि मे सरलतापूर्वक रखा जा सकता है। ठाकुर साहब प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे। इससे उनके काव्य मे स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति स्थल-स्थल पर मिलती है। कालिदास के काव्यो के अनुवाद उनकी इस प्रवृत्ति के सम्पोषक हैं। 'मेघदूत', 'कुमार-सम्भव' दोनो ही पद्यबद्ध अनुवादो मे क्रमश यक्ष और यक्षिणी तथा शिव-पार्वती के पारस्परिक गाढ प्रणयों द्वारा स्वच्छन्दतावादी भावना उपलब्ध होती है। 'ऋतुसहार' मे कालिदास के प्रकृति-काव्य के बिम्ब पद्यबद्ध अनुवादो के द्वारा हिन्दी-काव्य में सफलतापूर्वक उतर आये हैं।

सस्कृत से 'हसदूत' एव विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय स्वच्छन्दतावादी अग्रेजी कवि बायरन के The Prisoner of Chillon का 'शिलान का बन्दी' नाम के अनुवाद भी परम्परावादी काव्य से विरहित स्वच्छन्दतावादी ही हैं।

'पीरा फेंटा', 'परम सुख आनन्द सदन', 'जपा श्रेनी कैसे कमल चरन' तथा 'तमालो लौ कालो पुरुष' श्रीकृष्ण ने राधा को मुग्ध कर लिया है। अपने इस अमर प्रभाव के छोड़ने के उपरान्त उन्होने तो मधुवन को सनाथ किया, इधर राधा चिन्ता-सरिता मे डूब गईं। सुख-दुख की सहानुभूति रखने वाली सखियाँ राधा की इस विरह-पीडा को परख यमुना के किनारे की चिर परिचित कुटी मे पहुँच गईं और नेत्र मूँदे कृष्ण-ध्यान मे लीन राधा को पा ही लिया।

सुषुप्ती मे जैसे खबर सब भूली बदन की।
भई राधा जैसे सुधि-बुधि सबै छूट तन की॥
लुटै सो धूलि पै सखिन तिहि घेरी चहुँ तहाँ।
तबै कालिन्दी हू नयन जल बाढ़ी मिलि जहाँ॥

हलेना डोलेना नहिन कछु बोले बिरहिनी।
खिलौना सी बैठी बिजन नलिनी पल्लव सनी॥

करे शका जी की कुशल शत ध्यावै निसि दिना।
अदेशो है भारी सखिन अति प्यारी पिय विना ॥

◇ ◇ ◇

तबै खोते नैना चलत कछु कठो सुरमई ।
गई आसा स्वासा सवन अब आसा जिय भई ॥
कहाँ है री मेरो उरज अँचरा घूँघट कहाँ ।
सुनै हर्षी सारी करत धुनि भारी मुद कहाँ ॥

(हसदूत के अनुवाद से)

'शिलन का वन्दी' अपने पिता के धर्म के प्रति उदार-भावना रखने के कारण अपने अन्य छ भ्राताओ के साथ वन्दी हुआ था। उसके पिता का अपराध था तो यही कि उसे धार्मिक अन्धविश्वास पसन्द न था। फलस्वरूप वह स्वय तो फाँसी पर चढाया ही गया, किन्तु आतक के कारण उसके सातो पुत्र भी वन्दी वना लिये गये। दारुण सन्ताप और वन्दी-गृह की यातनाओ के कारण उसके छ अनुज काल के गाल मे जा पहुँचे। केवल ज्येष्ठ भ्राता ही इस करुण गाथा को सुनाने के लिये अवशिष्ट रहा।

केश सुपेत एक निशि माँही नाहिन जरा जरायो है।
ताहू दुख अरु चिन्ता कारन जर्जर बदन लखायो है॥
जो न परै श्रम भारी मोकहँ नाहिन कछुक प्रयास।
वैठे-वैठे तऊ उविठगे प्रानहु लेत उसास॥
जो सब भोग भोगिबो ठहरो पिता धर्म के लाने जू।
परी जौन पग बेड़ी मेरे मौतहि मीत कहाने जू॥
सोतो सरी चढ्यो हठीलो तज्यो न प्रन निज आप।
वाही के हित मैं हू पायो दारुन दुख सताप॥
रहे सात भ्राता हम सिगरे पै अब रहे न एको हैं।
वच्यो एक हत्यारो मै ही गजी न पै निज टेक्यो हैं॥

◇ ◇ ◇

सात खभ गाथिक्क सांचे के रहे पुराने भारी हैं॥
शिलन भुँइहरे जो गभीर भुपी अँधियारी कारी है।

◇ ◇ ◇

प्रति खंभन मे लोह मूँदरी जामे इक इक साँकर है।
खन खनात भारी अति कारी दता सहित मुख जाकर है॥

देखु अजी वाके बाँके ए पैने ंत लखांय।
जोलौं प्रान रहैं तन मेरे तौ लौं कहु न मिटां ॥

'हसदूत' मे निस्सन्देह राधा-कृष्ण के चरित्र परम्परावादी कोटि मे ही आते हैं; किन्तु प्रेम की पीर से बाध्य होकर हम का भेजा जाना रूढिवादी परम्परा से बहुत दूर है। फिर कोई भी काव्य कवि के द्वारा परम्परावादी बनाया जा सकता है अथवा स्वच्छन्दतावादी बनाया जा सकता है। 'हस' को दूत बनाकर भेजने मे वैयक्तिकता का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित हो उठता है, इसमे सन्देह नही। इससे 'हम-दूत' का अनुवाद स्वच्छन्दतावादी काव्य की कोटि मे रखा जा सकेगा।

'शिलन के बन्दी' की उपर्युक्त तथा अवशिष्ट काव्य की पक्तियो मे रूढिवादिता पलायन कर उठी है। स्थल-स्थल पर वैयक्तिक भावना की स्पष्ट छाप है। कारागृह की यातनाओ के कारण काव्य प्रति करुण हो उठा है। इस पकार यह काव्य तथा 'दम्पति विलाप', 'कपोत विरहाष्टक', और 'कुत्ते का शोक काव्य' (The Dog's Elegy) आदि-आदि रचनाएँ इसी स्वच्छन्दतावादी काव्य की कोटि मे पहुँचेगी।

गतरात्रौ विडालेन भक्षिता ते कपोतिका।
हिंसकेन प्रिया सार्यं घृता नीत्ता समाप्तनाम्॥

('कपोत विरहाष्टक' से)

'कपोत विरहाष्टक' की उपर्युक्त पक्तियाँ ही कवि की स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्ति पर स्पष्ट प्रकाश डालती हैं। कवि का मस्तिष्क परम्परावादी विषयो मे ही सीमित न रहकर स्वाभाविक एव दैनिक विषयो की ओर भी आकृष्ट है। यह विशेपता ही उनको स्वच्छन्दतावादी कवि बनाने मे पूर्ण समर्थ है।

प्रकृति-कवि के रूप मे ठाकुर साहब द्वारा सृजित काव्य पर विचार करने से वह उसमे भी खरे उतरते हैं। उन्होने संस्कृत कवियो की प्रकृति-क्षेत्र में बिम्ब-ग्रहण की परिपाटी को अपना कर हिन्दी मे सर्वप्रथम प्रकृति को शृङ्गार के उद्दीपन-विभाव से मुक्त किया था। यही उनकी हिन्दी को स्वच्छन्दतावादी मौलिक देन है।

ठाकुर साहब हिन्दी के साथ संस्कृत के भी कवि रहे हैं। सस्कृत मे भी उन्होने अपनी भावनाओ को सफलतापूर्वक गूँथा है। प्रकृति-चित्रण के अतिरिक्त उन्होंने लोक-गीत मे भी उनका सफल प्रयोग किया है। उस प्रयोग पर दृष्टिपात करने से पूर्व ठाकुर साहब को प्रकृति-क्षेत्र मे देखना ही समीचीन होगा।

क्वचित्सरोजानि हरित्तृणानि
शुकाग नीलानि शुभानि शैले
लसन्ति गावश्च मृगा सुखेन
दर्भाश्चरन्तो विटपा कुलेऽस्मिन ।
—चित्रकूट वर्णन

साल ताल हिंताल तमालन बजुल धवा पुनागा ।
चंपक नाग विटप जंह फूलैं कनिकार रस पागा ॥
कंचन गुच्छ विचित्र सुच्छ जंह किसलै लाल लखाहीं ।
लताभार सुकुमार चमेलिन पाटल विलग सजाहीं ॥
तरुण अरुण सम हेम विभूषित दूषित नहिं कोउ भांती ।
वेदी लसत विदूर फटिक मय सलिल तीर लस भांती ॥
जंह पुरैन के हरित पात विच पंकज पांति सुहाई ।
मनु पन्नन के पत्र पत्र पैं कनक सुमन छवि छाई ॥
नील पीतजलजात पात पर विहंग मधुर सुर बोलें ।
मधुकर [माधवि मदन मत्तमन मंन अछर से डोलें ॥
हरिचन्दन चन्दन ललाम मय पीत नील वन वासैं ।
स्यदन विविध वदन जगवदन सुख कदन दुख नासैं ॥
(श्यामा-स्वप्न-—पृष्ठ १२८)

शवरीनारायण मे महानदी की बाढ का वर्णन—

मटा कीट कीटी कढ़ें धाम छोडी ।
चढ़े डार डारे मढ़े जोक दौडी ॥
कहूं वच्छ के हीन गैया डकारें ।
कहूँ वच्छ हू मातु माता पुकारें ॥ (प्रयय—५५)

पड़ाहू पडे भमि कापें दुखारी ।
सॅसे वच्छ धेनू मरें सीत भारी ॥
कहूं पख ओदे गिरे भूमि पंखी ।
गुहेरैन हेरें तिन्हें जो असंखी ॥ (प्रलय—-५६)

आई शिशिर वरोरु शालि अरु ऊखन संकुल धरनी ।
प्रमदा प्यारी ऋतु सुहावनी क्रौंच रोर मनहरनी ॥

मूंदे मन्दिर उदर झरोखे भानु किरन अरु आगी ।
भारी वसन हसन मुख वाला नवयोवन अनुरागी ॥

—शिशिर ऋतु

ऊपर के प्रकृति-परक सभी उद्धरण ठाकुर साहब के विभिन्न काव्यो से उद्धृत किये गये हैं। कवि ने प्रकृति के स्वरूप के प्रति न्याय करके उसके सार्वभौम रूप को पाठको के समक्ष रखने का प्रयास किया है। रीतिकालीन एव अपने समकालीन कवियो के समान उनकी प्रवृत्ति सीमित नही। उन्होने प्रकृति के 'सत्य शिव सुन्दर' को व्यक्त करके अपने हृदय की विशालता और सहृदयता का प्रस्फुटन किया है। इस सम्बन्ध में प्रकृति के रमणीय दृश्यो ने भी उन्हें काफी प्रभावित किया और प्रेरणाएँ दी हैं। प्रकृति के उदर से जिन्होने जन्म लिया हो, प्रकृति के अक मे जो पल्लवित हुए हो और प्रकृति का विस्तृत क्षेत्र ही जिनका कार्य-क्षेत्र रहा हो—वह व्यक्ति प्रकृति के सम्बन्ध मे अपने नेत्र कैसे मीच सकता है। फलस्वरूप सस्कृत के कवियो के समान उन्होंने बिम्ब ग्रहण कर प्रकृति-विपयक काव्य के सम्बन्ध मे अपना नया दृष्टिकोण हिन्दी-काव्य मे प्रस्तुत किया। इस प्रकार इस क्षेत्र मे भी उनका स्वच्छन्दतावादी स्वरूप सुरक्षित है।

भारतेन्दु के समान ठाकुर साहब ने भी सस्कृत को गजल जैसे लोकगीत मे सफलतापूर्वक उतार कर अपनी रसिक प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

वसन्तश्चारुरायातो मयानग प्रदीपोऽयम् ।
प्रभाते वे प्रवातोऽपि निकु जे भृ ग गु जोऽयम् ॥१॥
वने कच्छे पुरे पराये नदी तीरे तमालेऽपि ।
गिरौ गोदावरी कूले लसत्थाहो रसालोऽयम् ॥२॥
लसत्कालिदका फूले फदम्बाना कदम्वेसु ।
कलापि कोकिल कूजत्यजस, भृ भृ ग पु जोऽयम् ॥३॥
चलन्मदे समीरे हे शुभे वृन्दावने रम्ये ।
लतापत्रान्तरे नप्त विलीनश्चैत्र चन्द्रोऽयम् ॥४॥
क्वसा रासस्थली पुराया क्वैव वशी निनादोऽपि ।
निशा सा क्वास्ति कल्याणी क्व हा मे कृष्णचन्द्रोऽयम् ॥५॥
क्वा सा रावा क्वसा गोपी क्व वासा गोकुलारम्या ।
क्व वासस्तव विहगाना क्व वाशानोऽप्यनाथोऽयम् ॥६॥

सतृष्णा वर्त्तते दीना विना कृष्णान्तु वृन्दैषा ॥
सनाथा द्वारका ज्ञाता विनाथो मोहन सोऽयम् ॥७॥[1]

'न बोसा देने आना है न दिल बहलाने आता है' की ध्वनि पर ठाकुर साहब ने इस ग़ज़ल का निर्माण किया था। छन्दो के सम्बन्ध मे उनके इस प्रकार के प्रयोग और भी हो सकते है, किन्तु जब तक ठाकुर साहब का सम्पूर्ण साहित्य प्रकाश मे नही आता है, इस सम्बन्ध मे कुछ भी कहना अनधिकार चेष्टा ही होगी।

भारतेन्दु, प्रेमघन एव अन्य समसामयिक कवियो के समान ठाकुर साहब ने भारतवर्ष की अत्यधिक प्रशसा की है—

भुव-मधि जम्बू-द्वीप दीप सम अति छवि छायो।
तामे भारत-खण्ड मनहु विधि आप बनायो॥
ताहू मे अति रम्य आरजावर्त मनोहर।
सकल कर्म की भूमि धर्मरत जहँ के नरवर॥
मनु वाल्मीकि व्यासादि से पूजनीय जहँ के अमित।
भे मनुज अबो जग के सबै मानत जिनको आन नित॥१॥

जहँ हरि लिय अवतार राम-कृष्ण रूप धरि।
जहँ विक्रम, बलि, भोज धरम नप गे कीरति करि॥
जहँ की विद्या पाय भये जग के नर शिक्षित।
जहँ के दाता सदा करत पूरन मन-इच्छित॥
जहँ गगा-सी पावन नदी हिम-सों ऊँचो सैलवर।
जहँ रत्न-खानि अगनित लसत मानहु मानहु मनिमय किलघर॥२॥[2]

इस प्रकार अपने समकालीन कवियो के समान ठाकुर साहब भी देश के प्रति आश्वस्त हैं। उन्हे भी यहाँ की सस्कृति, सभ्यता एव ज्ञान पर गर्व है जिन के कारण देश विश्व मे शिरोधार्य रहा है। वस्तुत इस भावना ने ही देश मे राष्ट्रीय भावनाओ के प्रसार और प्रचार मे पूर्ण सहयोग दिया है।

ठाकुर साहब ने महर्षि कपिलकृत साख्यकारिका का ज्ञान प्रदीपिका एव वाल्मीकि रामायण के कुछ स्थलो के छन्दोबद्ध अनुवाद किये हैं। वे रचनाएँ परम्परावादी एव रूढिवादी भावनाओ से ओत-प्रोत हैं। इससे वे रचनाएँ

१ ठाकुर साहब की सस्कृत गजल—'प्रहरी' जबलपुर, १५ अगस्त, १९४६।
२. ठाकुर जगमोहनसिंह—'ऋतुसहार'।

शिल्पी परम प्रवीण मातृ-मंदिर-निर्माता ।
अभिनव-लेखन-कला-लोक के चित्र-विधाता ॥
उपयोगी साहित्य आपने लिखा निभाया ।
सेवा मे ही सरस्वती के जन्म बिताया ॥
हिन्दी भाषा के सदा लगे रहे उद्धार मे ।
ऋषि दधीचि सम अस्थियां दे दीं पर उपकार मे ॥

अब द्विवेदी-युग के उन काव्यो को देखना है, जिनके कारण उनकी कीर्ति अक्षुण्ण रह सकी है । उन्होने भाषा के निर्माण, छन्दो के प्रयोग एव विषयो की इतिवृत्तात्मकता के सम्बन्ध मे अथक परिश्रम किया है ।

द्विवेदी जी के प्रयास से ही खडी बोली को व्याकरण-सम्मत रूप प्राप्त हुआ । निस्सन्देह भाषा-निर्माण की यह महान् चेष्टा थी । काव्य के क्षेत्र मे भी इस विशुद्ध भाषा का सम्मान बढा । हरिऔध, रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त एव सरस्वती के अन्य प्रेमियो कवि खडी बोली को प्रधानता देकर चले । इसके अतिरिक्त छन्दो के प्रयोगो मे भी परिवर्तन हुए । महावीरप्रसाद द्विवेदी एव मन्नन द्विवेदी गजपुरी ने संस्कृत वृत्तो को अपनाने का प्रोत्साहन दिया ।

भाषा और छन्द आदि के सम्बन्ध मे जो उपर्युक्त संकेत है, निस्सदेह वे भारतेन्दु-युग के ही विकसित रूप हैं । उस युग मे भाषा के क्षेत्र मे सरल शैली एव लोक-प्रचलित छदो को अपनाकर, जिस स्वच्छदतावादी आदोलन का बीज वपन हुआ था, इस युग मे आकर उस आन्दोलन मे विराम लग गया । विशुद्ध सस्कृत-गर्भित भाषा एव शास्त्रीय छन्दो की दुरूहता का ही यह परिणाम हुआ कि हरिऔध जी को 'प्रिय प्रवास' की भूमिका मे ही सरल शैली और प्रचलित छन्द मे 'वैदेही वनवास' लिखकर जनता-जनार्दन को प्रसन्न करने का वचन देना पडा था ।

भाषा एव छन्दो के सम्बन्ध मे शास्त्रीयता पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित हो ही चुकी थी । विषयो के क्षेत्र मे भी सर्वत्र परम्परागत विषय ही मान्य हुए । इस युग के परम्परागत काव्य मे नैतिक एव चारित्रिक काव्य की प्रधानता मिलेगी । राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत और अतीत के गौरव को प्राप्त करने के लिए नीति, चरित्र, कर्तव्य एवं धर्म-सम्बन्धी उपदेशात्मक रचनाएँ पाठको के लिए सृजित हुईं । यह पुराण एव इतिहास से ली हुई होती थी । उनके द्वारा केवल सामाजिक भाव ही साहित्य के समक्ष आ सके । वैयक्तिक अनुभूति का रूप उपेक्षित ही रहा ।

द्विवेदी-युग के उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि भाषा, छन्द एव विषय आदि सभी में स्वीकृत शास्त्रीयता का स्थूल स्वरूप ही सामने आ रहा था। यह वास्तव मे भारतेन्दु-युग की परम्परागत प्राचीन परिपाटी का ही अगला कदम है।

यो भारतेन्दु-युग की प्रेरित स्वच्छन्दतावादी धारा निष्प्राण अवश्य नही हो गई थी ; किन्तु उसके प्रवाह मे सामयिक व्यवधान अवश्य आ गया। इस सामयिक प्रतिरोध को विवेचित करना ही इस अध्याय का उद्देश्य है।

इस स्थल पर यह समझ लेना अभीष्ट होगा कि द्विवेदी-युग की काव्य-धारा के दो पक्ष थे। एक पक्ष द्विवेदी काव्य-मण्डल से सम्बन्ध रखता था और द्वितीय द्विवेदी काव्य-मण्डल के बाहर का था। द्विवेदी जी की उपर्युक्त शास्त्रीयता के पक्ष मे द्विवेदी-काव्य-मण्डल के ही कवि थे, जिनमे कामताप्रसाद गुरु, रामचरित उपाध्याय, लाला भगवानदीन एव मैथिलीशरण गुप्त आदि प्रमुख हैं। द्वितीय पक्ष के कवि इस सकीर्ण शास्त्रीयता के विरोधी थे। उनमे श्रीधर पाठक जी के अतिरिक्त राय देवीप्रसाद पूर्ण, रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पाण्डेय, मुकुटधर पाण्डेय एव बदरीनारायण भट्ट आदि हैं। वस्तुत इस द्वितीय पक्ष ने ही स्वच्छन्दवादिता को गतिशील रखा।

हाँ, इस स्थल पर यह उल्लेख कर देना भी उचित होगा कि द्विवेदी जी के इस शास्त्रीय प्रतिरोध के विवेचन में द्विवेदी-काव्य-मण्डल के कवियो और युग की विषय तथा अभिव्यजना-सम्बन्धी विवेचना सम्मिलित भी करली गई है। इससे यह भी स्पष्ट हो सकेगा कि द्विवेदी जी के अतिरिक्त उनका भी व्यक्तित्व था तथापि वे अपने युग-नियामक की ओर ही प्रवृत्त थे।

स्वच्छन्दवादिता के प्रतिरोधी शास्त्रीय तत्व

१. भाषा के क्षेत्र में

गद्य-साहित्य मे व्रजभाषा के स्थान पर खडी बोली का सन्निवेश भारतेन्दु-युग का एक महान् प्रयोग था। उस युग मे भारतेन्दु एवं उनकी गोष्ठी द्वारा खडी बोली गद्य-साहित्य के विभिन्न अगो मे प्रयुक्त हुई थी। अभ्यास से जब यह भाषा गद्य-साहित्य मे मँज गई और लोकप्रियता के कारण व्रजभाषा अपना सुहाग खडी बोली को सौंपकर अस्तित्व विहीन हो गई तब वह गद्य-साहित्य तक ही सीमित होकर न रह गई। अपना क्षेत्र विस्तृत करने के लिए उसने अपने लोकप्रचलित रूप को प्रदर्शित कर अपना सर्वसुलभ रूप व्यक्त किया। फलत

गद्य और पद्य की भाषा की विषमता को दूर करने के लिए एक आन्दोलन का सूत्रपात हो उठा। 'हिन्दोस्थान' एव 'भारत-मित्र' के अतिरिक्त ब्रजभाषा और खडी बोली के पक्ष और विपक्ष मे 'ब्राह्मण', 'बिहार-बन्धु' एव 'पीयूष-प्रवाह' आदि पत्रो मे कवि-कोविदो के द्वारा अपने-अपने विचार प्रकट किये गये। काव्य के क्षेत्र मे खुसरो, कबीर, रहीम एव सूदन द्वारा सस्थापित खडी बोली की परम्परा थी ही। इसलिये खडी बोली इस क्षेत्र के उपयोग के लिये अनुपयुक्त सिद्ध न हुई। भारतेन्दु-युग मे नवीन विचारो के सरक्षण स्वरूप इसका प्रयोग हो ही चुका था, जिनका दिग्दर्शन विगत पृष्ठो मे हो चुका है। खडी बोली के काव्य की इतनी प्रगति हो जाने पर भी उसके प्रयोग मे शैथिल्य एव त्रुटियाँ थी। 'सरस्वती' के छठे भाग के ग्यारहवे अक मे उस समय तक प्राप्त लेखको की त्रुटियो के आधार पर द्विवेदी जी ने अपना प्रसिद्ध निबन्ध 'भाषा और व्याकरण' प्रकाशित किया। बालमुकुन्द गुप्त ने द्विवेदी जी की त्रुटियो का उल्लेख कर उनकी मजाक बनाई। वस्तुत द्विवेदी जी एव गुप्त जी मे एक विवाद खडा हुआ, जिसने खडी बोली मे व्याकरण-असम्मत रूपो मे सुधार प्रस्तुत किये। खडी बोली की प्रगति के लिए यह मोड बडा ही महत्वपूर्ण था।

सर्वश्री अयोध्याप्रसाद खत्री एव श्रीधर पाठक द्वारा काव्य-क्षेत्र मे खडी बोली के प्रयोग का आन्दोलन १८८८ ई० से चल पडा था। द्विवेदी जी ने अपने 'सरस्वती' सपादन-काल मे इस दिशा मे विशेष कार्य किया। इससे द्विवेदी-युग की यह उल्लेखनीय घटना है। ८ मार्च १८८८ ई० के 'हिन्दोस्थान' मे श्रीधर पाठक, प्रतापनारायण मिश्र का इन शब्दो मे प्रतिवाद कर चुके थे—"गद्य और पद्य की भिन्न-भिन्न भाषा होना हमारे लिये उतना अहकार का विषय नही है जितना लज्जा और उपहास का है कि जिस भाषा मे हम गद्य लिखते हैं उसमे पद्य नही लिख सकते।"

यही दृष्टिकोण आचार्य द्विवेदी जी का भी था।

"यह निश्चित है कि किसी समय बोलचाल की हिन्दी भाषा ब्रजभाषा की कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी। इसलिए कवियो को चाहिए कि वे क्रम-क्रम से गद्य की भाषा में भी कविता करना आरम्भ करें। बोलना एक भाषा और कविता मे प्रयोग करना दूसरी भाषा, प्राकृतिक नियमो के विरुद्ध है, जो लोग हिन्दी बोलते हैं और हिन्दी ही के गद्य-साहित्य की सेवा करते हैं उनके पद्य मे ब्रज की भाषा का आधिपत्य बहुत दिनो तक नही रह सकता।"[1]

---

१. महावीरप्रसाद द्विवेदी—'रसज्ञ रजन'—कवि-कर्त्तव्य, पृष्ठ २०।

द्विवेदी जी का उद्‌बोधन बडा ही प्राकृतिक एवं व्यावहारिक था। फलत. कविता-क्षेत्र मे थोडे ही समय मे इसका सुन्दर सौष्ठव अधिष्ठित हो उठा और यह सर्वत्र सम्मानित होने लगी। खडी बोली के काव्य के प्रचार एव प्रसार के लिये श्रीधर पाठक देवदूत थे और उनका खडी बोली का काव्य वरदान स्वरूप था।

खडी बोली जितनी प्रकाश मे आती गई उतनी ही व्रजभाषा पृष्ठभूमि मे पहुँचती गई। खडी बोली के सौभाग्य से द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' का सम्पादन स्वीकार कर उसके द्वारा भाषा का आन्दोलन जाग्रत रखा। १६ अक्टूबर १६०० ई० मे आचार्य द्विवेदी जी की 'बलीवर्द' नाम की प्रथम खडी बोली की कविता 'श्री वेंक्टेश्वर समाचार' मे प्रकाशित हुई।

बलीवर्द, तुम पशु होने से अविवेकी कहलाते हो,
मद पर भी निज उन्मदता से विजय-बडाई पाते हो।
साभिमान धनवान पास भी नहीं विवेक फटकता है,
अहकार-मद मे वह अपने चूर सर्वदा रहता है॥[1]

'बलीवर्द' के उपरान्त 'हिन्दी बगवासी' मे प्रकाशित 'मासाहारी' को हटर (१६००) छोडकर द्विवेदी जी काव्य-क्षेत्र मे खडी बोली की रचनाएँ ही प्रस्तुत करते रहे। इस सम्बन्ध मे उनके निम्न सिद्धात थे।

"कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिये, जिससे सब कोई सहज मे समझ ले और अर्थ को हृदयङ्गम कर सके। यदि इस उद्देश्य ही की सफलता न हुई तो लिखना ही व्यर्थ हुआ। इसलिये क्लिष्ट की अपेक्षा सरल लिखना ही सब प्रकार वाछनीय है। कविता लिखने मे व्याकरण के नियमो की अवहेलना न करनी चाहिये। मुहावरे का भी विचार रखना चाहिये।...विषय के अनुकूल शब्द स्थापना करनी चाहिये। रसायन सिद्ध करने मे आँच के न्यूनाधिक होने से जैसे रस बिगड जाता है वैसे ही यथोचित शब्दो का उपयोग न करने से काव्य रूपी रस भी बिगड जाता है। गद्य और पद्य की भाषा पृथक्-पृथक् न होनी चाहिये।"[2]

१. महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'द्विवेदी काव्य-माला', बलीवर्द, पृ० २७५ (इं० प्रेस)।
२ " " रसज्ञ रंजन, 'कवि कर्तव्य' के अन्तर्गत (भाषा) साहित्य रत्न भडार, आगरा।

काव्य की भाषा के सम्बन्ध मे उपर्युक्त अंशो से सभी सहमत हो सकते हैं, क्योंकि जो कुछ लिखा जाता है इसी अभिप्राय से लिखा जाता है कि रचना मे सन्निविष्ट भाव दूसरे समझ लें। यदि इस उद्देश्य की सफलता न हुई तो लिखना ही व्यर्थ हुआ।

द्विवेदी जी ने सदैव ही शुद्ध व्याकरण-सम्मत भाषा लिखने का आग्रह किया। वह स्वयं इस मार्ग के साधक थे। उनके द्वारा भाषा प्राञ्जल भी बनाई गई। खड़ी बोली के उनके प्रारम्भिक काव्य मे जो शैथिल्य भी था वह दूर हो गया। विशुद्धता के मापदण्ड को अपनाने के कारण द्विवेदी जी को काव्य मे उपर्युक्त छन्दो के सम्बन्ध मे भी नये प्रस्थान करने पड़े थे। खड़ी बोली के प्रोत्साहन स्वरूप उर्दू मिश्रित हिन्दी अथवा उर्दू छन्दो मे ही हिन्दी के प्रयोग भारतेन्दु-युग ही मे मिलने लगे थे। उर्दू के छन्दो मे द्विवेदी-युग मे भी रचनाएँ प्रस्तुत हो रही थीं —

चार डग हमने भरे तो क्या किया,
है यहां मैदान कोसों का अभी।
काम जो हैं आज के दिन तक हुये,
हैं न होने के बराबर वे सभी ॥ (हरिऔध)

(नागरी प्रचारिणी सभा के भवन-प्रवेश के समारोह मे पठित)

न बीबी बहुत जी मे घबराइये,
सँभलिये जरा होश मे आइये।
कहो क्या पडी तुमपै उफ़ताद है,
सुनाओ मुझे कैसी फरियाद है।[1]

उर्दू-पद्धति पर लिखी जाने वाली कविताओ के यह दो रूप अभी तक प्रचलित थे, किन्तु इनमे वर्णात्मकता का रूप विद्यमान था। लावनी आदि जैसे प्रचलित जन-गीत मे खडी बोली का विशुद्ध रूप अवश्य सुरक्षित था। आचार्य द्विवेदी जी ने खडी बोली को प्रशस्त चौराहे पर खडा करने के लिये संस्कृत-वृत्तो को स्वयं अपनाया और दूसरो को अपनाने के लिये प्रेरणा भी दी।

बिना याचना के जो कोई स्वयं सलिल ले आता था।
सरस शशी का किरण-जाल जो यथा समय मिल जाता था॥

---

१ बालमुकुन्द गुप्त, 'उर्दू को उत्तर', 'कविता कौमुदी', भाग २, पृष्ठ २०९ (१९००)।

उसे छोड़ कर शैल सुता ने और न कुछ मुख मे डाला।
वृक्षो के समान, आकाशी-वृत्ति-व्रत उसने पाला ।।
(आचार्य द्विवेदी—'कुमारसम्भव-सार')

इस परम्परापालन मे हरिऔध जी क्लिष्ट हो गये हैं।

सद्वस्त्रा-सद्लकृता-गुणयुता - सर्वत्र-सम्मानिता।
रोगी वृद्ध जनोपकार-निरता सच्छास्त्र चिन्तापरा ।।
सद्भावतिरता अनन्य हृदया सत्प्रेम-सपोषिका।
राधा थीं सुमना प्रसन्न वदना स्त्री जाति रत्नोपमा ।।
(हरिऔध—'प्रिय प्रवास')

द्विवेदी-युग की भाषा अपेक्षाकृत कृत्रिम हो गई। उसमें वैसी सरलता तथा प्रासादिकता नही रह गई जैसी श्रीधर पाठक की स्वच्छन्दतावादी कृतियो के मध्य मे थी।

काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रगति मे लोक-भाषा आवश्यक ही नही अनिवार्य है। सच तो यह है—जब तक जन-समाज के विषय जन-भाषा की स्वाभाविक अभिव्यजना पर आधारित हैं, तब तक स्वच्छदवादिता सप्राण है। अन्यथा भाषा मे कृत्रिमता, अस्वाभाविकता और आलकारिकता के समावेश से काव्य की स्वच्छन्दता पर पटाक्षेप पड़ जावेगा।

'भारतेन्दु-युग' की अपेक्षा 'द्विवेदी-युग' मे भाषा की गठन और विशुद्धता का विशेष आग्रह होने के कारण स्वच्छन्दवादिता का पथ अवरुद्ध हो उठा, जिससे भारतेन्दु-युग की अभिप्रेरित स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति मे एक सामयिक व्यवधान उपस्थित हो गया।

स्वच्छन्दवादिता के प्रतिरोधी शास्त्रीय तत्व

२. छन्द के विधान मे

विषय और भाषा के समान ही 'भारतेन्दु-युग' के छन्द-विधान मे भी परिवर्तन प्रस्तुत हो चुके थे। वीरगाथा एव भक्तिकाल के चिर प्रचलित छन्दो का सफल प्रयोग करते हुए भी भारतेन्दु जी ने बगला के 'पयार' एव खडी बोली तथा उर्दू मे फारसी की 'बहरो', 'गजलो' एव 'लावनी' छन्दों मे कविताएँ की थी। चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन' ने भी भारतेन्दु जी के समान ही भक्ति-काल की पद-शैली को अपनाया, किन्तु उनके द्वारा गेय काव्य तत्कालीन

किसी कवि से परिमाण मे अधिक रचा गया। सगीत की प्रचलित राग-रागनियो (गजल, ठुमरी, खिमटा एव पजाबी-प्यार आदि) मे उन्होने गेय काव्य की रचना की, साथ मे जन-गीतो (लावनी, कजली, होली, कबीर आदि) मे कविता करके वह लोक-भूमि पर भी उतर आये। जन-गीतों को काव्य का आधार बनाना वस्तुत काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति थी।

छन्द और भाषा-विषयक इस स्वच्छन्दवादिता का विरोध प० श्रीधर पाठक के प्रतिवाद मे प० प्रतापनारायण मिश्र एव प० राधाचरण गोस्वामी ने किया था। प्रतापनारायण मिश्र का छन्द-विधान के सम्बन्ध मे निम्न कथन था—

"खडी बोली मे फारसी छन्दो के सिवाय कोई छन्द बनाइये तो जान पडे कि हमारी खेलती-कूदती बोली (ब्रजभाषा) के आगे आपकी खडी बोली एक मिनट खडी रहेगी। यदि इन्साफ कोई वस्तु है तो उसका ध्यान करके कहिये कि जो भाषा लाखो छन्दो मे से इक्कीस व बाइस छन्दो मे काम आ सकती है उस भाषा को कौन बुद्धिमान् हिन्दी कविता के योग्य कह सकता है।"[1]

राधाचरण गोस्वामी का छन्दो के विषय मे यह दृष्टिकोण था—

"अब इस प्रकार की भाषा मे छन्द रचना करने मे कई आपत्ति है। प्रथम तो मात्रा के कवित्त, सवैये आदि छन्दो मे ऐसी भाषा का निर्वाह नही हो सकता और यदि किया भी जाता है तो बहुत भद्दा मालूम होता है। तब भाषा के प्रसिद्ध छन्द को छोडकर उर्दू के बेत, शेर, गजल आदि का अनुकरण करना पडता है।"[2]

उपर्युक्त के सम्बन्ध मे प० श्रीधर पाठक का यह विश्वास था—"घनाक्षरी, सवैया इत्यादि के अतिरिक्त अनेको छन्द ऐसे हैं कि जिनमे खडी बोली की कविता बिना कठिनाई और बडी सुघराई के साथ आ सकती है।"[3]

'भारतेन्दु-युग' मे लावनी तथा अन्य जन गीतो मे रचना हो रही थी। स्वय उसी परम्परा-पालन मे श्रीधर पाठक ने 'एकान्तवासी योगी' का लावनी छन्द में सफल अनुवाद किया था। पाठक जी इस छन्द मे विशुद्ध खडी बोली प्रयोग कर सकने के कारण अन्य लावनी रचयिताओ से अधिक मौलिक सिद्ध हुए।

"भारतेन्दु काल की सध्या अर्थात् उन्नीसवी शताब्दी (ई०) के अन्तिम चरण

१ हिन्दुस्थान, दिसम्बर १८८७।

२ हिन्दुस्थान, नवम्बर १८८६।

३. हिन्दुस्थान, २० दिसम्बर १८८७।

मे एक नई प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ था। वह थी सस्कृत वृत्तो (वर्णिक छन्दो) का नवोत्थान।"[1]

इस नवोत्थान के विषय मे 'नई धारा' के प्रथम उत्थान के अन्तर्गत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इङ्गित किया है।

"मैं समझता हूँ कि हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल मे सस्कृत वृत्तो मे खडी बोली के कुछ पद्य पहले पहल मिश्र जी (चम्पारन निवासी प० चद्रशेखर मिश्र) ने ही लिखे।"[2]

इसी परम्परा-पालन मे श्रीधर पाठक ने कालिदास के 'ऋतुसंहार' का बडा ही ललित एवं मधुर अनुवाद प्रस्तुत किया। सस्कृत-वृत्त अन्त्यानुप्रास विहीन होते हैं। कालिदास विरचित 'ऋतुसहार' के द्वितीय सर्ग के अन्तर्गत पावस का इस प्रकार से वर्णन है—

विलोचनेन्दीवरवारि विन्दुभि
निषिक्त बिम्बाधर चारुपल्लवा।
निरस्तमाल्याभरणानुलेपना
स्थिता निराशा. प्रमदा प्रवासिनाम्॥

उपर्युक्त का श्रीधर पाठक ने इस प्रकार अनुवाद किया—

नीले सरोज से नैनन सो,
अँसुआन की बूंदन को झर लावति।
बिम्ब से होंठन के सुठि पल्लव
सींचि तिन्हैं तिनसों अन्हवावति।
छांडि दियो है सिगार सबै,
नहि धारति माल न गन्ध लगावति।
छाये विदेस पिया जिनके,
तिया पावस सो ह्वै निरास वितावति॥[3]

स्वय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कालिदास के 'ऋतुसहार' के समान

१. डा० सुधीन्द्र, 'हिन्दी कविता मे युगान्तर', पृष्ठ ८७।
२. श्री रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ ५८६।
३. श्रीधर पाठक—'मनोविनोद', द्वितीय खण्ड, पृष्ठ २१ (रामदयाल अग्रवाल, प्रयाग १६०५ ई०)।

ही 'ऋतुतरंगिणी' लिखी है, जिसमें यत्र तत्र ऋतुसंहार के भावों का आधार लिया गया है। इसकी भूमिका में द्विवेदी जी ने लिखा है—

"देवनागरी भाषा के काव्यों की पुस्तक मालिका में जहाँ तक मेरे अवलोकन में आया है, विशेष करके दोहा, चौपाई, सोरठा, गीतिका, कवित्त, (घनाक्षरी), सवैया इत्यादि साधारण मात्रा वृत्तों के अतिरिक्त गणात्मक वृत्तों का बहुत ही कम उपयोग किया गया है। कहीं-कहीं भुजंगप्रयात, तोटकादि छन्द दीख पड़ते हैं, परन्तु ऐसी तो कदाचित् ही कोई पुस्तक होगी जिसमें आद्योपान्त संस्कृत योग्य (गण-वृत्त) छन्दों में ही काव्य-रचना हुआ हो। हाँ, कविवर केशवदास जी ने अपनी रामचन्द्रिका में अनेक गणात्मक छन्दों का प्रयोग किया है।"[1]

इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी मराठी काव्य के गणात्मक छन्दों से भी प्रेरित हुए हैं। उन्होंने ऋतुतरंगिणी के अतिरिक्त विहार-वाटिका (१८६०), महिम्न स्तोत्र (१८६१), श्री गंगालहरी (१८६१), देवी-स्तुति-शतक (१८६२), संस्कृत की रचनाएँ शिवाष्टक, प्रभात-वर्णनम्, कान्यकुब्ज लीलामृतम्, समाचारपत्र-सम्पादक-स्तव, सूर्य-ग्रहणम्, मेघमाला, आदि तथा खड़ी बोली की कितनी ही रचनाएँ संस्कृत-वृत्तों में की हैं। संस्कृत-वृत्तों के गणात्मक सिद्धान्तों का पालन करते हुए भी द्विवेदी जी ने काव्य को तुकान्त ही रखा है—

सवारि जीमूत मतंग मान
सुरेन्द्र-चापायुध वृन्द वान।
सशस्त्र देशेश्वर सो सुहायो,
विलोकियो पावस काल आयो॥[2]

द्विवेदी जी की पंक्तियाँ 'वंशस्थ' संस्कृत-वृत्त में रची गई हैं। ये पंक्तियाँ काव्य के निर्वाह में अवश्य निराश करती है; किन्तु हिन्दी-काव्य में संस्कृत-वृत्त संबंधी परम्परा के सूत्रपात और प्रगति में आदर्श हैं। द्विवेदी जी का यह छन्द केवल छन्द के लिये है, जब कि श्रीधर पाठक के ऋतुसंहार के अनूदित अंश भारतेन्दु-युगीन

---

१. 'द्विवेदी-काव्य-माला'—प्रथम संस्करण १९४०, पृष्ठ ७७ (इण्डियन प्रेस, प्रयाग)।

२ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी—'द्विवेदी-काव्य-माला', ऋतुतरंगिणी, वर्षावर्णन, पृष्ठ ८५।

स्वच्छन्दतावादी धारा के मेल मे ठीक बैठ जाते हैं। इस सम्बन्ध मे द्विवेदी जी की शास्त्रीय भावना ही व्यवधान प्रस्तुत करती है।

छन्द-पद्धति के सम्बन्ध मे द्विवेदी जी के विचार भी विचारणीय हैं।

"दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी मे बहुत हो चुका। कवियो को चाहिए कि यदि वे लिख सकते हैं तो इन के अतिरिक्त और भी छन्द लिखा करें। × × × इनके साथ-साथ सस्कृत-काव्यो मे प्रयोग किये गये वृत्तो मे से द्रुतविलबित, वशस्थ, वसन्ततिलका आदि वृत्त ऐसे हैं जिनका प्रचार हिन्दी मे होने से हिन्दी-काव्य की विशेष शोभा बढेगी। × × × पादान्त मे अनुप्रास-हीन छन्द भी हिन्दी मे लिखे जाने चाहिये। × × × सस्कृत ही हिन्दी की माता है। सस्कृत का सारा कविता-साहित्य इस तुकान्तवाद के बखेडे से बहिर्गत-सा है। अतएव इस विषय मे यदि हम सस्कृत का अनुकरण करें तो सफलता की पूरी-पूरी आशा है।"[1]

श्रीधर पाठक एव द्विवेदी जी के सस्कृत-वृत्तो के अनुकरण पर रचना करने पर भी अन्त्यानुप्रास के प्रति उनका विशेष अनुराग है। इसके अतिरिक्त द्विवेदी-युग मे गण-वृत्तो के आधार पर रचना करने वाले मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय एव लोचनप्रसाद पाण्डेय आदि ने भी इस सम्बन्ध मे द्विवेदी जी का ही अनुकरण किया है।

अन्त्यानुप्रास के बखेडे को अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'प्रिय प्रवास' मे तोडा है, उन्होंने सस्कृत-वृत्तो का अपने काव्य मे सफल प्रयोग किया—

दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु-शिखा पर थी अब राजती,
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा॥

कलित-किरण-माला बिम्ब सौंदर्यशाली।
सुगगन तल-शोभी दिव्य छायापती का॥
छविमय करती थी दर्शकों के दृगो को,
जब रवि-तनया ले अक मे कोडती थी॥[2]

---

१ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, 'रसज्ञ रजन', कवि-कर्त्तव्य, (साहित्य रत्न भण्डार, आगरा)

२ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध—'प्रिय प्रवास'।

पाती थी। फलत 'सरस्वती' की विनय अपने अभाव की पूर्ति के लिए इस प्रकार सुनाई पड़ी।

यद्यपि वेश सदैव मनोमोहक धरती हूँ,
वचनों की बहु भाँति रुचिर रचना करती हूँ।
उदर हेतु मैं अन्न नहीं तिस पर पाती हूँ,
हाय हाय आजन्म दुःख सहती आती हूँ॥

* * * *

उन्नति उन्नति उच्च सदा जो चिल्लाते हैं,
मुझ मे विविध प्रकार न्यूनता बतलाते हैं।
उनसे विनय विनीत यही मेरी, मन लावें,
भूखे भक्ति विशेष यही करके दिखलावें।[1]

हिन्दी-साहित्य मे मौलिक रचनाएँ उस समय बहुत कम थी, जिससे साहित्य बड़ा ही क्षीणकाय था। द्विवेदी जी कवि और लेखक-वर्ग को अपने-अपने क्षेत्र मे अग्रसर करने के लिये केवल प्रोत्साहन ही न दे रहे थे, किन्तु आदर्श स्वरूप काव्य और निबन्ध हिन्दी-विश्व के समक्ष प्रस्तुत भी कर रहे थे। मराठी और बंगाली के सम्पन्न साहित्य से उनका परिचय था। उनमे प्रयुक्त काव्य-प्रणालियो का हिन्दी-काव्य मे उनके द्वारा प्रचार किया गया। अंग्रेजी और संस्कृत-साहित्य से वे पूर्ण अवगत थे, जिससे आचार्य द्विवेदी जी का कथन था कि हिन्दी का कवि-वर्ग इन भाषाओं के साहित्य और भावनाओं से अपनी मातृभाषा को सम्पन्न करे और गौरवान्वित बनावे।

इँग्लिश का ग्रंथ-समूह बहुत भारी है।
अति विस्तृत-जलधि समान देहधारी है॥
संस्कृत भी सबके लिये सौख्यकारी है।
उसका भी ज्ञानागार हृदय हारी है॥
इन दोनों मे से अर्थ-रत्न ले लीजै।
हिन्दी के अर्पण उन्हें प्रेमयुत कीजै॥
वह माता-सम सब भाँति स्नेह अधिकारी।
इतनी ही विनती आज विनम्र हमारी॥[2]

---

१. 'सरस्वती,' फरवरी-मार्च, १९०३।
२. 'सरस्वती,' फरवरी, १९०५।

साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र को आचार्य द्विवेदी ने अपने रचनात्मक प्रयास से परिपूर्ण किया। उन्होने स्वय लिखा और दूसरो को भी लिखने की प्रेरणाएँ दी।

"जो कुछ कार्य द्विवेदी जी ने किया वह अनुवाद का हो, काव्य-रचना का हो, आलोचना का हो, अथवा भाषा-सस्कार का हो या केवल साहित्यिक नेतृत्व का ही हो, वह स्थायी महत्व का हो या अस्थायी—हिन्दी मे युग-विशेष के परिवर्तन और निर्माण मे सहायक हुआ है। उसका ऐतिहासिक महत्व है। उसीके आधार पर नवीन युग का साहित्यिक प्रासाद खडा किया जा सका है।"[1]

द्विवेदी-युग की काव्य-प्रगति हम निम्न धाराओ मे प्रवाहित होते देखते हैं (१) मानवीय अथवा आख्यान-प्रधान,(२) सामाजिक, (३) राष्ट्रीय,(४) प्राकृतिक आदि।

१—मानवीय अथवा आख्यान-प्रधान

भारतीय सदैव से भावुक रहे हैं और भावनाओ का उन्होंने सदैव ही सम्मान किया है। इसीमे विभूतियो से लेकर ईश्वर की कोटि मे आने वाले अवतारो तक सभी उनके श्रद्धा-भाजन रहे है। आदर्श-प्रधान इन कथानको के होने के कारण कवि सामयिक और समाजगत भावनाओ को इन चरित्रो मे समन्वित कर लेता है, जिससे यह चरित्र हमे अपने जीवन से अभिन्न प्रतीत होते हैं और रचना मे सन्निहित आदर्श हमे लोक-प्रगति के लिये पग-पग पर आश्वासन और उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

राम और कृष्ण के शास्त्रीय चरित्र भारतीय जीवन मे इतने घुल-मिल गये हैं कि आदि-युग से लेकर आज तक उनसे भारतीय प्राण-प्रतिष्ठा प्राप्त करते रहे हैं। महर्षि वाल्मीकि की रामायण के 'राम' तथा महर्षि वेदव्यास के महाभारत के 'कृष्ण' अपने आदि रूप मे मानव ही थे, किन्तु पौराणिक युग मे उनमे ईश्वरीय गुण आंके गये। अनन्तर भक्तिकाल मे आकर वे ईश्वर के अवतार ही मान लिये गये। राम की मर्यादा तथा कृष्ण की प्रेम-माधुरी ने जनता-जनार्दन का वडा ही हित किया।

द्विवेदी-युग मे हरिऔध जी ने खडी वोली मे सस्कृत-वृत्तो मे आधुनिक काल का महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' लिखा है। कृष्ण का चरित्र हरिऔध जी के दृष्टि-

---

१. श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, 'हिन्दी साहित्य वीसवी शताब्दी', श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ३ (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) प्र० सस्करण।

कोण से महापुरुष के रूप मे ही अंकित किया गया है। ब्रह्म के रूप में नही। काव्य के नायक एव नायिका कृष्ण तथा राधा दोनों ही समाज-सेवक एव समाज-सेविका के रूप मे चित्रित हैं। गोप और ग्वाले कृष्ण के सम्बन्ध मे उद्धव से निवेदन करते हैं—

विचित्र ऐसे गुण हैं ब्रजेन्द्र मे,
स्वभाव ऐसा उनका अपूर्व है।
निबद्ध-सी है जिनमे नितांत ही,
व्रजानुरागी जन की विमुग्धता॥

✿ ✿ ✿

अनूप जैसा घन-श्याम-रूप है।
तथैव वाणी उनकी रसाल है।
निकेत वे हैं गुण के, विनीत हैं,
विशेष होगी उनमे न प्रीति क्यो ?[1]

समाज-सेविका के रूप मे राधा का चरित्र भी 'प्रिय-प्रवास' मे बड़ा ही मधुर एव शिष्ट बन पड़ा है।

आराध्या थीं व्रज अवनि की, प्रेमिका विश्व की थीं।

'प्रिय प्रवास' मे मानवता एव सेवा-भावना की पूर्ण रक्षा हुई है। वस्तुत. 'प्रिय प्रवास' द्विवेदी-युग का एक सबल स्तम्भ है, जिसमे द्विवेदी जी के काव्य-विषयक सभी उद्देश्य पूर्ण हुए।

'प्रिय प्रवास' के समान ही 'साकेत' भी द्विवेदी-युग का महत्वपूर्ण काव्य है। यद्यपि उसकी समाप्ति १९३१ ई० मे हुई, किन्तु कवि के कथनानुसार इसकी रचना १५-१६ वर्ष पहले प्रारम्भ हो चुकी थी। इसीसे 'साकेत' भी हमारी विवेचना का विषय है।

साकेत के 'निवेदन' मे ही कवि को "आचार्य पूज्य द्विवेदी जी महाराज के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना मानो उनकी कृपा का मूल्य निर्धारित करने की ढिठाई करना है"—कहना पड़ा है। वस्तुत 'साकेत' के सृजन मे आचार्य द्विवेदी का गुप्त जी पर पूर्ण प्रभाव पड़ा है। उर्मिला तथा काव्य की अन्य उपेक्षिता नायिकाओ को लेकर कवीन्द्र-रवीन्द्र ने 'काव्यो की उपेक्षिताएँ' और आचार्य द्विवेदीजी ने 'कवियोकी उर्मिला-विषयक उदासीनता' नामक निबन्ध लिखे

---

१. हरिऔध—'प्रिय प्रवास', एकादश सर्ग।

हैं। द्विवेदी जी के निवन्ध से गुप्त जी को अत्यधिक प्रेरणायें मिली। फलत: उन प्रेरणाओ के आधार-स्वरूप ही 'साकेत' इस रूप मे हिन्दी-विश्व के समक्ष आ सका।

"हाय वाल्मीकि, जनकपुर मे तुम उर्मिला को सिर्फ एक वार, वैवाहिक वधू-वेश मे दिखाकर चुप हो वैठे। अयोध्या आने पर ससुराल मे इसकी सुधि यदि आपको न आई थी तो न सही, पर क्या लक्ष्मण के वन-प्रयाण-समय मे भी उसके दुखाश्रुमोचन करना आपको उचित न जंचा ·· अपने पति के परमाराध्य राम को राजसिंहासन पर आसीन देख उर्मिला को कितना आनन्द होता, इसका अनुमान क्या आपने नही किया? हाय, वही उर्मिला एक घटे वाद राम-जानकी के साथ निज पति को चौदह वर्ष के लिये वन जाते देख छिन्न-मूल शाखा की भाँति राज-सदन की एक एकान्त कोठरी मे भूमि पर लोटती हुई क्या आपको नयनगोचर नही हुई? फिर भी उसके लिये आपकी 'वचने दरिद्रता'।

"तुलसीदास जी ने भी उर्मिला पर अन्याय किया है। आपने भी इस विषय मे आदि-कवि का ही अनुकरण किया है। 'नाना पुराणनिगमागम सम्मत' लेकर जव 'रामचरितमानस' की रचना करने की घोषणा की थी तव यहाँ पर आदि-काव्य के ही वचनो का आधार मानने की वैसी कोई जरूरत न थी। आपने भी चलते वक्त लक्ष्मण को उर्मिला से नही मिलने दिया। माता से मिलने के वाद झट कह दिया—

'गये लषण जंह जानकि-नाथा'

"आपके इष्टदेव के अनन्य सेवक 'लषण' पर इतनी सख्ती क्यो? आपने कमण्डल के करुणा वारि का एक वूंद भी उर्मिला के लिये न रखा। सारा का सारा कमण्डल सीता को समर्पण कर दिया। एक ही चौपाई मे उर्मिला की दशा का वर्णन कर देते। उर्मिला को जनकपुर मे साकेत पहुचाकर उसे एकदम ही भूल जाना अच्छा नहीं हुआ।"[1]

फलत: 'साकेत' महाकवियो के द्वारा उपेक्षित उर्मिला के चरित्र को प्रधानता देकर चला है। इससे साकेत मे मौलिकता की उद्भावना भी हो सकी है।

'प्रिय प्रवास' एवं 'साकेत' दोनो महाकाव्यो मे अनेको नवीन आदर्श जोडे गये हैं। अभिनव जयदेव की राधा से हरिऔध की राधा कही अधिक कृती

१ आचार्य द्विवेदी—'रसज्ञ रजन', 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता।'

और सामाजिका है। 'साकेत' मे उर्मिला भी नहीं अधिक मुखर और अयोध्या की मर्यादा पूर्ण परम्परा को तोड़ती हुई प्रतीत होती है। इस प्रकार के नवीन परिवर्तन आधुनिक समाज-सेवी नारी के रूप मे प्रदर्शित होने के कारण विशेष हृदयग्राही हैं। इतने परिवर्तनो के समुपस्थित होने पर भी दोनों महाकाव्य ही भारत के अतीत के शास्त्रीय वातावरण मे बोझिल हैं। राम और कृष्ण के चरित्र मे वही आदर्शवादिता समाहित है जो त्रेता और द्वापर मे है।

१६०० ई० मे 'सरस्वती' पत्रिका के जन्म के साथ ही राजा रवि वर्मा और अनतर ब्रजभूषणराय चौधरी एव वामापदबन्द्योपाध्याय आदि के प्रत्येक अक मे पौराणिक चित्र निकलते थे। इन पौराणिक चित्रों पर द्विवेदी जी ने रचनाएँ की और नाथूराम शर्मा 'शकर', लाला भगवानदीन एव मैथिलीशरण गुप्त आदि से रचनाएँ कराईं। इस प्रकार चित्रकला एव काव्य का सुन्दर समन्वय और सामजस्य एक साथ ही हो उठा, जिसका पूर्ण श्रेय आचार्य द्विवेदी को है।

उपर्युक्त कलाकारो के चित्रो पर आचार्य द्विवेदी ने रम्भा, कुमुद सुन्दरी, महाश्वेता, इन्दिरा, ऊषास्वप्न, गौरी गगा, भीष्म एव प्रियवदा, शकर ने 'केरल की तारा' और वसन्त-सेना-विलास, गुप्त जी ने सलज्जा, गर्विता, मानती, सुकेशी, रत्नावली तथा रायदेवीप्रसाद पूर्ण ने 'रामचन्द्र जी का धनुर्विद्याशिक्षण', शकुन्तला जन्म, वामन आदि इतिवृत्तात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की। 'उत्तरा से अभिमन्यु की विदा' नामक चित्र को ही मैथिलीशरण गुप्त के 'जयद्रथ-वध' प्रस्तुत करने का श्रेय है।

पौराणिक आख्यान-प्रधान काव्य-धारा के साथ-साथ ही ऐतिहासिक कथानको की भी काव्य मे परिणति हुई। पौराणिक कथाओ के समान ही इन कथाओ से भी वीरता, त्याग एव धार्मिकता आदि के सबल प्रमाण उपलब्ध होते हैं। इस युग मे प्रसाद द्वारा 'महाराणा का महत्व,' कामताप्रसाद गुरु द्वारा 'शिवाजी', 'वीरागना', 'चाँदबीबी' और 'दुर्गावती' एव लाला भगवानदीन द्वारा 'वीर पचरत्न' एव सियारामशरण द्वारा 'मौर्य-विजय' के ऐतिहासिक काव्य लिखे गये। इन काव्यो मे देश-प्रेम, देश-भक्ति एव त्याग के ज्वलन्त उदाहरण मिलते हैं।

'मौर्य-विजय' खण्डकाव्य के अन्तर्गत भारतीय वीरता एव सास्कृतिक महत्ता का सफल दिग्दर्शन है—

अध्याय ६

द्विवेदी-युग में स्वच्छन्दतावादी काव्य और पं० श्रीधर पाठक

'आधुनिक युग' के प्रथम उत्थान (भारतेन्दु-युग) मे स्वच्छन्दवादिता जिन परिस्थितियो मे जिस मात्रा तक विकसित हो सकी, उसका वर्णन यथास्थल किया जा चुका है। काव्य-प्रगति के दृष्टिकोण से द्वितीय उत्थान (द्विवेदी-युग) विशेष अग्रसर और विकसित रहा है। फलत इस युग मे भी स्वच्छन्दवादिता पल्लवित हुई है, इसमे सन्देह नही। स्वय श्रीधर पाठक जो स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्ति के अग्रदूत हैं, प्रथम उत्थान की अपेक्षा द्वितीय उत्थान से अधिक सम्बन्धित रहे हैं। उनके अतिरिक्त द्विवेदी-काव्य-मण्डल के कवियो मे भी स्वच्छन्दवादिता की प्रवृत्तियाँ रही हैं, जिनका उल्लेख एव विवेचन इस प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय मे मिलेगा। द्विवेदी-युग की शास्त्रीय एव परम्परावादी काव्य-प्रगति मे द्विवेदी जी का सामन्तीय अनुशासन युग के अधिकाश काव्य को अनुशासित किए था। इससे उनकी शिष्य-परम्परा के कवि केवल उनकी रीतियो और नीतियो पर ही काव्य-सर्जना करते रहे। वे द्विवेदी जी की प्रवृत्तियो के बाहर जाने का साहस नहीं ही कर सके। परम्परावादी प्रवृत्तियो के साथ समानान्तर रूप से काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ भी प्रवाहित थी। फलस्वरूप द्विवेदी जी के आतक से यदि वे प्रथम प्रवृत्तियो के अन्तर्गत अनुशासित हो चल रहे थे तो द्वितीय प्रवृत्तियाँ भी उनको आकर्षण की प्रेरणा दे रही थी। इस कारण इनके कुछ लक्षण भी उनमे अकुरित हो उठे थे। इस दृष्टिकोण से हम हरिऔध जी (प्रिय प्रवास) एव गुप्त जी (साकेत) मे देखेंगे कि स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ उनमे किस अश तक विद्यमान थी। दोनो महाकाव्य

द्विवेदी-युग की आधार-शिला हैं। इनमे इनके द्वारा युग के प्रभाव भी स्पष्ट परिलक्षित हो उठेंगे।

यो दोनो महाकाव्यो के विषय भागवत एव रामायण पर आधारित होने के कारण परम्परावादी एव शास्त्रीय हैं। गुप्त जी ने द्विवेदी जी का अनुशासन होते हुए भी काव्य मे प्रगीतात्मक शैली को ही अपनाया है। हरिग्रौध जी यद्यपि द्विवेदी जी के अनुशासन से मुक्त थे और उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी था तथापि सस्कृत वृत्तो को अपनाने का जो आन्दोलन द्विवेदी जी द्वारा प्रारम्भ किया गया था, उसका सपोषण हरिग्रौध जी ने भी किया। इस प्रकार दोनो कवियो के परम्परावादी होते हुए भी गुप्त जी काव्य मे प्रयुक्त अपनी अभिव्यजना शैली मे हरिग्रौध जी से अधिक नवीन हैं, इस सत्य के होते हुए भी दोनो कवियो ने अपने-अपने काव्यो मे सहृदयता एव शालीनता अपनाकर नव-चेतना एव मानवता का स्वरूप प्रतिष्ठित किया है। फलस्वरूप भागवत की प्रेम-स्वरूपिणी राधा के स्थान पर प्रेमिका एव समाज सेविका राधा और रामायण महाकाव्य की उपेक्षिता उर्मिला के स्थान पर सहृदया एव विरहिणी उर्मिला लोक-भूमि पर उभर आने के कारण सहृदय पाठक के हृदय मे करुणा का उद्रेक करती हैं। अपनी इन परिस्थितियो के कारण ही वास्तव मे दोनो महाकाव्य नवीन से लगते है।

विप्रलभ श्रृगार प्रधान होने के कारण दोनो महाकाव्यो मे वैयक्तिकता की स्पष्ट छाप यत्र-तत्र मिलती है। इस दृष्टि से 'प्रिय प्रवास' मे 'पवनदूत' एव 'साकेत' मे नवम सर्ग विशेष-रूपेण उल्लेखनीय है।

हरिग्रौध के 'पवन दूत' एव कालिदास के 'मेघदूत' की परिस्थितियाँ एक ही हैं। मेघदूत मे प्रवासी यक्ष मेघ द्वारा अपनी प्रियतमा यक्षिणी के समीप अपनी स्मृति का सदेश भेजता है, जब 'प्रिय प्रवास' मे राधा उसी उद्देश्य से पवन को अपने सदेश का आधार बनाती है, किन्तु दोनो काव्यो मे उदात्त प्रेम का स्वरूप स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस प्रकार मेघदूत के समान 'प्रिय प्रवास' का यह स्थल भी परम्परागत चित्रण से पूर्ण मुक्त है।

पुष्प-सद्गन्ध को लेकर आने वाली प्रात कालीन सुपवन को राधा इस प्रकार अपने प्रियतम के लिये सदेश प्रदान करती हैं—

मेरे प्यारे नव जलद से कज से नेत्र वाले।
जाके आये न मधुवन से औ न भेजा सदेशा।

मैं रो रो के प्रिय विरह से वावली हो रही हूँ।
जाके मेरी सब दुख कथा श्याम को सुना दे ॥ (६-३३)
जो ऐसा तू नहिं कर सके तो क्रिया चातुरी से।
जाके रोने विकल बनने आदि को ही दिखादे।
चाहे लादे प्रिय निकट से वस्तु कोई अनूठी।
हा, हा, मैं हूँ मृतक बनती प्राण मेरा बचादे। (६-३४)

यदि इस स्थल पर पवन के स्थान पर अन्य कोई सप्राण व्यक्ति रहा होता तो सम्भवत यह विषय इतना मार्मिक न लगता। निर्जीव पवन के होने के कारण ही वस्तुत राधिका के प्रेमोद्वेलित हृदय से इस प्रकार की भावनाओ के निस्सरण की सुविधा उपलब्ध हो सकी है।

जो चित्रों मे विरह विधुरा का मिले चित्र कोई।
तो तू जाके निकट उसको भाव से यों हिलाना।
प्यारे होके चकित जिससे चित्र की ओर देखें।
आशा है यो सुरति उनको हो सकेगी हमारी। (६-६८)
कोई प्यारा कुसुम कुम्हला गेह मे जो पड़ा हो।
तो प्यारे के चरण पर ला डाल देना उसी को।
यों देना ऐ पवन बतला फूल-सी एक बाला।
म्लाना हो हो कमल-पग को चूमना चाहती है। (६-७०)
सूखी जाती मलिन लतिका जो धरा मे पड़ी हो।
तो पाँवों के निकट उसको श्याम के ला गिराना।
यों सीधे से प्रकट करना प्रीति से वंचिता हो।
मेरा होना अति मलिन और सूखते नित्य जाना। (६-७५)
पूरी होवें न यदि तुझसे अन्य बातें हमारी।
तो तू मेरी विनय इतनी मानले औ चली जा।
छूके प्यारे कमल पग को प्यार के साथ आजा।
जी जाऊँगी हृदय तल मे मैं तुझी को लगाके। (६-८२)

प्रेमाधिक्य के कारण ही राधा का व्यक्तित्व इस रूप मे प्रस्फुटित हुआ है, जो अपनी मधुरिमा को व्यक्त करने मे पूर्ण सफल है।

रामायण महाकाव्य के अन्तर्गत उर्मिला 'साकेत' के पूर्व तक पूर्ण उपेक्षिता ही रही। यह तो गुप्त जी को श्रेय है कि उर्मिला आज अपने पाठक की सहानुभूति की अधिकारिणी हो सकी है। उसका जो स्वरूप हमारे सामने है

उसमे उसकी मानवीय आत्मा बोलती है। जिस भय के कारण वाल्मीकि जी, गोस्वामी तुलसीदास जी एव केशवदास जी आदि ने उर्मिला को अपने काव्य का विषय नही बनाया था, उस भय का अतिक्रमण करके ही गुप्त जी ने उर्मिला के स्वरूप मे मानवता को सुरक्षित कर दिया है। कवि की इस सहृदयता के कारण ही साकेत के 'नवम सर्ग' के गीत मानवोचित हैं और यथार्थ की सामान्य भूमि पर आधारित हैं। इस सर्ग के प्रगीतो मे भी उर्मिला के व्यक्तित्व का प्रस्फुटन होता है।

दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि, पतग भी जलता है हा, दीपक भी जलता है।
सीस हिलाकर दीपक कहता।
'बन्धु', वृथा ही तू क्यों दहता।
पर पतग पडकर ही रहता।
कितनी विह्वलता है।
दोनों ओर प्रेम पलता है।
बचकर हाय, पतग मरे क्या ?
प्रणय छोडकर प्राण धरे क्या ?
जले नहीं तो मरा करे क्या ?
क्या यह असफलता है ?
दोनों ओर प्रेम पलता है।
(साकेत—नवम सर्ग)

प्रेम समर्पण चाहता है—यह भावना उपर्युक्त पक्तियो मे पूर्ण रूप से विद्यमान है। पतग तक अपने प्रियतम (आभा) को प्राप्त कर अपने प्राणो को होम देना ही श्रेयस्कर समझता है। वियोग की करुण व्यथा मे ग्रस्त होने की अपेक्षा सयोग काल का यह आनन्द श्रेष्ठ है। इससे उसमे मरना ही उचित है। उर्मिला भी इस प्रकार सयोग के लिये लालायित है।

आजा मेरी निंदिया गूंगी।
आ, मैं सिर आंखो पर लेकर चन्द खिलौना दूंगी।
प्रिय के आने पर आवेगी।
अर्ध-चन्द्र ही तू पावेगी।
पर यदि आज उन्हें लावेगी।

तो तुझसे ही लूंगी ।
आजा मेरी निंदिया गूंगी ।
(साकेत—नवम सर्ग)

विरह से दु:खिनी उर्मिला के जीवन मे निद्रा बडी ही महिमाशालिनी है। क्योकि उसके अक मे पहुँचकर वह अपने प्राण प्रियतम से साक्षात् कर सकेगी। इस प्रकार उसके वियोग का क्षय हो सकता है और सुख के क्षण आ सकते हैं, भले ही उन क्षणो की गिनती थोडी ही हो।

उर्मिला के व्यक्तिगत जीवन का यह दृश्य भी विचारणीय है, जिसमे वह अपने पारिवारिक जीवन मे पूर्ण सुखी है—

मै निज अलिन्द मे खडी थी सखि, एक रात,
रिमझिम बूंदें पड़ती थीं घटा छाई थी,
गमक रहा था केतकी का गन्ध चारो ओर,
झिल्ली झनकार यही मेरे मन भाई थी।
करने लगी मैं अनुकरण स्वनूपुरों से,
चचला थी चमकी घनाली घहराई थी।
चौंक देखा मैंने, चुप कोने मे खडे थे प्रिय,
माई ! मुख-लज्जा उसी छाती मे छिपाई थी।।
(साकेत—नवम सर्ग)

मर्यादित राजवश का वातावरण होते हुए भी पति-पत्नी का इस प्रकार का आचरण एव सम्पन्न परिवार मे विनोदी वार्तालाप यथार्थ जीवन के परिचायक हैं। अब तक राम-कथा मे काव्य-प्रणेताओ ने इस प्रकार के मानवीय चित्रणो के प्रति उदासीनता एव उपेक्षा ही रखी है।

दोनो कवियो ने राधा एव उर्मिला को मानवीय आधारशिला पर ही निर्मित किया है। उनके चरित्र विशेष प्रकार के हो गये हैं। इस प्रकार उनमे नव-चेतना का स्फुरण है और वे मानवेतर नही हैं। वे विरह-विदग्धा हैं। उनमे वैयक्तिकता का पूर्ण प्रस्फुटन हुआ है। उनका उदात्त प्रेम एव उनके मानसिक उदगार व्यक्तिवादी होने के कारण स्वच्छन्दतावादी काव्य के अन्तर्गत सरलतापूर्वक लिए जा सकते हैं।

द्विवेदी-युग मे प्रकृति को उसके वास्तविक स्वरूप मे देखने की प्रवृत्ति उपलब्ध होती है। भारतेन्दु-युग मे यह प्रवृत्ति रीतिकालीन परिपाटी से बोझिल

रही थी। उस युग मे ठा० जगमोहनसिंह एव प० श्रीधर पाठक मे ही उसी स्वच्छन्द निरीक्षण की कुछ प्रवृत्तियां थी, जिनमे प्रकृति को आलम्बन की कोटि मे रखा गया था। अन्यथा काव्य के क्षेत्र मे प्रकृति प्रेम का उद्दीपन ही करती थी। इस प्रकार उसका क्षेत्र बडा ही सकीर्ण कर दिया गया था, किन्तु 'द्विवेदी-युग' मे इस भावना मे परिवर्तन प्रस्तुत हुए। प्रकृति को उसके सजीव स्वरूप मे आंका गया। कवि ने उसमे भी सवेदनशीलता की अनुभूति की। यो इस क्षेत्र मे प० श्रीधर पाठक को विशेष सफलता मिली है। उन्होने प्रकृति के साथ न्याय करके उसके यथार्थ स्वरूप को काव्य मे रखा है।

यद्यपि प्रकृति को अलकारो, प्रेमोद्दीपन एव नैतिक उपदेशो आदि मे द्विवेदी-युग मे भी खीचा गया है और उन्हे काव्य का विषय बनाया गया है, किन्तु स्थल-स्थल पर उसके यथार्थ चित्रण भी विद्यमान है—

आ आ प्यारी सब ऋतुओं मे प्यारी।
तेरा शुभागमन सुन फूली केसर क्यारी।
सरसों तुझको देख रही है आंख उठाये।
गेंदे ले ले फूल खडे हैं सजे सजाये।
आस कर रहे हैं टेसू तेरे दर्शन की,
फूल-फूल दिखलाते हैं गति अपने मन की,
बौराई-सी ताक रही है आम की मौरी,
देख रही है तेरी बाट बहोरि-बहोरी॥[1]

इस प्रकार के सजीव चित्रण द्विवेदी-युग मे भारतेन्दु-युग की अपेक्षा कही अधिक मिलेंगे। इस प्रवृत्ति के अतिरिक्त इस समय के कवियो ने प्रकृति के चित्रणो को मधुर भी बनाने की पूर्ण चेष्टा की है।

हरिऔध जी ने सान्ध्य-वेला का, जिसमे क्रमश अन्धकार वृद्धि पर है, बडा ही सहृदयतापूर्ण वर्णन किया है—

अरुणिमा-जगती-तल-रजिनी।
वहन थी करती अब कालिमा।
मलिन थी नव-राग-मयी-दिशा।
अवनि थी तमसावृत्त हो रही।

---

१ श्री बालमुकुन्द गुप्त, 'वसन्तोत्सव' (कविता कौमुदी, भाग २ से उद्धृत)।

तिमिर की यह भूतल-व्यापिनी।
तरल-धार विकास-विरोधिनी॥
जन-समूह-विलोचन के लिये।
बन गई प्रति मूर्ति विराम की।[1]

उपर्युक्त के समान ही एक प्रात.वेला का वर्णन भी द्रष्टव्य है—

तारे डूबे तम टल गया छा गई व्योम लाली।
पक्षी बोले तमचुर जगे ज्योति फैली दिशा मे।
शाखा डोली तरु निचय की कज फूले सरो मे।
धीरे-धीरे दिनकर बढ़े तामसी रात बीती।[2]
फूली फैली लसित लतिका वायु मे मन्द डोली।
प्यारी-प्यारी ललित लहरें भानुजा मे विराजी।
सोने की सी कलित किरणें मेदिनी ओर छूटीं।
कूलो कुजो कुसुमित वनों मे जगी ज्योति फैली।[3]

इस प्रकार के यथार्थ चित्रण 'प्रिय प्रवास' के नवम सर्ग मे उपलब्ध है। 'पवन दूत' मे राधा द्वारा कृष्ण तक पहुँचने का जो मार्ग पवन को बतलाया गया है उसमे कवि की भावुक भावना प्रस्तुत है।

यो हरिऔध जी ने अपनी कोमल अभिव्यजना द्वारा प्रकृति के चित्रणो को और भी सजीव कर दिया है तथापि गुप्त जी प्रकृति-अन्तस् मे भी घुस सके हैं—उनका प्रकृति का निरीक्षण और भी मार्मिक है।

'चित्रकूट' का वर्णन करती हुई उर्मिला कहती है—

नहलाता है नभ की वृष्टि,
अंग पोंछती आतप-सृष्टि,
करता है शशि शीतल दृष्टि,

१. श्री हरिऔध—'प्रिय प्रवास', सर्ग १-३५-३६ (हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस) अष्टम संस्करण, पृष्ठ ७।
२. श्री हरिऔध—'प्रिय प्रवास', सर्ग ५-१ (हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस) अष्टम संस्करण, पृष्ठ ४५।
३. श्री हरिऔध, 'प्रिय प्रवास,' सर्ग ५-२ (हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस) अष्टम संस्करण, पृष्ठ ४५।

देता है ऋतुपति शृंगार,
ओ गौरव-गिरि, उच्च उदार।
तू निर्झर का डाल दुकूल,
लेकर कन्द-मूल-फल-फूल,
स्वागतार्थ सबके अनुकूल,
खड़ा खोल दरियों के द्वार।
ओ गौरव-गिरि, उच्च उदार।
विविध राग रंजित अभिराम,
तू विराग-साधन, वन धाम,
कामद होकर आप अकाम,
नमस्कार तुझको शत बार,
ओ गौरव-गिरि, उच्च उदार।[1]

उपर्युक्त पंक्तियो मे कवि ने चित्रकूट को मानवीय कोटि मे ही चित्रित करने का प्रयास किया है। आगे चलकर यह प्रवृत्ति ही कवियो को छायावाद एव रहस्यवाद के क्षेत्र तक खीचकर ले गई।

विरह के कारण रात्रि उर्मिला की योही जागते-जागते ही कट गई। आकाश-गामी सूर्य का सजीव और मार्मिक चित्रण देखिये—

सखि, नील नभस्सर मे उतरा,
यह हस अहा, तरता-तरता,
अब तारक-मौक्तिक शेष नहीं,
निकला जिनको चरता-चरता,
अपने हिम-बिन्दु बचे तब भी,
चलता उनको धरता धरता,
गड़ जांय न कण्टक भूतल के,
कर डाल रहा डरता डरता।[2]

रूपक द्वारा कवि ने चित्रण को सजीव कर दिया है।

यो प्रकृति के यथार्थ निरीक्षण के चित्र गुप्त जी के काव्य मे यत्र-तत्र

---

१. श्री मैथिलीशरण गुप्त—'साकेत,' नवम सर्ग, पृष्ठ २५७-५८ (साहित्य सदन, चिरगांव)।

२ श्री मैथिलीशरण गुप्त—'साकेत', नवम् सर्ग, पृष्ठ २६६, द्वितीय सस्करण।

पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान हैं, किन्तु हरिऔध तथा द्विवेदी-युग के अन्य कवियो की अपेक्षा प्रकृति के अन्तस्तल तक प्रविष्ट होने की प्रवृत्ति मे गुप्त जी विशेष सफल हैं।

इस प्रकार द्विवेदी-युग मे हरिऔध जी एव गुप्त जी परम्परावादी एव रूढिवादी वातावरण मे भी काव्यगत नवीन चेतना को लाने का सफल प्रयास कर सके हैं। इनके काव्यो मे द्विवेदी जी द्वारा अभिप्रेरित अभिव्यजना शैली अधिक विकसित रूप मे हिन्दी के सामने आ सकी है। प्रेम और प्रकृति के क्षेत्र मे भी उन्होने नूतन अनुभूतियाँ और अभिव्यक्तियाँ रखने का प्रयास किया है। राधिका कृष्ण की प्रेमिका थी और उर्मिला थी अयोध्या के मर्यादित राजवश की वधू। इससे राधा का जीवन उर्मिला की अपेक्षा विशेष स्वच्छन्द और मुखर है। यो दोनो नायिकाओ मे सामाजिक भाव प्रविष्ट कर गए हैं, जो युग की स्पष्ट छाप हैं। उर्मिला की सामाजिकता वधू होने के कारण परिवार तक सीमित है जब प्रेमिका होने के कारण राधा की सामाजिकता मे किसी प्रकार का बन्धन नही। वह सर्वत्र जा सकती है और प्रियतम कृष्ण के वियोगजनित दु ख मे सभी को सान्त्वना भी दे सकती है। राधिका के व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे हरिऔध जी का कथन है—

वे छाया थीं सुजन सिर की शासिका थीं खलो की।
कगालो की परम निधि थीं औषधी पीड़ितो की।
दीनों की थीं बहिन, जननी थीं अनाथाश्रितों की।
आराध्या थीं ब्रज अवनि की प्रेमिका विश्व की थीं।[1]

कृष्ण के प्रति राधा का अनन्य प्रेम विश्व मे शिव-स्वरूप होकर अवतरित हुआ, यह उसके प्रेम की अप्रतिम सफलता है। जब कि उर्मिला के रुदन-गान उसे परिवार मे ही मुखरित किये हैं—

अवधि-शिला का उर पर था गुरु भार।
तिल तिल काट रही थी दृगजल धार।

फिर भी उसके करुण प्रगीतो ने उसे अमर कर दिया है, इसमे सन्देह नही।

उपर्युक्त के अतिरिक्त द्विवेदी-युगीन स्वच्छन्द काव्य के तत्व श्रीधर पाठक के साथ अन्य कवियो मे भी उपलब्ध हैं, जिनका विवेचन अलग से प्रस्तुत किया गया है। इस स्थल पर इतना समझ लेना पर्याप्त होगा कि 'द्विवेदी-युग' की परम्परावादिता के मध्य मे स्वच्छन्दवादिता अक्षुण्ण रही है।

---

१. श्री हरिऔध—'प्रिय प्रवास', सर्ग १७–४६।

प० श्रीधर पाठक

काव्य के सम्बन्ध मे यह अमर सत्य है कि मूल की स्वच्छन्दवादिता (Romanticism) शास्त्रीयता (classicism) मे और शास्त्रीयता कालान्तर मे स्वच्छन्दवादिता मे पराभूत हो उठती है। प्रथम मे भावाभिव्यंजन मे सारल्य एव जीवन की वैयक्तिक अनुभूति का आग्रह होता है, द्वितीय इन्ही के सम्बन्ध मे कृत्रिम अभिव्यंजना शैली का वहन करता है। काव्य जब अपने अस्तित्व द्वारा सामाजिकता विस्मृत कर देता है, तब उसके स्वरूप और प्राण मे प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है। ऐसे गाढे समय मे सीमित और परम्परागत आबद्ध काव्य के विरोध मे सत्याग्रही भावुक क्रान्तिकारी होकर उसके स्थान मे नैतिक जीवन के विकारो को निष्कपट रूप से व्यक्त करने के लिये आकुल हो उठता है। इस प्रकार के क्रान्तिपरक आन्दोलन विश्व मे सदैव होते रहे है। योरप के मध्य-युग का काव्य ग्रीक और लैटिन के साहित्यादर्शो पर आधारित था, परन्तु वाल्टेयर एव रूसो द्वारा प्रचलित कृत्रिमता की धज्जियाँ उड़ा दी गई। तभी योरप महाद्वीप मे विचारो के क्षेत्र मे आन्दोलन उपस्थित हो उठा।

भारतीय इतिहास के मध्ययुग मे भी शास्त्रीयता का पूर्ण प्रसार था। पूर्वार्द्ध मध्ययुग मे राम-भक्ति एव कृष्ण-भक्ति-परक रचनाएँ अवश्य आचार्य शकर की अद्वैत भावना की प्रतिक्रिया-स्वरूप अवधी एव ब्रजभाषा प्रान्तीय बोलियो मे लिखी गई। इनमे संस्कृत भाषा मे प्रतिपादित दार्शनिक दृष्टिकोण इस युग के राम-काव्य एव कृष्ण-काव्य द्वारा जनता को अधिक बोधगम्य हो सके। फलत लोक-भाषाओ मे तद्विषयक सिद्धान्तो के प्रतिपादन से शास्त्रीय भाव का लोकान्तर स्वरूप अवश्य स्थापित हुआ, किन्तु आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के दृष्टिकोण से भी इन भक्ति-धाराओ के प्रतिनिधि भक्त-कवि तुलसी एव सूर अपनी परम्पराओ के लिए ही अनुकरण का विषय बन गये। इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी की अपेक्षा यह कवि भी शास्त्रीय कोटि मे चले गये। 'मध्ययुग' का उत्तरार्द्ध काव्य तो रीतिप्रधान था ही। इसकी भाषा मे ही नही, भावनाओ मे भी छलना थी। इससे उसमे स्वच्छन्दवादिता के तत्वो के समावेश का अवकाश ही न था।

१८५७ ई० के गदर से भारतीय समाज की रूढियाँ अवश्य चकनाचूर हो गई, जिससे सुधारवादी प्रवर्त्तक जीवन मे नव-निर्माण की भावना लेकर अग्रसर हुए। राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार हुआ। फलत नवीन युग के उन्मेष

प्रस्तुत हुए। 'भारतेन्दु-युग' मे भारतेन्दु, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास आदि सभी के काव्यो मे रूढियो का विरोध उपलब्ध होता है, तथापि भक्ति एव रीति-युगो की ओर उनका विशेष आग्रह है। इस युग मे यदि कोई कवि, शास्त्रीयता के कृत्रिम आडम्बर से बचकर स्वच्छन्दवादिता को प्रवृत्तियो को अपना सका तो उसका श्रेय ठाकुर जगमोहनसिह एव प० श्रीधर पाठक को है।

पाठक जी के काव्य मे नवीन पद्धतियो का ही आग्रह है। यो उनके समक्ष प्राचीनता और नवीनता को भारतेन्दु एव इतिवृत्तात्मकता को प्राधान्य देने वाले द्विवेदी-युग रहे, किन्तु वह अब तक नवीनता के ही साधक रहे, सनातनी होते हुए भी उनमे कट्टरता के स्थान पर उदारता थी, नीति एव भक्तिपरक परिवार मे जन्म लेने पर भी उनमे लोक-प्रेम एव लोक-न्याय के प्रति निष्ठा थी। अग्रेजी सरकार की सेवा मे उच्च पद पर आसीन रहते हुए भी उनमे भारतीयता एव राष्ट्रीयता के प्रति पूर्ण अनुराग था; सस्कृत भाषा मे पारंगत होते हुए भी वह लोक-वाणी के अधिनायक थे।

हिन्दी के इस सक्रान्ति-युग मे जब भाव-भाषा को लेकर उथल-पुथल मची हुई थी और निश्चयात्मक पथ पर चलना असभव नही दुष्कर था, उस समय वाणी के धनी और भावना के अग्रणी पाठक जी ने अपने नूतन पथ का चयन कर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया। उनका अपना निश्चय था और अपना ही पथ था, जिस पर वह अपने जीवन के अतिम क्षणो तक मुस्कराते हुए अग्रसर रहे।

यद्यपि खडी बोली के काव्य की अपेक्षा ब्रजभाषा का काव्य उन्होने कम नही लिखा; किन्तु वह खडी बोली के ही 'कवि-सम्राट्' के पद पर विभूषित हुए। उन्होने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से हिन्दी की भावी प्रगति का यथार्थ अकन कर लिया था, जिससे गाढ विश्वास के साथ उन्होने अपना पग उधर ही वढाया। वह जानते थे कि कोमल एव मधुर ब्रजभाषा भले ही काव्य के क्षेत्र मे अपना प्रभुत्व स्थायी रख सके, किन्तु सम्पूर्ण राष्ट्र की भावना वहन करने की उसमे सामर्थ्य नही है, यह वह भली भाँति जानते थे। राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन होकर वह देश के साथ न्याय कर सकेगी—उसकी क्षमता मे उन्हे अविश्वास था। इसी कारण भावी राष्ट्रभाषा का व्यावहारिक पोषण उन्होने उस समय ही प्रारम्भ कर दिया था, जब 'भारतेन्दु-युग' खुमारी मे पीछे देखता था तथा सचेत हो आगे भी देखता था, और हिन्दी का भावी महावीर

कार्यक्षेत्र मे उतरने से पूर्व अगोपाग सुदृढ कर साधन-सम्पन्न हो रहा था। उन्होने खडी बोली मे सबल गद्य तो लिखा ही साथ मे मधुर और सुललित काव्य भी लिखा, जो खडी बोली के भावी काव्य का जनक कहा जा सकता है। उनकी इस महत्ता के समक्ष आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी भी विनत थे और उनकी इस प्रगति का आभार मानते थे। इसी से द्विवेदी जी के हृदय मे पाठक जी के प्रति अपार श्रद्धा और निष्ठा थी।

पाठक जी मे जिन्दादिली थी। जीवन के वास्तविक स्वरूप और यथार्थ की उन्हे परख थी। इसी से एकेडमी एव सम्मेलन की बैठको मे सम्मिलित होने की उनकी जो तत्परता थी, वही बायस्कोप देखने मे थी। उनके मानस मे भारतीयता के प्रति अगाध विश्वास था, किन्तु वह पाश्चात्य प्रवृत्तियो की उपेक्षा भी नही कर सकते थे। इसी से प्राच्य और पाश्चात्य का उनमे सुन्दर समन्वय था और दोनो के प्रति उनमे सौहार्द्र था।

जो व्यक्ति जीवन के प्रति इतना उदार और उद्देश्य मे इतना महान् रहा हो, वह काव्य-क्षेत्र मे सीमित दृष्टिकोण कैसे पसन्द कर सकता था। कविता अलकार और रस-सिद्धि का साधन बन जाने से अपने पावन पद को परित्यक्त कर निकृष्ट कोटि मे पहुँचकर मरणासन्न थी। ऐसे समय मे ही पाठक जी ने स्वाभाविक पथ प्रदान कर उसे पुन अतीत के समान ही भविष्य मे भी प्रगतिशील होने का आश्वासन दिया। उसे स्वच्छन्दतावादी नवीन जीवन मिला, जिसमे जीवन के यथार्थ के प्रति न्याय था और कृत्रिमता दूर से ही हाथ जोडती थी।

भक्तिकाल का आध्यात्मिक प्रेम रीतिकाल मे आकर अपने नग्न रूप मे प्रदर्शित हुआ। नायक और नायिकाएँ ससार के नेत्रो में धूल झोककर प्रेम के स्वरूप मे अपनी वासना तृप्त करने लगी। प्रेम का सच्चा स्वरूप अन्तर्द्धान हो गया। स्थायीभाव की सार्थकता के लिये उद्दीपन का सम्भार तथा भावो-अनुभावो की खिलवाड भानुमती के पिटारे का स्वरूप स्थापित कर रही थी। शृंगार के अन्तर्गत सयोग और वियोग के यह क्षण कवि बडे मनोयोग से प्रस्तुत करते थे, किन्तु उनकी महत्ता और सदेश केवल उन्ही तक सीमित थे। पाठक जी ने कवि के इस बन्दी प्रेम को उन्मुक्त कर लौकिक जीवन मे सस्थापित किया। अपने ही मध्य मे उसके व्यावहारिक स्वरूप को देखकर पुन काव्य की सार्थकता प्रमाणित हो उठी। अपने अनूदित 'एकान्तवासी योगी' द्वारा उन्होने विश्व के नर-नारी का यथार्थ सम्भावित प्रेम हमारे सामने रखा। एडविन और

अंजलैना का प्रेम केवल केलि-भवन का साधन न था, किन्तु वह लोक-भूमि पर मानवीय विकार प्रस्तुत करता है, जो स्वाभाविक और अकृत्रिम है। नायिका अपने नायक का निम्न शब्दो मे परिचय देती है—

साधारण अति रहन सहन, मृदु बोल हृदय हरने वाला।
मधुर मधुर मुसक्यान मनोहर, मनुज वश का उजियाला।
सभ्य सुजन सत्कर्म परायण, सौम्य सुशील सुजान।
शुद्ध चरित्र उदार प्रकृति-शुभ, विद्या-बुद्धि निधान॥

* * *

प्राण पियारे की गुणगाथा, साधु कहां तक मैं गाऊं।
गाते गाते चुके नहीं वह, चाहे मैं ही चुक जाऊं॥
विश्व निकाई विधि ने उसमे, की एकत्र बटोर।
बलिहारौं त्रिभुवन धन उस पर, वारौं काम करोर॥

इन पक्तियो मे छैल-छबीले नायक और अभिसार से सुसज्जिता नायिका के स्थान पर दैनिक जीवन का पुरुष और नारी अपनी प्रेम-गाथा प्रस्तुत करते हैं। इनके प्रेम मे भी व्यथा है, किन्तु वह निर्लज्जता और कृत्रिमता की सीमा का अतिक्रमण नही कर सका है।

काव्य की मूल भित्ति गोल्डस्मिथ की प्रतिभा और स्वच्छन्दवादिता पर आधारित होते हुए भी हिन्दी मे स्वाभाविक एव निश्छल प्रेम का सुबोध शैली मे चित्रण पाठक जी की मौलिकता ही कही जावेगी।

"सीधी-सादी खडी बोली मे अनुवाद करने के लिये ऐसी प्रेम-कहानी चुनना जिसकी मार्मिकता अपढ स्त्रियो तक के गीतो की मार्मिकता के मेल मे हो, पडितो की बँधी हुई रूढियो से बाहर निकल कर अनुभूति के स्वतन्त्र क्षेत्र मे आने की प्रवृत्ति का द्योतक है।"[1]

प्रेम के समान ही प्रकृति भी अपने विशुद्ध स्वरूप को खो बैठी थी। दो शताब्दियो तक वह केवल शृगार के उद्दीपन की सार्थकता के लिये ही प्रयुक्त होती रही, जिससे उसकी सरल सुलभ सुन्दरता एव मुग्धता विस्मृत हो गई थी। 'भारतेन्दु-युग' मे उसके अवरुद्ध पथ को ठाकुर जगमोहनसिंह ने संश्लिष्ट योजना द्वारा प्रकृति के पदार्थो का बिम्ब ग्रहण कर उसे प्रशस्त राजपथ पर

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', काव्य खण्ड, नई धारा, द्वितीय उत्थान, पृष्ठ ६०० (नागरी प्रचारिणी सभा)।

लाकर खडा कर दिया, किन्तु उसे प्रगति का स्वरूप देना अवशेष था, इसका श्रेय पाठक जी को मिला।

चहुँदिशि हिमगिरि-शिखर, हीरमनि मौलि-अवलि मनु
स्रवत सरित सित-धार, द्रवत सोइ चन्द्रहार जनु
फल फूलन छवि छटा छई जो वन उपवन की
उदित भई मनु अवनि-उदर सों, निधि रतनन की
तुहिन-सिखिर, सरिता, सर, विपिनन की मिलि सो छवि
छई मण्डलाकार, रही चारहुँ दिसि यों फबि
मानहुँ मनिमय मौलि-माल आकृति अलबेली
बांधी विधि अनमोल गोल भारत-सिर सेली।[1]

अन्त्यानुप्रास विहीन वृत्त मे 'सान्ध्य अटन' का मुग्धकारी वर्णन है—

विजन वन प्रान्त था,
प्रकृति मुख शान्त था,
अटन का समय था,
रजनि का उदय था,
प्रसव के काल की लालिमा मे लिहसा।
बाल शशि व्योम की ओर था आरहा॥
सद्य-उत्फुल्ल-अरविन्द नील,
नभ वक्ष पर जा रहा था चढा,
दिव्य दिङ्नारि की गोद का लाल सा॥[2]

एव

Would I here on these old Himadri Peaks
Where to the groaning winds stern thunder speaks,
And heaven orbs are longest lost in gloom
And nothing reigns but vapour, blast and boom
And elements have freest play and pranks
And every thing else secondary ranks,

---

१ श्रीधर पाठक—'काश्मीर सुषमा', पृष्ठ ५, द्वितीय सस्करण, (रामदयाल अग्रवाल, इलाहाबाद)।

२ श्रीधर पाठक—भारतगीत—सान्ध्य अटन—पृ० १४६-५० (द्वि० स०) गगा पुस्तकालय, लखनऊ।

Where hied from distant deep by nature's freak
Those misty giants climb and cling old creak
And friction ov'r, a peaceful turn soon take,
And wealth of snow and stream and glacier make,[1]

(यदि मैं यहाँ हिमालय की इन प्राचीन शिखरो पर, जहाँ निनादित पवन चलते हैं और विजली कडकती है, होता—जहाँ विशद आकाशीय मण्डल अन्धकार मे विलीन रहते हैं, जहाँ केवल भाप, आँधी के झकोरे एव ध्वनि आदि का ही साम्राज्य है, जहाँ प्रधानतः पचतत्व उन्मुक्त रूप से खिलवाड करते हैं, तथा जहाँ पर अन्य चीजें गौण हैं और जहां प्रकृति की क्रीडा द्वारा दूर गहराई से वे धुँधले दैत्य चढते, एकत्रित होते और तीव्र ध्वनि करते दौडते हैं और आघात खाकर टुकडे होकर शान्तिपूर्वक चक्कर काटते हैं और वर्फ के ढेर, नदी तथा ग्लेशियर वन जाते हैं।)

प्रकृति का सौन्दर्य और आकर्षण—वे महत्तम देन हैं जो किसी भी लौकिक प्राणी को आनन्द और सुख प्रदान कर सकते हैं। यह निस्सन्देह सत्य है कि अपने युग मे पाठक जी ने सवसे अधिक प्रकृति की रचनाएँ की। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप पाठक जी का कवि-हृदय प्रकृति के वाह्य स्वरूप से ही मन्त्रमुग्ध हो उठता है। उसके भीतर प्रविष्ट होने की क्षमता का वास्तव मे उनमे अभाव परिलक्षित होता है।

जीवन कार्यक्षेत्र है। उसके सघर्षो मे जूझना ही मानव की मानवता है। उनसे पलायन जीवन की निस्सारता एव कायरता सिद्ध करती है। पाठक जी जीवन का मर्म रोने मे नही, हँसने में समझते है। उनमे वैयक्तिक अनुभूति के सच्चे मनोराज्य की परख थी।

कहो न प्यारे मुझसे ऐसा झठा है यह सव ससार।
थोथा झगडा जी का रगडा केवल दु.ख का हेतु अपार।
जगत है सच्चा तनक न कच्चा समझो वचा इसका भेद।

◇ ◇ ◇

मिट्टी उढ़ौना मिट्टी विछौना, मिट्टी दाना पानी है।
मिट्टी ही तन वदन हमारा, सो सव ठीक कहानी है।

◇ ◇ ◇

---

१. श्रीधर पाठक, 'मनोविनोद' The cloudy Himalayas, पृ० १६५ (१६१७ का सस्करण)।

पर जो उल्टा समझ के इसको बने आप ही ज्ञानी हैं।
मिट्टी करता है जीवन को और बड़ा अज्ञानी है।

समझ के सारे जग को मिट्टी, मिट्टी जो कि रमाना है,
मिट्टी करके सर्वस अपना, मिट्टी मे मिल जाना है।[1]

पाठक जी के जीवन का यही वह दर्शन था, जो जीवन मे उनको अग्रसर किये रहा। पाठक जी द्वारा आडम्बर-विहीन स्वाभाविक भाषा-शैली द्वारा जीवन का यह महान दर्शन उसी प्रकार सरलता से व्यक्त कर दिया गया है, जिस प्रकार शब्दकोष मे निर्धन कोई तपा हुआ साधु सरल शैली मे जीवन-निर्माण की भावना को बतला देता है। इस काव्य मे स्थल-स्थल पर अनुप्रासो का तारतम्य सुषुप्त मानवीय चेतना को थपकी लगा-लगाकर जगा देता है।

अग्रेजो के दमन एव शोषण से दुखी भारतीय समाज की दयनीय स्थिति का चित्रण प्राय सभी युग के कवियो ने किया है। जिस राष्ट्र के अन्न-जल से समाज का निर्माण हुआ है, वह जीवन मे किस प्रकार उपेक्षणीय हो सकता है। 'भारतेन्दु-युग' मे राष्ट्रीय काव्य का केवल सकेत ही मिलता है। 'अकाल' और 'टिक्कस' से सभी दुखी और जर्जरित थे। कालान्तर मे 'द्विवेदी-युग' मे इस प्रकार के काव्य की बहुलता हुई। गाधी जी के नेतृत्व मे काग्रेस-आन्दोलनो द्वारा इस प्रकार के काव्य को विशेष उत्कर्ष मिला था। पाठक जी ने भी अन्य कवियो के समान ही भारत-जननी के अभिनन्दन, अतीत के गौरव और वर्तमान पर क्षोभ और उसके भावी-निर्माण के महामहिम 'भारतगीत' गाकर उसके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धाजलि अर्पित की है।

जय जय प्यारा भारत देश,
जय जय प्यारा जग से न्यारा,
शोभित सारा देश हमारा,
जगत-मुकुट जगदीश दुलारा,
जय सौभाग्य सुदेश।
जय जय प्यारा भारत देश॥
प्यारा देश जय देशेश,
अजय अशेष, सदय विशेष,

---

१ श्रीधर पाठक 'जगत सचाई सार'

जहाँ न सम्भव अघ का लेश,
संभव केवल पुण्य-प्रवेश,
जय जय प्यारा भारत देश।
जग मे कोटि-कोटि युग जीवै,
जीवन-सुलभ अमी रस पीवै,
सुखद वितान सुकृत का सीवै,
रहे स्वतन्त्र हमेश।
जय जय प्यारा भारत देश॥

अपनी मार्मिकता के कारण यह गीत बड़ा ही सर्वप्रिय सिद्ध हुआ। कितने ही राष्ट्रीय समारोहो पर इसके द्वारा दीन-हीन-दुखी भारत-जननी का अभिवन्दन और अभिनन्दन किया गया था।

पाठक जी ने अपने काव्य के लिये परम्परागत वृत्तो के अतिरिक्त लावनी, रोला एव कजली आदि लोक-प्रचलित छन्दो को भी अपनाया था। उन्होने साधारण स्त्रियो तक के गान के लिये सफल गीतो की रचनाएँ की थी। राष्ट्रीय भावना केवल शिष्ट एव सस्कृत समाज के लिये ही नही थी, किन्तु वह निर्धन साधारण मजदूरनियो के लिये भी आवश्यक थी। इससे उन्ही की बोली मे उन्ही की शैली मे ये गीत रचकर पाठक जी ने अपनी सच्ची स्वच्छन्दवादिता का परिचय दिया है।

मैं तो भारत पै बलि-बलि जाऊँ,
गुइयां मैं तो भारत पै बलि-बलि जाऊँ,
भारत है मेरा प्रानों का प्यारा,
दिल का दुलारा, जीवन-अधारा,
उस पै तन-मन को वारूँ, उस पै त्रिभुवन को हारूँ,
उसको पलको पै धारूँ, उसको दिल पै बैठारूँ।[1]

इन गीतो मे भले ही उच्च भावना का सम्मिश्रण न हो, किन्तु साधारण वर्ग को राष्ट्रोत्थान की सीधी भावना का ज्ञान होने मे किसी प्रकार का अभाव भी नही रह जाता है।

पाठक जी के काव्य मे वैविध्य के साथ ही सर्वत्र ही स्वच्छन्दता का पूर्ण

---

१. श्रीधर पाठक—'भारत गीत' पृष्ठ १६६, द्वितीय सस्करण (गंगा पुस्तक-माला, लखनऊ) १९२८ ई०।

परिचय मिलता है। परम्पराओं की उन्होंने कभी अपेक्षा नहीं की। इसमें द्विवेदी-मण्डल के कवियों के काव्य के समान उनमें उपदेशों का आग्रह नहीं दिखलाई पड़ता और न इतिवृत्तात्मक काव्य का स्वरूप ही मिलता है। इस प्रकार 'द्विवेदी-युग' में रहते हुए भी वह द्विवेदी-काव्य-क्षेत्र से कहीं दूर थे। द्विवेदी-मण्डल के कवि जब व्याकरण-सम्मत संस्कृत भाषा में संस्कृत-वृत्तों में उपदेश भर रहे थे, उस समय काव्य के क्षेत्र में 'भारतेन्दु-युग' में 'एकान्तवासी योगी' द्वारा प्रयुक्त स्वच्छन्दवादिता को वह प्रौढ़ता देने में तल्लीन रहे। इसी से द्विवेदी जी की काव्य-प्रगति से दूर पाठक जी की काव्य-प्रगति चल रही थी, जिसमें जीवन की वैयक्तिक अनुभूति का स्पन्दन, प्रकृति का निष्कपट साहचर्य और मानव के प्रति सच्चा सौहार्द तथा स्नेह था।

यह निस्सन्देह सत्य है कि पाठक जी के काव्य में वर्ड्सवर्थ के समान, मनुष्य, प्रकृति एव ईश्वर के समन्वय से उत्पन्न श्रद्धामूलक आध्यात्मिकता, बायरन के समान अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्र भावना, शेले के समान समाज-विरोध और कीट्स के समान सौन्दर्यप्रियता नहीं ही थी। उनमें वस्तुत टामसन के समान लैण्डस्केप एव प्रकृति-प्रेम, कालिन्स एव ग्रे के समान प्रकृति-मूलक मानवीय भावनाओं का सगुम्फन तथा गोल्डस्मिथ के समान उपदेशात्मक एव रूढ़ि-परक विचार-विहीन स्वच्छन्दवादिता थी। अपनी मौलिक प्रतिभा से उन्होंने हिन्दी-काव्य को एक विशेष मोड़ प्रदान की—यह मोड़ थी स्वच्छन्दवादिता की, जिसके वह प्रवीण अग्रदूत थे।



अध्याय ७

पं० श्रीधर पाठक की जीवनी के सूत्र एवं उनका व्यक्तित्व

(जन्म—११ जनवरी, १८५८ ई० निधन—१३ सितम्बर, १९२८ ई०)

विषय-प्रवेश

हिन्दी-साहित्य मे आधुनिक काल के भारतेन्दु एव द्विवेदी-युगो की प्रमुख प्रवृत्तियो की आलोचना एव विवेचना से यह स्पष्ट हो चुका है कि यदि प्रथम मे प्राचीन और नवीन का सुन्दर समन्वय था तो द्वितीय अपने विगत युग की प्रवृत्तियो को प्रशस्त करता हुआ सुधारात्मक एव इतिवृत्तात्मक काव्य को प्राधान्य देकर चला था। इन दोनो युगो मे अधिकाशत. परम्परागत स्थूल साहित्य का ही सृजन हुआ तथा उनकी अभिव्यजना-शैली का प्रमुख आधार भी परम्परागत प्रावतन ही रहा। इस प्रकार के काव्य-प्रणयन से उनके वाह्याग तो अवश्य ही पुष्ट एव वलिष्ट हुये, किन्तु उनकी चेतना-अभिव्यक्ति न हो सकी। फलस्वरूप वह निर्जीव ही रहा, सप्राण न हो सका।

साहित्य जीवन की व्याख्या है—इन कसौटी पर कसने से उपर्युक्त दोनो युगो के साहित्य मे निराशा ही उपलब्ध होगी, तथापि इन दोनो महाविभूतियों के युगो के प्रान्तर मे साहित्य-देवता की अर्चना और वन्दना करते हुये स्वच्छन्दतावादी काव्य के अग्रदूत पाठक जी ने इस निराशा को अकुरित और पल्लवित न होने दिया। उन्होने व्यक्तिवादी साहित्य का सृजन कर साहित्य की कृत्रिमता और स्थूलता को निर्मूल कर डाला। इस सम्बन्ध मे भारतेन्दु-युग मे भाव, भापा एव छन्द आदि में काव्य के परिवर्तित स्वरूपो तथा ठाकुर जगमोहनसिंह के प्रेम और प्रकृति-काव्य से व्यक्ति-प्रधान स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रेरणा

अवश्य मिल चुकी थी, परन्तु उसका निदिनन स्वरूप सामने न आ सका था। अपने साहित्य द्वारा इसकी रूपरेखा एव स्वरूप को प्रस्तुत करने का श्रेय स्वच्छन्दतावादी काव्य के महाकवि श्रीधर पाठक को है।

पाठक जी के कार्य की समाप्ति 'भारतेन्दु-युग' मे ही नही हो गई। उनकी काव्य-परम्परा 'द्विवेदी-युग' को पार करती हुई छायावादी युग तक चली आई। 'द्विवेदी-युग' ने इस प्रकार की काव्य-प्रगति मे व्यवधान कम नही डाले, किन्तु इस प्रकार के काव्य की पृष्ठभूमि मे उस पुण्यात्मा की साधना थी, जिसने इसकी वैयक्तिकता एव यथार्थवादिता की इतनी पक्की और गहरी नींव डाली थी, जिसमे 'द्विवेदी-युग' के परम्परागत झोको मे भी स्वच्छन्दतावादी काव्य का वह भवन पूर्णत स्थिर रहा और ढह नही गया। विशेषरूपेण 'द्विवेदी-युग' के प्रमुख स्तम्भ हरिऔध एव मैथिलीशरण गुप्त के अतिरिक्त मुकुटधर पाण्डेय, रामचन्द्र शुक्ल एव रामनरेश त्रिपाठी आदि को भी इस प्रकार के काव्य-सृजन मे अपना अनुयायी बनाया। आगे चलकर छायावादी युग का काव्य भी पाठक जी द्वारा इस प्रकार के पोषित काव्य पर ही अपनी आधार-शिला बना सका है।

इस स्थल पर यह जान लेना भी आवश्यक है कि यह स्वच्छन्दवादिता पाठक जी के केवल साहित्य मे ही उपलब्ध न थी, किन्तु उनके जीवन मे भी परिव्याप्त थी। परम्परागत रूढियो के वह घोर विरोधी थे। उपर्युक्त विशेषताओ के कारण पाठक जी के व्यक्तित्व की महत्ता स्पष्ट सिद्ध हो जाती है।

कलाकार के व्यक्तित्व एव उसकी कलाकृतियो का बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। यो एक-दूसरे का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होते हुए भी कला उसके व्यक्तित्व से विशेषरूपेण प्रेरित रहती है। पाठक जी की साहित्यिक कृतियो का परिचय एव उनका अनुशीलन हमारे प्रस्तुत निबन्ध के महत्वपूर्ण अग है। फलस्वरूप पाठक जी की जीवनी के सूत्र एव उनके व्यक्तित्व का अध्ययन आवश्यक ही नही अनिवार्य भी है। इसी से इनको ही प्रस्तुत अध्याय मे अध्ययन का विषय बनाया गया है।

पाठक जी के व्यक्तित्व-परिचय मे प्रविष्ट होने से पूर्व उनकी जीवनी के सूत्रो का परिचय अनिवार्यत आवश्यक है। फलस्वरूप उनसे अवगत हो लेना उपयुक्त होगा।

पाठक जी की जीवनी के सूत्र

(अ) अन्तरग सामग्री

१ 'आराध्य शोकाजलि'

२. 'आराध्य शोकाजलि' मे सग्रहीत उनके पिता प० लीलाधर पाठक का जीवन-वृत्त ।

३ स्व-जीवनी (अप्रकाशित)

व) वहिरग सामग्री

४ डा० श्यामसुन्दर दास द्वारा लिखित—'प० श्रीधर पाठक' हिन्दी कोविद रत्नमाला, भाग १ (इण्डियन प्रेस)

५ श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित—कविता कौमुदी भाग २—'श्रीधर पाठक' ।

६ डा० रामप्रसाद त्रिपाठी लिखित—पं० श्रीधर पाठक (२३ सितम्बर १६२८) ।
(चारु चरितावली, सम्पादक—श्री वैंकटेश नारायण तिवारी, प्रकाशक—लीडर प्रेस, प्रयाग, १६३४) ।

७. डा० रामप्रसाद त्रिपाठी—आराध्य शोकाजलि ('अभ्युदय', २२ सितम्बर, १६२८) ।

८ श्री रामजीलाल शर्मा—स्वर्गीय प० श्रीधर पाठक ('विद्यार्थी', भाग १५, अक ६, भाद्रपद १६८५ वि०) ।

६. श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'—स्वर्गीय पं० श्रीधर पाठक ('अभ्युदय', २२ सितम्बर, १६२८ ई०) ।

१० श्री पदुमलाल पुन्नालाल वख्शी—स्व० प० श्रीधर पाठक ('अभ्युदय', २२ सितम्बर, १६२८ ई०) ।

११ श्री जगतनारायण देव शर्मा कविरत्न—'हाय पाठक जी' (राम, भाद्रपद १६८५, पृष्ठ २७१) ।

१२. श्री बनारसीदास चतुर्वेदी—कविवर प० श्रीधर पाठक (सस्मरण, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी) ।

१३ प्रोफेसर सत्यव्रत सिद्धान्तालकार—प० श्रीधर पाठक के अन्तिम दिन—मसूरी के कुछ सस्मरण ('विशाल भारत', नवम्बर, १६२८) ।

१४ अपनी बात : सम्पादकीय, 'सरस्वती' १६२८, स्व० प० श्रीधर पाठक सम्पादकीय, विशाल भारत (सितम्बर, १६२८) ।

पाठक जी की वश-परम्परा-सम्बन्धी सामग्री के अध्ययन से इतना पूर्णत. स्पष्ट है कि वह सारस्वत वश से थे और अब से बारह सौ अथवा सवा-बारह सौ वर्ष पूर्व उनके कोई पूर्वज पजाब के सिरसा ग्राम से आकर जिला आगरा के अन्तर्गत जोधरी ग्राम मे बस गये थे। अपने पाण्डित्य एव विद्वत्ता से उक्त पूर्वज एक बहुत बडी जमीदारी के अधिकारी हुए। क्रमश इस जमीदारी का ह्रास हो गया और उनके वश के समीप केवल नाममात्र को भूमि रह गई। इस वश मे एक से एक उत्कृष्ट कोटि के विद्वान भगवद्भक्त हुए। इसी वश मे हमारे स्वच्छन्दतावादी काव्य के जनक प० श्रीधर पाठक जी ने जन्म ग्रहण किया था।

आपकी वश-परम्परा के सम्बन्ध मे डा० श्यामसुन्दर दास ने 'हिन्दी कोविद रत्नमाला, भाग १' एव श्री रामनरेश त्रिपाठी ने 'कविता कौमुदी, भाग २' मे केवल सकेत मात्र किया है। डा० श्यामसुन्दर दास का कथन है—

"प० श्रीधर पाठक सारस्वत ब्राह्मण हैं, उनके पूर्व-पुरुष कोई ग्यारह सौ वर्ष हुए कि पजाब से आकर जोधरी ग्राम मे जो आगरा जिले के फीरोजाबाद परगने मे है, बसे थे और कौटुम्बिक जनश्रुति के अनुसार एक विशाल जमीदारी उनके वहाँ बसने का हेतु था। पाठक जी के वृद्ध प्रपितामह श्री कुशलेश जी हिन्दी के अच्छे कवि थे और पितामह प० धरणीधर शास्त्री धुरन्धर नैयायिक थे। पिता प० लीलाधर जी यद्यपि एक साधारण पडित थे, परन्तु सच्चरित्रता, भगवद्भक्ति और पवित्रता मे अद्वितीय थे।"[1]

कुछ शब्दो के हेर-फेर के साथ श्री रामनरेश त्रिपाठी ने 'कविता कौमुदी भाग २' मे उपर्युक्त-सा ही वर्णन किया है। इस सम्बन्ध मे इतना कहना ही समीचीन होगा कि इन दोनो विद्वज्जनो ने अपने सग्रह-ग्रथो के लिये जीवन-चरित्र की केवल बाह्य रूप-रेखा ही प्रस्तुत करने की आवश्यकता समझी। इसी से वे जीवन-चरित्र पाठक जी के वश का यथोचित ज्ञान प्रस्तुत करने मे अनुपयुक्त हैं।

इस सम्बन्ध मे उनकी 'स्व-जीवनी' (१९२५ ई०) की निम्न उद्धृत पक्तियो

१. डा० श्यामसुन्दर दास—प० श्रीधर पाठक, हिन्दी कोविद रत्नमाला, भाग १ (पृष्ठ ८४)।

का उपभोग किया अनन्तर मल्ह जाति के एक डाकू ने उनकी जमीदारी छीन ली जो, कालान्तर मे एक युद्ध के उपरान्त, जिसमे उस मल्ह की वीरगति हुई, करौली के प्रसिद्ध महाराज सोनपाल के हाथ मे पहुँच गई।"

"बहुत वर्षो के उपरान्त हमारे एक पूर्वज ने राजा सोनपाल के उत्तराधिकारी राजा कर्णपाल के समक्ष अपनी बात को प्रस्तुत किया जिसने हमको ६० बीघा भूमि प्रदान की, जो उस स्थल पर स्थित थी जहा पक्का कुआँ और पुरानी इमली का वृक्ष खडा हैं। उस समय से कुशल मिश्र तक थोडा ही ज्ञात है जिस पर यह विश्वास किया जा सके कि हमारे पूर्वजो ने इस प्रकार कालयापन किया। एक किम्वदन्ती का कथन है कि उस मल्ह का प्रेत जो सोनपाल के साथ वीरगति को प्राप्त हुआ था, स्वप्न में कर्णपाल के समक्ष प्रकट हुआ और उसने हमारे परिवार को एक भूमि-अंश प्रदान करने की प्रेरणा दी। उक्त प्रेरणा के उल्लघन करने पर उसने बहुत बडे दुष्परिणाम का भय प्रदर्शित किया था। मल्ह ने राजा को जोधरी ग्राम के वास्तविक शासक के रूप मे हमे सम्मान प्रदान करने की प्रेरणा भी दी। शासक होने के सम्मान की बात वस्तुत पूर्ण की गई क्योकि अब तक हमारा परिवार उस सम्मान को प्राप्त करता है, जो दूसरे ग्रामो के जमीदार प्राप्त करते हैं अर्थात् जब एक बरात चलती है तो वह हमे भेंट प्रदान करती है और हमसे तिलक प्राप्त करती है।"[1]

---

1. About 1200 years ago our ancient emigrated from Sara in Punjab In consequence of one member of their family having received as donation 14000 Bighas of land from Chandra Sen, the Raja of Chandwar on the Jamuna near Ferozabad and settled in Jondhari The name of the receiptient of the donation is not known, but it is said his descendants enjoyed the state for some generations, when a certain dacoit, a Malha by caste seized their possession, which afterwards passed into the hands of well known Raja Sonepal of Karauli after a fight, which ended in the death of Malha.

   After a lapse of a great many years the case was represented by one of our ancients to Raja Karanpal, one of Sonepal's descendants, who ceded us 60 Bighas of land situated where now a pucca well and an old tamrind tree mark the place From the date down to

अंग्रेजी का यह उद्धरण लखनऊ-विश्वविद्यालय के १९४८-४९ ई० के एम० ए० (स्पेशल) के छात्र श्री शिवबालक शुक्ल ने श्री गिरिधर पाठक (प० श्रीधर पाठक के ज्येष्ठ आत्मज) से अपने निबन्ध 'श्रीधर पाठक जीवन और साहित्य एक अध्ययन' के लिए प्राप्त किया था। उन्ही के द्वारा उन्हे यह भी ज्ञात हुआ था कि अंग्रेजी टिप्पणी मे 'सारा' और 'करौली' नामो के स्थान वास्तव मे 'सिरसा' और 'किरावली' है।

ऊपर की पंक्तियो से यह स्पष्ट है कि इस परिवार का पूर्वज सत्रहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे जोंधरी आकर बस गया और अपनी विद्वत्ता तथा पाण्डित्य के बल पर उसने वहा भूमि प्राप्त की। अनन्तर यह परिवार उस क्षेत्र मे बडा ही सम्मानित और गौरवपूर्ण रहा।

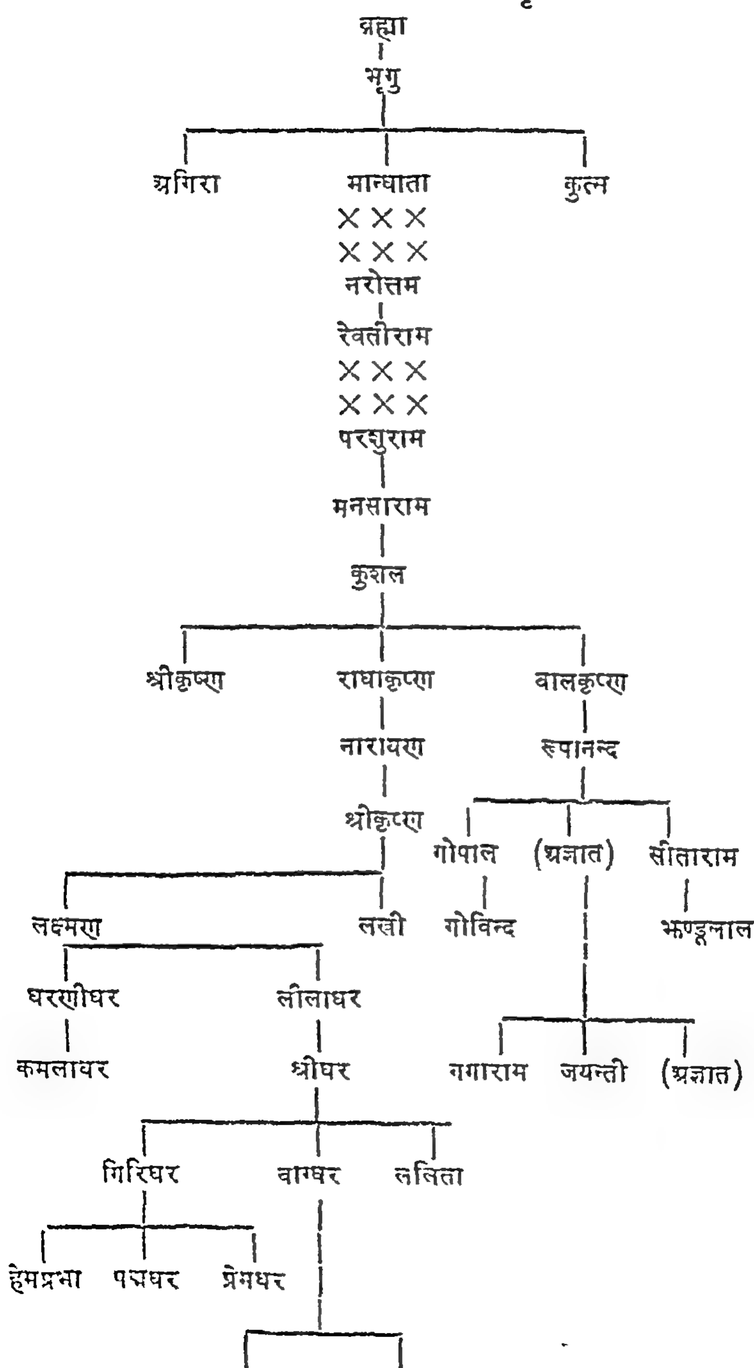
पूर्वजो की परम्परा

इस परिवार की परम्परा अविच्छेद्य रूप मे आज तक चलती आ रही है। परिवार मे एक से एक बढकर विद्वान और भक्त होने के कारण इस परिवार के सदस्य सदैव समाज मे अच्छी दृष्टि से ही देखे जाते रहे है। परिवार की विभूतियो के वर्णन से पूर्व पाठक-परिवार का वंश-वृक्ष देखने से इस परम्परा पर स्वयमेव प्रकाश पड जावेगा।

Kushal Misra little is known that can be relied on, as to the ghost of Malha who had been killed in the battle with Sonepal appeared to Karanpal in dream and desired to cede one land to our family Non-compliance with which desire was threatened with serious consequence to the Raja The Malha also desired the Raja to treat us virtual rulers of the village of Jondhari An honour due to the ruler being shown us this latter portion of the Malha's demand appears to have been actually complied with, as upto this date our family receives the honour shown in other villages only to Zamindars e g when a marriage procession starts it invariably presents *nazzar* and receives a *tilak* from us

—Notes taken from Shastri Dharnidhar verbally.

पाठक-परिवार का वंश-वृक्ष



गोत्र कुत्स
शाखा माध्यंदिनी
वेद यजुर्वेद
प्रवर अंगिरा, मान्धाता, कुत्स
देवी चामुण्डा

उपर्युक्त वंश-वृक्ष द्वारा नरोत्तम से पूर्व और अनन्तर रेवतीराम और परशुराम के मध्य की परम्परा का ज्ञान नहीं है। परशुराम से लेकर अब तक की परम्परा का पूर्ण ज्ञान है। नरोत्तम का उल्लेख जोधरी में शिव-मन्दिर के द्वार के शिलालेख से प्रमाणित है जब कि परशुराम का नाम सोरों में गंगापुत्र के रजिस्टर में अंकित है। उसी प्रकार कुशल मिश्र का नाम इलाहाबाद में गंगापुत्र के रजिस्टर में उपलब्ध होता है। ऊपर के वंशजों में कुशल मिश्र से पूर्व के लोगों के सम्बन्ध में अब कुछ भी ज्ञात नहीं है। केवल कुशल मिश्र और उनके परवर्ती वंशजों के ही कुछ वृत्त मिलते हैं, उनका उल्लेख करना ही श्रेयस्कर होगा।

"उनके (प० श्रीधर पाठक के पिता प० लीलाधर पाठक के) पिता श्रीमान् प० लक्ष्मण मिश्र बड़े सन्तोषी और बड़े सात्विक ब्राह्मण थे। विद्या पिता-पुत्र दोनों को सामान्य ही थी, परन्तु सब विद्याओं की विद्या—ईश्वर में निश्चला भक्ति—दोनों के हृदयाब्ज में अनवद्य रूप से उदित थी। पिता जी के पितामह, श्रीकृष्ण मिश्र, भक्तिमय जीवन के आदर्श थे। उन्हीं से इन्हें प्रकृति परम्परया भगवन्निष्ठा प्राप्त हुई। प्रपितामह श्री कुशल मिश्र, भाषा के परम प्रतिभाशाली कवि थे। वह भी कृष्णभक्त थे। 'बालकृष्ण-चन्द्रिका' और 'गंगा नाटक' आदि उनकी कतिपय रुचिर रचना हैं। कविता में वह अपने को 'कुशल' अथवा 'कुशलेश' लिखते थे।

श्रीकृष्ण बाबाजू के छोटे भाई श्री राधाकृष्ण जी संस्कृत के बहुत अच्छे पंडित और एक प्रांशुकाय पराक्रमी योद्धा थे। पाचों हथियार बांधते थे। उनके पुत्र श्रीयुत नारायण मिश्र पिता जी के गुरु थे।

पिता जी के सगे भ्राता शास्त्री धरणीधर जी न्याय और धर्मशास्त्र के धुरन्धर विद्वान् थे। चौदह वर्ष नदिया शान्तिपुर में निवास कर बड़े परिश्रम से उन्होंने विद्योपार्जन किया था। परन्तु बंगाले के चिरप्रवास से वह श्वास रोग से ग्रसित हो गए, अतः अपनी अगाध विद्या का ऐहिक फल विपुल रीति से न उठा सके। वह मन्त्रशास्त्र में भी पारंगत थे। वर्तमान जयपुर-नरेश की पटरानी

उनकी शिष्या हैं। उनका स्वर्गारोहण गगातट कर्णवास तीर्थ पर सवत् १९५९ मे हुआ। न्याय के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आत्मतत्व विवेक' पर आप एक सस्कृत व्याख्या लिख गये है।

"आर्थिक व्यवस्था इस कुल की कुशल मिश्र से भी पहले से सकुचित चली आई है। उससे पहले यह घराना, कहते हैं, धनाढ्य और धराढ्य था। किन्तु धर्माढ्य यह सदैव काल रहा है। सम्वत् १४५० के वैशाख मे इस कुल के मुख को समुज्ज्वलकारिणी श्रीमती लौंगा देवी अपने पति श्री नरोत्तम जी पाठक के शव को अकारोपित कर ग्राम-प्रान्त के नैऋत-कोण मे सतीत्व-शय्यारूढ हुई थी। उनका स्मारक एक पाषाण-मठ शिलालेख सहित उक्त पतिव्रता-पूत स्थान पर अद्यापि विद्यमान है। उसमे एक शिवलिंग[1] स्थापित है। वहाँ पर सन्ध्या समय सन्ध्यावन्दनशील क्रियावानो का मन एक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करता है।"[2]

श्रीमती लौंगा देवी पाठक जी एव गिरिधर पाठक के कथनानुसार श्री नरोत्तम शर्मा पाठक की पत्नी हैं। जबकि अपने वश-वृक्ष मे पाठक जी ने उन्हे रेवतीराम की पत्नी होने का उल्लेख किया है। श्रीमती लौंगा देवी के सम्बन्ध मे स्वय पाठक जी के दो विलोम दृष्टिकोण पाठक जी के वश-वृक्ष मे उल्लिखित उनकी त्रुटि का ही सकेत करते हैं। क्योंकि गिरिधर पाठक एव शेष परिवार भी उन्हे नरोत्तम शर्मा पाठक की ही पत्नी मानता है, श्री रेवतीराम की नही। श्रीमती लौंगा देवी के सम्बन्ध मे पाठक जी की निम्नलिखित पक्तियाँ दृष्टव्य हैं—

पन्द्रहवीं शताब्दी बीच सुग्रहीत शुभ
नाम श्री नरोत्तम शर्मा पाठक प्रयत
पाणि पीडित प्रिया श्रीमती देवि लौं-
गाभिधा यहाँ पर सती सद्विधि हुई

१. श्री गिरिधर पाठक के कथनानुसार शिवलिंग कहीं लेजाया जा रहा था। सती-स्मारक के समीप ही शिवलिंग लेजाने वाला वाहन टूट गया। प्रयत्न करने पर भी शिवलिंग नहीं उठा। फलस्वरूप वह शिवलिंग वहीं स्थापित कर दिया गया।

२. श्रीधर पाठक, 'आराध्य शोकांजलि'—सक्षिप्त जीवन-परिचय, चैत्र शुक्ला ११, गुरौ सम्वत् १९६३।

अत उस स्थान का तीर्थ सम मान है।
सती मठ मध्य सन्निहित शिवालय
प्राय होता वहां पर अत ग्राम के
सुजन समुदाय का सान्ध्य समागम है।
पाठकों के सकल मागलिक कार्य का
सती-अर्चन अनुल्लघ्य एक अग है।
अत उनका कोई कुलज करता नहीं
इस सनातन कुलाचार को भग है।[1]

पाठक जी के पिता प० लीलाधर पाठक न तो गुणन मिश्र के समान विद्वान, कवि और लेखक थे और न शास्त्री धरणीधर के समान नैयायिक एव शास्त्री ही थे। वह पूरा गृहस्थ थे और परिवार के धर्मपालन एव भक्ति-कर्म आदि के सम्बन्ध मे परिवार की अन्तिम उल्लेखनीय विभूति थे। भिक्षुक उनके घर से कभी निराश न जाता था। उनके स्वभाव और बोलचाल मे स्नेह एव सरलता का पूर्ण पुट था। अपने इन अप्रतिम गुणो के कारण वह शत्रु को भी मित्र बना लेते थे "अपने पिता को ईश्वर और ज्येष्ठ भ्राता (शास्त्री धरणीधर) को पिता के समान मानते थे। गुरु-चरण मे अगाध भक्ति थी।"

वह शास्त्र के परम भक्त थे। ज्योतिष, धर्मशास्त्र एव कर्मकाण्ड आदि मे उनका अटल विश्वास था। इस सम्बन्ध मे "न्याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा" को पूर्ण सत्य मानते थे और "अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनु" भगवान के इन शब्दो के अनुसार ब्राह्मणों के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी।

भगवान कृष्ण के प्रति उनकी अटूट भक्ति थी। सम्पूर्ण विश्व को गोपाल-मय मानते हुए उनके अर्चन और आराधन मे लगे रहते थे। अपने बैठने के स्थान पर उन्होने गोपाल जी और श्रीनाथ जी के चित्र सजा रखे थे। वह उनकी ओर घटो ताकते बैठे रहते थे और भक्ति-भावना से ओत-प्रोत हो नाचने भी लगते थे। भक्तिभावना के भावावेश मे वह कभी-कभी कृष्ण-विषयक पदो की रचनाएँ भी करते थे, जो 'आराध्य शोकाजलि' मे सग्रहीत हैं। इससे पता चलता है कि उन्होने स्वय भी घर के काव्यात्मक वातावरण को अक्षुण्ण रखा था।

---

१ श्रीधर पाठक—'स्वजीवनी'।

उनका विवाह पोलरा (वृन्दावन) के कुलीन वंशज की कन्या श्रीमती लाडलीदेवी से हुआ था। उनमे अपने परिवार का अध्यवसाय, स्वतन्त्रता और अदम्य साहस था। वह सरलता की प्रतिमूर्ति थी। संघर्षों के समय वह सदैव अपने पति की सहयोगिनी ही सिद्ध हुई। इन दो महान विभूतियो से ही श्रीधर पाठक का माघकृष्ण १४, सम्वत् १९१६ को जन्म हुआ था। सरलता और भक्ति के आदर्श माता-पिता दोनो के सद्गुण शिशु श्रीधर मे स्वयमेव घर कर गये।

अपने ग्राम जोंधरी का वर्णन करते हुए श्रीधर पाठक ने अपने जन्म के सम्बन्ध मे लिखा है—

उस
ग्राम मे, स्मरण-रमणीय-प्रिय-नाम मे,
जन्म अपना हुआ। अर्द्ध उन्नीस सौ-
लह असित माघ निशि अर्द्ध चौदस रविज
वार लग्न भूषित प्रयत याम मे[1]

◇ ◇ ◇

पूर्व आषाढ नक्षत्र था जन्म का
नाम भूधर का तदनुसार रखा गया
किन्तु पश्चात् कब किसी को ज्ञात नहीं
नित्य का नाम किस भाँति 'श्रीधर' पडा
नाम करणादि का स्मरण कुछ भी नहीं।
अक्षरारम्भ का दखा कुछ ज्ञान है।[2]

जैसा निवेदन किया जा चुका है कि प० लीलाधर पाठक भगवद्भक्त एवं धर्मनिष्ठ थे। अपनी इस भावना के कारण ही वह कोटला के भूमिपति ठा० उमरावसिंह के श्रद्धाभाजन थे और वहीं भागवत, रामायण एवं महाभारत आदि का पाठ किया करते थे।

---

१. श्रीधर पाठक, 'स्वजीवनी'—२।
२. श्रीधर पाठक, 'स्वजीवनी'—३।

पाठक जी का जन्म और जीवन

प० लीलाधर की सन्तानें जीवित न रहती थी। श्रीधर पाठक भी अपनी शिशु-अवस्था मे रुग्ण हो गये। यह दुस्सम्वाद टोडला पहुंचा। प० लीलाधर भावी आपत्ति से आशङ्कित हो उठे। पीड़ित हो कर गिरे। जा गांव के समीप आकर सती-मन्दिर के पास के अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठकर वह रो उठे। उस दिन प्रदोष था। प० लीलाधर के दुख से करुणार्द्र हो वहां से जाते हुए एक साधु ने उनसे प्रदोष व्रत रखने के लिये कहा और विश्वास दिलाया कि उनका पुत्र अच्छा हो जावेगा। ईश्वर की कृपा से शिशु पाठक अच्छा हो गया। लीलाधर पाठक की सात सन्तानो मे श्रीधर पाठक एव दुर्गादेवी दो ही जीवित रहे। दुर्गादेवी का निधन १९४५ ई० के जून मास मे हुआ था।

कालान्तर मे उनका अक्षरारम्भ हुआ और उन्होने वर्णमाला बड़ी कठिनता से सीख पाई। वर्णमाला सीखने और स्मरण करने मे उन्हें जितना ही समय लगा था। अनन्तर वह कभी अपने पिता जी के पास और कभी शाला मे पढ़ने जाते थे। अपने पिता जी से उन्होंने कौमुदी का 'सन्धि-प्रकरण' पढ़ा था। आगे के अध्याय का क्रम परिव्राजक भागीरथी पुरी की सहायता से चलता रहा। यह परिव्राजक शास्त्री धरणीधर के प्रिय शिष्य थे।[1]

स्वामी भागीरथी पुरी से पूर्व उनके प्रथम गुरु प० उमाशंकर सनाढ्य थे जो उनके पड़ोसी ही थे। भागीरथी पुरी से पाठक जी को कौमुदी आदि के

---

१ अक्षरारम्भ के बाद बहु काल तक
कठिन श्रम से नियत पठन चलता रहा
पिताजी के निकट कभी घर पर कभी
मदरसे मे तथा कभी टलता रहा।
पिताजी ने तत कौमुदी का करा-
या स्वय सविधि आरम्भ सुमुहूर्त से।
सन्धि का भाग श्रम सहित उनसे पढा,
शेष क्रमबद्ध भागीरथी पुरी से।
थे परिव्राजक-प्रवर वह विज्ञ व्युत्-
पन्न वैयाकरण सुमति सम्पन्न सद्-
व्यसन, सत्सग-प्रिय यदपि ससार से
विरत, निस्सग अति सतत सु-प्रसन्न-मन,

अध्ययन मे सहायता मिली थी। मैं समझता हूँ कि वर्णज्ञान के उपरान्त और कौमुदी अध्ययन के पूर्व तक मध्य के विद्यार्थी-जीवन मे प० उमाशकर द्वारा अध्ययन-सम्बन्धी सहायता मिली होगी।

अन्त मे पाठक जी के अध्ययन आदि का यह स्वरूप भी स्थिर न रह सका। शास्त्री धरणीधर एव लीलाधर दोनो भाइयो के मध्य विचारो मे अन्तर आ जाने के कारण लीलाधर को जोधरी ग्राम छोडकर 'सोठि को नगरा' जाना पडा जहाँ उन्हे बडी निर्धनता से अपना समय काटना पडा था। कहते हैं कि पति के सन्यास ले लेने के कारण उनकी बहन उनके पास रहने लगी थी। उन्ही के सम्बन्ध मे किसी बात पर दोनो भाइयो मे विद्वेष हो गया था। जिसके फलस्वरूप पाठक जी के पिता को जोधरी परित्याग करने के लिये बाध्य होना पडा।

स्वजीवनी के अन्तर्गत पाठक जी ने अपने पितृव्य शास्त्री धरणीधर की योग्यता एव लौकिक उदासीनता का वर्णन किया है। उसके साथ ही प० लीलाधर के साथ उनकी अनैक्य भावना पर भी प्रकाश पड जाता है।

भ्रात के साथ त्यो प्रीति-प्राकृत-प्रथा,
प्रेम परिपक्व जो उचित थी सर्वथा,
यथाविधि एक पल भी नहीं चल सकी।[1]

जिसके फलस्वरूप ही—

अत अध्ययन मेरा सु-क्रम-बद्ध बहु-
काल-पर्यन्त सुस्थिर नहीं रह सका।[2]

मूलत इस पारस्परिक विद्वेष से पाठक जी के प्रारम्भिक अध्ययन मे बडा व्यवधान पडा और शास्त्री जी के शिष्यत्व का लाभ उठाने से उन्हे वंचित रह

प्रयत आचरण, मानव-सभा-आभरण
विनय-नय-निपुण सौजन्य के सिन्धु, सद्
रुचि, सुजन-बन्धु और छात्र थे वह स्वय
पितृ-चरण-भ्रात के नाम जिनका रहा
देश सुग्रहीत श्रीयुक्त शास्त्री जगद्-
विदित धरणीधर।

—स्वजीवनी

१, २ श्रीधर पाठक—'स्वजीवनी'।

जाना पड़ा। उनके पिताजी स्वय संस्कृत के विद्वान न थे। स्वामी जी भी अधिक दिनो तक न ठहर सके थे। इससे उनका संस्कृत अध्ययन रुक सा गया। तथापि अध्ययन आदि की अभिरुचि के कारण प्राचीन संस्कृत साहित्य जो उनके घर मे सग्रहीत था वह तत्परतापूर्वक पढते रहे।[1]

बिना गुरु के यद्यपि इस प्रकार के अध्ययन से लाभ कम ही हुआ। अन्ततोगत्वा वह उस अध्ययन को त्यागकर ग्राम-स्थित हिन्दी-पाठशाला मे प्रविष्ट हुए। पाठशाला के उत्साहप्रद वातावरण मे गणित, भूगोल एव इतिहास आदि विषयो से उनका परिचय हुआ।

प्राचीन-शिक्षण-परिपाटी के स्थान पर नवीन शिक्षण प्रणाली उन्हे विशेष प्रिय लगी। दो-डेढ वर्ष तक अध्ययन का यह क्रम बिना किसी व्यवधान के चलता रहा। अन्त मे फीरोजाबाद के तहसीली स्कूल मे अध्ययन के लिये प्रविष्ट हुये। सौभाग्य से इस प्रारम्भिक विद्यार्थी-जीवन का विवरण 'स्वजीवनी' मे भी मिल जाता है—

पिता जी तो स्वय बडे पडित न थे
उक्त स्वामी बहुत दिन नहीं टिक सके
सस्कृताध्ययन इस भाँति बहु काल को
दैव दुर्दष्टि से बहुत कुछ रुक गया।
किन्तु मम-प्रकृति गति अतिहि अनिरोध्य थी,
विघ्न बाधादि से अति अनवरोध्य थी,
अत मैं स्वय प्राचीन ग्रथादि को,
जो कि घर मे धरे विविध बहु सत्य थे,
किसी भी दूसरे के सहारे बिना,
परम शुचि प्रेम औत्सुक्य, त्यों सुरुचि से,
नित्य ही देखने तथा पढ़ने लगा,
और यह शौक अब रोज बढ़ने लगा।
किन्तु इस कृत्य से लाभ अति कम हुआ

१ प्रारम्भ मे इन्हें सस्कृत पढ़ाई गई और १०-११ वर्ष की अवस्था मे अपनी तीव्र बुद्धि से उस भाषा मे इन्होने इतनी योग्यता प्राप्त करली कि सस्कृत में बोलने और लिखने लगे।

—डा० श्यामसुन्दरदास—'हिन्दी कोविद रत्नमाला', भाग १।

त्वरित अतएव तब उसे तजना पड़ा
और ग्रामस्थ वर्नाक्यूलर स्कूल की,
निपट निरुपाय हो, शरण पड़ना पड़ा
स्कूल-क्रम परम आमोद प्रद था।
निपट नवल था, अत. औत्सुक्य का मूल था,
तथा मन चित्त के अतीव अनुकूल था।
गणित भूगोल इतिहास आदिक विषय
प्रचुर चातुर्य-प्रद रुचिर अति ही लगे
स्वगृह-प्राचीन-शिक्षण प्रथा त्याग कर
स्कूल मे पढने का अत प्रण कर लिया
और निज हृदय मे प्रबल अभिलाष युत
सु-प्रण-निर्वाह का सुदृढ़ व्रत धर लिया।[1]

० ० ०

बरस दो डेढ तक स्कूल-अध्ययन-क्रम
अति व्यतिक्रम-रहित सुविधि चलता रहा।
बाद को ग्राम तज फिरोजाबाद तह-
सील के स्कूल मे युक्त होना पडा।[2]

कोटला-स्थित हिन्दी-शाला के १८७४ ई० के एक सस्मरण का निम्न उल्लेख स्वय पाठक जी ने श्री बनारसीदास चतुर्वेदी से किया था—

"पाठक जी के हिन्दी स्कूल कोटला मे इन्सपेक्टर लायड साहब वार्षिक परीक्षा लेने आये। ऊँची दफाओ के लडको को पढने के लिये खडा किया गया। पाठक जी नीची दफा मे थे, पर उनको सब-डिप्टी इन्सपेक्टर ने ऊँची दफा के साथ पढने को खडा कर दिया। उनके पढने की बारी आई तो उन्होने भूगोल की पुस्तक मे से, जो थोडी देर पहले ही उन्हे पारितोषिक मे मिली थी, पढा—"दावहचज उस धरती का नाम है जो चिनाव और झेलम के बीच मे है।"

साहब—इसका मतलब कह सकता है ?

पाठक जी—"चिनाव को च लयो और झेलम को ज लयो—चज बनि गयो।"

सबने मुँह मे उँगली दी। डिप्टी इन्सपेक्टर, सब-डिप्टी इन्सपेक्टर, अध्यापक

१ श्रीधर पाठक, 'स्वजीवनी'—४।
२ श्रीधर पाठक, 'स्वजीवनी'—५।

आश्चर्यचकित हो गए। यह बात ध्यान देने योग्य है कि पाठक जी ने उस पुस्तक को पहले कभी नहीं पढ़ा था और न दोआब का नाम ही कहीं सुना था।"[1]

उपर्युक्त संस्मरण से पाठक जी की बाल-सुलभ मौलिक प्रतिभा का परिचय अवश्य मिलने लगता है। यह प्रतिभा ही क्रमशः अभिवृद्धि को प्राप्त होती गई, जिससे साहित्य क्षेत्र में कितनी ही मौलिक प्रवृत्तियों को वह सफलतापूर्वक सन्निविष्ट कर सके थे।

इसके अतिरिक्त प्रकृति के प्रति भी उनका अटूट अनुराग था। अपने बाल-जीवन में ही प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में वह घूमा करते थे। प्रकृति के विशुद्ध आनन्द का उपभोग करने के लिए उन्हें अपने किसी बाल-सहचर की भी आवश्यकता न हुआ करती थी। इस प्रकार का भ्रमण करते हुए वह यत्र-तत्र से पत्थर के टुकड़े तथा शंख आदि एकत्रित करते जाते थे, जिनसे वह अपने साधारण कमरे को सजाया करते थे, जो उस ग्रामीण वातावरण में भी जन-समुदाय के कौतूहल का विषय रहा करता था।

"इस अवस्था में इन्हें आप-ही-आप चित्र खींचने और मिट्टी की सुन्दर मूर्तियाँ बनाने तथा प्राकृतिक शोभा की विविध वस्तुओं के संग्रह करने में अभिरुचि उत्पन्न हुई और इसी व्यवसाय में ये तत्पर रहे।"[2]

इस स्थल पर यह उल्लेख करना भी उचित ही होगा कि सातवें वर्ष में पाठक जी का उपनयन संस्कार हुआ था। उन्हें अपने पूज्यपाद पिताजी से मन्त्र-दीक्षा मिली। वह सन्ध्या-वन्दन आदि में बड़े ही नियमित थे। ग्यारहवें वर्ष में गोकुल के समीप के चौहरी नामक सुन्दर ग्राम के एक सुकुल की कन्या से उनका पाणिग्रहण संस्कार भी हुआ था, किन्तु उनकी वह पत्नी निस्सन्तान ही मर गई थी।[3]

"१४ वर्ष की अवस्था में उनका बाधित अध्ययन फिर प्रारम्भ हुआ, पहले तो कुछ फारसी पढ़ी और सन् १८७५ ई० में तहसीली स्कूल में हिन्दी की

---

१. श्री बनारसीदास चतुर्वेदी—'संस्मरण', भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
२. डा० श्यामसुन्दर दास—'पं० श्रीधर पाठक', हिन्दी कोविद रत्नमाला (इ० प्रे०)।
३. श्रीधर पाठक, 'स्वजीवनी'—३।

प्रवेशिका परीक्षा पास की। इस परीक्षा मे प्रान्त भर मे उनका नम्बर पहला रहा।"[1]

तहसीली स्कूल फीरोजाबाद मे प्रविष्ट होने मे पूर्व उनका समय यो ही व्यर्थ मे बीत रहा था। अन्त मे तहसीली स्कूल फीरोजाबाद के अध्यापक प० जयराम को जब यह ज्ञात हुआ कि पाठक जी पढने के लिए स्कूल मे नही आ रहे हैं तब वह स्वय जोधरी गए और 'भाषा भास्कर' तथा 'रेखागणित' से कितने ही प्रश्न पूछे—उनके उत्तर ठीक निकले। अन्त मे उन्होने पाठक जी को मिडिल स्कूल का अध्ययन अग्रसर रखने की प्रेरणा दी।

अध्यापक प० जयराम का यह कार्य शाला मे विद्यार्थियो की सख्या कम रहने के कारण भी पाठक जी को प्रेरित करने का हो सकता है, किन्तु यह सत्य है कि उनके कारण पाठक जी के अध्ययन आदि के सम्बन्ध मे प्रोत्साहन अवश्य मिला। जीवन-निर्माण के इस प्रारम्भिक शिलान्यास की महत्ता का अनुभव कर वह उनके व्यक्तित्व को बडे सम्मान से स्मरण किया करते थे। उनके सम्बन्ध मे पाठक जी की निम्न भावनाएँ थी—

"पूज्य प० जयराम जी उन हिन्दुस्तानी ग्रामीण सज्जनो के नमूना थे, जिनके कारण ग्राम्य समाज अपना गौरवयुक्त स्थान सुरक्षित किये हुए है। उनमे वे सब गुण थे जो एक साधारण मनुष्य को सच्चे मनुष्यत्व की पदवी प्रदान करते है। सबसे प्रथम उनके गुणो मे गणनीय उनका स्वास्थ्य था। उनका भव्य मुख-मण्डल, जिसमे बुद्धि की तीव्रता, सात्विक भावव्यजक मस्तक की विशालता, आन्तरिक महत्व-प्रदर्शक नेत्रो की तेजस्विता, गौर वर्ण की समुज्ज्वलता सहित अपनी सत्ता का स्वतन्त्र रीति से साक्ष्य देती थी, उनके मित्र और शिष्य वर्ग के हृदय पर शाश्वत प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति रखता था। वे सब प्रकार की सहनशीलता की मूर्ति थे। मुझको उनमे कोई भी अवगुण दृष्टि नही आता है।"[2]

तहसीली स्कूल मे प्रविष्ट होने के उपरान्त उन्होने १८७५ ई० मे 'हिन्दी प्रवेशिका', चार वर्ष उपरान्त १८७९ ई० मे आगरा कालेज से 'अग्रेजी मिडिल'

---

१. डा० श्यामसुन्दर दास, 'पं० श्रीधर पाठक', हिन्दी कोविद रत्नमाला (इ० प्रे०)।

२. बनारसीदास चतुर्वेदी, 'कविवर पं० श्रीधर पाठक', संस्मरण, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, पृष्ठ ३४।

एव १८८०-८१ ई० मे कलकत्ता विश्वविद्यालय की एण्ट्रेन्स परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की। एफ० ए० के प्रथम वर्ग मे कुछ दिन अध्ययन भी चला, किन्तु प्रिन्सिपल से झगडा हो जाने के कारण अध्ययन छोड देना पडा। इस प्रकार शिक्षा का क्रमिक अध्ययन इस स्थल पर ही समाप्त हो गया, किन्तु इलाहाबाद मे जब वह लाट साहब के कार्यालय मे नौकर थे, उन्होने म्योर सेंट्रल कालेज मे दो वर्ष कानून का अध्ययन भी किया था, किन्तु सरकारी कार्य मे उनको नैनीताल जाना पडा, जिससे वह कानून की परीक्षा न दे सके थे।

एण्ट्रेंस परीक्षा उत्तीर्ण युवक श्रीधर पाठक १८८१ ई० मे जीविकोपयोगी समुचित कार्य प्राप्त करने के लिए २० रुपए लेकर प्रयाग मे आए।[1] कुछ समय तक इसी लालसा से उन्होने पोस्ट मास्टर जनरल के कार्यालय मे अवैतनिक कार्य भी किया, किन्तु पाठक जी इस समय अपने अस्त-व्यस्त जीवन से दुखी एव बाधित थे। इस समय ही उनका साक्षात्कार प० मदनमोहन मालवीय के पितृव्य प० जयगोविन्द मालवीय से हुआ। उन्होंने उनको गवर्नमेंट हाई स्कूल, इलाहाबाद मे एक अध्यापक के स्थान पर नौकर करा दिया। दो-तीन मास के उपरान्त १८८१ ई० ही मे साठ रुपए मासिक वेतन पर उन्हे कलकत्ते मे सेंसस कमिश्नर के स्थायी कार्यालय मे नौकरी मिल गई। इस नौकरी मे ही प्रथम बार उन्हे शिमला जाने का अवसर मिला, जहाँ वह हिमालय के नयनाभिराम रम्य दृश्यो को देखकर गद्गद् हो गए थे। ११ मास यह नौकरी करने के पश्चात् वह पुन. प्रयाग लौट आये। इस समय ही रेलवे की नौकरी मिल जाने से वह रेवाडी चले गये, किन्तु अपने प्रस्थान करने के समय वह लाट साहब के कार्यालय मे प्रार्थना-पत्र देकर गए थे। उक्त कार्यालय के अधिकारी ने पाठक जी के प्रार्थना-पत्र मे लिखित अंग्रेजी से प्रभावित होकर उन्हें ३० रुपए मासिक वेतन पर पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट मे स्थान दिया। अन्तत रेलवे की नौकरी से त्यागपत्र देकर वह पुन प्रयाग आ गये और अपने विभागीय कार्य के सम्बन्ध मे उन्हे कितनी ही बार नैनीताल जाने का अवसर मिला। शिमला के समान नैनीताल के प्राकृतिक दृश्यो ने भी उन्हे मुग्ध कर लिया। १८९८ ई० मे जब उनका वेतन २०० रुपया मासिक था वह आगरा को स्थानान्तरित हुए। वहाँ वह Divisional Head Clerk बनाये गए तथा डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट के रुग्ण हो जाने पर उस पद पर भी उन्होने बडी योग्यता से कार्य

---

१. श्री रामजीलाल शर्मा—स्व० प० श्रीधर पाठक, 'विद्यार्थी', भाद्रपद १९८५ वि०।

किया। १६०१ ई० मे ३०० रुपए मासिक वेतन पर नव स्थापित इरीगेशन कमीशन के सुपरिन्टेन्डेन्ट के पद पर उन्हें नियुक्त किया गया था। उस पद पर उन्होंने १६०३ ई० तक कार्य किया। इस पद पर रहकर ही उन्हे सम्पूर्ण भारत के भ्रमण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। इस कमीशन के टूटने पर ही तीन मास का अवकाश लेकर वह काश्मीर गए थे। इस अवसर ने ही उन्हे 'काश्मीर सुषमा' जैसा अमर काव्य रचने की प्रेरणा दी थी।

अनन्तर सरकारी नौकरी के सम्बन्ध मे उन्हे पुन शिमला जाने का सौभाग्य मिला था। वहाँ किसी अंग्रेज अफसर से सघर्ष हो जाने के कारण १६१४ ई० मे उन्होंने सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण कर लिया।

"पाठक जी सरकारी काम बडे परिश्रम और सावधानी से करते हैं और उत्तम अंग्रेजी लिखने के लिए ख्यात हैं। सन् १८६८-६६ की प्रान्तीय इरीगेशन रिपोर्ट मे आपकी प्रशंसा छपी है।"[1]

सरकारी नौकरी से अवकाश-ग्रहण करने के उपरान्त उन्हें १५० रुपये मासिक राजकीय पेन्शन मिलने लगी। अनन्तर उन्होंने लूकरगंज प्रयाग मे अपने निवास के लिये 'पद्मकोट' नाम का सुन्दर बंगला बनवाया था। वह बंगला पाठक जी के जीवन-काल तक साहित्यिकों का तीर्थस्थान रहा। सुन्दर उद्यानों के कारण वह बडे ही रमणीक दृश्य प्रस्तुत करता था। पाठक जी से यदि कोई भेंट करने भी जाता था तो या तो वह साहित्य-सर्जना मे तत्पर दिखलाई पडते थे या अपने उद्यान मे। स्वच्छता उन्हे बडी प्रिय थी। इसी भावना के कारण वह बंगले के बडे फाटक न खोलते थे। उन्हे भय था कि घोडा-गाडी आकर बंगला की भूमि को विषम कर देंगे तथा घोडे की लीद एवं पेशाब आदि से वहाँ गदगी फैलेगी।

पाठक जी श्वास और खाँसी के असाध्य रोग से कितने वर्ष ही पीडित रहे थे। इसके कारण ही उन्होंने कितनी बार ही प्रयाग से परिवर्तन के लिये यात्राएँ की थी। श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय से पाठक जी का इस रोग के कारण पत्र-व्यवहार हुआ था। वे पत्र 'विशाल भारत' के फरवरी १६२६ के अंक मे श्री पाण्डेय जी ने 'कविवर प० श्रीधर पाठक से भेंट' शीर्षक लेख के अन्तर्गत प्रकाशित कराये हैं।

---

१. डा० श्यामसुन्दर दास, 'पं० श्रीधर पाठक', हिन्दी कोविद रत्नमाला, भाग १ (इ० प्रे०)।

पाण्डेय जी अपना 'प्रवासी' नामक काव्य पाठक जी से संशोधित कराना चाहते थे, किन्तु ११ सितम्बर, १९०६ ई० एवं १५ नवम्बर १९०६ ई० के पत्रो मे अपनी रुग्णावस्था से विवश होकर उक्त काव्य पाठक जी ने स्वयं कवि के पास ही लौटाल दिया था। पाठक जी २५-१०-१९१४ ई० के पत्र मे लिखते हैं—

"आपके पूर्व समागम के समय मैं समझता हूँ कि मैं रुग्ण अथवा एक कठिन रोग से मुक्त होकर निर्बलता से निवृत्ति पाने मे प्रवृत्त था—इसी कारण आपकी आज्ञापित सेवा मैं न कर सका। आप प्रसंग को अपनी स्मृति मे स्थान दिये हुए हैं, परन्तु मैं सचमुच भूल ही गया था। कारण यह है कि तब से मैं निरन्तर रुग्ण ही रहा हूँ और आजकल तो श्वास के राजरोग से अनवरत महा-भारत मे निरत रहना पड़ता है।"

आपने ८ नवम्बर १९२३ ई० के पत्र मे श्री पाण्डेय जी को लिखा था—

"आप जानते होंगे कि मैं वर्षो से श्वास-रोग से ग्रसित हूँ। इसी रोग के कारण इस शीत ऋतु का कुछ भाग मैं श्री जगन्नाथपुरी मे व्यतीत करना चाहता हूँ। आप उत्कल भाषा के श्रेष्ठ कवि हैं। अत सम्भव है वहाँ आपके कोई मित्र हो। यदि हो तो उनके नाम और पते आप मुझको बतादें तो बड़ा अनुग्रह हो।"

इस सम्बन्ध मे पाठक जी के उत्कल प्रान्त के महामहोपाध्याय प० जगन्नाथ मिश्र तर्कसाख्य, न्यायतीर्थ एव श्रीयुत शशिभूषण राय वानी गढी कटक से पत्र-व्यवहार चला था। उन दिनो पुरी अस्वस्थ्य क्षेत्र था। इसलिये पाठक जी ने वहाँ जाने का विचार त्याग दिया था।

इसी रुग्णावस्था के कारण पाठक जी का हिन्दी के 'द्विवेदी-युग' के प्रमुख निबन्ध लेखक जबलपुर-निवासी प० गगाप्रसाद अग्निहोत्री से भी पत्र-व्यवहार हुआ था। अग्निहोत्री जी के लिये पाठक जी द्वारा लिखित पत्र-राशि मे से दो पत्र द्रष्टव्य हैं—

१

श्री प्रयाग
११–७–२०

प्रियवर प्रणमि,

कृपा पत्र प्राप्त हुआ। मैं अभी बीमार ही हूँ और बड़ी कठिनता से यह पत्र लिख रहा हूँ। श्वास रोग बड़ा कष्टप्रद है।

मनोविनोद पहुँचा या नहीं। कृपया सूचित कीजियेगा। न पहुँचा हो तो दूसरी कापी भेजी जाय।

कृ० श्रीधर पाठक[1]

२ श्री प्रयाग

३०-४-२१

प्रियवर

नमस्कार।

चिरकाल से आपका कुशल-वृत्त अवगत नहीं हुआ। आशा है आप सर्वथा प्रसन्न होंगे। आपको यह जानकर किञ्चित कुतूहल होगा कि मैं ग्रीष्म व्यतीत करने को आपके प्रान्त में प्रविष्ट होने का संकल्प कर रहा हूं। पंचमढी में पांच मास रहना चाहता हूँ। यदि वहां पर आपके कोई मित्र व परिचित प्रेमी हो तो क्या उनकी सहायता से मुझे समीचीन मकान किराये पर मिल सकेगा। मैं अकेला ही आऊंगा। शायद एक भृत्य साथ होगा, यदि यहाँ से चलने को कोई राजी हुआ तो—नहीं तो नौकर भी C P में ही नियुक्त करना पडेगा—मैं कुछ घंटे जबलपुर में शायद ठहरूँ और आपके दर्शन करूँ। अभी शरीर शिथिल ही है और सेवा चाहता है। जबलपुर बदलने की भी सख्त जरूरत है। यदि जबलपुर से नौकर मिल सका तो अति ही सुभीता हो।

कृपैषी

श्रीधर पाठक

श्वास एवं खाँसी के प्रकोप के कारण ही डाक्टरों की राय से उन्होंने सपरिवार परिवर्तन के दृष्टिकोण से देहरादून की यात्रा की थी। वहां लाभ न होने के कारण वह दस दिन के लिये शिमला भी गये थे, किन्तु स्वास्थ्य-लाभ न होने के कारण वह पुनः प्रयाग लौट आये। इसी यात्रा के प्रसंग में पाठक जी ने १९१५ ई० में 'देहरादून' नामक रचना प्रस्तुत की थी।

नवम्बर १९२८ ई० के 'विशाल भारत' में प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, गुरुकुल कांगडी ने "प० श्रीधर पाठक के अन्तिम दिन—मसूरी के कुछ संस्मरण" में पाठक जी के अन्तिम दिनों के कुछ विवरण अंकित किये हैं। प्रो० सत्यव्रत जी को ३ सितम्बर १९२८ की भेंट-वेला पर पाठक जी ने कहा था—"मसूरी

१–२. श्री गंगा प्रसाद अग्निहोत्री को लिखित पाठक जी के पत्र—श्री हरिकृष्ण त्रिपाठी, दीक्षितपुरा जबलपुर के पास संग्रहीत हैं।

तो मेरे लिये नैनीताल की अपेक्षा भी हितकर है।"

० ० ०

"अपने को निराश्रय अनुभव करना महापाप है। मनुष्य में जो शक्तियाँ होती हैं उनका विकास करना ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिये। शक्ति का विकास और सौन्दर्य का विकास एक ही बात है। इसी को मैं ईश्वर-भक्ति कहता हूँ।"

उपर्युक्त पंक्तियों से उनका दार्शनिक होना स्पष्ट व्यक्त होता है। ६ सितम्बर १९२८ ई० को प्रो० सत्यव्रत जिलोनाज से पुनः पाठक जी से मिलने पहुँचे। वह बुखार से पीड़ित थे। उल्टियों से दुःखी होकर उन्होंने ग्लोसेरीन खाली थी। गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य प्रो० रामदेव ने पाठक जी से कांगड़ी चलने का आग्रह किया। इस पर उन्होंने बड़ी ही करुण मुद्रा में उत्तर दिया था—"अब तो आप लोगों के कन्धों पर चढ़कर परलोक की यात्रा करूँगा। स्वामी श्रद्धानन्द जी मुझसे दो साल बड़े थे। स्वामी जी को परलोक यात्रा किये दो साल हो गये। अब मेरा समय भी स्वामी जी के पास पहुँचने का हो गया।" ६ सितम्बर १९२८ ई० को दस्त में खून आया। डा० नेतराम को बुलाने का विचार हुआ। उनका उत्तर था—"भैया, रहने दो वह मेरा क्या बना लेंगे?"

१२ सितम्बर १९२८ को प्रातः गिरिधर पाठक मसूरी पहुँचे। १४ सितम्बर के मध्याह्न में नीचे जाने का निश्चय था। १३ सितम्बर को पाठक जी ने प्रो० सत्यव्रत से कहा—'कुछ होगा नहीं।'

प्रो० सत्यव्रत—'आप शीघ्र ही ठीक हो जावेंगे।'

पाठक जी—'विपरीततामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहु साधनता'

नीचे से चलने के आग्रह पर—'कल कल तो मैं उलटी करता हुआ जाऊँगा'—उन्होंने कहा था। १३ सितम्बर को अपने पिता की अस्वस्थता एवं बढ़ते रोग के सम्बन्ध में श्री गिरिधर पाठक ने एक पत्र अपने भाई वागीश्वर पाठक और एक पत्र अपनी बहिन ललिता पाठक को लिखा था।

१३ सितम्बर १९२८ को सायंकाल तक रोग बढ़ता ही गया। थूकने के लिए उठने पर भी श्री गिरिधर पाठक द्वारा पीछे से सहारा दिया गया। हृदय की गति अवरुद्ध हो गई। डाक्टर ने इन्जैक्शन दिये, थोड़ी स्वाँस आई। अनन्तर पुनः न लौटने के लिये वह सदैव के लिये चली गई। पाठक जी ने १३ सितम्बर को ठीक साढ़े आठ बजे रात्रि में यह महायात्रा की। १४ सितम्बर को अर्थी मसूरी के लण्ढौर बाजार होती हुई श्मशान की तरफ चली गई। अर्थी के आगे-

आगे वेद-ऋचाएँ उच्चारित हो रही थीं।

उनके निधन से लूकरगंज का पद्मकोट श्री-विहीन हो गया, पाठक-परिवार निस्सबल हो गया, उनकी विधवा पत्नी और लाडली आत्मजा ललिता रोती-कलपती रह गईं तथा उनके पुत्र गिरिधर तथा वागधर के समक्ष अन्धकार छा गया। पाठक जी के 'हरि' ने उनके निधन में अपना भक्त, 'हिन्द' ने अपना अनन्य प्रेमी तथा 'हिन्दी' ने अपने अनन्य साधक और संरक्षक को खोया। पाठक जी की अध्ययनशीलता एवं मानवोचित परिस्थितियों के चित्रण में उनकी अभिरुचि ने उन्हें एकदम मौलिक बना दिया था। उनके इस स्वरूप से ही हिन्दी को दृढ़ता और लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। उनकी इस भावना में ही विश्व-जनीन मानव-सत्य का समावेश था, जिससे हिन्दी-काव्य में एक नवीन मोड़ का सूत्रपात हो सका। अपने ऐसे सक्रिय-महापोषक के गोलोकगमन पर हिन्दी आठ-आठ आँसू बहाकर क्यों न रोती?

पाठक जी का जन्म रूढ़िवादी सनातनी परिवार में हुआ था। इस परम्परा का युक्ति-युक्त पालन उनके पिता जी के जीवन-काल तक सन्तोषजनक चलता रहा। पाठक जी उस वातावरण में रहते हुए भी उस लोक के प्राणी न थे। उनमें जीवन की परख थी और मानव के संवेदनात्मक विकारों के प्रति निष्ठा थी। इससे जीवन की केवल एक-पक्षीय भावनाओं को अपनाने में वह समर्थ न रह सके। उनके द्वारा विश्व और मानव के सत्य का स्वागत किया गया। इसके प्रमाण के लिए उनका सम्पूर्ण स्वच्छन्दतावादी, प्राकृतिक एवं राष्ट्रीय काव्य प्रस्तुत किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में उनके पिताजी के जीवन-वृत्त का निम्न अंश द्रष्टव्य है—

"अपनी संतान पर अपरिमित प्रेम था। मैं उनका एक ही अवशिष्ट पुत्र हूँ, मुझे गोपाल जी का प्रसाद समझते थे, यद्यपि मेरे अंग्रेजी-संसर्ग-दूषित स्वतन्त्र सिद्धान्तों पर प्रायः खेद करते थे। अन्तर में मुझ पर प्रसन्न थे, पर मेरे सामने मेरी बड़ाई कभी न करते थे, ऐसा करना हानिकारक मानते थे। मुझ पर उनका अगाह वात्सल्य था। मेरी भक्ति-विषयक कविता की प्रशंसा करते थे। परन्तु शेष को व्यर्थ की बकवाद बताते थे। उनकी आज्ञा थी कि सब कविता केवल भगवत्-सम्बन्ध में होनी चाहिये, परन्तु इस आज्ञा का पालन मुझसे न हो सका। इसका मुझे बहुत अनुताप है।"[१]

उपर्युक्त से पाठक जी के परम्परागत संस्कार और मौलिकता पर सम्यक्

१. श्रीधर पाठक—आराध्य शोकांजलि, जीवनवृत्त, पृष्ठ २३।

प्रकाश पड़ता है। संस्कारवादी भावनाओं से प्रेरित होकर ही उन्होंने 'श्री गोपिका गीत' एवं भगवद्विषयक रचनाएँ की थी और अपने पूज्यपाद पिता के लिये भागवत् की प्रतिलिपि की थी।

पाठक जी के पिता बड़े ही ब्राह्मण-निष्ठ थे। इस सम्बन्ध में 'अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनु' शास्त्रीय वाक्य पर उनका पूर्ण विश्वास था। वह अपने ब्राह्मण चौकीदार तक को सदा ही श्रद्धा की दृष्टि से देखा करते थे और मकर संक्रान्ति तथा अन्य अवसरों पर दान आदि देने के समय 'लाओ चरण छुइ लेन देउ' कहकर उनके चरण तक स्पर्श करते थे। वैशाख सं० १९६२ वि० में प्रयाग में सर्व प्रायश्चित्त करवाने में भी उनका यह विप्र-प्रेम स्पष्ट प्रमाणित था। पाठक जी भी अपने पिता जी की परम्पराओं को ज्यों का त्यों मानते रहे।

अपढ़ ब्राह्मण चौकीदार का वह वैसा ही सम्मान करते रहे जैसा उनके पिता जी के समय में होता था।—"ये ब्राह्मण मेरे पिताजी के समय का है। वह इनका बड़ा आदर करते थे, यह नाममात्र का चौकीदार है। वस्तुत यह पेंशन पाता है।"[1]

यद्यपि वे वर्णाश्रम धर्म के पक्षपाती और प्राचीन साहित्य के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु थे, किन्तु साम्प्रदायिक संकीर्णता एवं अन्ध-विश्वास उनमें नहीं था। इस सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि एण्ट्रेन्स परीक्षा उत्तीर्ण होने के उपरान्त नौकरी की खोज में वह प्रयाग प्रस्थान करने वाले थे। इसी समय छींक हुई। उनके बाबा प० लक्ष्मण मिश्र ने उन्हे यह यात्रा स्थगित करने के लिये आदेश भी दिया, परन्तु वह उसका पालन न कर सके। उपर्युक्त संस्मरण उनकी स्वच्छंद विचारधारा सिद्ध करता है, जिसमे युवावस्था के आवेग और निर्भीक आत्म-विश्वास का सम्मिश्रण था।

श्री रामदास गौड एम० ए० ने जनवरी १९२९ के 'विशाल भारत' मे 'स्व० पाठक जी के कुछ संस्मरण' के अन्तर्गत लिखा है—

"मुझे चक्कर आता था। एक दिन पाठक जी ने कहा—मुझे एक बार चक्कर आने लगा तो मेरी माता ने चक्कर निवारण करने वाली एक मणिका मेरे गले में डाल दी। तुम्हे विश्वास हो तो तुमको भी वह मणिका मँगवादूँ।

१. श्री रामदास गौड, 'स्व० पाठक जी के कुछ संस्मरण', विशाल भारत, जनवरी १९२९।

पाठकजी ने वह मणिका उनके गले में पहनाई—"भाई तुम वैज्ञानिक हेतु पूछोगे तो मैं कुछ न बता सकूंगा।"

यो उपर्युक्त दोनो ही ससमरण विरोधात्मक हैं। द्वितीय मे यद्यपि अन्ध-विश्वास है तथापि उसमे माता के प्रति निष्ठा भी झलकती है। मैं तो इसे परिस्थितियो के अनुकूल ही आचरण करना कहूँगा या दूसरे शब्दो मे यह भी कहने का साहस करूँगा कि जीवन के अनुभवो ने पाठक जी जैसे निर्द्वन्द्व युवक को भी विश्व के परम्परागत विश्वास के समक्ष विनीत कर दिया था।

पाठक जी की उपर्युक्त तथा उनके जीवन की अन्य विचारधाराएँ इस प्रकार की हो सकती हैं, जिनसे सभी सहमत न हो, किन्तु उनमे उदारता और सरलता कूट-कूटकर भरी हुई थी। अपने रसोइया को उन्होने अग्रेजी और हिंदी बडे मनोयोग से पढाई थी। अन्त मे Survey of India मे उसे नौकर करा दिया। उसी प्रकार मलाया के प्रवासी भारतीय का पत्र आने पर भारत-स्थित उसके पुत्र की उन्होने सदैव चिन्ता रखी और उसको भी स्थायी नौकरी दिलाई थी। विद्या-दान की उनकी बडी ही अभिरुचि थी। मसूरी के अपने अन्तिम दिनो मे वह एक लडके को अंग्रेजी पढाया करते थे। इस सम्बन्ध मे किसी भी सत्पात्र को देखकर वह विद्या-दान मे जरा भी सकोच न करते थे।

राजनीतिक विचारों की उग्रता के कारण श्री बालमुकुन्द गुप्त जी को 'हिन्दोस्थान' के सम्पादक-पद से हटना पडा था। इस समय अग्रेजी ज्ञान करने की उन्हे आवश्यकता प्रतीत हुई। इसमे प० श्रीधर पाठक ने श्री गुप्त जी को पूर्ण सहयोग दिया था। इस सम्बन्ध के पाठक जी के दो-एक पत्र बडे ही महत्वपूर्ण है—

श्री प्रयाग

२०-११-९१

मित्रवर,

१८ का कृ० का० प्राप्त हुआ—आपका साहस और उत्साह (विद्योपार्जन मे) सराहने योग्य है, चार रीडर आपने समाप्त कर ली, यह सुनकर बडा आनन्द हुआ। Practical English के लिए यदि रामकृष्ण खत्री, बनारस को लिखियेगा तो वह वी० पी० पी० से भेज देगा। प्रथम पार्ट मँगाइये। दाम

पाँच छः बरस हुये उन्नीस या बीस आने था । अब भी वही या कुछ कम होगा ।

अधिक आज्ञाओं का प्रतीक्षक

आपका शुभैषी

श्रीधर पाठक[1]

श्री प्रयाग

११–२–९७

मित्रवर,

आप अवश्य कापी मेरे पास भेजिये, मैं उसे देखकर पूर्णतः नोटिस दिया करूँगा और Companion का लेना भी अच्छा होगा ।

मैंने उर्दू सीखने का आरम्भ पुनः किया है और शायद शब्दों के अर्थों के लिये आपको कष्ट देना पड़ेगा व० वा० में नि० देने का अभी इरादा है ।

शुभैषी

श्रीधर पाठक[2]

इस प्रकार यह पूर्ण स्पष्ट है कि वह दूसरे के पढ़ाने और स्वयं पढ़ने के लिये बड़े उत्साहित रहा करते थे ।

जीवन के दारुण सघातो को सहन करती हुई मूक और नियन्त्रण के बधन को भी आशीर्वाद-सा शिरोधार्य करती हुई युगो-युगो से दलित और पीड़ित भारतीय नारी के प्रति भी पाठक जी का ध्यान गया था । वह स्त्री को भी पुरुष के समान ही सम्मान्य पद देने की विचारधारा रखते थे । वह पाश्चात्य नारी के निर्लज्ज और स्वच्छन्द तथा प्राच्य नारी के नियन्त्रित एव बाधित स्वरूपो को पसन्द न करते थे । इस सम्बन्ध मे वह पाश्चात्य एव प्राच्य विचारो के सम्मिश्रण से निर्मिता नारी के स्वरूप के भक्त थे । इसी से नारी-शिक्षा को उन्होने विशेष प्रोत्साहन दिया था और अपनी विचारधारा को कार्यान्वित करने के लिये अपनी सुपुत्री ललिता पाठक को अपने समय मे ही विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा दिलाई थी ।

पाठक जी बडे ही मेधावी और प्रतिभावान थे । उनके सम्बन्ध मे यह प्रसिद्ध है कि वह किसी पुस्तक को आदि से अन्त तक न पढते थे । केवल पुस्तक

१-२ बालमुकुन्द गुप्त, स्मारक ग्रथ, सपादक श्री झाबरमल शर्मा, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रकाशक, गुप्त स्मारक ग्रथ प्रकाशन समिति, १४७ हरिसन रोड, कलकत्ता, पृष्ठ ४१–४२–४३ ।

के यत्र-तत्र पृष्ठो को पलटकर ही वह पाठ्य सामग्री से परिचित हो जाया करते थे। सोने के लिए जाने पर वह पेन्सिल और कागज पलग के पास रख लिया करते थे और काव्यगत तथा अन्य किसी प्रकार की भावना के उठते ही वह उसे उसी समय अंकित भी कर लेते थे।

"कवियो की रचनाओ को बडे मनोयोग से सुनते थे। कविता सुनकर जब कोई उनके अभिमत जानने के लिये उनसे प्रश्न करता था तो प्रत्येक बार अपना मत प्रकट करने मे वह बडी विनम्रता से कहा करते थे—यह मेरी निजी राय है कि जो कुछ आप करें सोच-विचार कर करें।"

हिन्दी के पत्र-सम्पादको को उनसे कविताएँ एव लेखादि प्राप्त करने मे कभी भी कठिनाई नही हुई। उसी प्रकार हिन्दी-प्रेमियो को अपनी सभाओ की सफलता के लिए उनसे प्रार्थना करने पर भी वे कभी भी विफल मनोरथ होकर नही लौटे।

पाठक जी का सम्पूर्ण जीवन राजकीय सेवा मे ही बीता था; किन्तु वह राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक थे। उनके भारत-गीत उनकी राष्ट्रीयता के ज्वलत उदाहरण एव प्रमाण हैं।" " देश की वृद्धिशील दुर्बलता से दु खी होकर वे कभी गान्धी जी के अहिसा-प्रचार पर बिगडते थे और कभी समस्त ठाकुरो को कायर और नामर्द की जाति बताते थे।[1]

उनमे जन्मभूमि के प्रति गाढ अनुराग और वहां के निवासियो के लिये अत्यधिक स्नेह था। इन्ही भावनाओ से अनुप्रेरित होकर ही उन्होंने ये पत्र श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे थे—

श्री प्रयाग
४-५-२०

"आप अपने आने का वचन पूरा कीजियेगा। अवश्य और अवश्य अपने ही स्थान (पद्मकोट) पर ठहरियेगा। मैं जानता हूँ यहाँ पर कुछ चतुर्वेदियो के घर हैं और आपके शायद कोई नातेदार भी होंगे, परन्तु हमारा और आपका गांव का नाता इन सबसे जबर्दस्त है, उसे उपेक्षित न कीजियेगा। जोधरी और फिरोजाबाद को न भूलियेगा।"[2]

---

१ श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', 'स्व० प० श्रीधर पाठक', अभ्युदय, २२ सितम्बर १९२८।

२ श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, 'प० श्रीधर पाठक', सस्मरण, ज्ञानपीठ काशी।

श्री प्रयाग
३०–६–२७

"भौत दिन तें रामन-रम्मन नाय भये। अब तो फिरोजाबाद तें ऐतमो ऐमदाबाद ज्यो छोटि रह्यौ लागाऊँ ? कबऊँ आइबो होगो ?

कबऊँ-कबऊँ चिट्ठी डारि दैबो करो ? डाकखानूँ नाहीं होगो—मांदिगी तो नाय फैली ? अब के बिराग में पानी बरसी नहीं याइ बरसो—मुश्यों कैसो है रह्यौ है।

जल्दी लिखियो।"[1]

उपर्युक्त पत्रों में उनका आत्मीय भाव स्पष्ट झलकता है।

वृद्ध होते हुये भी पाठक जी में किसी भी युवक जैसी स्फूर्ति और सक्रियता थी। वे व्यावहारिक जीवन में सदैव तत्परता से काम लेते थे।

"यद्यपि पाठक जी की अवस्था साठ वर्ष से अधिक हो चुकी है तथापि उनका दिल न तो बूढ़ा ही था और न बूढ़ा ही हुआ है तथा न उनके अंग्रेज और योरोपियनों में तो ऐसे बहुत-से व्यक्ति मिले जिनके हृदय की सजीवता और रक्त की स्फूर्ति को उनकी वृद्धावस्था और सफेद बाल छिपा नहीं सके, किंतु हिन्दुओं में और विशेषतः श्रद्धालुओं में तो ऐसे बहुत ही कम व्यक्ति मिले हैं जिनके दिल और बालों पर एक साथ ही पाला नहीं पड़ा। पाठक जी नई से नई युक्ति और नवीन सभ्यता से प्रसूत नये भावों को भी बड़े उत्साह और सहानुभूति से सुनते तथा उनका यथोचित सम्मान भी करते थे। वे प्राय कहा करते थे कि मैं अब वाणप्रस्थ में हूँ, किन्तु वे थे विलक्षण वाणप्रस्थ के व्रती। बायस्कोप देखने का उन्हें वैसा ही शौक था जैसा कि हिन्दुस्तानी एकेडमी की सभा में जाने का। मैंने उनको धीरे-धीरे हाँफते हुए कई बार बायस्कोप जाते हुये देखा और जब पूछा कि आप इतना कष्ट क्यों सहा करते हैं तब मुस्कराकर वे बोले कि कष्ट में सुख की भावना सहृदय के लिये सगत एव सम्भाव्य ही है।"[2]

पाठक जी बड़े ही विनोदी और हँसमोड थे। उनके मुख पर उदासीनता और गम्भीरता शायद ही कभी आई हो। बहुधा अपने समीप के मित्रों की

---

१ श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, 'प० श्रीधर पाठक', ससमरण, ज्ञानपीठ काशी।
२ 'चारु चरितावली', सम्पादक श्री वैंकटेश नारायण तिवारी, 'प० श्रीधर पाठक', ले० डा० रामप्रसाद त्रिपाठी।

भाषा की विशेषताओं की वह नकल किया करते थे। प० बालकृष्ण भट्ट की इलाहाबादी बोली मे ही उन्होंने 'देहरादूनवा' नामक परिहास-मूलक रचना रची थी। पाठक जी भट्ट जी को विनोद मे 'प्रोनाम, भट्टोजि' कहकर अभिनन्दन किया करते थे तथा 'का हो भड जी' सम्बोधित किया करते थे। भट्ट जी भी विनोद मे पाठक जी को 'तुमरे मूँडे आग लगै निवहुरियऊ' (जन्म-मरण आदि भव-बन्धन से विमुक्त हो) आशीर्वाद दिया करते थे।[1]

पाठक जी वा० बालमुकुन्द गुप्त के हँसोड स्वभाव की भी प्रशसा किया करते थे।

"जगन्नाथ चौपाया

पत्र आपका आया मन भाया" आदि पक्तियाँ जो गुप्त जी ने प० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी के लिये लिखी थी, पाठक जी इन्हे बहुधा सुनाया करते थे।

पाठक जी के जीवन मे बा० बालमुकुन्द गुप्त, प० महावीरप्रसाद द्विवेदी एव राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' से उनका साहित्यिक सघर्ष हुआ था। इनके सम्बन्ध मे श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने पाठक जी विषयक लिखित सस्मरण मे पूर्ण प्रकाश डाला है। अन्ततः यह मन-मुटाव मित्रता मे ही पर्यवसित हो गया। 'भारत मित्र' मे अपनी हुई आलोचना से चिढकर पाठक जी ने उसे अपनी रचनाएँ भेजना बन्द कर दिया था। इस सम्बन्ध मे बा० बालमुकुन्द गुप्त का लिखित पत्र बडा ही मार्मिक है। इस पत्र मे पाठक जी की मनोवृत्तियो पर भी प्रकाश पडता है। इससे उसे प्रस्तुत करने का लोभ हम सवरण नही कर सकते।

The Bharat Mitra Office, 97 Mukhtaram Babu's Street, Established—1878, Calcutta, 26-11-1900

Telephone No 137

पूज्यवर

प्रणाम।

मेरी सालाना खाँसी मुझे फिर तग कर रही है, इसी से आपके १५ नवम्बर के कार्ड का उत्तर झटपट न दे सका। इसके सिवाय उत्तर के देने मे कुछ दुख होता है, इससे भी देर की। बिना मूल्य और मूल्य की कुछ बात नही। यह सब आपकी इच्छा पर ही है। आपने मूल्य मे भेजा था, हमने वापिस भी नही किया। सुनिए—आप पत्र (भारत मित्र) न पढ़ेंगे, तो इसमे आपकी कुछ हानि नही है, परन्तु लाभ भी नहीं है। उसी प्रकार 'भारत मित्र' की हानि नही पर

---

१. श्रीधर पाठक, समुपस्थिति, श्री गोपिकागीत।

लाभ भी नही, पर बालमुकुन्द गुप्त की हानि है, सुनिये—

मैं समझता हूँ कि आप मे एक उत्तम कविता-शक्ति है और वह ऐसी है कि जिससे आगे को हमारी कविता का कुछ भला हो सकता है। इसी से पुत्तनलाल पढने वाला जब आपकी कविता को अनकृत्त कर रहा था, तो मुझे उसकी खबर लेनी पड़ी तथा आपको भी सूचना देनी पड़ी। उसका फल यह हुआ कि आपने कई एक कविताएँ अच्छी लिख डाली, जिनमे से 'घन विनय' एक विचित्र ही कविता है।

दु:ख यही है कि बीच ही बीच मे लिखा-पढ़ी आ पड़ी, उससे आपका जी सुनने नाराज हो गया उसका यह फल है कि आप 'भारत मित्र' से नाता तोड़ते हैं। क्या ही अच्छा होता यदि आप केवल कविता लिखते और आलोचना करने वालो की बात का बुरा-भला न मानते। आपको उत्तर देने की क्या जरूरत है? जबकि आपकी उत्तम कविता आपने आप लोगो को मोहित कर लेती है।

आप कभी-कभी ऊँचे जाते हैं कि आपकी कविता का वह मूल्य नही जो विलायत आदि मे अच्छे-अच्छे कवियो की कविता मे है, परन्तु इस देश की गिरी दशा को देखिये कि कोई साली भी आपसे कविता लिखने को नही कहता। एक मैं ही हूँ कि आपसे कविता लिखने का अनुरोध करता हूँ। आप निश्चय जानिये इसमें मेरा एक माशा भी स्वार्थ नही है। मैं तो यही चाहता हूँ कि भगवान ने आप जैसी तबियत का एक कवि उत्पन्न किया है तो उसकी कविता का कुछ विकास भी हो। यो ही न कुँभिला जावे। यदि आप कुछ लिख जावेंगे तो २०० वर्ष बाद शायद आपके नाम की पूजा तक हो सकती है।

एक 'भारत मित्र' के नाते से आपसे पत्र-व्यवहार चलता है। यह नाता आप तोडते हैं, भगवान जाने अबकी टूटा फिर कब जुडे। कोई आठ साल बाद आपसे पत्र-व्यवहार फिर चला था, अब बन्द होकर न जाने कब खुले। मैं नही जानता कि अब आप पत्र-व्यवहार करेंगे या नही। इससे कुछ विनय करता हूँ:

(१) हर बात मे शकित और उदास मत हुआ कीजिये।
(२) कोई कुछ आलोचना करे तो उसकी परवाह मत कीजिये।
(३) आलोचको की फिजूल बातों के उत्तर की जरूरत नही है।
(४) चित्त को हर मामले मे प्रसन्न रखिये—बात-बात मे नाराजी और चिढ भली नही।
(५) आपका काम सुन्दर कविता बनाना है—छेड़छाड का उत्तर देना नही।

(६) दासो और मित्रो पर विश्वास रखना ।
(७) जब तक जीवन है जीना पडेगा, तो प्रसन्नता से जीना चाहिये । उदासी क्यो ?

दास,
बालमुकुन्द गुप्त

पाठक जी बडे ही सिद्धान्त-प्रिय थे, जो बात उन्हे जँच जाती थी उसे अन्त तक निबाहते थे । पाठक जी खडी बोली के उत्कृष्ट कवि समझे जाते थे । उनके व्यक्तित्व एव विचारधारा से प्रभावित होकर पाठक जी के अनुयायियो की सख्या क्रमश बढने लगी थी । खडी बोली के सर्वश्रेष्ठ कवि होने के कारण प० कामताप्रसाद गुरु एव प० श्रीधर पाठक मे एक मनोरजक साहित्यिक सघर्ष हुआ था । यह मनोरजक सस्मरण श्री रामेश्वर प्रसाद गुरु ने श्री कुमार हृदय के नाम से लिखा था, जो इस स्थल पर अविकल उद्धृत है—

गुरु जी की कुछ साहित्यिक मनोरंजक घटनाएँ

वैद्यरत्न जगन्नाथप्रसाद शुक्ल प्रयाग मे 'प्रयाग समाचार' निकालते थे । बात सन् १९०२ के लगभग की है । उन दिनो स्व० प० श्रीधर पाठक खडी बोली के सर्वोत्तम (Premier) कवि माने जाते थे । कुछ नौसिखिये भी आजकल के समान पद्य रचना करते थे । इन लोगो को लक्ष्य कर पिताजी ने 'उद्गार' शीर्षक पर कुछ पद्य लिखे, जो 'प्रयाग समाचार' मे छपे ।

हाय हुई कविता तुकबन्दी
सडी हवा मे सुगन्ध गन्दी ।
करो लेखनी अपनी बन्द
श्रीधर को सौंपो सब छन्द ।

कविता के नीचे पिताजी का नाम नही था । पाठक जी ने इसका उत्तर 'उद्गार चिकित्सा' नाम से 'प्रयाग समाचार' मे छपवाया कि—

कविता नई निराला छन्द दालभात मे मूसरचन्द ।
लिखो न करो लेखनी बन्द श्रीधर सम सब कवि स्वच्छन्द ।

'प्रयाग समाचार' बडे चाव से पढा जाने लगा और कुछ खलबली-सी मच गई । तारीफ यह थी कि विश्वासपूर्वक कोई नही जानता था कि लिखने वाले कौन हैं ?

पिताजी ने इसका उत्तर—'चिकित्सा की फीस' नाम से छपवाया—

भले मिले मेरे कविराज, रखली व्याकरण की लाज।
देकर दवा राम का बाण किया आपने जी का त्राण।
पची न बिलकुल प्रथम खुराक निकला भात फाड़कर नाक।
हटा दूसरी से कुछ रोग रहा प्राण तन का सयोग।
चतुर्थ पचम छठवां दाग खाते ही बुझ गया चिराग।
पाणिनि की जब निकली लाश, दर्द पूर्ण पिगल की आश।
फीस चिकित्सा की लें आप व्याकरणी चेलों का शाप।
रहें आप छन्दों मे मग्न छन्द आपके नीचे नग्न।

आचार्य पाठक जी ने इसका उत्तर 'फीस की रसीद' मे दिया कि—

श्रीधर से जलते क्यों आप दस्यु चाल चलते क्यों आप।
मिला खाक मे उनके छन्द दूर करो दिल के दुख दर्द।

पूज्य पिताजी ने इसका उत्तर उसी रसीद मे दिया—

जो खाते हैं बहुत अफीम या जिनका है मर्ज कदीम।
उनके लिये आम है नीम, मरा हुआ बीमार हकीम।
पढने के बदले सिखलाना भली बात पर भौंह चढ़ाना।
सकल कहेगा इसको कौन बैल न कूदे कूदी गौन।
सुनकर सप्रे[1] कृत गुण गान श्रीधर से जलता भगवान।
जन्मे कभी न यह भगवान इसमे नहीं हमारा मान।

इन लेखो से बडी खलबली मच गई। आचार्य द्विवेदीजी के कहने से आगे पद्य नही प्रकाशित हुए। यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि यह पद्य किसी प्रकार के वैमनस्य के परिणाम नही थे। पिताजी पाठक जी को सदा श्रद्धा से देखते थे और लखनऊ और प्रयाग मे मित्रवत मिलते थे।[2]

उपर्युक्त सिद्धान्त-प्रियता के समान ही उनमे अपने गुरुजनो के प्रति अपार श्रद्धा भी थी। स्वामी श्री भगीरथपुरी को लिखे हुए पाठक जी के पत्र से उनकी विनम्रता और अपार निष्ठा झलकती है—

---

१. प० माधवराव सप्रे।

२ 'श्री गुरु-स्मृति अक'—युगारम्भ, सम्पादक व्योहार राजेन्द्रसिह भाग १, अंक ६ मानस-मन्दिर, साहित्य प्रेस, जबलपुर, (२७ अगस्त ४७-मार्गशीर्ष २००४)।

"श्री सिद्ध श्रीमन् महनीय परम पूज्य श्री ५ स्वामी जी महाराज के चरणो मे दीन श्रीधर के साष्टाग प्रणाम और अनन्त नमो नारायण।"

जब से जोधरी मे आपके दर्शन मुझे लब्ध हुए और जब मे आपका कृपा-पत्र आगरे मे प्राप्त हुआ, तब मे अब तक ऐसा कोई अवसर नही आया कि आपके दर्शन वा पत्र की प्राप्ति मुझे हुई हो।

आपके वै० व० १५ रविवार स० १९३८ के पत्र मे कौमुदी की एक प्रति आपके पास भेजने की आज्ञा मैंने प्राप्त की थी और उस पत्र के प्रत्युत्तर मैंने म० पत्र (पोस्टकार्ड) खुले लिफाफे पर भेजा था, उसमे लिख दिया था कि पुस्तक की तलाश करूँगा और 'अप्राप्ते सति तद्ग्रथे प्रेपितव्यो मया स्वक':— परन्तु पुस्तक मैं उन दिनो इसलिये नही भेज सका कि आपके पत्र की प्राप्ति के थोडे दिन ही पीछे एक मित्र के साथ नौकरी के अन्वेषण मे प्रयाग को चला आया।

यद्यपि पुस्तक की मुझे विस्मृत तो नही हुई, परन्तु नौकरी की चिन्ता और द्रव्य के सकोच से जैसी पुस्तक भेजने की मेरी इच्छा थी वैसी न मोल ले सका— मेरी इच्छा थी कि एक बहुत बढिया छापे की कौमुदी सुनहरी वर्णों की जिल्द बँधवाकर आपकी भेंट को भेजूँ, परन्तु उन दिनो यह न कर सका।

इतने म एक नौकरी ६०) मास की मुझे कलकत्ता मे मिल गई और वहाँ से आपका ठीक-ठीक पता जानने के लिये (क्योकि आपके ग्राम का नाम मुझे स्मृत न था और चाचा जी तथा ताऊजी आदि से भी उसका ठीक-ठीक पता न लगा) एक पत्र धौलपुर के पते मे भेजा, परन्तु उसका कुछ उत्तर न आया— तदनन्तर एक और भेजा परन्तु जब उसका भी उत्तर न मिला तो पुस्तक मैंने धौलपुर के पते से भेजना उचित न समझा। क्योकि जब वहाँ आप नित्य नही रहते तो उसका मारा जाना सम्भावित था।

उस काल अद्य पर्यन्त मेरा चित्त इस बात मे बडा उदास रहा कि स्वामीजी की एक छोटी-सी आज्ञा को मैं न कर सका। जब मुझे इस बात का स्मरण आता था तभी अपने को सहस्रो धिक्कार देता था और यही समझे हुए था कि आपका मन मुझसे भली-भाँति प्रसन्न नही है।

पुस्तक मैंने एक ले रखी थी, परन्तु उसकी जिल्द नही बँधवाई थी—आपका ठीक-ठीक पता जानने मे निराश हो उस पुस्तक को गत शीतकाल मे कोटला-वासी कुँवर रोदिगसिह को दे आया।

परन्तु आज परम मगल का दिवस है कि चिट्ठियो की गड्डी के अवलोकन से आपका उक्त पत्र मिल गया—उसमे आपके ग्राम का नाम और ठीक-ठीक पता लिखा है। इसके ज्ञान से चित्त मे अतुल हर्ष उत्पन्न हुआ—अब आपको यह पत्र लिखता हूँ और विश्वास है कि यह अवश्य आपको मिलेगा—और आपकी आज्ञा का अभिलाषी हूँ कि पुस्तक ल०की० भेज दूँ या आपके पास आ गई है। यदि इस पुस्तक की आवश्यकता न हो तो किसी और पुस्तक व पदार्थ के लिए आज्ञा भेजिए मै झटिति ही सम्प्रेषण करूँगा।

मैं आजकल माता-पत्नी समेत प्रयाग मे स्थित हूँ—४०) मास की आजीविका लाट साहब के दफ्तर मे मेरी लग गई है—अन्न-वस्त्र की समीचीनता है—परन्तु यह सब केवल आप ही की पूर्व कृपा और उपकार का फल है—मै आप मे और पिता मे किंचिन्मात्र भेद नही समझता हूँ और आशा करता हूँ कि आप मुझे अपना सच्चा शिष्य और छात्र और निज सुतवत मान यदि कोई अपराध वा त्रुटि मुझसे किसी काल मे किसी कारण से हो गई हो तो उसे अवश्य क्षमा कीजियेगा।

विस्तरभयान्नधिकम्

श्रीमताकृपापत्र प्रतीक्षकोऽहम्

To

Swami Bhagirathpuri	आपका दासानुदास
Mauza-Singorai	और चरणारविन्द की धूलि
Hardeva Puri's Math	का ग्राहक
Near the town of Wadi	दीन छात्र
Dhoulpur Territory	श्रीधर[1] (२६-३-८४)
Letter Posted 4-4-84	यहियापुर, प्रयाग

हिन्दी-कविता के समान अग्रेजी कविता रचने की भी उनमे क्षमता और प्रतिभा थी। वह अग्रेजी गद्य के लिए प्रसिद्ध थे। अग्रेजी काव्यो को हिन्दी मे अनूदित करने मे उन्हे अप्रतिम सफलता भी मिली थी, जिसकी श्री पिंकाट महोदय एव प्रो० जे० एफ० निकाल, प्रोफेसर, बेलियल कालेज, आक्सफोर्ड ने भूरि-भूरि प्रशसा की थी। श्री रामदास गौड एम० ए० के अनुरोध से लाला सीताराम के साथ उन्होने 'विज्ञान' का सम्पादक होना भी स्वीकार कर लिया था। यद्यपि यह सम्पादन-काल केवल छ मास ही रहा, किन्तु वह उस पत्र को

१. प्रयाग सग्रहालय मे रखी हुई पाठक जी की सामग्री से प्राप्त।

वैज्ञानिक मगलाचरण निरतर देते रहे यद्यपि प्राच्य-विज्ञान का अविकसित स्वरूप उन्हे अखरता था तथापि पाश्चात्य-विज्ञान के साथ प्राच्य-विज्ञान का भी उन्होंने उल्लेख किया है ।

पाठक जी की बहुमुखी प्रतिभा थी इसी से जीवन के बहुमुखी क्षेत्रो मे वह सफलतापूर्वक सक्रिय बने रहे । उनके काव्य के प्रभावोत्पादक उत्कर्ष को देखकर ही भारत-धर्म-महा-मण्डल ने उन्हे 'कवि-भूषण' उपाधि से विभूषित किया था । उनके महामहिम व्यक्तित्व और हिन्दी की निष्कृति के कर्णधार के स्वरूप मे इस उपाधि से उनका युक्तियुक्त अभिनन्दन और अभिवन्दन न हो सका । उससे असम्मान ही हुआ, सम्मान नही । उनकी इस उपाधि की बात श्री रामदास गौड को ही ज्ञात थी अन्य किसी को नही ।[1] उनका सम्मान करने के लिए दरिद्र हिन्दी साधन-सम्पन्न न थी, परन्तु १९१५ ई० के लखनऊ के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पाँचवे अधिवेशन का उन्हे सभापति बनाकर हिन्दी के पोषको ने तत्सम्बन्धी अपने कर्त्तव्य के एक लघु अश की पूर्ति की थी ।

काव्य मे उनके विश्व-व्यापी स्वरूप को अनुभव करके ही आचार्य प० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उन्हे हिन्दी का अभिनव जयदेव कहा था—

बाला-वधू-अधर-अद्भुत स्वादुताई
द्राक्षाहु की मधुरिमा, मधु की मिठाई ।
एकत्र जो चहहु पेखन प्रेम-पागी
तो श्रीधरोक्त-कविता पढियेऽनुरागी ।
पीयूष है यदि पदार्थ, यथार्थ कोऊ,
काहे न ताहि करि पान प्रसन्न होऊ ?
प्रत्येक पद्य, प्रति पक्तिहु मे सदाही,
सो विद्यमान कवि श्रीधर-काव्य माहीं ।
जाको कवित्व-पद-कोमलताऽधिकाई,
आबाल-वृद्ध-जन चित्त लियो चुराई ।
सोई कवीन्द्र विजयी जयदेव आई,
लीन्ह्यो ऽवतार कह श्रीधर देह पाई ।[2]

× × ×

---

१. श्री रामदास गौड एम०ए०—'स्व० पाठक जी के कुछ सस्मरण', विशाल भारत, जनवरी १९२९ ।

२. आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, 'श्रीधर सप्तक' भारतमित्र, २५ दिसम्बर, १८९९ ई० ।

सुमन विनोद, खरी बोली के प्रवर्त्तक ह्वै,
नागरी नवेली की सेवा मे आयु वैदई।
कवि गन के प्यारे, हिन्दी हिन्द पै वारे विज्ञ,
मधुर व्रजभाषा की छिति मे छटा छई॥
रामनारायन कहत श्रीधर की रचना सुचि,
हिय उमगावनि सुधाधार सी सदा नई।
सांचहू बुझावेगी आग उर अन्तर की,
पाठक प्रयान सुनि मन जो व्यथा भई॥[1]

× × ×

प्यारे 'पद्म-कोट' का मलिन्द मजु गायक था,
नायक खड़ी बोली की कविता का न्यारा था।
हिन्दी के सुभाल की सुबिन्दी का था पराग,
राग रूप रोचक सौभाग्य का सॅवारा था॥
सुन्दर साहित्य के सरोवर का था सरोज,
ओज भरा भाषा-व्योम-मण्डल का तारा था।
प्यारा 'पाठकों' का था दुलारा लाल भारती का,
काव्य-कला-श्रीधर हा, हमारा श्रीधर था॥

× × ×

भारत-भू जननी के नीके गीत गाते-गाते
पाते मोद मां की गोद मे सशान्ति सो गया।
मजुल निज मानस की काव्य-सुधा-धारा से,
आरती उतार भारती के पद धो गया॥
काव्य-कला-कोकिल-किशोर कवि श्रीधर हा,
वाणी मे बटोही देव वाटिका का हो गया।
सुकवि 'रसाल' कहैं हिन्दी को धनी करके,
आज निधनी करके हाय लाल खो गया॥[2]

उनहत्तर वर्ष के जीवन मे 'भारतेन्दु-युग' मे पल्लवित होकर 'द्विवेदी-युग' की परम्परा-मूलक प्रवृत्तियो को चुनौती तथा 'छायावादी-युग' के लिए सुदृढ

---

१. श्री रामनारायण चतुर्वेदी, 'अभ्युदय', २२ सितम्बर, १९२८।
२. श्री रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', 'अभ्युदय', २२ सितम्बर, १९२८।

शिलान्यास करते हुए पाठक जी ने अपने स्वच्छन्दतावादी गरिमामय व्यक्तित्व से हिन्दी-काव्य को चिर-आभारी किया। आलोकित भारतेन्दु को अकाल ग्रहण लग गया, महावीर का वीरत्व विश्व के यथार्थ झोको से पगु कर डाला गया, किन्तु श्रीधर अपनी वैयक्तिकता की अमर श्री की विभा से हिन्दी-जननी के भव्य मन्दिर को युगो-युगो के लिए आभासित कर गए। उनका भौतिक शरीर इस नश्वर विश्व से अवश्य तिरोहित हो गया, किन्तु उनका साध्य इतना महामहिम रहा कि हिन्दी-जननी अपने उस लाल को विस्मृत नही कर सकती। इससे वह हमारे गौरव हैं, वरेण्य हैं और वन्दनीय हैं।

अध्याय ८

पाठक जी की कृतियों का सामान्य परिचय

पाठक जी की कृतियो की परिस्थितियां एवं विशेषताएँ

श्रीधर पाठक अधिक लिखने के पक्ष मे कभी न थे। उनका विश्वास था, जो कुछ लिखा जावे, सुगठित और सुललित रहे। इसी से प्रेस मे जाने तक उनकी रचनाओ मे सुधार होता रहता था। भारतेन्दु, द्विवेदी एव छायावादी युगो मे अर्द्धशताब्दी तक पाठक जी ने हिन्दी-साहित्य को अपने काव्य, कहानी, भाषण एव निबन्ध आदि से गौरवान्वित और महामहिम बनाया है।

उनका काव्य स्वच्छन्दतावादी भावना से ओत-प्रोत था, किन्तु गद्य-साहित्य भी इससे रिक्त न था। उनके निबन्ध सामयिक परिस्थितियो का बडा ही मनोरंजन-पूर्ण विवरण प्रस्तुत करते थे। तत्कालीन सामाजिक एव साहित्यिक निष्क्रियता आदि के उन्मूलन मे बहुत कुछ श्रेय उन्ही निबन्धो को था। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तक उनसे साग्रह लिखाते रहते थे।

पाठक जी की सम्पूर्ण रचनाओ पर दृष्टिपात करने से हम सरलतापूर्वक उनके दो विभाजन कर सकते हैं, (१) काव्य और (२) गद्य। दोनो प्रकारो के साहित्य मे पाठक जी की मौलिकता पूर्णरूप से विद्यमान है। प्रथम के अन्तर्गत उनके मौलिक एव अनूदित काव्य हैं और द्वितीय के अन्तर्गत कहानी और निबन्ध ('आराध्य शोकांजलि' मे उनके पिता का जीवन-परिचय तथा लखनऊ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पाचवें अधिवेशन का उनका भाषण भी) एव पत्र आदि हैं।

अन्य लेखक एव कवियो की रचनाओ की अपेक्षा पाठक जी की रचनाओ की यह विशेषता है कि उन्होने अपनी सम्पूर्ण रचनाओ का रचना-काल एव स्थान देने मे कभी भी त्रुटि नही की। इससे उनके जीवन की मनोवृत्तियो का अध्ययन करने मे कठिनाई नही पडती।

अ—काव्य-साहित्य

१ मनोविनोद (१८७७ ई०–१९१७ ई०)—पाठक जी की बाल्यकाल की सम्पूर्ण रचनाओ का सग्रह १८९२ ई० मे कलकत्ता के भारत मित्र प्रेस से प्रकाशित हुआ था। उसका परिवर्द्धित एव परिष्कृत सस्करण १९०० ई० मे हरि-प्रकाश प्रेस, काशी से मुद्रित हुआ। तदनन्तर इसके दो भाग और निकले। इनकी समाप्ति पर 'मनोविनोद' का अन्तिम सग्रह १९१७ ई० मे ओकार प्रेस, प्रयाग, मे छपा था। 'जगत सचाई सार' 'गडरिया' और 'आलिम' मनोविनोद के पूर्व सग्रहो मे सम्मिलित थे। 'जगत सचाई सार' का प्रकाशन अलग कर दिया गया था तथा 'गडरिया' और 'आलिम' परिवर्तन की भावना से इसमे सम्मिलित न किये गए थे। 'आर्यगीता' जिसको स्वतत्र काव्य का स्वरूप प्रदान करने के लिए लिखा गया था, इसमे सम्मिलित कर दिया गया है।

इस सस्करण मे 'बाल विलास' एव असमाप्त पद्य ('वसन्त-वर्णन, घन-दिग्विजय, इवजलाइन, एडविन, अजलैना, पाश्चात्योक्तय. एव इजावियला आदि के अतिरिक्त ईश्वर-भक्ति, देश-भक्ति, प्रेम, श्रद्धाजलियाँ, अष्टक, अग्रेजी पद्य शृगार, वीर, हास्य एव करुण रस आदि की रचनाएँ) सग्रहीत हैं।

२ बाल भूगोल (१८८५ ई०)—विद्यार्थी-जीवन से ही भूगोल विषय की ओर पाठक जी की अभिरुचि थी। फलत हिन्दी-माध्यम से भूगोल पढ़ने वाले प्रारम्भिक विद्यार्थियो की सुलभता एव सुगमता के दृष्टिकोण से इस प्रथम खण्ड मे स्थूल रीति से आकाशीय गोलो का परस्पर सम्बन्ध दिखाकर भू-पृष्ठ की समालोचना की गई। तदनन्तर भौगोलिक परिभाषाएँ उदाहरण सहित दी गई हैं। पाठक जी ने पुस्तक के अन्त मे 'वर्ण्य विषय' को 'आकाशवर्ती गोले' 'भूगोल ठेठ' 'भौगोलिक सज्ञा' (थल और जल) महाद्वीप, महासागर, गोलार्द्ध, कटिबन्ध आदि शीर्षको के अन्तर्गत कवितावद्ध कर दिया है।

पाठक जी के पौत्र श्री पद्मधर पाठक (प० गिरिधर पाठक के सुपुत्र) द्वारा इसकी प्रति जो मुझे उपलब्ध हुई उसमे अन्तिम छप्पय आडी-टेढी रेखाओ से कटा है। वहा पर प्रारम्भिक अक्षरो मे पाठक जी के हस्ताक्षर हैं।

३. एकान्तवासी योगी (१८८६ ई०)—लावनी जैसे प्रचलित छन्द में सरल खड़ी बोली के इस काव्य की रचना द्वारा पाठक जी ने हिन्दी-काव्य में स्वच्छन्द-वादिता का एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया। आचार्य शुक्ल जी के अनुसार खड़ी बोली के काव्य के सम्बन्ध में भारतेन्दु जी के उपरान्त तीन प्रमुख शैलियाँ प्रचलित थीं—कवित्त-सवैयों की, उर्दू छन्दों की और लावनी की। सं० १९४३ में पं० श्रीधर पाठक ने पिछली शैली में 'एकान्तवासी योगी' खड़ी बोली पद्य में निकाला। अनन्तर बा० अयोध्याप्रसाद खत्री द्वारा 'खड़ी बोली आन्दोलन' चलाया गया। तत्सम्बन्धी प्रकाशित पोथी (१८८८ ई०) में 'एकान्तवासी योगी' भी सम्मिलित कर लिया गया था।

अंग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ के रोमांटिक प्रेम-काव्य The Hermit का यह अनुवाद है। मूल के ४० पद पाठक जी द्वारा ५६ पदों में अनूदित हैं। इसमें एडविन और अंजलैना की प्रेम-कथा वर्णित है। नायिका-प्रधान होने के कारण इस काव्य में अंजलैना की प्रेम-परक मानसिक भावनाओं का मार्मिक दिग्दर्शन है।

अंजलैना अपने पिता की सुशिक्षिता और सुशीला कन्या है। विवाह के लिये कितने ही पुरुषों में एडविन ही सभ्य और सुशील सिद्ध होता है। अंजलैना की उदासीनता से एडविन के मर्म पर आघात लगता है और वह वन में रहने लगता है। अपनी भूल ज्ञात होने पर अंजलैना को उसका वियोग असह्य हो उठता है। वह पुरुष-वेश में उसको खोजने के लिए निकलती है। सौभाग्य से वह एडविन की ही अतिथि बनती है। वहीं दोनों का संयोग हो जाता है।

४ जगत सचाई सार (१८८७ ई०)—'ब्रह्मसत्य जगन्मिथ्या' की भावना का भारत में इतना प्रचार है कि भारतीय जगत के मिथ्यात्व को समझकर जीवन में निष्क्रिय हो जाते हैं। पाठक जी को इस निष्क्रिय प्रवृत्ति से बड़ी घृणा थी। यदि सुकर्मण्य शिरोमणि मास्टर इंग्लैंड से इस देश का सम्बन्ध न हो गया होता तो कौन कह सकता है क्या होता? १८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। देश-हित के लिए भारतीयों का सक्रिय होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी था, जिस राष्ट्रीयता का शंखनाद कालान्तर में पाठक जी, माखनलाल चतुर्वेदी एवं मैथिलीशरण गुप्त के काव्य से श्रुतिगोचर हुआ, उन सभी को प्रेरित और प्रोत्साहित करने में इन पंक्तियों का बहुत बड़ा हाथ था।

प्रथम बार यह काव्य बनारस की 'काशी-पत्रिका' नाम की साप्ताहिक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। अनन्तर स्वतंत्र पैम्फलेट के रूप में आगरा से प्रकाशित

हुआ। तदुपरान्त मनोविनोद प्रथम खण्ड मे सन्निविष्ट किया गया। १६१६ ई० मे यह पृथक्-रूपेण पुस्तकाकार मे प्रकाशित हुआ। १०२ पक्तियो का यह काव्य लागफेलो के The Psalm of life काव्य की भावनाओ के समान जीवन के चिर सत्य को सरक्षित किये है। उनका विश्वास था कि जीवन कर्म के लिये है उसको निस्सार समझकर निष्क्रिय वन जाना कायरता है।

५ ऊजडग्राम (१८८६ ई०)—इस काव्य द्वारा हिन्दी-प्रेमियो को अग्रेजी काव्य से परिचय कराना पाठक जी का मूल उद्देश्य था। 'एकान्तवासी योगी' की सफलता ने ही पाठक जी को इस स्वच्छन्दतावादी काव्य के प्रस्तुत करने का प्रोत्साहन दिया था। 'एकान्तवासी योगी' मे सरल खडी वोली का आदर्श है तो 'ऊजडग्राम' मे मधुर व्रजभाषा का।

काव्य-विषय का जहाँ तक सम्वन्ध है इनमे ग्रोवर्न नामक ऊजडग्राम का वर्णन है। यह भी गोल्डस्मिथ के 'The Deserted Village' का अनुवाद हुआ है। कहते हैं कि इस गाँव मे गोल्डस्मिथ के लडकपन का वहुत-सा भाग व्यतीत हुआ था। अग्रेजी विद्वानो के अनुसार यह गाँव कवि की जन्मभूमि आयरलैंड मे था। यद्यपि इस काव्य मे स्पष्ट रूप से इग्लैंड के एक गाँव का वर्णन है। यह काव्य ५१४ पक्तियो मे वर्णित है। प्रथम ४६० पक्तियो मे गाँव के विकास और पतन का वर्णन है। अन्त की शेष पक्तियो मे कविता-देवी का अभिवन्दन है। गाँव के उजडने और परिवर्तन के वडे ही मार्मिक और कारुणिक चित्रण कवि ने प्रस्तुत किये है।

६. श्रान्त पथिक (१६०२)—पाठक जी रोमान्टिक भावना के सवल प्रतीक थे। यदि 'एकान्तवासी योगी' द्वारा उन्होने हिन्दी मे सर्वप्रथम स्वच्छन्दतावादी प्रेम का दिग्दर्शन कराया था तो 'ऊजडगाम' से जीवन का यथार्थ जो स्वच्छन्दवादिता का आधार है, व्यक्त करने का प्रयास किया। 'श्रान्त पथिक' द्वारा पाठक जी ने सीमित व्यक्ति को स्वातन्त्र्य पथ पर खडा कर देने की सफल चेष्टा की है। यो यह गोल्डस्मिथ की रचित The Traveller का शाब्दिक अनुवाद है तथापि लोकप्रियता की दृष्टि से 'एकान्तवासी योगी' को जितना सम्मान मिला उतना 'ऊजडग्राम' को नही, जितना 'ऊजडग्राम' लोकप्रिय हुआ उतना 'श्रान्त पथिक' नही।

प्रथम २२ पक्तियो मे कवि (गोल्डस्मिथ) अपने अग्रज के प्रति अपना उत्कट स्नेह प्रकट करता है। अनन्तर पर्यटन से श्रान्त हो वह आल्प्स पर्वत के उच्च शिखर पर वैठकर उस स्थान की खोज मे है, जहाँ उनकी आत्मा सुखी

रह सके। सोचता है—प्रत्येक स्वदेशाभिमानी अपने देश को सर्वोपरि समझता है। इससे वह कहाँ जाये। अन्त मे वहीं स्थित रहते हुए वह इटली, स्विट्जरलैण्ड, फ्रांस, हालैण्ड और इग्लैंड के निवासियों की दशा की आलोचना करता है। स्वतन्त्रता से उत्पन्न लाभ-हानि को भी वह सोचता है और अन्त मे वह इस निर्णय पर पहुँचता है कि प्रत्येक मनुष्य का सच्चा सुख उसी के हृदय मे केन्द्रित रहता है।

> गोधन गजधन बाजिधन और रतन धन खान।
> जब आवै सतोष धन सब धन धूरि समान॥

—की भावना इस काव्य मे प्रमाणित होती है।

७ काश्मीर सुषमा (१६०८ ई०)—स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के कारण पाठक जी मे प्रकृति के प्रति महान निष्ठा थी। इसमे ही The Irrigation Commission के टूटने पर वह १६०३ ई० मे तीन मास के लिये काश्मीर गये। काश्मीर अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण भारत का स्वर्ग है। उसके सौन्दर्य ने पाठक जी को मन्त्र-मुग्ध कर लिया। यो ब्रजभाषा मे उद्दीपन के दृष्टिकोण से किया हुआ शास्त्रीय प्रकृति वर्णन बहुत मात्रा मे है, किन्तु विशुद्ध प्रकृति-उपासना के लिये किया हुआ काश्मीर का यह चित्रण अद्वितीय है। इस काव्य द्वारा पाठक जी ने हिन्दी काव्य को स्वच्छन्दवादिता के दृढ स्तम्भ पर लाकर खडा कर दिया।

काश्मीर का सौन्दर्य इतना प्रभावोत्पादक है कि—

> या सम दूजौ ठौर सृष्टि मे दृष्टि न आवै।
> यही स्वर्ग सुरलोक यही सुर कानन सुन्दर।
> यहि अमरन को ओक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर॥

वस्तुत इसी भावना ने पाठक जी को यह काव्य लिखने के लिए प्रेरित किया था।

८. आराध्य शोकाजलि (१६०६ ई०)—१६०६ ई० मे अपने पिता प० लीलाधर महाराज के निधन से पाठक जी को असह्य वेदना हुई। शोकाकुल व्यथा से ही पीडित होकर उन्होने इस शोक-काव्य की रचना कर अपनी विनम्र श्रद्धाजलि अपने पिता के चरणो मे अर्पित की। इस काव्य के सस्कृत श्लोकों द्वारा कवि ने अपने पिता के गुणो का गान तो किया ही है, साथ मे उनकी भावक भावनाएँ भी व्यथा के भार से टपकी पडती हैं। गरुड पुराण के अनुसार

मृत जीव की जो दशा होती है, पाठक जी ने वैसा ही अपने पिता का भी वर्णन किया है।

९. जार्ज-वन्दना (१९१२ ई०)—१९११ ई० मे 'जार्ज पचम' और महारानी 'मेरी' भारत मे पधारी थी। उनके स्वागतार्थ दिल्ली मे विशाल दरबार हुआ था। उनकी प्रजा होने के नाते उनकी वन्दना करना कवि ने अपना पुनीत कर्तव्य समझा। इस प्रकार पाठक जी द्वारा रचित जार्ज-वन्दना उनकी राजभक्ति का सफल दिग्दर्शन है। इसी भावना से प्रेरित होकर प्रेमघन जी ने भी 'सौभाग्य समागम' अथवा 'भारत सम्राट सम्मेलन' नामक अपनी रचना प्रस्तुत की थी। सर्वप्रथम यह रचना पृथक् पुस्तकाकार मे प्रकाशित हुई थी। अन्त मे 'मनोविनोद' तृतीय भाग मे वह सम्मिलित कर दी गयी थी।

१० भक्ति-विभा (१९१३ ई०)—पाठक जी का हृदय अपने पिता के प्रति श्रद्धा से सदैव ही आप्लावित रहा। स्वप्न मे उनके दर्शन कर कवि का भावुक हृदय पुन. अपनी भक्ति-भावना की श्रद्धाजलि उनके चरणो मे चढाने के लिए आकुल हो उठा, फलत 'भक्ति-विभा' की रचना प्रस्तुत हुई।

इस काव्य के प्रारम्भ मे पाठक जी ने स्वप्न मे चर्चित भाल एव तुलसिमाल युक्त अपने पिता को देखा। उनके चतुर्दिक पूजा-अर्चना की सामग्री प्रस्तुत थी। प्रेम-दृष्टि से उन्होने अपने पुत्र श्रीधर पाठक को देखा। वात्सल्य ने उन्हे पुलकित कर दिया। इसी समय उन्होने श्री गोपाल-कीर्तन प्रारम्भ किया। अनन्तर घन-पटल मे उनके पिता का स्वरूप अदृश्य हो गया। पुन उन पटल के हिलाने मे कवि को स्वर्गीय पिता के दर्शन हुए। कालान्तर मे उनके स्वरूप की ज्योति पुन. विलीन हो गई।

११ श्री गोखले प्रशस्ति (१९१५ ई०)—पाठक जी राष्ट्रीय भावना के समर्थ पोषक रहे हैं। गोखले जैसे राष्ट्र-भक्त के निधन ने पाठक जी को देश की महती क्षति का अनुभव हुआ। फलत उनके व्यक्तित्व को लेकर उन्होंने सस्कृत में यह प्रशस्ति लिखी। गोखले कोविदो के मध्य मे तो गण्यमान थे ही, राष्ट्रीय प्रगति मे भी गान्धी जी से पूर्व आकर उन्होने देश की साम्प्रदायिक भावना को नष्ट करने और हरिजन-समस्या को सुलझाने का पुनीत आदर्श रखा था।

इस काव्य मे सस्कृत के ९ श्लोक हैं। इसमे उनके सभी महत्कार्यों का उल्लेख है। यह श्लोक बडे ही मधुर एव ललित हैं।

१२. श्री गोखले गुणाष्टक (१९१५ ई०)—गोखले के निधन पर ही छप्पय छन्द मे यह अष्टक पाठक जी द्वारा लिखा गया था। काव्य की पृष्ठभूमि

मे राष्ट्रीय भावना की प्रमुख प्रेरणा थी। इन पंक्तियों मे भी गोखले जी के जीवन के मुख्य-मुख्य कार्यों का गुणगान किया गया है।

१३ देहरादून (१९१५ ई०)—१९१३ ई० मे जब पाठक जी खाँसी के रोग मे पीड़ित थे, तब डाक्टरो द्वारा उनको स्थान-परिवर्तन की राय दी गई। देहरादून मे वायु-परिवर्तन के लिए रहने के लिए कहा गया। १९०७ ई० मे दो दिन के लिये पाठक जी देहरादून गये भी थे। स्थान-परिवर्तन उनको रुचिकर सिद्ध हुआ, किन्तु रोग मे सुधार न होने पर वे दस दिन के लिए शिमला भी गये। वहाँ की वायु भी उनके अनुकूल न पडी। अन्त मे वह विवश होकर घर लौट आये और देहरादून की यात्रा की स्मृति मे पाठक जी ने इसे बरवा छन्द मे लिखा। पाठक जी ने इस काव्यशैली को इलाहाबादी बोली द्वारा परिहास-मूलक बनाने का भरसक प्रयास किया है।

कवि ने रेल-यात्रा, गगा-स्तवन, गिरिमार्ग, देहरा दृश्य, देहरादून का स्टेशन, विभिन्न प्रान्तो के पथिक एव वहाँ के प्रमुख स्थलो का वर्णन किया है। यह काव्य सचित्र है।

१४ श्री गोपिका गीत (१९१६ ई०)—प० बालकृष्ण भट्ट के प्रति पाठक जी की बहुत बडी निष्ठा थी। उनसे वह कितनी ही सामाजिक एव साहित्यिक भावनाओ के लिए प्रेरित थे। भट्ट जी को भागवत अति ही प्रिय थी। फिर पाठक-परिवार की भक्ति-परम्परा के सस्कार भी उनके साथ थे। इसी से पाठक जी ने भागवत के दशम् स्कन्ध के अन्तर्गत ३१वें अध्याय 'श्री गोपिका गीत' का समश्लोकी अनुवाद खडी बोली मे प्रस्तुत किया था।

श्री गोपिका गीत १९ छन्दो मे वर्णित है। रास-क्रीडा मे—कृष्ण गोपियो को आनन्द-विभोर कर अन्तर्द्धान हो जाते हैं। गोपियाँ उनके वियोग से दुखी हो जाती हैं। कृष्ण के चरणो का अनुसरण करती हुई वे उन्हे ढूँढती हैं, किन्तु वह उन्हें नही प्राप्त होते। अन्त मे निराश होकर यमुना के किनारे एकत्रित होकर वे कृष्ण के गुणगान करने लगती हैं।

१५ भारत गीत (१९२८ ई०)—पाठक जी एक राष्ट्रीय कवि थे। इसी से देश-भक्ति की भावनाओ से प्रेरित हो उत्सवो एव अन्य अनुकूल अवसरो पर वह जातीय गीतो की रचना करते रहे थे। यह रचनाएँ भिन्न-भिन्न पत्रो मे समय-समय पर प्रकाशित होती रही थी।

१९२८ ई० का भारत गीत का यह सस्करण गगा पुस्तक माला, लखनऊ, से प्रकाशित हुआ था। इसमे १८८२ ई० से १९२८ ई० तक की उनकी

सम्पूर्ण राष्ट्रीय रचनाओ का सग्रह है। इसमे भारत को लेकर विभिन्न छन्दो में जाति-प्रेम, देश-प्रेम, भारतोद्धार आदि के साथ कितने ही कीर्तन, स्तवन, उपदेशात्मक एव दार्शनिक रचनाएँ सग्रहीत है। गगा पुस्तकमाला के इस द्वितीय सस्करण मे भ्रमर-गीत और चर-गीत भी जोड दिये गये हैं। इनके अन्त मे तीन प्रयाण गीत हैं। प्रथम सस्कृत मे है, द्वितीय साधुओ के लिए और तृतीय वच्चो के लिए है। साधु-प्रयाण (नारायण मार्च) हिन्दुओ के लिए है, किन्तु वह अन्य राष्ट्र-भक्तो के लिए भी उपयोगी हो सकता है। इसके परिशिष्ट मे प्राच्य, पाश्चात्य विज्ञान, साान्ध्य अटन एव साधारण मजदूरनियो के लिए गीत सग्रहीत हैं।

उपर्युक्त पक्तियो मे पाठक जी की सम्पूर्ण काव्य-कृतियो का सक्षिप्त विवरण दिया जा चुका है। पुस्तकाकार मे यो 'वाल भूगोल' (१८८५) प्रथम रचना है, परन्तु उससे भी पूर्व मनोविनोद (१८८२) तथा 'गडरिया और आलिम' (१८८४ ई०) वह लिख चुके थे। 'गडरिया और आलिम' 'मनोविनोद' के द्वितीय भाग मे सग्रहीत होने से उपलब्ध है। पाठक जी का विचार था कि इस रचना को विशद आकार प्रदान किया जाय, किन्तु भविष्य मे वैसा सम्भव न हो सका। अब रही 'मनोविज्ञान' की बात। यह रचना अनुपलब्ध है। वाल-भूगोल के समान यह सम्भव है कि अध्ययन एव स्मरण की सुविधा मे पाठक जी ने मनोविज्ञान को भी काव्य का रूप दिया हो, जिस प्रकार 'वाल-भूगोल' के अन्तिम पृष्ठो के छन्द कवि की काव्य-मूलक प्रवृत्ति का परिचय देते हैं। सम्भव है कि यह बात मनोविज्ञान के साथ भी सत्य हो। फिर भी उपर्युक्त दोनो के होने अथवा न होने से पाठक जी की अक्षुण्ण कीर्ति पर किसी प्रकार का आघात नही लगता—यह मेरा विश्वास है।

ब—गद्य साहित्य

पाठक जी के गद्य साहित्य मे 'आराध्य शोकाजलि' मे सन्निविष्ट सक्षिप्त जीवन-परिचय, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, लखनऊ मे पचम अधिवेशन के सभा-पति पद का भाषण, 'तिलस्माती मुँदरी' एव समय-समय पर प्रकाशित उनके निबन्ध एव लिखित पत्रादि आते हैं। 'सक्षिप्त जीवन परिचय' एवं लखनऊ का भाषण भी वस्तुत विवेचनात्मक निबन्ध ही है। इससे इनका विवेचन भी निबन्ध के अन्तर्गत करना ही समीचीन होगा। इस प्रकार उनका 'गद्य साहित्य' कहानी, निबन्ध एव पत्र इन तीन विषयो मे सरलतापूर्वक विभाजित किया जा सकता है।

क—कहानी

तिलस्माती मुँदरी (१६१६ ई०)—१८६१ ई० की किसी अंग्रेजी पत्रिका से पाठक जी द्वारा यह कहानी ली गई थी। १८८७–८८ ई० में काशी पत्रिका (मासिक) में हिन्दुस्तानी भाषा में उसका प्रारम्भिक रूप प्रकाशित हुआ था। उक्त पत्रिका के बन्द हो जाने से इस कहानी का प्रकाशन भी बन्द हो गया। अन्त में पाठक जी ने उसी शैली में अवशेष कहानी को लिखकर १६१६ ई० में उसे पुस्तक का स्वरूप प्रदान किया। यह पुस्तक वस्तुत देवकीनन्दन खत्री एव किशोरीलाल गोस्वामी की तिलस्मी परम्परा की एक कडी है।

गंगोत्री के समीप रहने वाले योगी ने गगा जी मे गिरे दो कौवो की जान बचाई। कौवो ने एक अगूठी योगी को दी जिससे वह पक्षियो की बोली समझने लगा। योगी ने उन पक्षियो को लडकी का सन्देश लाने काश्मीर भेजा। वे लडकी का निधन और दोहती का विमाता द्वारा पीडित किए जाने का दुखद समाचार लाए। योगी ने वह अगूठी दोहती के पास भेज दी। कौवे उसकी देख-भाल के लिए बाग मे रहने लगे। पक्षियो के द्वारा वह लडकी कितने ही षड्यन्त्रो से मुक्त हो सकी। अन्त मे वन-उकावो की सहायता से योगी ने काश्मीर का राज्य पुन प्राप्त किया। वह दोहती लाहौर के राजा के ज्येष्ठ पुत्र के साथ व्याह दी गई। इसी दम्पति को राज्य देकर योगी समाधि लेने के लिए गगोत्री चला गया।

ख—निबन्ध

निबन्धो द्वारा सुधार, उपदेश एव मनोरजन की भावना प्रस्तुत करना ही पाठक जी का मुख्य उद्देश्य था। इसी से इनसे प्रेरित होकर ही उन्होंने अपने निबन्ध लिखे थे।

पाठक जी के यह निबन्ध 'हिन्दी प्रदीप', 'भारतेन्दु' एव 'ब्राह्मण' आदि पत्रो में प्रकाशित होते रहे। इनमे से कुछ निबन्ध ही गम्भीर भावयुक्त हैं अन्यथा अधिकाश मनोरजन से परिपूर्ण हैं, जिन्हें हम चुटकुले कहें तो कहे, उन्हें निबन्ध कहना उचित न होगा। भावना एव शैली आदि के दृष्टिकोण से उनके निबन्धो के तीन विभाग किए जा सकते हैं।

१ गम्भीर विवेचना-युक्त निबन्ध—इसके अन्तर्गत गम्भीर शैली मे लिखित उनके निबन्ध आते हैं। 'सक्षिप्त जीवन परिचय' (१६०६ ई०), लखनऊ सम्मेलन का भाषण (१६१५ ई०), प्रवाहे पतित (मई १८८४ ई०, हिन्दी

प्रदीप), हिन्दी की चन्द भाषाओं की समालोचना (अक्टूबर १८८४ ई०, हिंदी प्रदीप), हिन्दी की अपूर्णता (नव० १८८५ ई०, हिन्दी प्रदीप) आदि निबन्ध इनके अन्तर्गत आते हैं।

२. सुधारात्मक निबन्ध—इन लेखों मे भाषा चुटकी-सी लेती चलती है। शैली मे सरलता के साथ कही-कही गम्भीरता का भी पुट आ जाता है। इन निबन्धो मे पाठक जी की सुधार-सम्बन्धी प्रवृत्ति झलकती है। 'रोजगार नामा' (हिन्दी प्रदीप, जुलाई १८८४ ई०), 'प्रतिष्ठा' (हिन्दी प्रदीप—जौलाई १८८४ ई०), हिन्दुस्तान की चन्द 'कौमो की समालोचना' (ब्राह्मण—सितंबर १८८४ ई०), 'पश्चिमोत्तर माहात्म्य' (हिन्दी प्रदीप, नवम्बर १८८४ ई०), एक अनोखी सैलानी की कहानी (हिन्दी प्रदीप, जनवरी १८८५ ई०) आदि निबन्ध इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

३ चुटकुले एव मनोरंजनार्थ लिखे निबन्ध—परिहास-मूलक शैली मे केवल मनोरंजन प्रस्तुत करना ही पाठक जी का मुख्य उद्देश्य था। पृथ्वी के महाद्वीपो की अपूर्व व्युत्पत्ति (हिन्दी प्रदीप, दिसम्बर १८८४ ई०), बीमार हिन्द के लिए सिहतावर जोशांदा (हिन्दी प्रदीप, दिसम्बर १८८४ ई०), अजी साहब बडी दिल्लगी रही (हिन्दी प्रदीप, मार्च १८८५ ई०), पडे पत्थर अकिल पर आप समझे तो क्या समझे (हिन्दी प्रदीप, सितम्बर १८८५ ई०) आदि निबन्ध इनके अन्तर्गत आते हैं।

ग—पत्रादि

पाठक जी अपने साहित्यिक जीवन मे निरन्तर पत्र लिखा करते थे। सर्वश्री पिकाट, महावीरप्रसाद द्विवेदी, बालमुकुन्द गुप्त, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', लोचनप्रसाद पाण्डेय एव बनारसीदास चतुर्वेदी आदि को वह पत्र लिखा करते थे। खडी बोली के अतिरिक्त उन्होंने अग्रेजी और आगरा की ग्रामीण बोली मे भी पत्र लिखे हैं। यह पत्र गद्य और पद्य दोनों मे लिखे गये थे। इनका बहुत बडा अश 'मनोविनोद' के अन्त मे सग्रहीत है। इन पत्रों द्वारा इनकी स्पष्ट आत्मीयता झलकती है।

अध्याय ६

पाठक जी की कृतियों का अनुशीलन

(अ) अनूदित कृतियाँ

एकान्तवासी योगी (रचना-काल—जनवरी, १८८६ ई०)

भारतेन्दु के अस्त हो जाने पर उनके समकालीन प० बालकृष्ण भट्ट, प० अम्बिकादत्त व्यास एव बाबू तोताराम आदि येन-केन-प्रकारेण हिन्दी की खड़ी बोली को सरक्षण दिये हुए थे, किन्तु उनके मध्य मे उक्त बोली का कोई भी ऐसा काव्य न था जो उनके गौरव और आदर्श का आधार होता। वस्तुत लोगो को विश्वास भी न था कि इस बोली मे काव्य-रचना हो भी सकेगी। पाठक जी ने 'एकान्तवासी योगी' का सृजन कर खड़ी बोली के स्वप्न को सत्य कर दिखाया। स्वान्त सुखाय लिखी हुई इस रचना को खड़ी बोली के मधुर और ललित स्तम्भ बनने का सौभाग्य अवश्य उपलब्ध हुआ, किन्तु उस समय स्वय पाठक जी से इस रचना को सुनकर प० बालकृष्ण भट्ट ने उसे 'निरा नीरस और निकम्मा' बताया था। भारतेन्दु-युगीन भट्ट जी जैसे उत्कृष्ट कोटि के विद्वान के इस प्रकार के निराशामूलक निर्णय से पाठक जी का हृदय टूट जाना चाहिए था, किन्तु उनके स्वच्छन्दतावादी हृदय को काव्य के मनोरम सगीत एव मधुर उद्देश्य पर पूर्ण विश्वास था। भट्ट जी के हृदय मे परम्परावादी होने के कारण जितना इस नवीनता के प्रति सदेह और निराशा थी उतनी ही स्वच्छन्दतावादी पाठक जी के हृदय में उसके लिए ममत्व और श्रद्धा थी।

'एकान्तवासी योगी' गोल्डस्मिथ के 'The Hermit' का अनुवाद है। उसने इस काव्य को १७६५ ई० मे 'The Countess of Northumberland' के मनोरजन के लिए लिखा था। १७६६ ई० मे सर्वप्रथम यह रचना 'The

Vicar of Wakefield' में प्रकाशित हुई थी। साहित्य-जगत में यद्यपि यह 'The Hermit' के नाम से प्रसिद्ध है तथापि गोल्डस्मिथ ने नायक और नायिका के नाम पर इसे 'Edwin and Angelina' शीर्षक दिया था।

काव्य के मूल में प्रेममयी भावना का श्रेय यद्यपि गोल्डस्मिथ को ही है तथापि भक्ति और रीति की परम्पराओं से बोझिल रूढ़िवादी हिन्दी काव्य की कृत्रिमता को परखकर इस प्रेम-काव्य द्वारा उसे नवीन जीवन के लिए प्रेरित करना पाठक जी की मौलिकता थी। गदर के कारण देशवासियों को जीवन के यथार्थ से परिचय के सुयोग मिलने लगे थे। काव्य-क्षेत्र के इन कतिपय सुयोगों में 'एकान्तवासी योगी' का सृजन यथार्थ के साथ स्वच्छन्दता का परिचय था।

"सीधी-सादी खड़ी बोली में अनुवाद करने के लिये ऐसी प्रेम-कहानी चुनना जिसकी मार्मिकता अपढ़ स्त्रियों तक के गीतों की मार्मिकता के मेल में हो, पंडितों की बंधी हुई रूढ़ि से बाहर निकलकर अनुभूति के स्वतन्त्र क्षेत्र में आने की प्रवृत्ति का द्योतक है केवल पंडितों द्वारा प्रवर्तित काव्य-परम्परा का अनुशीलन ही अलम् नहीं है।"[1]

इस काव्य के प्रथम संस्करण की भूमिका में पाठक जी ने लिखा था—

"यह एक प्रेम-कहानी आपको भेंट की जाती है—निस्सन्देह इसमें ऐसा तो कुछ भी नहीं जिससे यह आपको एक ही बार में अपना सके अथवा आपके इस नित्य नवीन रसान्वेषी मनोमधुप को सहज ही में लुभा सके। केवल दो प्रेमियों के प्रेम का निर्वाहमात्र है—पर हमको और क्या चाहिये? हम तुम भी तो हिन्दी के प्रेमी हैं, बस यही सम्बन्ध इस भेंट के लिए बहुत है—हमारे इस प्रेम का भी निर्वाह किसी प्रकार उचित था—सो आज यों ही सही।"

प्रयाग—पौष सम्वत् १९४२

बालकृष्ण भट्ट ने मई सन् १८८६ ई० के 'हिन्दी प्रदीप' में इस काव्य के सम्बन्ध में अपना निम्न अभिमत व्यक्त किया था—

"विशेष प्रशंसा के योग्य यह नवीन रचना इसलिए है कि अंग्रेजी में जो पद्य था उसका अनुवाद भाषा के पद्यों में ही किया गया है। जहाँ-जहाँ ग्रंथकार ने अपनी ओर से मिलाया वह भाग अधिक रसीला और माधुर्यपूर्ण है। हमारे मित्र पाठक महाशय ने अपने इस परिश्रम से हमें यह अच्छी तरह जता दिया

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', काव्य खण्ड, द्वितीय उत्थान, पृष्ठ ६०० (१९५०–७५)।

कि कविता के पश्चिमी गद्यकार कभी हमारे लिए मनोरंजक और दिलचस्प नहीं हो सकते।"

इस काव्य का मूलाधार एडविन और अजलैना की प्रेम-कहानी है। उनका प्रेम श्लीलता से अग्रसर होकर उन्हें पति-पत्नी के सम्बन्ध में आबद्ध कर सका है। अजलैना की उदासीनता से अनादृत एडविन विरक्त का जीवन धारण कर लेता हैं। उसे अपनी त्रुटि ज्ञात होती है। अन्त मे अपने प्रिय की अनुगामिनी वनकर अपनी त्रुटि सुधार लेती है। नायक अपने प्रेम-निर्वाह मे स्वच्छन्द है और नायिका भी प्रेम की अनुभूति से स्वच्छन्दवादिनी वन जाती है।

'एकान्तवासी योगी' मे पारिवारिक वातावरण का स्वाभाविक स्वरूप विद्यमान है। उसी मे सीधे सरल प्रेम की उत्पत्ति होती है। नायक-नायिका दोनो ही जीवन के सभ्य वातावरण मे पल्लवित हुए थे। मातृ-विहीना होते हुए भी नायिका को अपने पिता से ही माता-पिता दोनो का दुलार मिला था। इसीसे नायिका 'हुआ न होगा किसी पिता का ऐसा मृदुल स्वभाव' तथा 'ईश्वर तुल्य पिता के सम्मुख थी मैं पूर्ण प्रसन्न' कहने का साहस कर सकी है। अंग्रेज वालिका होती हुई भी भारतीय संस्कृति के अनुकूल जीवन-निर्माण का परिचय है।

दो घटे तक मुझे नित्य वह (पिता) श्रम से आप पढ़ाता था।
विद्या-विषयक विविध चातुरी नित्य नई सिखलाता था।

* * *

मैं ही एक वालिका उसके सत्कुल मे जीवित थी शेष।
इससे स्वत्व वाप के धन का प्राप्य मुझी को था निश्शेष।

* * *

सुख ही सुख मे वीता मेरा वचपन का सव काल।

नायक के जीवन मे भी मानवता का पुट था। नायिका की आकाक्षा करता हुआ भी वह अपने हृदय के प्रेम को व्यक्त न कर सका। वह युवक होते हुए भी सलज्ज था।

उनमे एक कुमार एडविन, प्रेमी प्रतिदिन आता था।
वय किशोर, सुन्दर स्वरूप, मन जिसको देख लुभाता था॥
वारें था वह मेरे ऊपर, तन मन सर्वस्व प्रान।
किन्तु मनोरथ अपना उसने कभी प्रकाश किया न॥

साधारण अति रहन-सहन, मृदु बोल हृदय हरने वाला।
मधुर मधुर मुसक्यान मनोहर, मनुज-वंश का उजियाला।
सभ्य, सुजन, सत्कर्म-परायण, सौम्य, सुशील, सुजान।
शुद्ध चरित्र, उदार प्रकृति-शुभ, विद्या-बुद्धि-निधान।

* * *

प्राण पियारे की गुण गाथा, साधु, कहाँ तक मैं गाऊँ।
गाते गाते चुके नहीं वह चाहे मैं ही चुक जाऊँ।
विश्व-निकाई विधि ने उसमें की एकत्र बटोर।
बलिहारौं त्रिभुवन धन उस पर वारौं काम करोर।

नायक-नायिका दोनो ही अनुशासित और शिष्ट वातावरण मे पल्लवित होकर प्रेम-क्षेत्र के लिये अग्रसर होते हैं। नायक में नायिका की अपेक्षा कहीं अधिक सरलता और भावुकता है। उसके जीवन में मस्ती और नायिका के प्रति सच्चा अनुराग है। उसकी त्यागमयी भावना से नायिका भी आभारी हो उठती है। फलत. प्रेम-पात्री बनकर वह अपने प्रियतम के प्रिय पथ की अनुगामिनी बन जाती है।

इस प्रकार का प्रेम-काव्य रीतिकालीन शृंगार के अन्तर्गत आने की अपेक्षा कुछ विशेष प्रकार का है। प्रथम में नायक-नायिका कृत्रिम प्रेम का संवहन करते हुये अन्त.महल, वाटिका तथा सरोवर आदि के किनारे अठखेलियाँ करते फिरते हैं। वह प्रेम परम्परागत रूढिबद्ध होता है और जीवन की भंगिमा से शून्य होता है। 'एकान्तवासी योगी' का प्रेम-तत्व जीवन के स्वच्छन्दतावादी स्थल पर क्रीडा करता है। वह नियन्त्रण और लोक-मर्यादा से परे वैयक्तिक स्वतन्त्रता की भावना पर आधारित है। उसमें निर्विकार प्रेम का सार्वभौम साम्राज्य है।

एंजलैना के इस कथन में—

जाकर यहाँ जगत को मैं भी उसी भाँति बिसराऊँगी।
देह गेह को देय तिलांजलि प्रिय से प्रीति निभाऊँगी।
मेरे लिये एडविन ने ज्यों किया प्रीति का नेम।
त्यों ही मैं भी शीघ्र करूँगी परिचित अपना प्रेम।

एडविन के इस कथन मे—

इस मुहूर्त्त से प्रिये, नहीं अब पल भर भी होंगे न्यारे
जिन विघ्नों से था विछोह यह, सो अब दूर हुए सारे
यद्यपि भिन्न शरीर हमारे, हृदय प्राण मन एक
परमेश्वर की अतुल कृपा से निभी हमारी टेक

—वैयक्तिक भावनाओ की विशेषता है। स्वच्छन्दतावादी काव्य मे इस प्रकार की भावनाएँ रूढिवादी काव्य की अपेक्षा कहीं अधिक यथार्थ और जीवन के मेल मे होती हैं। इसी कारण यह काव्य स्वच्छन्दतावाद का नवीन सदेश देता है और हिन्दी की काव्य-परम्परा मे स्वच्छन्दवादिता का स्तम्भ खड़ा कर देता है।

पाठक जी के इस काव्य का अग्रेजी से हिन्दी मे रूपान्तर करने के समय काव्य की भाषा के सम्बन्ध मे विवाद प्रस्तुत था। यो ब्रजभाषा ही कविकर्म के लिये सुरक्षित थी, किन्तु सर्वसाधारण की बोली खडी बोली जब साहित्य-क्षेत्र मे अपनाली गई तब काव्य-क्षेत्र मे उसका प्रयोग करना भी आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो गया। इस प्रकार ब्रजभाषा और खडी बोली की प्रवाहित गगा-जमुनी के मध्य मे दोनो भाषाओ का सम्मिश्रण हो जाना स्वाभाविक ही था। 'भारतेन्दु-युग' के सभी ही कवियो मे भाषा-मिश्रण का यह स्वरूप मिलता है। पाठक जी ने यद्यपि अपने इस काव्य के लिये खडी बोली का प्रयोग ही समीचीन समझा था, किन्तु ब्रजभाषा के आभार से वह अपने को मुक्त न कर सके। स्थल-स्थल पर ब्रजभाषा का पुट स्पष्ट परिलक्षित होता है।

करके कृपा बतादे मुझको कहां जलै है वह आगी

* * *

तू जो मुझे वहां पहुँचादे यह गुण होय अथाह

* * *

नम्र भाव से कीनो उसने विनय समेत प्रणाम

* * *

बनी पर्णशाला योगी की साधारण अत्यन्त इकान्त

* * *

मान होय भूले भटके का अति श्रद्धा के साथ

* * *

शोचनीय मम दशा कथा, मैं कहूँ आप सो सुन लीजै

* * *

प्रेम व्यथित अबला पर अपनी दया-दृष्टि योगी कीजै

* * *

विश्व-निकाई विधि ने उसमे की एकत्र बटोर

बलिहारों त्रिभुवन धन उस पर वारों काम करोर

* * *

उसके मन की सुघराई की उपमा उचित कहाँ पाऊँ

* * *

उस एकान्त ठौर को मै अब ढूंढू हूँ दिन रैन

उपर्युक्त पक्तियो मे रेखाकित पदो का अध्ययन करने से ही पाठक जी की स्थिति का पता चल जाता है। वह ब्रजभाषा के जन्मजात माधुर्य को समझते थे, यही कारण है अनुभव करते हुए भी (निकाई, करोर एव सुघराई) आदि शब्दो के खडी बोली के रूप प्रस्तुत कर वह माधुर्य की खण्डित मूर्ति पाठक के सामने लाने मे साहसिक न हो सके। उपर्युक्त रेखाकित पदो से यह भी व्यक्त होता है कि खडी बोली प्रौढ स्वरूप प्राप्त करने के लिये अभी तुतला रही थी—'जलै है', 'होय', 'कीनी', 'इकान्त', 'लीजै' एव 'कीजै' आदि शब्द इसी स्थिति के द्योतक हैं।

गोल्डस्मिथ का मूल काव्य ४० पदो मे है किन्तु पाठक जी ने इनका रूपान्तर ५९ लावनी छन्दो मे किया है। मूल से १९ पदो का अधिक होना पाठक जी द्वारा गोल्डस्मिथ के अग्रेजी वातावरण को भारतीय वातावरण मे रूपान्तरित करने के प्रयास के कारण स्वाभाविक था। काव्य-विषय को भारतीयता देने के लिये ही पाठक जी ने स्वच्छन्द रूप मे अपनी भावनाओं को नि सृत होने दिया है। वस्तुत इन्ही स्थलो मे पाठक जी के कवि-हृदय की सरलता की परख हो सकती है। केवल इस सम्बन्ध मे एक उदाहरण प्रस्तुत करना ही अलम् होगा—

गोल्डस्मिथ के The Hermit का निम्न २६वाँ पद है—

My father lived beside the Tyne
A wealthy lord was he

And all his wealth was marked as mine
He had but only me,

इस पद का अनुवाद पाठक जी ने निम्न पंक्तियों में किया है—

टाइन नदी के रम्य तीर पर, भूमि मनोहर हरियाली
लटक रहीं, झुक रहीं जहाँ द्रुमलता, छुएँ जल में डाली
चिपटा हुआ उसी के तट से उज्ज्वल उच्च विशाल
शोभित है एक महल बाग में, आगे है एक ताल (३१)

* * *

उस समग्र, वन, भवन, बाग का मेरा बाप ही स्वामी था
धर्मशील, सत्कर्म-निष्ठ वह जमींदार एक नामी था
बड़ा धनाढ्य, उदार, महाशय, दीन-दरिद्र-सहाय
कृषिकारों का प्रेम-पात्र, सब विधि सद्गुण-समुदाय (३२)

* * *

मेरी बाल्य अवस्था ही में माँ ने किया स्वर्ग प्रस्थान
रही अकेली साथ पिता के, थी मैं उसकी जीवन-प्राण
बड़े स्नेह से उसने मुझको पाला पोसा आप
सब कन्याओं को परमेश्वर देवे ऐसा बाप (३३)

* * *

दो घंटे तक नित्य मुझे वह श्रम से आप पढ़ाता था
विद्या-विषयक विविध चातुरी नित्य नई सिखलाता था।
करूँ कहाँ तक वर्णन उसकी अतुल दया का भाव
हुआ न होगा किसी पिता का ऐसा मृदुल स्वभाव (३४)

* * *

मैं ही एक बालिका उसके सत्कुल में जीवित थी शेष
इससे स्वत्व बाप के धन का प्राप्य मुझी को था निश्शेष
था यथार्थ में गेह हमारा, सब प्रकार सम्पन्न
ईश्वर-तुल्य पिता के सम्मुख, थी मैं पूर्ण प्रसन्न (३५)

उपर्युक्त गोल्डस्मिथ रचित अंश को देखकर अनुमान किया जा सकता है कि कवि पाठक जी ने अपनी भावनाओं को स्वच्छन्द रूप से अग्रसर होने दिया है। टाइन नदी के किनारे निवास की बात गोल्डस्मिथ भी कहते हैं, किन्तु उस स्थल की हरीतिमा एवं ताल आदि की बात मूल में कहीं भी नहीं है। गोल्ड-

स्मिथ पिता के धनी होने की बात तो कहते हैं, किन्तु पाठक जी ने उसके धनी होने के अतिरिक्त धर्मशील, सत्कर्मनिष्ठ, उदार, दीन दरिद्र-सहाय आदि विशेषण भी जोड़े हैं।

काव्य में ऐसे स्थल भी हैं जहाँ पाठक जी ने अपनी भावनाओं को भारतीय संस्कृति के अनुकूल ही रखा है।

And when beside me in the dale
He carolled lays of love
His breath lent fragrance to the gale
And music to the grove

इसका रूपान्तर पाठक जी ने निम्न प्रकार से किया है —

जब वह मेरे साथ टहलने शैलतटी में जाता था
अपनी अमृतमयी वाणी से प्रेमसुधा बरसाता था।
उसके स्वर से हो जाता था वनस्थली का ठाम
सौरभ-मिलित सुरस-रव-पूरित सुर-कानन सुखधाम।

उपर्युक्त हिन्दी और अंग्रेजी दोनों पदों को देखने से प्रतीत होता है कि पाठक जी ने रूपान्तर करने में कवि की मूल भावनाओं की पूर्ण रक्षा तो की ही है। पाठक जी ने अपनी पंक्तियों में गोल्डस्मिथ की पंक्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक गरिमा और शिष्ट भावना देने का प्रयास किया है। He carolled lays of love के लिये पाठक जी ने 'अपनी अमृतमयी वाणी से प्रेम सुधा बरसाता था' लिखा है। इस पंक्ति में मूल की अपेक्षा काव्य का सुन्दर उत्कर्ष है। गोल्डस्मिथ केवल 'Grove' ही कहकर रह जाता है जब कि पाठक जी ने उस कुंज को 'सुरकानन' बना दिया है। उपर्युक्त से ही यह अनुमान लगाने में कठिनाई नहीं है कि पाठक जी के कवि-हृदय की प्रतिभा ने 'एकान्त-वासी योगी' द्वारा गोल्डस्मिथ को भी अमरत्व प्रदान किया है। यही कारण है तत्कालीन वातावरण में देश एवं विदेश में सभी ने इस काव्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

लण्डन के २२ मई १८८८ ई० के The Homeward Mail का कथन है—

"गोल्डस्मिथ के Hermit के इस अनुवाद (एकान्तवासी योगी) से हिन्दी-साहित्य में एक अद्वितीय अभिवृद्धि हुई है। क्योंकि यह भारतीय विद्वानों को शास्त्रीय चिन्त-कल्पना से विमुख कर मानवीय सहानुभूति और अनुराग में तल्लीन करेगा

श्रीधर पाठक ने अंग्रेजी के इस प्रसिद्ध काव्य के साथ पूर्ण न्याय किया है। उनका अनुवाद भारतीयों को पाश्चात्य सौन्दर्य का यथोचित विचार प्रदान करेगा।"[1]

Aligarh Institute Gazette, 6th July, 1886 का कथन है:

"अनुवाद दुर्लभ गुणों से युक्त है और यह अनुवादक की प्रवृत्ति एवं विवेक के लिये प्रशंसनीय है।"[2]

पिन्काट महोदय ने इस काव्य की प्रशंसा करते हुए पाठक जी को लिखा था—"आपका अनुवाद आपकी प्रतिभा की विजय है।"[3]

ऊजड ग्राम—(रचना-काल—मार्गशिर सं० १९४६)

'ऊजड ग्राम' गोल्डस्मिथ के करुण काव्य 'The Deserted Village' का अनुवाद है। किन्हीं विचारकों का दृष्टिकोण है कि गोल्डस्मिथ के इस काव्य मे वर्णित आवर्न नामक ग्राम आयरलैंड का है, इग्लैंड का नही, किन्तु काव्य मे इग्लैंड की परिस्थितियो के चित्रण होने से यह स्पष्ट है कि यह ग्राम भी इग्लैंड का ही रहा होगा। इस विचारधारा का जो भी तथ्य हो, किन्तु इसमे सन्देह नही कि इस काव्य के द्वारा कवि गोल्डस्मिथ ने मानवीय मानस के अन्तरतम को स्पर्श करने की सफल चेष्टा की है। फलस्वरूप The Deserted Village आयरलैंड अथवा इग्लैंड का ही न होकर विश्व के किसी देश के भग्नशील ग्राम की कोटि मे रखा जा सकता है। हरित-भरित और सर्व प्रकारेण सम्पन्न ग्राम दुर्भाग्य के चक्र मे पडकर उजड जाते हैं। यह क्रम प्रत्येक देश के भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनो कालो मे अबाध रूप से चलता रहेगा। यह विश्व का करुण अमर सत्य है—इसमें व्यतिक्रम हो ही नही सकता। इस आधार

---

1 This translation of Goldsmith's Hermit is a valuable addition to Hindi literature, for it will tend to divert the Indian mind from the extravagances of oriental imagery and fix it upon the sympathies and affections of the humen heart Shri Dhar Pathaka has done justice to a famous English poem, and his translation will give to the people of India an accurate idea of what is deemed beautiful on this side of the world,

2 The translation possesses very rare merits and is highly creditable to the taste and talents of the translator

3 Your translation is a triumph of skill.

से ही इस काव्य को विश्व के अमर काव्यों की कोटि में सरलतापूर्वक रखा जा सकता है। गोल्डस्मिथ की मूल अंग्रेजी रचना मई १७७० में प्रकाशित हुई थी और अपने भाई के निधन के कारण उन्होंने उसे सर जोशुआ रेनाल्ड्स (Sir Joshua Reynolds) को अर्पित की थी।

कवि श्रीधर पाठक हिन्दी के आधुनिक-युग के संक्रान्त युग के कवि थे। काव्य के कृत्रिम निर्माण की माया-मरीचिका के युग में कालयापन करते हुए भी उन्होंने काव्य के क्षेत्र में जीवन के यथार्थ का स्वागत करने में ही न्याय समझा। फलस्वरूप तद्विषयक प्रवृत्तियों को माँजने के लिये उन्होंने गोल्डस्मिथ के काव्यों का आधार लेना उचित समझा था। इनमें समाविष्ट विश्व-भावना को परखकर ही काव्य के वैयक्तिक अनुभूति-पूर्ण यथार्थ का परिचय हिन्दी-पाठकों को कराने के लिये ही उन्होंने 'एकान्तवासी योगी' के समान इस 'ऊजड़ ग्राम' का अनुवाद भी प्रस्तुत किया।

अंग्रेजी के मूल काव्य में केवल ४३० पंक्तियों के होते हुए भी अनुवाद में ५१४ पंक्तियाँ हो गई हैं। यद्यपि काव्य के उत्तरार्द्ध में कवि पाठक ने शाब्दिक अनुवाद करने का प्रयास किया है, तथापि रूपान्तर में एक भाषा की भावनाओं को दूसरी भाषा में पूर्ववत् सुगठित रूप में रख दिया जाय—ऐसा न सम्भव हुआ है और न हो सकेगा। द्वितीय भाषा में रूपान्तर की परिस्थिति में तद्देशीय सभ्यता और संस्कृति का ध्यान भी रखना स्वाभाविक हो जाता है—अन्यथा वह रूपान्तर भले ही हो जाय; किन्तु उसमें सजीवता के शतांश का भी अनुभव न होगा। उपर्युक्त दृष्टिकोण के कारण ही मूल पंक्तियों के रूपान्तर में पंक्तियों का बढ़ जाना क्षम्य ही नहीं स्वाभाविक भी है।

यद्यपि Allan's Indian Mail, London (फर्वरी १७, १८९०), The Indian Magazine, London (मार्च १८९०), Supplement to the Overland Mail, London (अप्रैल ११, १८९०) एवं Aligarh Institute Gazette (फर्वरी ११, १८९०) आदि-आदि पत्रों ने अपने मुक्त कण्ठ से इस सजीव अनुवाद की प्रशंसा की है, किन्तु इस सम्बन्ध में प्रोफेसर जे० एफ० निकल एम० ए०, बालियल कालेज, आक्सफोर्ड का १ मार्च १८९० ई० का श्री पिंकाट महोदय को हिन्दी में लिखित पत्र का यह अंश विशेषरूपेण द्रष्टव्य है :—

"पंडित जी (श्रीधर पाठक) ने अपनी पोथी का नाम ऊजड़ ग्राम रखा। परन्तु निश्चय यह है कि लिखते समय उनका मन नगरों के समान अपने मधु

मे ऐसा लिपट गया कि अक्षरो का विन्यास भूल गये। इसका नाम 'जड़ाऊ मग' रखना चाहिये, क्योंकि उस पोथी की बाटे मणि-माणिक्य से जटित होती है। बस, बाट की बात चलाते ही क्या देखता हूँ कि वाटिका फूलती है। उस वाटिका की बाटो की दोनों ओर की क्यारियो की शोभा देखता हुआ चला जाता हूँ। मक्खी के समान एक फूल से दूसरे फूल पर बैठना उनका रस लेना हूँ। उसी वाटिका के वृक्ष अमृत फल से लदे हैं, केवल मुख खोलने का कष्ट है। फल आप से आप मुख मे चले जाते है।"

'ऊजड ग्राम' के स्थान पर प्रो० निकल ने उसका नाम 'जड़ाऊ मग' रखने के लिये सुझाव दिया है। एक अग्रेज विद्वान के इस कथन के तथ्य की परीक्षा ही वस्तुत इस लघु काव्य की आलोचना होगी।

इस काव्य मे काव्य-विषय का जहाँ तक सम्बन्ध है उसको उस रूप मे प्रस्तुत करने का श्रेय मूलत गोल्डस्मिथ को ही है। 'ऊजड ग्राम' के अन्तर्गत (विषय एव भाव) के सम्बन्ध मे यह विचार करना कि पाठक जी मूल कवि की भावनाओ को वास्तविक रूप मे कहाँ तक सफलतापूर्वक रूपान्तरित कर सके हैं अथवा कहाँ पर इस सम्बन्ध मे वह गोल्डस्मिथ से आगे निकल गये हैं अथवा पीछे रह गये है—इन सभी विचारो का श्रेय अथवा अश्रेय पाठक जी को है। यो इस काव्य मे स्वाभाविक सजीवता का पुट पाठक जी अपनी प्रतिभा के बल से लगा सके हैं—इसके लिये हम उनकी भूरि-भूरि प्रशसा ही करेंगे।

काव्य के विषय-सम्बन्धी विवेचन मे प्रविष्ट होने से पूर्व हम काव्य के वाह्याग के सम्बन्ध मे यह जान लें कि पाठक जी ने इस अनुवाद को रोला छद और व्रजभाषा मे प्रस्तुत किया है। इस काव्य के लिये उनका व्रजभाषा का आग्रह ही क्यो रहा है ? इस सम्बन्ध में उन्ही के विचार द्रष्टव्य हैं —

"××× परन्तु समय बदल चला था। बूढी व्रजभाषा का स्थान नवयुवती खड़ी बोली से सत्वर छीना जा रहा था और बहुत कुछ छीना जा चुका था। नवीन युग के नवयुवक उसी की ओर अधिक आबद्ध देखने मे आते थे। अब भी अधिकत' वही प्रवृत्ति है। अत बूढी भाषा की रचना का एक उजडे हुये गाव की दशा को इतना शीघ्र प्राप्त हो जाना अस्वाभाविक न था।"[1]

इस स्थल पर यह सोचना कि मूल काव्य की करुणा की रक्षा के लिये ही

---

१ श्रीधर पाठक, 'ऊजड ग्राम' भूमिका, तृतीय सस्करण, मार्ग शीर्ष शुक्ल ३, सम्वत् १९७२।

ब्रजभाषा अपना ली गई है—हास्यास्पद होगा। पाठक जी इस अनुवाद से पूर्व 'एकान्तवासी योगी' खड़ी बोली मे प्रस्तुत कर चुके थे, जिसकी भाषा के लालित्य मे सन्देह करना व्यर्थ है। खड़ी बोली मे प्राजलता और सरसता ला देना पाठक जी की प्रतिभा पर निर्भर था। एकान्तवासी योगी के लिये जिस मधुर भाषा का प्रयोग किया गया है, वही भाषा 'ऊजड़ ग्राम' के लिये भी प्रयुक्त हो सकती थी। इस काव्य की भाषा के प्रयोग का निश्चय कवि पर ही रहता है। इससे इस स्थल पर भी पाठक जी की विशेष अभिरुचि की ही बात थी जो इस काव्य मे ब्रजभाषा अपना ली गई।

अब अनुवाद की सफलता के सम्बन्ध मे यह विचार करना स्वाभाविक हो जाता है कि कवि पाठक मौलिक भावनाओं की किस मात्रा तक रक्षा करने मे समर्थ हो सके हैं—

Sweet Auburn! loveliest village of the plain,
Where health and plenty cheered the labouring swain
Where smiling spring its earliest visit
And parting summer's lingering blooms delayed
(१—४)

पाठक जी का अनुवाद देखिये—

हे प्यारे औबर्न सकल गामन सों रूरे।
जहाँ श्रमी कृषिकार बसे सुख सम्पति पूरे।
जहाँ रसीली ऋतु वसन्त पहले ही आवत।
जात समय बिलमाय फूल फल देर लगावत।

उपर्युक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि पाठक जी ने गोल्डस्मिथ की भावनाओं की पूर्ण रक्षा कर ली है। शाब्दिक अनुवाद न होते हुए भी इस स्थल पर भावात्मक अनुवाद मे किसी प्रकार का अभाव परिलक्षित नहीं होता। आगे की पंक्तियाँ भी तुलना के दृष्टिकोण से विचारणीय हैं।

The service past, around the pious man
With steady zeal, each honest rustic ran,
Each children followed with endearing wile,

And plucked his gown, to share the good man's smile,
His ready smile a parent's warmth exprest,
Their welfare pleased him, and their cares distrest
To them his heart, his love, his griefs were given
But all his serious thoughts had rest in heaven,

—The Deserted Village, Lines 181—188

पाठक जी का अनुवाद देखिये —

उपासना के पीछे जाके चारों ओरो
दृढ उछाह सो घिरैं सरल ग्रामीन बहोरो
बालक हू लगि लेंय संग करि प्रिय किलकोरनि
पकरैं जामा तासु लहन मुसक्यानि एक छिन
सुलभ तासु मुसक्यानि पिता सम प्रीति जतावैं
तिनको सुख दुख देय ताहि, चिन्ता दुखियावैं
हृदय, प्रेम अरु शोक तासु तिन मध्य समाये
पैं सब गूढ विचार परम पद मे थिति पाये।

—ऊजड ग्राम, पंक्तियाँ २५५—२६२

मूल पक्तियों के साथ इन पक्तियो की तुलना मे यह स्पष्ट है कि पाठक जी ने शत प्रतिशत मूल पक्तियो की भावना को सुरक्षित रखा है। मूल काव्य की सरलता और मधुरता पूर्ण मात्रा मे हिन्दी की पक्तियो मे भी निभ गई है।

अब एकाध वह स्थल भी देखते हैं जहा मूल की भावना के स्पष्ट करने मे कवि पीछे रह गया है—

Princes and lords may flourish or may fade
A breath can make them as a breath has made,
But a bold peasantry, their country's pride
When once destroyed can never be supplied

—The Deserted Village, Lines 53—56

कुमर और उमराय बने बिगरें कछु नाहीं
फूंक माँहि वे बनत फूंक ही सों मिटि जाहीं।
पं दृढ कृषिक-समाज देस को सांचो गौरव
नास भये एक बार फेरि उपजन नहि सम्भव

—ऊजड ग्राम, पंक्तियाँ ७३-७५

दोनो अशो मे भावनाओ के सम्बन्ध मे साम्य अवश्य है, किन्तु हिन्दी के अनूदित अश मे पाठक जी मूल भावना की रक्षा करने मे असफल रहे हैं। अंग्रेजी के उपर्युक्त खण्ड की प्रथम दो पंक्तियो का शाब्दिक आशय है—"राजकुमार और सम्य बन सकते हैं और बिगड सकते हैं—एक श्वास उन्हे वैसे ही बना सकती है जैसे एक श्वास ने उन्हे बनाया था।" फलस्वरूप अंग्रेजी की पंक्तियो की ध्वनि है—राजकुमार और सम्यो के बनने और बिगडने से क्या, वे एक श्वास मे फिर बन सकते हैं। पाठक जी की अनुवादित पंक्तियो की ध्वनि है—राजकुमारो और सम्यो के बनने और बिगडने से क्या, वे एक फूंक मे बन भी सकते हैं और बिगड भी सकते हैं; किन्तु गोल्डस्मिथ का आशय है—राजकुमार और सम्यो का बनना-बिगडना क्या, वे फिर बन सकते हैं, पर किसानो का बिगड कर बन जाना असम्भव है। इस प्रकार पाठक जी मूल भाव को नहीं अपना सके हैं।

'ऊजड ग्राम' के वे स्थल भी देखने हैं जिनमे भारतीयता की पूर्ण झलक मिलती है। इस गाँव मे 'पुजारी' और 'अध्यापक' दो बडी महत्वपूर्ण विभूतियाँ हैं। गोल्डस्मिथ के ये दो चरित्र भी अधिक शिक्षित नही हैं, किन्तु भारतीय ग्रामो मे जिस प्रकार ये लोग ग्रामीणो के हित-चिन्तन मे लगे रहते हैं, उनका वही रूप यहाँ भी विद्यमान है। इस स्थल पर कुमारियो के दो चित्र विचारणीय हैं—

सकुचीली क्वारिन की पुरपन पं बनलाँही
महतारिन करिकै तिनको आँखिन मे तर्जन
चेटिन को अनुचित-अनुचित,बातन सों बर्जन (३९-४१)

(The bashful virgin's sidelong looks of love
The matron's glance that would those looks reprove)
—(29-30)

ना बनारी नय वाला मरमोलो कोऊ तहँ
पान हेतु पूछो जैयो चाहै जो मन महँ

सरल सलोनी सुन्दर साधारन हिय भोरी
चूमि पियाला पहुँचैहै औरन की ओरी (३६१-३६४)

(Nor the coy maid half willing to be prest
Shall kiss the cup to pass it to the rest)
—(243-249)

दोनो स्थल ही वस्तुत कुमारियों के कोमल चित्रण प्रस्तुत करते हैं, जिनमे कवि की स्वच्छन्दवादिता शत-प्रतिशत विद्यमान है। द्वितीय मे परिपाटी विशेष का चित्रण होते हुए भी 'नव बाला' के प्रति पुरुष-वर्ग का भावपक्ष है, जो अपने से पहले ही कुमारी को स्थान देकर उसकी लज्जा और सुन्दरता का सम्मान करते हैं। प्रथम मे वस्तुत बाल्यावस्था के स्थान पर युवती अवस्था के आगमन के कारण कुमारी मे चचलता का समावेश स्वाभाविक ही है, जिसके वशीभूत हो वह कभी इधर दृष्टि डालती है कभी उधर। जीवन मे अनुभव-शून्य होने के कारण कही वह भटक न जाय इससे वह अपनी अभिभाविकाओं से नियत्रित भी की जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से अब यह स्पष्ट हो जाता है कि गोल्डस्मिथ के इस काव्य के साथ पाठक जी न्याय कर सके है। यों अनुवाद मे जो अभाव रह सकते हैं वही यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं अन्यथा मूल-काव्य की स्वच्छन्दवादिता को कवि सफलतापूर्वक सुरक्षित रख सका है, इसमे सन्देह नही।

इस स्थल पर पाठक जी की जन्मभूमि 'जोधरी' का पतन-चित्रण जो स्वय उन्होंने 'स्वजीवनी' में किया है, साम्य की भावना से देखने योग्य है। जोधरी ग्राम पाठक जी के किसी पूर्वज ने कोटिला के अधिप के समीप रेहन रख दिया था। तत्सम्बन्धी वर्णन करते हुए पाठक जी ने गाँव का यों चित्रण किया है—

× × × आज वह वश अति
दुर्दशा ग्रस्त है, द्रोह से दग्ध दा-
रिद्रय से ध्वस्त है। ग्राम मे आज औ-
दण्ड्य का राज है, अनवरत पतन का
सज रहा साज है।

वैश्यो के सम्बन्ध मे कवि-कथन है—

धर्म में जैन, बहु—
नम्रता ऐन सब, सुघर सन्तान धन

धान्य से धन्य, उस ग्राम मे सदृश्य उन-
के न जन अन्य थे। किन्तु वह भी अधो-
गमन मे लग्न थे, कुमति कृत कलह के
पक मे मग्न थे। आज दिन वह दुखित
दीन दुरवस्थ, आत्म अस्तित्व मे
अतीव अस्वस्थ हैं।

वैश्यो के समान कृषक भी सभी प्रकार से सुखी और सम्पन्न थे; किन्तु दैवी दुर्भाग्यो के समक्ष वे भी अधोगति को प्राप्त हुए—

उसी विधि दीपते
सुखित कृषिकार थे, प्राय उनके सभी
श्लाघ्य व्यवहार थे। आज वह भी निपट
भिन्न हैं हो रहे, स्वात्मगत स्वत्व के
चिह्न हैं खो रहे।

दुर्भाग्यो के संसर्ग मे पीडित सम्पूर्ण ग्रामवासियो के साथ कवि श्रीधर पाठक अपनी पारिवारिक स्थिति को भी नही भूलते हैं।

घर हमारा विभव
मे न अभ्यस्त था, धार्मिक
व्यसन मे ही रहे व्यस्त था। आज वह भी नहीं
विपद से रहित है, पर चुका बहुत कुछ
आत्मगत अहित है।

ग्राम-निवासियो के साथ-साथ कवि गाँव का चित्रण भी बडी ही सजीव शैली मे प्रस्तुत कर रहा है।

ग्राम उस समय जिस
समय की है कथा, दूर तक प्रान्त के
बीच विख्यात था। दृश्य उसका अभी
हृदय पर है लिखा, स्पष्ट जैसा कि हो
आज ही का रचा।
एक प्राचीन 'पर-
-कोट' जिसका अधिक भाग था भग्न और
भूमि से मिल रहा मूल से लग्न जिस
के कि खाई खुदी चहुँ देशो दिशा—

—ई कहीं लुप्त थी। बीच उसके कहीं
सजल कीचड़ कहीं सघन-काई-सनी
सड़ी बेलें सिंघाड़े तथा कमल की
सरल कहिं कुटिल कहिं पड़ी रहती बहुत
थी मनोहर बड़ी

पाठक जी की पंक्तियों में भी वैयक्तिक भावना का चित्रण है। पाठक जी में कवि-सुलभ प्रतिभा पूर्णरूप से विद्यमान थी। इसी से 'ऊजड़ ग्राम' के अनुवाद के सम्बन्ध में यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि वैयक्तिक अनुभूतियों के 'परिपूर्ण' चित्रणों के कारण 'एकान्तवासी योगी' के समान इस काव्य ने भी हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा को प्रशस्त किया है।

श्रान्त पथिक (रचना-काल—१६०२ ई०)

पं० श्रीधर पाठक अंग्रेजी काव्य की पूर्व स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों से प्रभावित थे। अंग्रेजी काव्य के उक्त काल में जिस प्रकार कवि परम्परागत काव्य-पद्धतियों को परित्यक्त कर वैयक्तिक अनुभूतियों के आधार पर काव्य-क्षेत्र में अपना नया संसार बसाना चाहते थे, उसी प्रकार हिन्दी की सामन्तीय प्रवृत्तियों के विरोध में पाठक जी ने स्वच्छन्दतावादी काव्य-पद्धति को जन्म देकर काव्य में एक नया प्रयोग प्रारम्भ किया।

श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के 'The Traveller' का 'श्रान्त पथिक' के नाम से अनुवाद प्रस्तुत किया था। इन अनुवादों की सफलता के सम्बन्ध में यह सत्य है कि उनके 'एकान्तवासी योगी' को जो यश मिला वह 'ऊजड ग्राम' को नहीं और 'ऊजड-ग्राम' को जो यश मिला वह 'श्रान्त पथिक' को नहीं। यों वैयक्तिक अनुभूतियों के साथ अधिक और कम स्वच्छन्दवादिता गोल्डस्मिथ के तीनों काव्यों में है, किन्तु हिन्दी में तीनों काव्यों की सफलता का जो कथन है उसके सम्बन्ध में यह जानना ही उचित होगा कि 'एकान्तवासी योगी' में जो स्वच्छन्दवादिता है वह 'ऊजड ग्राम' में नहीं और 'ऊजड ग्राम' में जो स्वच्छन्दवादिता है वह 'श्रान्त पथिक' में नहीं। वस्तुतः उपर्युक्त सफलता और असफलता का दोष पाठक जी को नहीं है, किन्तु उसके लिए तो गोल्डस्मिथ ही स्वयं उत्तरदायी है।

"क्लिष्ट एव दार्शनिक इस विदेशी काव्य का पक्ति प्रति पक्ति अनुवाद होने पर भी मौलिक काव्य का यह सतोषजनक रूपान्तर नही कहा जा सकता।"[१]

उपर्युक्त असफलता का प्रमुख आधार वस्तुतः काव्य की दार्शनिक भावना है। इसमे न तो 'The Hermit' के समान मधुर प्रेमचर्या है और न 'The Deserted Village' के समान भग्नावशेषो के करुण चित्रण ही। इसमे तो केवल 'सुख के दर्शन' की व्याख्या है जो वस्तुत. विभिन्न प्रदेशो की राष्ट्रीयता की कसौटी पर तौली गई है। यदि कवि ने इस दर्शन की व्याख्या के लिए अन्य कोई आधार लिया होता तो कविता का माधुर्य स्वीकार्य हो सकता था। देशो की जिन राष्ट्रीयताओ को कवि विवेचित करता है उनमे विविधता के कारण भावनाओ के प्रवाह मे विषमता के द्वारा रसानुभूति मे व्यवधान प्रस्तुत हो जाता है। काव्य मे दार्शनिक व्याख्या नीरस और शुष्क प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त हिन्दी-रूपान्तर मे पाठक जी सन्तोष की जो कमी बतलाते हैं उसका कारण यही है कि पक्ति प्रति पक्ति अनुवाद होने के कारण पाठक जी को मस्तिष्कीय व्यायाम करना आवश्यक हो गया, जिसमे बौद्धिक-कलापक्ष का प्रस्फुटन तो हुआ, किन्तु हृदय का भावपक्ष भटक गया।

इस काव्य के यत्र-तत्र स्थलो पर दृष्टिपात किया जाय उसमे पूर्व काव्य के प्रमुख आधार का विवरण प्रस्तुत करना उचित होगा।

पथिक गोल्डस्मिथ थककर अपनी आत्मा को सुखी करने के लिये अपने को आल्प्स पर्वत की चोटी पर बैठा हुआ मानकर मानवीय सुख के सम्बन्ध मे विचार करता है। विचारता है—ऐसा सुख कहाँ मिल सकता है? प्रत्येक स्वदेशाभिमानी अपने देश को सर्वोत्तम समझता है। फिर इटली, स्विट्जरलैंड, फ्रास, हालैंड एव इग्लैण्ड के मानवीय समाजो पर अलग-अलग विचार करता है। सोचता है कि इन राष्ट्रीयता के कारण ही सघर्ष होते हैं। सामान्य सुख कही नही है। अन्तत वह इसी निर्णय पर पहुँचता है कि मनुष्य का वास्तविक सुख उसी के हृदय मे अन्तर्हित रहता है।

---

1 Being throughout a line for line rendering of a terse and philosophical foreign poem, it cannot claim to be a very faithful reproduction of the original

Shridhar Pathak,
Nessvilla, Simla
Sep 17, 1902

काव्य के प्रारम्भिक और अन्तिम अंश निस्सन्देह बड़े करुण हैं। असफलताओं और निराशाओं मे बाधित हो गोल्डस्मिथ जीवन में जिस प्रकार भटका है, वह सभी को ज्ञात है। जीवन की दुर्गमय परिस्थितियों मे—मित्र और सम्बन्धी-विहीन—गोल्डस्मिथ सुख की मृगतृष्णा के लिए भटक उठा है। अन्ततः मानव ठहरा, जीवन मे जूझने की भी तो सीमा हो, उस कण्टकाकीर्ण पथ मे कहीं विराम तो लगे। फलस्वरूप उसी मानवीय सुख के लिए कवि आल्प्स पर्वत से सम्बन्धित देशो की परीक्षा करके अन्त मे इस निर्णय पर पहुँचता है कि सुख बाह्य विश्व मे नही स्वय मानवीय हृदय में अधिष्ठित है।

वस्तुत. ये दो स्थल ही इस काव्य के प्राण हैं। इन्ही मे गोल्डस्मिथ की वैयक्तिक अनुभूति फलवती है। कालिन्स और ग्रे के दु.खवाद का इन दोनों स्थलो पर पूर्ण प्रभाव है।

दूर देश, बिन मित्र, मलिन मन, मन्द निरन्तर पथ चारी
चाहे शिथिल शेल्ट-तट चाहे कुटिल भ्रान्त पो अनुसारी
अथवा आगे और जहाँ शठ 'कैरिन्थी' कृषिकार गँवार
परदेशी को देख बन्द कर लेता अपने घर के द्वार
अथवा जहाँ 'कैम्पियाना' का सूना पट पर भ्रम कारी
निरा निरस ऊसर विस्तारित, फैला है नभ लौं भारी
चहे जहाँ मैं फिरूँ चहे जो देश देखने को धाऊँ
हृदय मेरा बिन फिरा, उसे तेरी ही ओर फिरता पाऊँ
फिर-फिर आता और हृदय यह दुखित निरन्तर जाता है
पद-पद पर प्यारे से अन्तर अधिक-अधिक अधिकाता है।[1]

---

1 Remote unfriended, meloncholy, slow
Or by the lazy Schelt or wandering Po
Or onward where the rude Carinthian boor
Against the houseless stranger shuts the door,
Or where Campanian's plain forsaken lies,
A weary waste expanding to the skies,
Where'er I roam whatever realms to see
My heart untravelled fondly turns to thee,
Still to my brother turns, with ceaseless pain
And drages at each remove a lengthing chain.
(Traveller 1-10)

नहीं किन्तु मम भाग्य जो कि ऐसा विनोद सुख पाऊँ मैं
निज यौवन जब दुखित भ्रमण और चिन्ता बीच बिताऊँ मैं
कुछ हित की आशा से प्रेरित अविरत-पद जग मे धाऊँ
जिसके छद्म दृश्य से मोहित बहक-बहक मन भरमाऊँ[1]

* * *

मेरा भाग्य ही मुझे अकेला देश-विदेश घुमाता है।
जग भर मे कोई भी अपना ठौर दृष्टि नहिं आता है।[2]

ऊपर के हिन्दी के उद्धृत अशो मे गोल्डस्मिथ की पक्तियो का शाब्दिक अनुवाद अवश्य है, परन्तु वे निष्प्राण हैं—पक्तियो मे न प्रवाह है और न काव्य-सुलभ माधुर्य है। इस प्रकार काव्य की सजीवता निर्जीव ही हो गई है। अग्रेजी की मूल पंक्तियो की निराशावादी भावना हिन्दी मे निराशा का उद्रेक नहीं कर पाती।

चहे जहां मै फिरूँ चहे जो देश देखने को धाऊँ
हृदय मेरा बिन फिरा, उसे तेरी ही ओर फिरता पाऊँ

इन पक्तियो मे तथा अवशिष्ट उद्धृत पक्तियो में मूल काव्य की ध्वनि का प्रस्फुटन नही हो पाता। दीर्घ वर्णों को ह्रस्व कर देने मे शब्दो की आत्मा कुण्ठित हो गई है। खडी बोली के सम्यक् प्रसार की भावना से इस प्रकार के दोष जो सम्पूर्ण काव्य मे भरे पडे हैं, क्षम्य हो सकते है, किन्तु काव्य की सफल प्रगति मे व्यवधान पडा ही है, इसमे सन्देह नही।

काव्य की अन्तिम पक्तियाँ भी विचारणीय हे —

निपट निरर्थक हुआ मेरा सब श्रान्त यत्न और अनुसन्धान
उस सुख के पाने को जिसका केवल मन है केन्द्र स्थान

---

1 But me, not destin'd such delights to share,
My prime of life in wandering spent and care,
Impelled with steps unceasing, to pursue
Some fleeting good that mock me with the view
(Traveller, 23-26)

* * *

2. My fortune leads to traverse realm alone
And find no spot of all the world my own
(Traveller, 29-30)

क्यों मैं इतना भ्रमा त्याग सुख शान्ति भरा सारा, फिर काज
अणुहित की आशा से प्राप्य जो रहे देश देशों के राज
प्रति-शासन के मध्य यदपि दारुण विभीषिकाओं का प्रभाव
यदपि क्रूर है नृपति, अरु नियमों का क्रूरतर है बर्ताव
उसका कितना अल्प, जिसे निस दिन मनुष्य-मन सहता है
होय किन्तु वह अंश, नियम वा नृप अधीन जो रहता है।[1]

(श्रान्त पथिक, ४२३–४३०)

अनुवाद के दृष्टिकोण से इन सम्पूर्ण पंक्तियों के सम्बन्ध में भी वही बात कही जा सकती है, जो पिछले अंश में कही गई है। असाधारण दार्शनिकता और पंक्ति प्रति पंक्ति के अनुवाद के प्रण ने पाठक जी के कवि-कर्म में व्यवधान प्रस्तुत कर दिया है। इसी से पग-पग पर असफलता के आघात लगते हैं।

यों भावाभिव्यंजन के दृष्टिकोण से 'श्रान्त पथिक' मूल काव्य की भावनाओं को सुरक्षित किए हुए है, किन्तु स्थल-स्थल पर न्यूनपद, पदाविन्यय, दीर्घ का ह्रस्व, ह्रस्व का दीर्घ, गतिभंग एवं यतिभंग आदि-आदि ऐसे दोष हैं, जिनसे काव्य की प्रगति अवरुद्ध हो उठती है।

इस काव्य द्वारा कवि जीवन के सुख की मन में अनुभूति करता है। इस भावना का नैतिक दृष्टिकोण होते हुए भी उसके अन्वेषण का विधान पूर्ण स्वच्छन्दतावादी है। कवि देशों की राष्ट्रीयता से उद्भूत सुख के नियंत्रण में रहना चाहता है। वह अपने मन को इस मानवीय सीमा से परे ले जाना चाहता है। इस प्रकार पाठक जी ने The Traveller के अनुवाद 'श्रान्त पथिक' के द्वारा हिन्दी-काव्य को नया दृष्टिकोण प्रदान किया है।

---

1 Vain, very vain, my weary search to find
That bliss which only centres in the mind,
Why have I stray'd from pleasure and repose,
To seek a good each government bestows?
In every government, though terrors reign,
Though tyrant Kings or tyrant laws restrain
How small, of all that human hearts endure
The part which laws or kings can cause or cure,

(Traveller, 423-30)

आ—मौलिक कृतियां

मनोविनोद (रचना-काल—प्रथम आवृत्ति १९१७ ई०)

श्रीधर पाठक की स्फुट कविताओ का सग्रह 'मनोविनोद' उनके जीवन-काल मे ही उनके ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर पाठक द्वारा १९१७ ई० मे सम्पादित और प्रकाशित किया गया था। १८८५ ई० से १९१७ ई० तक उनकी प्रमुख कृतियां हिन्दी-विश्व के समक्ष अवतरित होकर उनकी कीर्ति को अक्षुण्ण बना चुकी थी। अवशिष्ट रचनाओ मे पाठक जी की विविध काव्य-प्रवृत्तियो पर प्रकाश पड़ता है। इससे उनके स्फुट काव्य की भी महत्ता है। इसने पाठक-साहित्य मे 'मनोविनोद' का अपना विशिष्ट स्थान सुरक्षित है।

पाठक जी की प्रारम्भिक कविताओ का सग्रह १८८२ ई० मे कलकत्ता के 'भारत मित्र' प्रेस से प्रकाशित हुआ था। उसी का परिष्कृत और परिवर्द्धित सस्करण १९०० ई० मे काशी के हरिप्रकाश प्रेस ने प्रकाशित हुआ। अनन्तर १९१७ ई० का यह सग्रह अपने पूर्व सग्रहो की प्रमुख रचनाओ से युक्त होकर प्रकाशित किया गया। पूर्व सग्रहो की रचनाएँ—'जगत सचाई सार' अलग से पुस्तकाकार प्रकाशित करदी गई है तथा 'गडरिया और आलिम' की उर्दू-बहुल शैली को परिवर्तित करने के लिये इस सग्रह मे सम्मिलित नही किया गया। 'आर्य गीता' जैसी नवीन रचना इसमे सम्मिलित करदी गई है। पूर्ण करने की भावना से 'असमाप्त पद्य', 'बाल-विलास', अग्रेजी कविताएँ तथा पद्यमय पत्र और पोस्टकार्डो के अश भी इसमे सग्रहीत कर दिये गये है।

इस 'मनोविनोद' मे १८८१ ई० से स्फुट रचनाओ का सग्रह किया गया है। प्रथम मगलाचरण ही केवल १८८१ ई० की रचना है। अन्य द्वितीय मगला-चरण (१२-९-८३) का प्रयोग 'बाल-भूगोल' के प्रारम्भ मे भी किया गया है। मगलाचरण एव प्रभु-प्रार्थना की रचनाएँ अधिकाशत खडी बोली मे है।

पाठक जी का काव्य-काल भारतेन्दु जी के जीवन-काल से प्रारम्भ होकर द्विवेदी-युग को पार करता हुआ छायावादी युग मे प्रवेश करता है। इसने इन युगो की प्रवृत्तियो के अनुकूल ही पाठक जी की काव्य-साधना हुई है। विक्टोरिया (११-६-१३), लार्ड रिपन (२१-११-८३),...प्राउस साहब (६-६-१८८३), विक्टोरिया चिरजीवी (१८९६) आदि रचनाओ मे यदि राजभक्ति का चित्रण है, तो 'नौमि भारतम्' (७-३-१९१४), भारत श्री (६-६-८४), भारत-प्रशसा (११-६-८५), हिन्द वन्दना (अगस्त, १८८५), भारतोत्थान (३०-१-८३), भारत

सुत (१२-२-१४), भारत गगन (३०-९-१३) आदि मे राष्ट्रीयता की स्पष्ट झलक है। राजभक्ति और देश-भक्ति मिश्रित भावनाओं का भारतेन्दु-युग मे प्राबल्य था। काग्रेस की स्थापना और देश की सांस्कृतिक विकास की प्रगति ने भारतीयों को राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख कर दिया था। इस भावना के फलस्वरूप ही 'भारत गीत' हिन्दी-जगत् के समक्ष आ सका था।

मातृभाषा की महत्ता 'भारतेन्दु-युग' मे ही समझी जाने लगी थी। भारतेन्दु जी, प्रेमघन जी एव प्रतापनारायण मिश्र आदि मे भी यह भावना प्रबल थी। पाठक जी ने इसी भावना मे प्रेरित होकर मातृभाषा-महत्व (१-४-१९१२) रचना प्रस्तुत की थी।

हरि, हिन्दी अरु हिन्द को जिन्हें अटल अनुराग
सो सपूत भारत-सुअन सारथ-जिअन, सुभाग
धनि हिन्दी, धनि हिन्द भुंइ, धनि हिन्दू हरि-भक्त
धनि आरज-जीवन-जनम, पर स्वारथ अनुरक्त
मेरे हिय-सर मे सदा विकसहु द्वै अरविन्द
हरि-पद-रति-सुरभित सुभग, एक हिन्दी एक हिन्द

'हरि, हिन्दी और हिन्द' की भावना का इतना सुन्दर समन्वय हमे पाठक साहित्य मे ही उपलब्ध होता है। भगवान के आध्यात्मिक पथ पर आरूढ रहना पाठक जी के आस्तिक परिवार की ही चिरन्तन भावना है और हिन्दी-हिन्द की भावना स्वय समय की मांग थी, जिनको पाठक जी ने अपनी सहृदयता से परख-कर इनके प्रोत्साहन मे भरकस चेष्टा की थी।

जो तुमको ससार मे साचे सुख की चाह
उन्नति-पथ-अनुसरन-हित साचो प्रेम उछाह

* * *

तौ निज भाषा मे करहु ममता को ससार
भरहु ज्ञान विज्ञान लहि विविध तासु भण्डार
निज भाषा-उन्नति बिना निज-उन्नति नहिं होय
जतन आनि अजुगत परहिं करहिं कोटि किन कोय

* * *

निज भाषा बोलहु लिखहु पढहु गुनहु सब लोग
करहु सकल विषयान विषै निज भाषा उपजोग

अपनी जातीय भावना के लिये मातृभाषा को आवश्यक संरक्षण देना अनिवार्य है। इसकी विपरीत भावना 'जातीय अशक्तता' (३०-१-१६) है, जिसका सकेत करना भी पाठक जी नही भूले है।

जिनको अपने देश, भेस, भाषा से प्रीति नहिं
जिनके जीवन की कोई निर्दिष्ट नीति नहि
जिनमे परता-शून्य परस्पर मे प्रतीति नहिं
खान-पान-सम्मान सुगम-सम्मिलन-रीति नहिं
उनमे आत्मिक अनुरक्तता आसकती क्यो कर कभी ?
उनकी जातीय अशक्तता जा सकती क्यो कर कभी ?

पाठक जी भारतीयो के इस अभाव से सुपरिचित थे। इसीसे व्यथा के साथ उसके सम्बन्ध मे अपने विचार प्रगट करने मे समर्थ हो सके।

पाठक जी प्रकृति के अनन्य प्रेमी थे। इसीसे ठाकुर जगमोहन सिंह के उपरान्त वह प्रकृति को उसके यथार्थ स्वरूप मे देख सके हैं।

'उत्तर दिशि नगराज' अटल छवि सहित विराजत
लसत स्वेत सिर मुकुट झलक-हिम-शोभा भ्राजत
बदन-देस सविसेस कनक-आभा आभासत
अधोभाग की स्याम वरन छवि हृदय हुलासत
स्वेत पीत सँग स्याम धार अनुगत सम-अन्तर
सोहत त्रिगुन, त्रिदेव, त्रिजग-प्रति भास निरंतर
विलसत सो तिहुँकाल त्रिविधि सुठि रेख अनूपम
भारतवर्ष विशाल भाल भूषित त्रिपुण्ड्र सम

* * *

प्रकृति - परम - चातुर्य अनूपम - अचरज - आलय
श्रीधर-दृग छकि रहत 'अटल छवि' निरखि हिमालय।[1]

इसी प्रकृति-भावना से युक्त होकर २० अगस्त १६०० ई० को पाठक जी ने अंग्रेजी मे 'The Cloudy Himalayas' लिखा था।

Would I here on these old Himadri's peaks
Where to the groaning winds stern thunder speaks,

---

१. श्रीधर पाठक, 'हिमालय', मनोविनोद, प्रथम आवृत्ति, पृष्ठ ५२-५३।

And Heaven's orbs are longest lost in gloom
And nothing reigns but vapour, blast and boon,
And elements have freest play and pranks
And ev'rything else secondary ranks,
Where hied from distant deep Nature's freak
Those misty giants climb and cling and creak
And friction ov'r a peaceful turn soon take
And wealth of snow and stream and glacier make'[1]

(यदि मैं वृद्ध हिमालय की चोटियों पर होता जहां करुण (मन्द-गामिनी) पवन चलते हैं और बिजली कडकती है और जहां आकाशीय-मण्डल कभी के अन्धकार मे विलीन हो गए हैं और जहां भाप, तीव्र पवन और गडगडाहट के अतिरिक्त कुछ भी अवशिष्ट नही है और जहां पच-तत्व मुक्त रूप से क्रीडा करते हैं और जहां अन्य चीजें गौण हैं। जहां प्रकृति की क्रीडाएँ दूर से ही दृष्टि-गोचर होती हैं वे धूमिल दानव चढते मिलते हैं और ध्वनि करते हैं और सघर्षण के उपरान्त वे शीघ्र ही घूम जाते हैं और वर्फ का ढेर सोता और ग्लेशियर वनाते हैं।)

सस्कृत कवियो की प्रकृति-काव्य के लिए सश्लिष्ट योजना का कवि ने इन स्थलो पर आधार लिया है। इसी से इन चित्रणो मे सारल्य एव सामीप्य का अनुभव होता है। इस मनोविनोद मे घन-विनय (दिसम्बर १८९९), शिमला प्रेक्षणम् (१२-३-१९०३), अमराष्टक (मई १८८४ ई०), घनाष्टक (३१-७-८६), वनाष्टक (२४-१०-१९११), सरद समागत स्वागत (७-९-१८९९), गुनवन्त हेमन्त (९-१-१९००), हेमन्त (१८८७) नव वसन्त (४-२-१९००), वसन्त (१३-२-१८८३), वसन्तागमन (१९००) तथा कालिदास के 'ऋतु सहार' से ग्रीष्म वर्णन (२-६-१८८७), वर्षा वर्णन (१९-९-१९०३), शरद ऋतु वर्णन (अक्टूबर १८८९) आदि मे प्रकृति के सजीव चित्रण हैं।

प्रकृति का विशुद्ध स्वरूप विश्व मे सदैव विद्यमान रहता है। मानव अपने

---

१. श्रीधर पाठक, 'The Cloudy Himalayas, मनोविनोद, पृष्ठ १९५।

विकारो के अनुकूल उसके स्वरूप को आंकता है और देखता है। पाठक जी मे अन्य भावनाओ की अपेक्षा राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूटकर भरी थी। इसीसे वह 'घन-विनय' के अन्तर्गत अपने राष्ट्र को नही भुला सके हैं।

> तुम भारत के धन-जन-गुन गौरव-आधार
> तुम ही तन, तुम ही मन, तुम प्रानन-पतवार
>
> * * *
>
> परम पुरातन तुम्हरो, भारत संग सत प्रेम
> जिहि जानत जग सगरो, मानत निहिचल नेम
> सो तुमको नहिं चहियत छांडन हित-सम्बन्ध
> अटल सदैवहि कहियत, पूरन प्रकृति-प्रबन्ध।

कृषि-प्रधान देश के लिए जल की सदैव आवश्यकता रहती है। इसीसे राष्ट्रीय-भावना की पुष्टि के लिए उपर्युक्त कल्पना बडी ही सुखद और सार्थक है।

यो प्रकृति के सभी ही चित्र मधुर और सुन्दर हैं, किन्तु स्थल-स्थल पर कवि ने अपनी प्रासादिक अभिव्यंजना के द्वारा काव्य को अधिक से अधिक मधुर बना दिया है—

> कोयल तू कल-बोलनी री, शुक प्यारे हरे-पट-धारे, अहो।
> भोरी मैना सुनैना रसीलेन की, सो परेवा परेई के प्यारे, अहो।
> अहो मोरा मचावन-शोरा, चकोरा, पपीहा पिया-रट-वारे, अहो।
> बन के तुम बांके सदा के धनी, बन-जीवन प्रान तिहारे अहो।[1]

पाठक जी कालिदास के सम्पूर्ण 'ऋतु-संहार' का हिन्दी-अनुवाद करना चाहते थे, किन्तु वह उसके ग्रीष्म, वर्षा एवं शरद के अंशो को ही अपने जीवन मे रूपान्तरित कर सके थे। इस रूपान्तर मे यह अवश्य सत्य है कि पाठक जी महाकवि की मूल भावनाओ को पूर्ण सुरक्षित रख सके है। इस स्थल पर केवल एक अंश ही विचारणीय है—

> श्यामा लता कुसुम-भार-नत प्रवाला
> स्त्रीणां हरन्ति धृत भूषणबाहु कान्तिम्
> दन्तावभास विशदस्मितचन्द्र कान्ति
> कंकेलि पुष्परुचिरा नवमालती च।[2]

---

१ श्रीधर पाठक, 'वनाष्टक', मनोविनोद, पृष्ठ ६३-६४।
२. कालिदास, 'ऋतु-संहार', शरद वर्णन, १८।

कवि पाठक ने उपर्युक्त भावना को निम्न पंक्तियों में सफलता से चित्रित किया है—

फूलन-भार सों डार झुकी
मृदु स्यामा लता अति लागत प्यारी।
नारिन की गहनेन सों सोभित,
बांहन की छवि-हारन हारी।
त्योंही असोक के फूलन के संग
सोहि रही नव मालति-क्यारी।
दन्त-विभा सों लसी मुसक्यानि की
चन्द-उजास-चुरावन हारी।[1]

संस्कृत-काव्य-परम्परा की प्रकृति-सम्बन्धी संश्लिष्ट-योजना को कवि ने आदि से अन्त तक निबाहा है। इसी से उनका प्रकृति-काव्य अद्वितीय बन पड़ा है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त कवि पाठक की 'बाल-विलास', 'आर्य गीता' एवं 'अंग्रेजी कविताएँ' भी इसमें संग्रहीत हैं। 'बाल-विलास' के अन्तर्गत पाठक जी ने कुत्ता और बिल्ली के अतिरिक्त प्रमुख पक्षियों जैसे तोता, मैना, चकोर, कोयल, मोर, तीतर, कौवा एवं चील्ह आदि पर अपनी रचनाएँ अंकित की हैं।

हुआ सवेरा जागो भैया
खड़ी पुकारे प्यारी मैया

कहकर कवि बच्चों को प्रात उठने की भावना तो प्रदान करता ही है। साथ में बालोपयोगी एकता का पाठ भी पढ़ाने में चूकना नहीं चाहते।

सब बालक मिल साथ बैठकर
दूध पियो, खाने को खालो

साथ में—

धन-धन सुगढ़ चकोर, तू खग-कुल-आगरिया
पालै नियम कठोर, कि वश उजागरिया
चन्द तेरा चितचोर तू उस पर बावरिया
लख-लख उसकी ओर कि होय निछावरिया।
(चकोर)

१. श्रीधर पाठक, 'शरद ऋतु वर्णन', मनोविनोद, पृष्ठ १०९-११०।

इस स्थल पर कवि का 'वा' और 'या' का आग्रह केवल सरलता और स्वाभाविकता के दृष्टिकोण से ही है। इसी अभिव्यंजना शैली में आगे चलकर पाठक जी ने अपनी 'देहरादून' (१९१५ ई०) रचना प्रस्तुत की थी।

रूढ़िवादी परिवार में जन्म लेने पर भी पाठक जी में परम्परागत विचारों के लिए विशेष आस्था न थी। युगों-युगों से दलित और प्रताडित भारतीय नारी के पथ को वह प्रशस्त देखना चाहते थे। इसी से नारी के सम्बन्ध में उनके विचार बड़े ही उदार थे। अपने इस सौजन्य के कारण पाठक जी ने भारतीय नारी को पावन-पद से च्युत नहीं होने दिया है। वह उसी महिमामयी और गरिमामयी पद की अधिकारिणी रही हैं, जिस पर सीता, सावित्री एवं द्रौपदी आदि आसीन रही थीं।

सात्विकी-वृत्ति-गुन-मंजु-मंजूषिके,
आर्य-मर्याद-आधार-भूते
सुखद-संसार-व्यवहार-पटु पण्डिते,
सुभग-संस्कार-आचार-पूते
जयति-भुवि-स्वर्ग-संभोग-सम्भाविनी,
सहज-सौन्दर्य-विभ्रम विलासे
अलभ-नर-जन्म-आनन्द-मन्दाकिनी
उदित-श्रीधर-हृदय-श्री प्रकाशे।[1]

ऐसी कुलांगना का सम्मान देश में सुरक्षित न रह सका। वह अबला होने के कारण जितनी विनम्र और सलज्ज रही समाज ने उस पर उतने ही आघात लगाये। अज्ञानतावश नारी के ऊपर जो कीचड़ उछाले गए बेचारी होने के कारण उससे कुछ करते नहीं बना। वह टुकुर-टुकुर देखती रही, परन्तु उस अपमान के विरोध में क्रांति के लिए उठ नहीं सकी। इसी से पाठक जी भारत को देश की उक्त त्रुटि को सुधारने के लिए संकेत करते हैं —

यह जग स्वारथ ही को साथी, पर-दुख पै न पसीजै
ऐसे निठुर बापुरे के डर क्यों अपकीरति लीजै
आरति-हरन-हार भारत, निज-नाम सकल किन कीजै
बेगि उबारि निबल अबलागन, सुजस-सुधा-रस पीजै।[2]

---

१. श्रीधर पाठक, 'आर्य सुन्दरी', मनोविनोद, (३-९-१३)
२ श्रीधर पाठक, 'निबल अबला', (सितम्बर, १८८७)

पाठक जी के अंग्रेजी पद्यों में से The Cloudy Himalayas के सम्बन्ध में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। शेष Prayer (सितम्बर १६१५), Advice (सितम्बर १६१५), To Caste (सितम्बर १३, १६१५), O Dear ! A Query (अगस्त, २६, १६१५), Madam Blavatsky (मई ८, १६१०) अंग्रेजी की रचनाएँ हैं।

'Prayer' के द्वारा कवि मानवमात्र को प्रत्येक प्रकार के नियमण से मुक्त देखने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करता है। 'Advice' में कवि ने ग्रेट ब्रिटेन को भारत के प्रति दयालु एव उदार होने के लिए सुझाव दिए हैं।

इस प्रकार इन पंक्तियों में राजभक्ति की भावना का प्रस्फुटन होता है।

She's all thine own, let thee be hers
In, out, afar and near,
Come, hug her, hold her in embrace
As dearest of thy dear,

(वह पूर्णरूपेण तेरी है—तुम भी भीतर-बाहर और दूर-समीप सर्वत्र उसी की हो जाओ। अपने प्रियतम के स्वरूप में तुम उसका आलिंगन करो और अपने वक्षस्थल पर लगाओ।)

वस्तुत राष्ट्रीय जागरण से पूर्व इसी प्रकार की भावना देश में प्रचलित थी। हमारे शासित पूर्वज अपने उद्धार एव मुक्ति के लिए शक्तिशाली अंग्रेज की दयादृष्टि पर ही आधारित थे। 'O Dear ! A Query' में कवि ने मानव को अपने को समझ लेने की प्रेरणा दी है। 'Madam Blavatsky' में उनकी प्रशस्ति का गान है। 'To Caste' के अन्तर्गत कवि जातीयता को कोसता है। इस जातीय परम्परा से देश का जो अहित हुआ है उसे पाठक जी भले प्रकार समझते थे।

Thou Aryan Ind's ill fame, unmanning curse
Of stalwart worthy ones of Aryavart,
Perdition-pit of noble Hindu life
Most dreaded monster Fury's furnaced hell
That keepest ever fed the flame of ire
'Twixt brothers, mothers, sisters, son and sire
Of Bharatvarsa's fall the primal cause
Thou sapping vermin of its life-blood all

I hate thee, shun thee, loathe thee—serpent old
How gloat I on thy death—it draweth nigh [1]

(तुम (जाति) भारत के अपयश ! आर्यावर्त्त के वीर और बलवान व्यक्तियो के लिये अमानवीय शाप ! हिन्दू सम्भ्रान्त जीवन के पतन-स्थल ! सबसे अधिक भयकर दानव ! क्रोध के घधकते हुए नरक ! जो भाई-भाई, माता-माता, बहिन-बहिन, पुत्र और पिता के मध्य मे रोष की लपटो को उद्दीप्त रखते हो। भारत के पतन के प्रमुख कारण, भारतवर्ष के जीवन और रक्त को चूसने वाले कीडे, हे वृद्ध सर्प, मैं तुझे सभी प्रकार से घृणा करता हूँ। मैं समीप आती हुई तेरी मृत्यु को ध्यान से देखता हूँ।)

उपर्युक्त के अतिरिक्त पाठक जी ने रामायण एव महाभारत महाकाव्यो के विषयो को भी अपनाया है और आधुनिक युग के विज्ञान की प्रशस्ति के गान भी प्रस्तुत किये हैं। इनके अतिरिक्त कितने ही असमाप्त पद्य भी इस सग्रह मे सग्रहीत हैं, जिनको समाप्त करने की पाठक जी की योजना थी, किन्तु उनके अकाल निधन के कारण वैसा सम्भव नही हो सका।

उपर्युक्त विवेचन से यह पूर्ण स्पष्ट है कि इस सग्रह मे कवि पाठक की सभी ही प्रवृत्तियाँ, जिन्होंने उन्हे स्वच्छन्दतावादी बना दिया, सन्निहित हैं। यदि पाठक जी ने अन्य कृतियाँ न कर पाई होती तो भी मेरे विश्वास से वह युग के एक कृती कवि ही सिद्ध होते। इस प्रकार 'मनोविनोद' के काव्य की महत्ता हमे गौरवान्वित किये है।

बाल-भूगोल (रचना-काल—जून १, १८८५, ज्येष्ठ कृष्ण द्वितीया, सम्वत् १९४२)

अपने प्रारम्भिक विद्यार्थी-जीवन मे ही 'भूगोल' श्रीधर पाठक का बडा ही प्रिय विषय रहा है। इस सम्बन्ध मे उनके बाल्य-जीवन का एक सस्मरण प्रस्तुत किया जा सकता है, जिससे भूगोल-विषयक उनकी विशेष अभिरुचि सिद्ध होती है। आगरा जिलान्तर्गत कोटला मे विद्यालय-निरीक्षक नायब महोदय विद्यार्थियो की वार्षिक परीक्षा लेने के लिये आये हुये थे। बडे विद्यार्थियो के साथ निम्न श्रेणी के विद्यार्थी पाठक जी भी खडे किये गये। निरीक्षक महोदय ने 'दोआबा' के सम्बन्ध में पूछे जाने पर श्रीधर पाठक ने उत्तर मे कहा था 'चज' उस धरती का नाम है, जो चिनाब और झेलम के बीच मे है। 'चज' शब्द का आशय स्पष्ट

१. श्रीधर पाठक—To Caste (सितम्बर १३, १९१४)।

[illegible]

[illegible]

[illegible] ई० [illegible] ([illegible]), [illegible] ([illegible]) [illegible]
१२-१-८३ [illegible]) [illegible]
८५), [illegible] (१२-१२-८३), [illegible] ([illegible]), [illegible] ([illegible]
१८८४), [illegible] ([illegible]), [illegible] ([illegible]) [illegible] (
१८८१), [illegible] ([illegible] १८८१), [illegible] ([illegible]) [illegible]
[illegible] (१७-४-८१), [illegible] ([illegible]) [illegible]
(२१-११-८३), [illegible] ([illegible]) [illegible]
[illegible] ([illegible] १८८४), [illegible] ([illegible]) आदि आदि हैं। इन रचनाओं में पाठक जी के [illegible] विद्यमान है। पुस्तकाकार के रूप में 'बाल-भूगोल' [illegible] रचना होने के कारण [illegible] में अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है।

[illegible] की महत्ता को दृष्टिकोण में रखकर पाठक जी ने पुस्तक के [illegible] लिखे हैं। "इस प्रथम [illegible] में [illegible] रीति से [illegible] लोगों का परस्पर सम्बन्ध दिखाकर [illegible] की समालोचना की है। [illegible] की परिभाषाएँ उदाहरण एवं चित्र सहित दी हैं।"[1]

---

१. श्रीधर पाठक, 'बाल भूगोल', भूमिका (ज्येष्ठ कृष्ण द्वितीया, सम्वत् १९४२)

इस पुस्तक के प्रारम्भ मे आकाशवर्ती गोलो का उल्लेख है, जिनमे सूर्य, चन्द्र, तारा, पृथ्वी तथा ग्रहो और उपग्रहो के अस्तित्व के साथ-साथ पाठक जी ने आकर्षण शक्ति का भी वर्णन किया है। अनन्तर 'भू के गोले के वर्णन का नाम भूगोल है' कहता हुआ कवि भूगोल के अध्ययन की सुविधा के लिये उसके निम्न तीन विभाजन कर देता है: १. ज्योतिषिक (Mathematical), २ प्राकृतिक (Physical), ३ नागरिक (Political)।

इनमे से प्रथम के अन्तर्गत अक्षाश, देशान्तर एव भूमध्य रेखाओ के साथ-साथ कटिबन्धो और उपकटिबन्धो का भी उल्लेख है, द्वितीय के अन्तर्गत प्राय-द्वीप, उपद्वीप, ज्वालामुखी, अन्तरीप, महाद्वीप एव महासागरो आदि का परिचय है तथा तृतीय के अन्तर्गत निवासियो के चलन, व्यवहार, रीति, नीति, धर्म और मत आदि का वर्णन है। इसमे ही शासन के पाठक जी ने नृपता (Monarchy), कुलीन शासन (Aristocracy) एव प्रजातन्त्र (Democracy) आदि का वर्णन किया है।

उपर्युक्त सभी कुछ गद्य मे वर्णित है। इस अध्ययन को पाठक जी ने काव्य का स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया है। उपर्युक्त को ही 'आकाशवर्ती गोले' 'भूगोल ठेठ' 'थल और जल' तथा 'महाद्वीप, महासागर, गोलार्द्ध, कटिबन्ध' चार भागो मे विभाजित किया है। इनमे पाठक जी का कवित्व स्पष्ट झलकता है। उदाहरण स्वरूप देखिए —

भूमि हमारी गोल है, नारंगी की भाँति
चक्कर देती सूर्य का मत पूछो यह बात
'कीली' पर घूमे तभी होता है 'दिन'-'रात'
और सूर्य के चक्र से होय वर्ष विख्यात
इस पृथ्वी के भाग दो-'थल' 'जल' जिनका नाम
थल से जल तिगुना अधिक सुन्दर ललित ललाम

* * *

'सूर्य' 'चन्द्र' 'तारे' सभी पिण्डे हैं ये गोल
जिनसे इस आकाश की भरी हुई है पोल
ये गोले इस पोल मे रहें मगर सब काल
'आकर्षण' की शक्ति ने नियमित इनकी चाल

* * *

लगता है तब व्यक्ति, समाज और उस राष्ट्र का पतन अवश्यम्भावी है।

लौकिक रूप से आध्यात्मिक क्षेत्र मे कृत्रिमता और अविश्वास प्रविष्ट हो जाने पर इस प्रकार की निष्क्रियता भारत मे प्रचलित होती रही है। जहाँ तक विशुद्ध आध्यात्मिक प्रगति का सम्बन्ध है उसके पीछे साधना एव तत्परता रहती है। फलस्वरूप इनसे आत्मिक विकास होता है, जो किसी भी राष्ट्र के सात्विक प्रवृत्ति का आदर्श रख सकता है। भारत ने अपनी इन्ही परिस्थितियो मे विश्व मे सर्वोपरि स्थान प्राप्त किया था। आज वही गौरव देश की इस पतनशील स्थिति मे हमारे गान का विषय है।

वैदिक धर्म तथा बौद्ध धर्म के पतन के समय और मुग़लकाल मे भी इस प्रकार की कृत्रिम आध्यात्मिकता का प्रचार था। भक्तिकाल के कुछेक विद्वान् धर्मप्रवर्त्तको को छोडकर अधिकाश लोगो मे व्यर्थ का आडम्बर छा गया था, जो ससार की निस्सारता का पाठ पढाते थे। आध्यात्मिकता ने यदि भारत को गौरव दिया था तो उसने जनता को निष्क्रियता और निस्सारता की प्रेरणा भी दी। मुसलमानो और अग्रेजो की विजयो ने देश मे इस भावना पर और भी गहरा रग चढाया है।

१८५७ ई० के भारतीय विद्रोह से देश की सुषुप्त चेतना ने अवश्य करवट ली। देश की सभ्यता, सस्कृति तथा स्वतन्त्रता आदि की रक्षा के लिये भारतीय प्रथम बार इस ओर अग्रसर हुये हैं। उनका प्रयास भले ही सफल न हुआ हो; किन्तु देश के समझदारो के हृदय-पटल पर इनकी अमिट छाप अवश्य अकित हो गई थी। इसको प्रबुद्ध रखने का अधिकाश श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एव श्रीधर पाठक को है। इन्होंने कभी नही चाहा कि चेतना की यह आभा अस्त हो जाय। 'जगत सचाई सार' द्वारा श्रीधर पाठक जी ने इसी अमर आभा को प्रकाशवान रखने का प्रयास किया है। स्वय पाठक जी ने इस काव्य की द्वितीय सस्करण (३० जनवरी, १९१६ ई०) की भूमिका मे लिखा है :—

"जगत् को मिथ्या मानकर अकर्मण्यता की गहरी नींद मे निमग्न कदाचित एक ही देश इस भूतल पर है और वह भारतवर्ष है। उसके पूतो को ससार के मिथ्यात्व का घूँट अपनी माँ के दूध के साथ ही मिलता है। राजा से रक तक प्रायः प्रत्येक व्यक्ति इस माया-मानवी के स्वविन्यासके झोंके मे दोलायमान है। यदि कुकर्मण्य शिरोमणि मास्टर इगलैंड से इस देश का सम्बन्ध न हो गया होता तो कौन कह सकता है क्या होता ?"

युगो-युगो की निष्क्रियता की चिर निद्रा के विनाश के लिये ही पाठक जी

का 'जगत सचाई सार' गीता-मत्र है। यही भावना और उद्देश्य अंग्रेजी कवि लागफेलो की A Psalm of Life से भी व्यक्त होती है। पाठक जी के काव्य का मूलाधार निम्न पक्तियाँ हैं :—

माना हमने वस्तु जगत को नाशवान हैं निस्सन्देह
फिर भी तो छोड़ा नहि जाता, पल भर को भी उनसे नेह
लगा हुआ है वस्तुमात्र का एक दूसरे से सम्बन्ध
दूषित क्यों कर हो सकता है उस कर्ता का अटल प्रबन्ध ?
(पक्तियाँ ३–६)

* * *

जगत को झूठा झूठा कहके करो नहीं उसका अपमान।
(पक्तियाँ ८६)

पाठक जी ने तार्किक शैली के आधार पर काव्य को अग्रसर किया है। ईश्वर की सत्यता के साथ उसकी सृष्टि का विश्वास करना मानवोचित पुरुषत्व है। विश्व के पदार्थमात्र से मानव का अनन्य सम्बन्ध है, फिर वह झूठ क्यो और निस्सार क्यो ? विश्व-कर्मक्षेत्र में साहस के साथ अग्रसर होना मानव के लिये श्रेयस्कर है। इसी से पाठक जी का हृदय —

कहो न प्यारे मुझसे ऐसा—'झूठा है यह सब ससार,
थोथा झगड़ा, जी का रगड़ा, केवल दुख का हेतु अपार।'
(पक्तियाँ १–२)

Tell me not in mournful numbers
Life is but an empty dream,
(Longfellow . A Psalm of Life)

सुनने को तैयार नही होता, किन्तु उनका विश्वास है :—

जगत है सच्चा, तनक न कच्चा, समझो बच्चा इस्का भेद
पीओ खाओ सब सुख पाओ कभी न लाओ मन मे खेद
(पक्तियाँ ७–८)

Life is real ! Life is earnest
And the grave is not its goal ,
'Dust thou art, to dust returnest'
Was not spoken of soul,
(Longfellow A Psalm of Life)

'उढ़ौना', 'बिछौना', 'दाना-पानी' तथा 'वदन' सभी मिट्टी है। कवि पाठक इसको स्वय मानते हैं; किन्तु इसी से सम्पूर्ण विश्व को मिट्टी समझकर उसकी उपेक्षा कर देना मनुष्य की बहुत बड़ी कायरता है। पौरुष-विहीन इस प्रकार का व्यक्ति पृथ्वी के लिये भारस्वरूप है और तुलना मे पशुओ से भी निम्न श्रेणी का है। इसके विपरीत जो मानव कर्त्तव्यशील पुरुष-सिंह हैं उन्हें—

सारी वसुधा का क्रम-क्रम से सर्वस उसको मिलता है
(पंक्ति ३४)

जब तक तुम इस जग मे सच्ची धर्म रीति पर चलते हो
तब तक निस्संदेह निरन्तर सब बातो मे फलते हो
(पंक्तियाँ ४१–४२)

इनके साथ हमे आस्थाशील भी होना चाहिये। जब ईश्वर विश्व के पदार्थ मात्र मे व्यापक है, तब उसकी प्रत्येक वस्तु मे विश्वास करना उचित है।

रचा उसी का है जब यह जग निश्चय उसको प्यारा है
इसमे दोष लगाना अपने लिये दोष का द्वारा है
(पंक्तियाँ ४५–४६)

कवि अपने कथन की प्रामाणिकता के लिये 'सृष्टी की सुघराई' को, जिनमें ईश्वर की चतुराई विद्यमान है, देखने को कहता है। वस्तुत प्रकृति के पशु-पक्षी, फल-फूल, चन्द्र-सूर्य तथा अनेकों पदार्थों मे—

जिस्मे दीखै परमेश्वर की लीला अद्भुत अपरम्पार
उस कारीगर ने कैसा यह सुन्दर चित्र बनाया है
कहीं पै जलमय कहीं रेतमय 'कहीं धूप कहीं छाया है।'

इस प्रकार विश्व में सैकड़ो एक से एक अच्छे दृश्य प्रस्तुत हैं, जो सभी प्रकार से विश्वस्त एव सुन्दर हैं—

सतपुरुषों ने जिसको बारम्बार पुकारा सच्चा है
जो योंही नहिं सच्चा है तो भला और क्या सच्चा है
जिसका यह सब रचा हुआ है यह परमेश्वर सच्चा है
जगत के सच्चे होने का मन क्यों करके तब कच्चा है?
(पंक्तियाँ ७९–८२)

Be not like dumb driven cattle
Be a hero in the strife
Act-act in the living present
Heart within and God o'verhead
(A Psalm of Life)

इसके उपरान्त जीवन-निर्माण के लिये कवि का कथन है कि—

जीवन के कर्त्तव्य निवाहो समझ के उसके शुद्ध नियम
चलोगे सच्चे मन से जो तुम निर्मल नियमों के अनुसार
तो अवश्य प्यारे जानोगे सारा जगत सचाई सार
(पंक्तियां १००–१०२)

Not enjoyment and not sorrow
Is our destined end or way
But to act that each to-morrow
Find us further than to-day

* * *

Let us then be up and doing
With a heart for any fate
Still achieving still pursuing
Learn to labour and to wait
(A Psalm of Life)

यो जीवन-निर्माण के सम्बन्ध मे पाठक जी एव लागफेलो दोनो महाकवि ही अमर सदेश देने मे सफल हैं, किन्तु लागफेलो मे मानवतावादी और पाठक जी मे प्रकृतिवादी भावनाएँ प्रमुख हैं। महापुरुषो के जीवन के अनुकरण पर महत्कार्यों के लिये लागफेलो मानव को कर्मक्षेत्र मे अग्रसर होने के लिए कहता है, जब कि पाठक जी ईश्वर की सृष्टि पर प्रकृति के अप्रतिम सौंदर्य के माध्यम से आश्वस्त होने के लिये कहते हैं।

पाठक जी की इस विशेषता का मूलाधार वस्तुत उनकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति है। 'रूप जगत का यथार्थ देखो पडो भूल मे कभी न तुम'—जीवन का अन्धानुसरण उन्हें जरा भी पसन्द नही। आँख खोलकर ससार को देखने का इनका सकेत है, आँख मीचकर नही। जीवन का सत्य प्रकृति मे निहित है, इससे

उस पर विश्वस्त हो जीवन पर विश्वास करना आदर्श की शृङ्खला से उन्मुक्त कर पाठक जी मानव को निर्बन्ध यथार्थ पर आसीन कर देते हैं। विश्व मे आस्था रखे हुये कर्त्तव्य-क्षेत्र पर बढ़ना—कवि की प्रेम की फिलासफी है।

'एकान्तवासी योगी' के समान इस काव्य के लिये भी कवि ने लावनी वृत्त को अपनाया है। खडी बोली का सरलतम स्वरूप काव्य मे अवश्य विद्यमान है तथापि उक्त काव्य के समान इसमे भी खडी बोली का तुतलापन जहाँ-तहाँ व्यक्त होता है।

सारा सासारिक सुख पाकर ईश्वर को पहिचानो हो
उसकी विद्यमानता, सत्ता, वस्तुमात्र मे जानो हो

* * *

इसको जो अपने मन से जड मूल मिटाना चाहे हैं
वे असमर्थ कभी न जगत का सत उद्देश्य निवाहे हैं

उपर्युक्त पक्तियो मे 'पहिचानो हो' और 'जानो हो' के स्थान पर 'पहिचानो' और 'जानो' तथा 'मिटाना चाहे है' और 'निवाहे है' के स्थान पर 'मिटाना चाहते है' एव 'निवाहते हैं' होना चाहिये।

काव्य मे निम्न स्थलो पर गति-दोष भी है—

१—न इस लोक, ना उसी लोक मे, हाथ उसे कुछ आता है

* * *

२—हाथ, पैर और नाक, कान, बुद्धि से काम जो लेता है

* * *

३—विविध रूप का अनोखा अचरज जिसके बीच समाया है

* * *

४—आधी रात होने से उस दम लण्डन वाले सोते हैं

* * *

५—जो नेत्रो से दिखाई देता कानो से सुन पडता है

* * *

६—इसमे जैसा रहे रंग वैसा ही भाव उसका जानो।

यो 'श्री गोपिका गीत' मे पाठक जी ने पाठ-क्रम के सम्बन्ध मे लिखा है—'लघु के स्थान मे व्यवहृत गुरु लघुवत् उच्चारे'। इसमे गति-भग के दोषो का

शमन अवश्य हो जाता है तथापि काव्य के प्रवाह मे उपर्युक्त न्यून मात्रा एवं मात्राधिक्य के दोष खटकते अवश्य हैं।

'जगत सचाई सार' के सम्बन्ध मे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का निम्न कथन है—

"पण्डित जी (पाठक जी) ने इस पुस्तक मे नैसर्गिक शोभा का वर्णन बहुत ही सरलता से किया है। पद्यो मे तर्क और बुद्धिवाद करना बहुधा अंग्रेजी कविताओ मे पाया जाता है, Byron (बायरन) की कविता इस बात के लिये प्रसिद्ध है, यही ढग इस छोटी-सी पुस्तक मे भी कही-कही पाया जाता है। इस देश के कई कवि निरर्थक शब्दो के आडम्बर मे और अतिशयोक्ति के काल्पनिक उलझाव मे ही अपनी सब बुद्धि खर्च कर देते हैं। पर आनन्द की वार्ता है कि अब उनके लिये पण्डित जी ने एक नये ढग की कविता दी है, हम आशा करते है कि इसके पठन-पाठन से उनका मन वस्तु-पदार्थ की ओर अवश्य झुकेगा।"[1]

काश्मीर सुषमा (रचना-काल—१६-११-१६०४ ई०)

'भारतेन्दु-युग' मे काव्य के क्षेत्र मे परिवर्तन घटित हुए, जिनमे स्वच्छन्द-वादिता का प्रारम्भ काव्य के लिए अनहोनी घटना थी। इस नवीन दृष्टिकोण ने कवि को प्रकृति के प्रति भी आत्मीय भावना रखने के लिए प्रेरणा दी। प्रकृति की विशुद्ध आभा रीति के सकुचित शृगार के बन्धन में छटपटा रही थी। वह केवल 'उद्दीपन' विभाव को उद्दीप्त करने के लिए थी। यही पर कवि के दृष्टिकोण मे विराम लगा था। सर्वप्रथम प्रकृति को इस गर्हित बन्धन से उन्मुक्त करने के लिए ठा० जगमोहनसिंह का ध्यान इस ओर अग्रसर हुआ था।

ठाकुर साहब ने वाल्मीकि, कालिदास एवं भवभूति आदि द्वारा प्रचलित सश्लिष्ट योजना द्वारा प्रकृति का बिम्ब ग्रहण करना प्रारम्भ किया था। यद्यपि ठाकुर साहब की इस परिपाटी पर प्रकृति-काव्य का अधिक सृजन नही हो सका तथापि श्रीधर पाठक ने उनकी परम्परा पालन करने का यथासाध्य प्रयास किया। उनका प्रकृति-निरीक्षण भी हिन्दी की अपनी निधि है। प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण के दृष्टिकोण से पाठक जी की 'काश्मीर सुषमा' अमर रचना है।

---

१. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी—जगत सचाई सार—(छत्तीसगढ—मित्र, जून, सन्, १६००)।

इसके समान ही 'वनाष्टक' एवं 'सान्ध्य अटन' में स्वाभाविक सूक्ष्म निरीक्षण है।

हिमाच्छादित श्रेणियों, जलप्लावित सरोवरों तथा सरिताओं से युक्त काश्मीर का प्राकृतिक सौन्दर्य महामहिम और आकर्षण-पूर्ण है। प्रकृति के रम्य अंक में स्थित कुटीरों से लेकर राजमहलों एवं तीर्थ-स्थानों तक में सर्वत्र गौर-वर्ण के नर-नारी अपनी अपूर्व छवि से दिव्य छटा प्रस्तुत करते हैं। क्षण-क्षण और पग-पग पर सौन्दर्य की इस अमर विभूति के प्रसारित होने के कारण ही काश्मीर भारत का स्वर्ग है। काश्मीर के इस अप्रतिम सौन्दर्य के कारण ही पाठक जी का यह निर्णयात्मक कथन है—

यहीं स्वर्ग सुरलोक, यहीं सुरकानन सुन्दर
यहि अमरन को ओक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर

विश्व के स्वर्गीय सौन्दर्य के सम्बन्ध में मानव ने पढ़ा अवश्य है, किन्तु मानवीय चर्म-चक्षु उसे आज तक देख नहीं सके हैं। इसी से उसकी तृप्ति आकाश-कुसुमवत् रही है।

सुरपुर अरु सुर कानन की सुठि सुन्दरताई
त्रिभुवन मोहन करनि कविनु बहु बरनि सुनाई
सो सब कानन सुनी किन्तु नैनन नहिं देखी
जहँ तहँ पोथिन पढ़ी पैं तु परतच्छ न पेखी

इस स्वर्गीय सौन्दर्य की तृप्ति काश्मीर-सौन्दर्य के रसास्वादन से ही हो सकती है। भावुक कवि इस दिव्य सौन्दर्य से किंकर्त्तव्यविमूढ़ अवश्य हो जाता है, किन्तु उसकी कल्पना में विराम नहीं लग पाता। वह पुनः अग्रसर हो उठती है।

सुरपुर अरु काश्मीर दोउन में को है सुन्दर
को शोभा को भौन रूप को कौन समुन्दर
काको उपमा उचित देन दोउन में काको
याको सुरपुर को अथवा सुरपुर को याको
या को उपमा चाहौ तौ मोहि देन सुहावै
या सम दूजो ठौर सृष्टि में दृष्टि न आवै
यहीं स्वर्ग सुरलोक यहीं सुरकानन सुन्दर
यहिं अमरन को ओक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर

सौन्दर्य की पराकाष्ठा के कारण इस प्रकार की कल्पना सम्भव हो गयी है। 'या को उपमा चाहौ तौ मोहि देत सुहावै' पंक्ति में अनन्वय अलंकार की

छटा काश्मीर की सुपमा पर यथोचित ही फबती है ।

काश्मीर की 'स्वर्ग-सहोदर-घरनी' जो आर्य-कुल-धर्म की पीठिका और राष्ट्र को श्रेष्ठतम सस्कृति का पाठ पढाने वाली रही है, सुन्दर-सुन्दर उपवन-उद्यान, प्रकृति देवी के 'मुकुर' 'डल वूलर' 'गघरवल' और 'गगरी वल' आदि झीलो और राजभवनो से सुशोभित श्रीनगर तथा 'शारिका', 'दुग्ध-गगा', 'शकराचार्य' 'खीर', 'भवानी', 'मार्तण्ड', 'अमरनाथ' आदि-आदि तीर्थ-स्थानो से युक्त प्रकृति की अमर विभूति लिये स्थिर है। प्रकृति वडी ही मनोरम सप्राण है। वैयक्तिक अनुभूतियो से युक्त प्रकृति का स्वरूप वडा ही मोहक है।

प्रकृति यहाँ एकान्त वैठि निज रूप सँवारति
पल-पल पलटति भेस छनिक छवि छिन-छिन धारति
विमल-अवु-सर-मुकुरन महँ मुख विम्व निहारति
अपनी छवि पै मोहि आप ही तन-मन वारति
सजति, सजावति, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी
वहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी
विहरति विविध-विलास-भरी जोवन के मद सनि
ललकति, किलकति, पुलकति, निरखति, थिरकति वनि-ठनि
मधुर मजु छवि पु ज छटा छिरकति वन-कुजन
चितवति, रिझवति, हँसति, डसति, मुसक्याति, हरति-मन

आगे चलकर कवि ने उत्प्रेक्षाओ एव सदेहालकारो द्वारा इस सौंदर्य को विविध रूपो से आँकने का प्रयास किया है। काश्मीर के प्राकृतिक सौदर्य के सम्बन्ध मे ही कवि का कथन द्रष्टव्य है—

परम पुरुष की पटरानी माया को स्यन्दन
मण्डप छत्र उतरि घर्‌यो उतर्‌यो कै नन्दन
कै जव लै शिव चले दक्ष तनया के अगन
गिरि शृगन गिरि खिल्यो प्रिया के कर को कगन
विष्णु-नाभि तें उग्यो सुन्यो जो कमल सहस दल
कै यह सोई सुभग स्वयम्भू को सुजन्म थल
प्रकृति नटी को पटी रहित प्रगट्यो नाटक-घर
कै शिवतन्त्र सटीक खुल्यो विलसत टिखटी पर
कै त्रैलोक्य विभूति भरित अवधूत कमण्डल
कै तप-पु ज-प्रसूत विश्व-शोभा-श्री मण्डन

संदेहालंकार की सिद्धि के लिए कवि ने उपर्युक्त तथा अन्य स्वरूप जो ग्रहण किये हैं, उनसे पाठक जी की कोमल भावनाएँ ही व्यक्त हैं। ये चित्रण यथार्थ पर आधारित सरल और मधुर हैं। इसी से पाठक जी विश्वास के साथ कह सके हैं—

यहीं स्वर्ग सुरलोक यहीं सुरकानन सुन्दर
यहि अमरन को ओक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर

'काश्मीर सुषमा' के अन्तर्गत पाठक जी ने अपने व्यक्तिगत विवरणों को भी लेने का सफल प्रयास किया है। पुर्नयार नाम के मुहल्ले मे निवास करने वाले अपने गुरु एव गुरु-पत्नी को भी पाठक जी स्मरण करते हैं।

श्री 'मुकुन्द' गुरुचरन सरन जिनकी मैं लीनी
परम्परा की प्रथा यथारथ अनुभव कीन्ही
'सुनमाला' गुनमाल अम्ब-अम्बुज-पद ध्याऊँ
जुगुल चरन मन हरनि सरन गहि सब सुख पाऊँ

साथ मे ही डोगरा राज्यवंश के महीपति को भी कवि ने निम्न पंक्तियों में स्मरण किया है—

श्री राजर्षि प्रतापसिंह काश्मीर-पुरन्दर
जिन अतिशय सज्जनता को परिचय मोहि दीनो
हित सों बोलि सनेह सहित सम्मानित कीनो

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से ही काश्मीर सुषमा की काव्य-सामग्री पर प्रकाश पड़ जाता है। यों हिन्दी काव्य में स्वच्छन्दतावादी भावना को लाने के लिए पाठक जी ने गोल्डस्मिथ के अमर काव्यों का आश्रय अवश्य लिया, जिनके लिए हिन्दी-काव्य आभारी है। तथापि यह सत्य है कि पाठक जी में मौलिक प्रतिभा थी, जिसका प्रमाण उनके प्रत्येक काव्य से उपलब्ध होता है। 'काश्मीर-सुषमा' मौलिक रचना होने के कारण पाठक-साहित्य में बड़ी ही महत्वपूर्ण है। जिसके कारण ही स्वच्छन्दतावादी काव्य में इसे शीर्ष स्थान पर रखा जा सकता है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य के लक्षणों के आधार पर यदि प्रेम के कारण 'एकान्तवासी योगी' और ग्रामीण वातावरण के कारण 'ऊजड़ ग्राम' को हिन्दी काव्य में सर्वोच्च शिखर पर रखा जा सकता है, तो प्रकृति के सजीव चित्रण प्रस्तुत करने के कारण पाठक जी की 'काश्मीर सुषमा' को सर्वोपरि स्थान मिलेगा, इसमें सन्देह नहीं।

ठाकुर जगमोहन सिंह की प्रकृति-काव्य की संश्लिष्ट योजना 'काश्मीर सुषमा' की १४६ पंक्तियों में पूर्ण रूप से निखर आई है। ब्रजभाषा की माधुर्य अभिव्यंजना के कारण यह रचना और भी लोकप्रिय हो सकी है। इस प्रकार पाठक जी की यह रचना सर्वप्रकारेण सफल है।

आराध्य शोकांजलि (रचना-काल—चैत्र कृष्ण ६, १९६२)

कुशलं कुशलेशसूरिणः कुलजं लक्ष्मणमिश्रनन्दनम्
मृदुशीलनिसर्गसुन्दरं बुधलीलाधरपावनाऽभिधम्

(आराध्य शोकांजलि—२९)

उपर्युक्त श्लोक में पं० श्रीधर पाठक जी के पूज्य पिताजी की वंश-परम्परा पर प्रकाश पड़ता है। पं० लीलाधर पाठक के पितामह पं० कुशलेश मिश्र एवं पिता पं० लक्ष्मण मिश्र थे। वंश अपने पाण्डित्य, भक्ति एवं उदारता के लिये युगों-युगों से प्रसिद्ध रहा है। पं० लीलाधर पाठक के सम्बन्ध में स्वयं पाठक जी का कथन है—

"पिताजी आस्तिकता और ब्रह्मण्यता के रूप थे वह स्वयं गोपालमय थे और जगत् मात्र को गोपालमय समझते थे। अपनी सन्तान पर अपरिमित प्रेम था। मैं उनका एक ही अवशिष्ट पुत्र हूँ, मुझे गोपाल जी का प्रसाद समझते थे, यद्यपि मेरे अंग्रेजी संसर्ग-दूषित स्वतन्त्र सिद्धान्तों पर प्रायः खेद करते थे। अंतर में मुझ पर प्रसन्न थे, पर मेरे सामने मेरी बड़ाई कभी नहीं करते थे, ऐसा करना हानिकारक मानते थे। मुझ पर उनका अथाह वात्सल्य था। मेरी भक्ति-विषयक कविता की प्रशंसा करते थे, परन्तु शेष को बकवाद बताते थे। उनकी आज्ञा थी कि सब कविता केवल भगवत्-सम्बन्ध में होनी चाहिए; परन्तु इस आज्ञा का पालन मुझसे न हो सका। इसका मुझे बहुत अनुताप है।"[1]

पाठक जी को अपने पिता जी का आशीर्वाद प्राप्त था। इसी से वंश-परम्परागत सम्मान एवं पाण्डित्य का संरक्षण करते हुए वह साहित्य-क्षेत्र में सफलतापूर्वक अग्रसर हो सके। भक्त और कर्मण्य पिता के कर्मण्य सपूत होकर पिता जी के निधन से पाठक जी का हृदय टूट गया था और वह वेदना से इतने आकुल हो गए थे कि उन्हें सम्पूर्ण विश्व ही सूना-सूना सा लगता था। अपने

१ श्रीधर पाठक, संक्षिप्त जीवन-परिचय, आराध्य शोकांजलि।

पूज्य पिताजी के श्री चरणों में अपनी भक्ति और श्रद्धा अर्पित करने के लिए ही पाठक जी ने 'आराध्य शोकांजलि' की रचना की थी। इससे यह रचना शोक-काव्य (Elegy) के अन्तर्गत आती है।

शोक-काव्य की प्रवृत्ति का जहा तक सम्बन्ध है, उसमे वैयक्तिक सम्बन्ध की प्रमुखता रहती है। इसमे मृत व्यक्ति के सद्गुण एव शोक-काव्य के रचयिता पर उस विभूति के प्रभावो का चित्रण रहता है। पाठक जी द्वारा रचित यह शोक-काव्य स्वय उनके पिताजी से सम्बन्धित है। इससे इसमे आत्मीयता का प्रमुख अश विद्यमान है।

भगवान के विश्वासी एव भक्त परिवार मे इस प्रकार के कारुणिक निधन का वज्रपात हो, जिससे परिवार निरवलम्ब बन जाय और बच्चे अनाथ हो जाय, इस स्थिति ने ही पाठक जी को शोकाकुल कर दिया था। वह करुणा-निधान की इस निष्करुण परिस्थिति को नही समझ पा रहे थे।

भगवत्पदसेविनां फलं सुतरामस्ति कृपार्हमेव ते
किमुताऽकरुणत्वमीदृश विहित तर्हि विगर्हित विधे ?

पिता का व्यक्तित्व और जीवन परिवार का भरण-पोषण-कर्ता और सुख का विधान करने वाला था। आज वही अपनी चेतना, वाणी, मुख की कान्ति और बुद्धि-वैभव को खोकर 'शेतेऽद्य विनिष्क्रिय वपु' है।

क्व गतोऽसि समाप्य जीवन खलु सत्यज्य धनं जनं गृहम्
अवलोकय हि नो न दूयसे भयदालम्बनिवृत्ति विह्वलान्।

'न शृणोषि न भाषसेऽधुना, न यथापूर्वमना मनागसि'—सोचकर अनाथ पाठक जी का भावुक हृदय व्यथित होकर रह जाता है। पाठक जी इस कथा से ही 'मरण प्रकृति शरीरिणां' इस दार्शनिक सिद्धान्त पर पहुँचते हैं और सोचने लगते हैं मानवीय शक्ति की सामर्थ्य ही क्या—जब 'भवितव्यतास्पदे नहि धातस्त्वमपि स्वतन्त्र मन'।

स्वय पिता होने के नाते ही नहीं; किन्तु सद्गुणो से युक्त उनका व्यक्तित्व इतना परेण्य और महान था कि पाठक जी अपने कर्त्तव्य-पालन की त्रुटि के सम्बन्ध मे बडे ही सशङ्कित एव भयभीत हैं। उन्हें दुःख है कि उनके जीवन-काल मे उन्होने ऐसी कितनी ही त्रुटियाँ की थीं, किन्तु आज जब वह अचेतन हो कर निष्प्राण हैं तब पाठक जी पुनः अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा से उन्हें प्रसन्न करने के लिए उत्कण्ठित हैं।

त्वयि जीवति हन्त ! हे पितर्बहुधाऽहन्तव मेवनेऽस्खलम्
इति दु ख विषण्णमानसस्त्वधुना ते करवाणि चाटु किम् (६)

इन पक्तियो मे पाठक जी की वैयक्तिक अनुभूति स्पष्ट छलकती है जो शोक-काव्य मे आवश्यक ही नही, अनिवार्य भी है। अपने व्यक्तिगत गुणो के कारण भी उनका जीवन स्पृहणीय और महान था, जिससे लौकिक जीवन मे उनको सभी प्रकार का सम्मान प्राप्त था।

न हि विश्व हितैषिणा त्वया ह्रियतामप्यहित समीहितम्
समुदारतया हि युज्यते स्वपरेषु प्रकृतिर्भवादृशाम् (१०)

* * *

वपुषि व्यथितेऽपि सर्वथा व्यरमस्त्व न हि नित्यकर्मत
तदुपेक्षणतः प्रलुप्यते तदुपेया द्विजतेतिनिश्चय (१२)

* * *

भगवज्जन ! कृष्णरूपतामति रासीत्तव विप्रजातिषु
द्विजवर्य ! न कोऽपि दृश्यते सदृश स्तेद्विजनिष्ठताविधौ (१३)
स्मरणीयमुपास्य नाम ते करणीयन्तु गुणानुवादनम्
स्पृहणीयतया प्रकाशते धरणीय तपसा तवोज्ज्वला (१४)

उपर्युक्त लोकाचार के अतिरिक्त उनकी निज की विचारधाराए भी बडी ही मर्यादित और पवित्र थी।

रतिरच्युत पादपकजे, गतिरेका श्रुतिदर्शिते पथि
मतिराप्तमताश्रयात्मिका धृतिरासीत्तव नैष्ठिकी पित (११)

गरुड पुराण के अन्तर्गत गरुड द्वारा श्री हरि से पुण्यात्माओ और पापात्माओ की गतियो के सम्बन्ध मे पूछने पर, उत्तर मे उनका कथन है—

ये नरा ज्ञानशीलाश्च ते यान्ति परमा गतिम्
पापशीला नरा यान्ति दु खेन यम यातनाम् ॥[1]

गरुड पुराण के अध्याय ७ के अन्तर्गत प्रेत अपनी प्रेतयोनि के छूटने के सम्बन्ध में राजा वभ्रुवाहन मे कहता है—

सच्छास्त्र श्रवणं विष्णो पूजा सज्जन सगति
प्रेतयोनि विनाशाय भवन्तीति मया श्रुतम् ॥[2]

---

१ गरुड़ पुराण—अध्याय १, १७।
२. गरुड पुराण—अध्याय ७, ४८।

गरुड के 'आमुष्मुषी गति' के सम्बन्ध में श्री विष्णु से पूछने पर भगवान ने इसको ही मोक्षदाता और सद्गतिदाता कहा है।

उपर्युक्त से निस्सन्देह यह विश्वास है कि पाठक जी के आराध्य को भी सद्गति प्राप्त हुई और भगवान ने भी भक्त को अपने लोक में प्राप्त कर महान हर्ष से उनका स्वागत किया। उन्होंने भी अपनी जीवितावस्था की भावना के अनुसार पीताम्बरधारी गोपीनाथ को देखकर उनका स्तवन प्रारम्भ कर दिया और भक्तिपूर्वक अर्चन और वन्दन करने के लिए भगवान-लोक में रहने लगे।

इस शोक-काव्य के द्वारा यों पाठक जी की वंश-परम्परा और सम्मान पर तो प्रकाश पड़ता ही है, किन्तु वैयक्तिक अनुभूतियों के समाविष्ट हो जाने के कारण काव्य में अन्धानुसरण नहीं रह जाता है। फलस्वरूप इस काव्य में कृत्रिमता और आडम्बर का पूर्ण परित्याग दीख पड़ता है और यथार्थ चित्रण का दृश्य सामने आये बिना नहीं रहता। उपर्युक्त सद्गुणों के कारण ही यह 'आराध्य शोकाञ्जलि' पाठक जी के स्वच्छन्दतावादी काव्य के अन्तर्गत रखी जा सकती है।

पाठक जी ने 'आराध्य शोकाञ्जलि' के साथ गद्य में अपने पिता जी का संक्षिप्त जीवन-परिचय भी जोड़ दिया है, जिसके द्वारा उनके जीवन-परिचय के साथ स्वयं उनके जीवन की प्रगति पर भी प्रकाश पड़ जाता है, इस गद्यांश को पाठक-साहित्य में प्रमुख स्थान प्राप्त है, जिसका विवेचन गद्य-साहित्य के अन्तर्गत ही समीचीन होगा।

इस काव्य के साथ अन्त में 'भक्ति-विभा' भी जुड़ी हुई है, जिसको पाठक जी ने स्वप्न में अपने पिता जी के दर्शन कर लिखा था। पाठक जी ने पिता से सम्बन्धित होने के कारण इस रचना को 'आराध्य शोकाञ्जलि' के साथ रखना उचित समझा था। इसीलिए इसका अलग से विवेचन करना ही उचित है।

जार्ज-वन्दना (रचना-काल—१-१-१६१२)

सभ्यता के आदि-युग में भारत अपनी संस्कृति, धर्म एवं आध्यात्मिकता का विश्व-विश्रुत केन्द्र रहा है। इसकी भावनाएँ पावन और व्यावहारिक आदर्श की सामग्री रही हैं। कालान्तर में अन्धानुसरण के कारण भले ही उसका परिणाम पतन का कारण बना हो, किन्तु विशद आर्य-संस्कृति के प्रसार-काल तक इस प्रकार के विचार न आ पाये थे। इस सम्पूर्ण देश में ही राजा परमेश्वर का प्रतिनिधि समझा गया है। अपनी श्रद्धा और निष्ठा के कारण दैवी-वरदान

[illegible] आज्ञानिष्ठता और भौतिक कुशलता के लिए राजा के समक्ष विनीत [illegible] है और इन्ही विचारो मे उसने सर्वदा अपनी निष्कृति आंकी है—

प्रजानां　विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ।　—कालिदास

लौकिक पिता केवल जन्म के साधन का कारण है ; प्रजा के अनुशासन, संरक्षण एव भरण-पोषण के लिए राजा ही उसका पिता है ।

आस्था-मूलक देश होने के कारण ही इस प्रकार की भावनाओ का पोषण हो सका है । इन्हे राजा की चापलूसी कहकर टाला नही जा सकता । क्योकि लोकतन्त्रात्मक भारत मे राजा भरण-पोषण एव संरक्षण के लिए प्रजा के समक्ष तो प्रजा भी राजभक्ति के लिए प्रथम के प्रति उत्तरदायी है । यह अन्योन्याश्रित सम्बन्ध ही राजा-प्रजा को एक-दूसरे से आबद्ध रखने के लिए अलम् है । फिर राजधर्म के सम्बन्ध में श्रीधर पाठक की निम्न भावना भी बडी ही उदार है—

धर्म जाति को अन्तर हम नृप पै नहिं मानत
अपनाए ह्वै अपनाएहि अपनो हि करि जानत ।

वर्णाश्रम-प्रधान विचारधारा के उस युग मे इस प्रकार की भावनाएँ निस्सन्देह भारतीयता का गाढ पुट ही व्यक्त करती हैं । वैसे पाठक जी वर्णाश्रम धर्म के दृढ अनुयायी थे, किन्तु इस स्थल पर आकर उनकी कट्टरता एव शास्त्रीयता पलायन कर उठी हैं ।

१८५७ ई० के गदर से ही भारतीयो की प्रसुप्त राष्ट्रीयता जाग्रत हो उठी थी । १८८५ ई० मे काग्रेस के जन्म से तो उसकी विश्वस्त स्पष्ट रूपरेखा ही देश के सामने आ गई । फलत सभ्य समाज मे राष्ट्रीय जागरण भावना-जगत् मे क्रान्ति ही सिद्ध हुई । इस समय के अधिकाश भारतीयो मे राज-भक्ति एव राष्ट्र-भक्ति का सम्मिश्रण मिलता है ।

भारतेन्दु-युग मे ही भारतेन्दु जी, प्रेमघन जी, प्रतापनारायण मिश्र एव राधाकृष्णदास आदि की रचनाओ मे भारत की दीन-हीन दशा से यद्यपि एक ओर क्षोभ है तो दूसरी ओर विक्टोरिया, एडवर्ड, युवराजो के आगमन पर स्वागत तथा वायसरायो की प्रशसा मे रचित काव्य भी उपलब्ध होता है । श्रीधर पाठक जी मे भी उपर्युक्त परम्परा का पालन है । यद्यपि 'भारत गीत' रचकर हिन्दी-काव्य मे राष्ट्रीय भावना को विकसित होने का द्वार उन्ही के द्वारा उन्मुक्त किया गया है, तथापि विक्टोरिया, लार्ड रिपन, विक्टोरिया चीरजीवी

एव जार्ज-वन्दना आदि रचनाओ से उनकी राजभक्ति भी व्यक्त होती है।

'जार्ज-वन्दना' के समतुल्य ही प्रेमघन जी ने भी 'सौभाग्य समागम' अथवा 'भारत सम्राट् सम्मिलन' नाम की रचना इसी समय प्रस्तुत की थी। प्रेमघन जी ने अपने विषय प्रतिपादन के लिए दोहा, हरिगीति एव बरवै छन्द प्रयुक्त किए हैं, जब पाठक जी द्वारा केवल छप्पय छन्द द्वारा ही विषय वर्णित है। तीन-तीन विभिन्न छन्दो मे वर्णन की सुविधा होते हुए भी प्रेमघन जी के काव्य मे वह प्रवाहपूर्ण लालित्य और गाम्भीर्य नही जो पाठक जी के काव्य मे है। यो भी छप्पय छन्द की गति गम्भीरता का द्योतन करती है। फिर पाठक जी द्वारा एक ही छन्द का आधार लेने के कारण इस काव्य से समयानुकूल राजकीय मर्यादा टपकी पड़ती है।

'जार्ज-वन्दना' के आठ छप्पयो मे प्रथम मे सम्राट की वश-परम्परा, द्वितीय और तृतीय मे भारत मे उनका स्वागत और अभिनन्दन, चतुर्थ मे राज्याभिषेक की महत्ता, पचम एव षष्ठ छन्दो मे जार्ज सम्राट के राज्य का माहात्म्य, सप्तम मे सम्राज्ञी मेरी की प्रशसा एव अष्टम छन्द मे सम्राट एव सम्राज्ञी को आशीर्वचन है।

जय-जय पंचम जार्ज आर्ज अवनीश हमारे
जयति सेत-कुल-केतु जयति इंगलैंड-उज्यारे
जयति मनुज-कुल-दया-द्रवित, दुखियन-दुख-भजन
जय भारत निज प्रजा-प्रनय-भाजन, जन-रजन
जय ब्रिटिश-पुरातन-वीरता-विदित-हनोवर वंशधर
जय विक्टोरिया-प्रिय-तनुज-श्री-ऐडवर्ड-नृप-तनय वर।[1]

महारानी विक्टोरिया पितामही तुव नाथ।
पाल्यो सुत सम बहुत दिवस जिन्है दया के साथ।
जो कछु उन्नति इत भई परति लखाई आज।
सो सब तिनके राज मे है नव भारत राज॥
नृप सप्तम एडवर्ड तुव पिता अधिक अधिकार।
दै तिन कहँ प्रमुदित कियो बनि करुना आगार॥
यों उपकृत तुव वंश सों भारत प्रजा समाज।
सो तुम पै बलि जाय नहिं तो अचरज महराज॥[2]

1. श्रीधर पाठक, जार्ज-वन्दना, छप्पय १।
2. प्रेमघन—'सौभाग्य समागम' अथवा 'भारत सम्राट सम्मिलन', प्रेमघन सर्वस्व, भाग १, पृष्ठ ३६२—६३।

सामाजिक शैली द्वारा 'जय विक्टोरिया-प्रिय-तनुज-श्री-एडवर्ड नृप-तनय-वर' कहकर पाठक जी ने सम्राट की परम्परा का यथा-तथ्य चित्रण कर दिया है। सम्राट-सम्राज्ञी के शुभागमन पर उनके दर्शन के लिए प्रजा वर्ग उमड पडा। विविध प्रकार साज-सज्जा से नगर-राज-मार्ग एव भवन चमक उठे। अपूर्व सौन्दर्य ही दृष्टिगोचर हो रहा था।

लखि नन्दन-छवि नन्दन लजित, इन्द्रप्रस्थ लखि इन्द्रपुरि
जय-अलख-पूर्व-भूस्वर्ग-कर, सुर-निसर्ग, नृपवर्ग-धुरि।

सम्राट के राज्याभिषेक के अवसर पर वग-विभाजन मिटाकर पूर्ववत् वगाल सम्पूर्ण प्रान्त कर दिया गया तथा अग्रेजी साम्राज्य की राजधानी कलकत्ता से हटाकर देश के केन्द्रस्थल दिल्ली मे स्थापित की गई। दोनो ही घटनाएँ अग्रेजो की न्यायप्रियता एव दूरदर्शिता पर प्रकाश डालती हैं।

वग-विभाग मिटाय अमिट अनुराग वढायो
घर-घर सुख-सन्तोख-सुधा वारिद वरसायो।

(जा० व० ४)

* * *

जय दिल्ली निज नवल राजधानी निर्धारित
जयति सहस-सुभकाज-सुजस-बल्ली-विस्तारित।

(जा० व० ५)

महारानी का व्यक्तित्व भी सम्राट के समान ही महत्वपूर्ण होता है, इससे सम्राज्ञी का जय-गान भी कवि ने बडी भावुकता एव मधुर शब्दावली द्वारा किया है—

स्वागत महरानी सहित तुम हित भारत भूप।
बडे भाग सों पाइयत ऐसे अतिथि अनूप॥
तव उदारता कुलागत दयालुता की वानी।
न्याय-निपुनता-धीरता गुनि नृप-गुन-गन-खानी॥
पलक पांवडे आप हित जो पै देहिं विछाय।
लोचन जल पद युगल तुव धोवैं हिय हरषाय॥
सब कुछ वारें आपके ऊपर तौ हूं थोर।
लखि तुव गुरुजन राजकृत गुरु उपकारनि ओर॥

(प्रेमघन सर्वस्व, पृष्ठ ३९४–३९५)

जय जय पुनि सम्राट-प्रिया महारानी मेरी
सुन्दर जनु सुरवान, सुघर-गुन-माल-सुमेरी
रही ललकि जिहि लखन प्रजा करि चाह घनेरी
सुखित भई अवलोकि प्रेममय मूरति तेरी
जय भारतीय-तिय-गन सखी, प्रिय-सनेह-सानी उदय
जय तिय-समाज-हित उनमुखी श्री मेरी महारानि जय।
(जार्ज-वन्दना, छप्पय ७)

अन्तिम छन्द में कवि सम्राट् एवं सम्राज्ञी को शुभाशीष प्रदान करता है। यह आशीर्वचन भारतीय नाटकों के 'भरतवाक्य' के समान ही है।

जय जय जुग जुग जियहु जुगल दम्पति प्रिय-जोरी।
प्रजा प्रनय-प्रन-पगी, बढहु सासन सुचि डोरी॥
सफल होयँ संकल्प सकल सुभ, जीवन केरे।
मानव-मंगल-जननि जुगल अभिलासा-प्रेरे॥
जय दिन-दिन दुगुनित होय सो अभिलासा आसा प्रबल।
जुग जुगनु जार्ज मेरी जियहु सुख-सुहाग जोरी जुगल॥
(जार्ज-वन्दना, छप्पय ८)

काव्य की पूर्ति के साथ-साथ इन पंक्तियों द्वारा कवि के शालीन हृदय की विशाल सद्भावना प्रकट होती है।

काव्य के वर्ण्य विषय का जहाँ तक सम्बन्ध है पाठक जी पूर्ण सफल हैं। उनकी यह रचना अन्य किसी भी सामयिक रचना से अधिक ललित और मधुर है। काव्य-रचना के सम्बन्ध में गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' का कथन है'—

"पाठक जी अन्धाधुन्ध लिक्खाड़ नहीं थे। कविता करने में उन्होंने जल्दी कभी नहीं की। काव्य रचना की तुलना वे प्रवीण स्वर्णकार के कार्य से करते थे और कहते थे कि जैसे वह एक-एक नग की उपयुक्तता आदि से सन्तुष्ट होकर ही उसे भूषणों में जड़ता है, वैसे ही विदग्ध कवि को अपने एक-एक शब्द के सम्बन्ध में सावधान होना पड़ता है।"[1]

उपर्युक्त सिद्धान्त पर (जार्ज-वन्दना) को परखने पर इसमें कवि का काव्य-साफल्य ही परिलक्षित होता है। काव्य में भावानुकूल आलंकारिक शैली का प्रयोग

१. गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', 'स्व० पं० श्रीधर पाठक', अभ्युदय, २७ सितम्बर १९२८ ई०।

होते हुए भी दुरूहता अणुमात्र भी उपलब्ध नही होती। ब्रजभाषा का माधुर्य पूर्णरूप से काव्य को सरसता प्रदान कर रहा है। स्थल-स्थल पर अनुप्रासमयी भाषा काव्य को और भी सजीवता प्रदान कर रही है।

जय जलपति, थलपति, व्योमपति, जयति सोम-सुरपति-चरित
(जार्ज-वन्दना, ५)

* * *

जय रवि-ससि-गुन-गुम्फित, सुदृढ, सोहत सुभग सुराज-थिति,
जय कल-कीरति-जय-चन्द्रिका छिटकि, छटा छहराति छिति।
(जार्ज-वन्दना, ६)

* * *

जय जय जुग जुग जियहु जुगल दम्पति प्रिय जोरी,
प्रजा प्रनय-प्रन-पगी, वढहु सासन सुचि डोरी।
(जार्ज-वन्दना, ८)

दुखी का 'दुखियन' (छप्पय १) अभिषेक का 'अभिसेक' (छप्पय २) पूर्ण का 'पूरन' (छप्पय ३) देश का 'देसिनु' (छप्पय ४) राजपूत का 'रजपूतन' (छप्पय ६) आदि-आदि शब्दो से ब्रजभाषा पर उनका पूर्ण आधिपत्य प्रतीत होता है। इस काव्य मे भाषा का जो मधुर वातावरण प्रस्तुत है उससे पाठक जी की काव्य-मर्मज्ञता एव शब्दो की नाडी की पहिचान ही ज्ञात होती है।

शास्त्रीय एव स्वच्छन्दतावादी काव्य की कक्षाओ मे जार्ज-वन्दना को शास्त्रीय काव्य के अन्तर्गत ही प्रतिष्ठित किया जा सकता है। वर्ण्य विषय, भाषा एव छन्द आदि के विचार का जहाँ तक सम्बन्ध है, कवि परम्परागत मर्यादाओं मे आबद्ध है। प्रतिपादित शास्त्रीयता होते हुए भी काव्य मे स्वाभाविक प्रवाह और मधुर लालित्य है, जिससे इस रचना को समकक्षीय रचनाओ मे उत्कृष्ट स्थान दिया जा सकता है।

भक्ति-विभा (रचना-काल—२३ अप्रैल १९१३ ई०)

अपने पिता जी के सम्बन्ध मे रचित 'भक्ति-विभा' पाठक जी की द्वितीय रचना है। 'आराध्य शोकाजलि' मे उनकी मर्म व्यथा का दिग्दर्शन है जब कि 'भक्ति-विभा' में पाठक जी स्वप्न मे अपने पिता जी को जीवित देखते हुए

उनका चित्रण करते हैं। स्तवन में व्यक्त उनका स्वरूप पाठक जी की चिन्ताओं का अपहरण कर देता है। पाठक जी इस स्वरूप-दर्शन से स्वर्गीय आनन्द का अनुभव करते हैं।

रात्रि-वेला में ही पाठक जी को शुभ दर्शनों का सुयोग मिलता है। उन का रूप और वस्त्र ज्यों के त्यों पूर्ववत हैं।

सोई सुठि आकृति सोई सुघर गात
सुस्मित सुचि आनन-आभा लखात
चन्दन मल चर्चित वर तिलक भाल
सुललित मन्दार-कुसुम-तुलसि-माल
सोई पद-पानि जुगल वारिजात
सात्विक द्युति पार्थिव-श्री-युत सुहात
(पंक्तियाँ ३–८)

पं० लीलाधर पाठक बड़े ही भगवद्भक्त थे और गोपी-कृष्ण की भक्ति में उनकी बड़ी आस्था थी। अपने जीवन-काल में भी वह सदैव पूजा-अर्चना में लगे रहते थे।

"पिता जी इस कुल की धर्म और भक्तिमत्ता के विषय में अन्तिम शोभा थे। उनका समस्त जीवन गोपालाराधन में ही व्यतीत हुआ। उनका भजन, भोजन एवं यावद् व्यवहार केवल यशोदानन्दन, कंस-निकन्दन प्रणत पाल गोपाल लाल के लिए था।"[1]

इस स्थल पर भी वह पूजा के आसन पर आसीन सुशोभित हैं।

आसन सित दलमय मंजुल अनूप
शान्त स्थिति निष्ठ ब्रह्मण्य रूप
(पंक्तियाँ २५–२६)

इसके अतिरिक्त 'गोपाल लाल' की स्तुति-गान में पूर्व उन्होंने जिस अनुराग से अपने पुत्र को देख अपने वात्सल्य को प्रकट किया वह बड़ा ही मनोज्ञ-अभिव्यंजनात्मक है। दुःख है कि ममता की यह दृष्टि अधिक काल तक स्थिर न रह सकी।

निरखत मम ओर सदय सानुराग
हरषित सुत प्रेम पुलकि धन्य भाग

१. श्रीधर पाठक, संक्षिप्त जीवन परिचय 'आराध्य शोकांजलि', पृष्ठ १२।

एक छिन अवलोकि प्रेम-दीठि टारि,
टारति तिहि तुरतहि ममता विसारि।
(पंक्तियाँ २७–३०)

गोपाल की स्तुति एव भक्ति मे दत्तचित्त अपने पिता जी को देखकर पाठक जी के हृदय मे अविरल प्रेम की धारा का स्रोत उमड पडा।

बाढ्यो हिय अतिसय पितु-प्रेम-छोह
सुधि करि चिर-दरसन-सेवा-विछोह
अनुभव करि सुख-प्रद सन्तोष भूरि,
आशा उर प्रति छिन दरसन की पूरि।
(पंक्तियाँ ८१–८४)

ऐसे सुयोग से कवि का हृदय पूर्ण उत्फुल्ल और आह्लादित था। अनाथ अपने को पितृ-दर्शन से सनाथ समझकर वह गद्गद हो रहा था। उसी समय 'घन पटल' ने 'पितु मूरति' को आवृत कर दिया। फलस्वरूप—

ऐसे प्रतिरोधित पितु-दरस देख
चित्त भयो अति चिन्तित विस्मित विसेख।(पंक्तियाँ ९१–९२)

उपर्युक्त निराशा पुन आशा मे परिणत हुई। घन-आवरण के हटते ही 'पायौ पुनि दरसन पितु पूज्य पाद'। करुणा से युक्त और भक्ति से गद्गद पिता के नेत्रों को देखकर पाठक जी के वियोग-पीडित हृदय मे पुन आश्वासन बढा और पितृ-भक्ति की पयस्विनी उमड पडी, किन्तु वह सौभाग्य पुन. घन-पटल द्वारा दुर्भाग्य मे परिवर्तित कर दिया गया।

प्रगट्यो नहि दरसन पुनि तृतिय वार
छायो निसि चहुँ दिसि घन अन्धकार। (पंक्तियाँ १०९–१०)

यद्यपि आकाश-मण्डल मे चन्द्र और उडुगन आज भी उदित होते हैं, किन्तु वह कमनीय कान्ति फिर दृष्टिगोचर न हो सकी। ऊषा भी कमनीय पट धारण किए प्रदर्शित हुई, किन्तु स्वप्न का सत्य पुन सत्य न हो सका।

'भक्ति-विभा' उपर्युक्त विवेचन के आधार पर 'आराध्य शोकाजलि' का पूरक काव्य है। द्वितीय मे शोकाकुल पाठक जी की वेदना एव व्यथा से उनकी जिस वैयक्तिकता का प्रस्फुटन हुआ है उसका एक अश 'भक्ति-विभा' मे भी विद्यमान है। इस प्रकार सामाजिकता के अभाव मे वैयक्तिक वेदना के कारण इसमें कवि की स्वच्छन्दवादिता पूर्ण स्पष्ट है।

श्री गोखले प्रशस्ति (रचना-काल—११-३-१५)

पाठक जी के वंश को ही श्रेय है कि उनमें पं० कुशलमिश्र जैसे महाकवि और नाटककार तथा पं० धरणीधर शास्त्री जैसे नैयायिक एवं आचार्य ने जन्म लेकर अपनी-अपनी विद्वत्ता एवं पाण्डित्य से उसकी धवल कीर्ति को और भी उज्ज्वल कर दिया। उत्तराधिकार में काव्य-अनुराग एवं पाण्डित्य को उपलब्ध कर श्रीधर पाठक ने जीवन में उनका सदुपयोग किया और हिन्दी-काव्य के इतिहास में अपने को सदैव के लिए अमर कर लिया।

हिन्दी में तो उन्होंने रचनाएँ की ही हैं, किन्तु संस्कृत को भी अधिकारपूर्वक काव्य में प्रयुक्त कर अपने पाण्डित्य का उन्होंने परिचय दिया है। 'मनोविनोद' के आदि और अन्त में, मंगलाचरण एवं चिट्ठी-पत्रों के रूप में उनका संस्कृत का स्फुट काव्य है। इसके अतिरिक्त 'आराध्य शोकांजलि' एवं 'गोखले प्रशस्ति' संस्कृत की उनकी अन्य रचनाएँ हैं, जिनमें काव्य-विषयक लालित्य एवं सौष्ठव पूर्णरूप से विद्यमान है।

'आराध्य शोकांजलि' उनका शोक-काव्य है, जिसके सम्बन्ध में पिछले पृष्ठों में विवेचन हो चुका है। 'श्री गोखले प्रशस्ति' गोपालकृष्ण गोखले के महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व का अभिनन्दन है। कोविदों के मध्य में तो वे सम्मान्य थे ही, देश की राष्ट्रीय भावना के उत्तरोत्तर विकास में भी उनसे प्रोत्साहन मिला है। देश की राष्ट्रीय प्रगति में वह गांधी जी से पूर्व ही आ चुके थे। इतर साम्प्रदायिक भावना को नष्ट कर देने तथा हरिजनों की समस्या को प्रमुखता देने के सम्बन्ध में उनके विचार पहले ही आ चुके थे। देश-भक्ति के साथ राज-भक्ति के भी लक्षण उनमें विद्यमान थे। नरम दल के नेता होने के कारण वह वैधानिक सुधारों के पक्ष में भी थे। इस प्रकार समय-समय पर अंग्रेजी सरकार उनका अभिमत लेकर आभारी हुआ करती थी।

यह प्रशस्ति काव्य नौ छन्दों में समाप्त हुआ है। वास्तव में इस काव्य के आठ छन्द प्रशस्ति-स्वरूप हैं और नौवाँ छन्द इस प्रशस्ति के माहात्म्य पर प्रकाश डालता है। प्रथम आठ छन्दों के अन्त में 'नमस्यानि गोखलेगोपालकृष्णमेकम्' और आठवें छन्द में उन्हीं के समान ही 'नमस्यामि त नमस्तगोविदेश्वरेश्वरम्' देते हैं। इन दोनों के प्रयोगों से काव्य में अनायास संगीत की अनुभूति हुई है। कोमलकान्त पदावली के प्रयोग से सारा काव्य ललित और मधुर बन गया है।

आदिगन्तपूर्यमाणपुण्यनामवैभवम्
भारतीयमानवाधिकारवादिनावरम्
राजराजमानित मनीपिवृन्दसेवितम्
सस्मरामि लोकवद्यगोखलेवुधेश्वरम्

भारतीय एव मानवीय अधिकारो के लिये गोखले जी आजीवन जूझते रहे। समन्वयवादिता की उच्च भावनाएँ उनमे थी, जिससे अग्रेजी शासन भी उनका आभार मानता था। कवि ने द्वित्वविहीन शब्दो द्वारा सरलतर शैली मे गोखले के लोकवन्द्य स्वरूप को इन पक्तियो मे और भी सर्वग्राह्य कर दिया—

सौम्यवृत्तिसाधुतासमुल्यभावसुन्दरम्
देशकालकोविद स्वदेशमानमन्दिरम्
सूनृतोक्तिमौक्तिकाऽभिरामकण्ठभूषणम्
संस्मरामि लोकवन्द्यगोखलेवुधेश्वरम्

अनुस्वारान्त पदावली, अनुप्रासमयी शब्दो की छटा एव शब्दो के मधुर आरोहावरोहो से निस्सन्देह तुलसीदास जी की स्तुतियो का स्मरण आ जाता है।

इसी प्रकार की ललित शैली मे कवि ने जीवन की प्रमुख घटनाओ को गूँथने का प्रयास किया है—

ज्ञातिवर्णधर्मजन्यभेदभाववर्जितम्
* *
भारतीयनीतिसविधातृसद्मसास्थितम्
* *
आफ्रिकाऽधिवासिबन्धुकष्टतापहारकम्

इस प्रकार देश-भक्ति की भावनाओ से युक्त यह प्रशस्ति काव्य के मधुर स्वरूप को भी व्यक्त करती है। प्रशस्तियो का वातावरण श्रद्धामूलक रहा करता है। श्रद्धा श्रद्धेय के किये हुये सामयिक उपकारो पर आधारित रहा करती है। इससे प्रशस्ति- रचयिताओ को व्यक्ति के जीवन के महत्तम उपकारो का गुणगान करना ही पडता है। यहाँ पर कवि द्वारा मधुर शैली मे गोखले के उपकार काव्य मे समाहित हैं। अन्त मे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के शब्दो के अनुसार पाठक जी के काव्य के सम्बन्ध मे यह सत्य है—

बाला-वधू-अधर अद्भुत स्वादुताई
द्राक्षाहु की मधुरिमा, मधु की मिठाई।
एकत्र जो चहहु पेखन प्रेम-पागी
तो श्रीधरोक्त-कविता पढ़ियेऽनुरागी॥

✿ ✿ ✿

जाकी कवित्व-पद-कोमलताऽधिकाई
आबाल-वृद्ध-जन चित्त लयो चुराई।
सोई कवीन्द्र विजयी जयदेव आई
लीन्ह्योऽवतार कह श्रीधर-देह पाई॥

श्री गोखले गुणाष्टक (रचना-काल—१८-३-१९१५ ई०)

गोपाल कृष्ण गोखले को लेकर पाठक जी ने अपनी तीन रचनाएँ हिन्दी-जगत को भेंट की हैं (१) हा, गोखले (२८-२-१५), (२) श्री गोखले प्रशस्ति (११-३-१५) एवं (३) श्री गोखले गुणाष्टक (१८-३-१५)। कालक्रम के अनुसार 'श्री गोखले गुणाष्टक' उनकी तृतीय रचना है। प्रथम रचना 'हा गोखले' शोक-सूचक है, जिसका सृजन स्वर्गीय गोखले के प्रयाग में अस्थि-विसर्जन के समय हुआ था। यह रचना जन-वर्ग में वितरित भी की गई थी। द्वितीय रचना हिन्दी की न होकर संस्कृत की है। इस नाते गोखले-विषयक गुणाष्टक हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में महत्वपूर्ण रचना है।

यह गुणाष्टक भावना-प्रधान न होकर घटना-प्रधान है। संपूर्ण काव्य में मुख्यरूपेण उनके जीवन की घटनाओं का उल्लेख है, जिनसे देश और समाज प्रभावित हुआ है। चारित्रिक आदर्श एवं प्रतिभा ये ऐसे दो गुण उनमें विद्यमान थे, जिनसे जीवन में उन्हें सदैव सफलता मिली।

वह अठारह वर्ष की अवस्था में ग्रेजुएट, बीस में प्रोफेसर, इक्कीस में एक पत्र के सम्पादक, पच्चीस में प्रान्तीय कांग्रेस के मन्त्री, उन्तीस में कांग्रेस के मन्त्री, छत्तीस में कमीशन के प्रमुख साक्षी, चौंतीस में प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के सदस्य और चालीस में ब्रिटिश साम्राज्य के राष्ट्रीय दूत आदि थे।

वह युग के एक प्रमुख देश-भक्त थे। अंग्रेजों की पराधीनता उन्हें खटकती थी। उन्हें इस बात से बड़ी व्यथा थी कि देश में पाश्चात्य भावनाएँ तीव्रता से प्रविष्ट हो रही हैं, किन्तु अंग्रेज स्वार्थवश [illegible] दमन के [illegible] से और भारतीय

सस्कृति तथा भारतीयता के अध्ययन का प्रयास नहीं करता।[१]

इन्ही भावनाओ से प्रेरित होकर उन्होने भारतीयो के प्रति सद्भावना, उनमे शिक्षा प्रसार, हरिजनोद्धार, भारतीय औद्योगिक विकास एव अफ्रीका मे बसे हुए भारतीयो की सुव्यवस्था आदि के प्रयास किये थे। भारत-सेवक-समिति (Servants of Indian Society) की सस्थापना से केवल निर्वाहार्थ वृत्ति लेकर देश की सेवा करने के लिए युवको को दीक्षित करने के श्रेय उन्ही को हैं।

इन सब विशेषताओ के कारण ही गोखले का व्यक्तित्व देश के लिये महा-महिम और गरिमामय रहा है। उनके निधन से पाठक जी का हृदय उन्मन हो इस प्रकार रुदन कर उठा है —

मनुज मात्र के मध्य जिसे पूरन ममता थी।
निज-परता से शून्य सर्वजन मे समता थी॥
जो पर-दुख को देख सुखी नहिं रह सकता था।
पर-सुख-साधन हेतु सभी दुख सह सकता था॥
पर-सेवा वृत्त-नैम अटल जिसने उर धारा।
जीवन भर प्यारे स्वदेश पर तन मन वारा॥
* * *
अरे बतादो कोई कहाँ पर है वह प्यारा।
भारत का प्रिय पुत्र गोखले प्राण हमारा॥[२]

वर्ण्य विषय एव वर्णन के साधन का जहाँ तक सम्बन्ध है, 'श्री गोखले गुणाष्टक' सामन्तीय परम्परा के अन्तर्गत ही आता है। उनमे जिन विचार-धाराओ का सन्निवेश है, वे पूजा और वन्दना की ही सामग्री है, इससे इस काव्य में भी शास्त्रीयता का गहरा पुट है।

राष्ट्रीयता के विकास और देश के गौरव को अक्षुण्ण रखने के लिए एकता की भावना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य थी। इस भावना को प्रोत्साहन देने के लिए ही गोखले ने साम्प्रदायिक विचारधारा का उन्मूलन कर सहृदयता का प्रसार किया। इस क्षेत्र मे अग्रसर होने के लिए श्री 'रानाडे' से उन्हें प्रेरणा

1. Gopal Krishna Gokhale 'Some Great Men of India' Longman's Green & Co, 1928
२. श्रीधर पाठक, 'हा गोखले', मनोविनोद, १९१७ ई०, पृष्ठ १३६।

मिली थी। कालान्तर में जब गान्धी जी अफ्रीका से भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व करने के लिए आए तब गोखले द्वारा व्यवहृत विचारधाराओं को उन्होंने भी अपनाया।

जाति-पाँति-मत-जनित भेद-भ्रम जियसों टार्‌यो।
जग-सेवा-वृत-नेम प्रेम-सत-पथ प्रचार्‌यो॥

* * *

जय हिन्दु-अहिन्दुन-वृन्द महँ समता-संदर्सन-करन।
जय-जय प्रबुद्ध वर बुद्ध-सम-द्रुत-अबुद्ध-तामस-हरन॥

(छप्पय २)

१९०५ एवं १९०६ ई० में वह देश के लिए आवश्यक सुधारों के सम्बन्ध में विचार-विनिमय के लिए इंग्लैंड भी बुलाये गए थे। लार्ड मार्ले, जो उस समय भारत-सचिव थे, उनके अभिमत जानकर बड़े ही आभारी हुए थे।

सासक-गनहिं सुसासन को सुविधान सिखायो।
भारत-हित-उपयुक्त नीति को तत्व बतायो॥
सत्य-समर्थन-हेतु रह्यो सन्नद्ध सदा हीं।
पर-हित-काज-सचित स्वयम् चिन्ता कछु नाहीं॥

(गुणाष्टक ३)

गोखले के जीवन की अन्य घटनाओं का भी कवि ने सहृदयतापूर्वक उल्लेख किया है।

जय भारत-सेवक-समिति-सम्प्रदाय-थापन-करन।

(छप्पय ४)

* * *

स्वजन-उधारन हेतु अफ्रिका देस पधार्‌यो।

(छप्पय ५)

* * *

अल्प वृत्ति पै करी प्रान अध्यापकताई।
शिक्षालय के हेतु द्रव्य-भिक्षा-व्रत लीनो॥

(छप्पय ६)

* * *

जय 'अनुल्य-अनिवार्य-सर्व-शिक्षा-प्रस्तावक।'

(छप्पय ७)

देश जब मानसिक विकास न हो सकने के कारण भटक रहा था, उद्देश्य विहीन होने के कारण स्वार्थान्ध हो जब देशवासी परस्पर टकरा रहे थे और मुक्ति तथा निष्कृति का वास्तविक अर्थ न समझने के कारण किंकर्त्तव्य-विमूढ हो रहे थे, उस समय गोखले देश के लिए कर्णधार ही सिद्ध हुए हैं। कवि ने भावुकता से निम्न पंक्तियाँ कहकर उत्प्रेक्षा को भी सार्थक कर दिया है—

मनु अवनि अवन कोउ अवतर्‌यो स्वर्गदूत नर रूप धरि
पुनि गयो बहुरि हरि-धाम व्रत-विधि-प्रेरित शुचि काम करि।
(छप्पय ३)

उपर्युक्त के कारण ही कवि को विश्वास है कि गोखले भारतीय वातावरण मे सदैव अमर रहेगे और युगो-युगो तक स्मरण किये जावेंगे। तथा—

जस मंजु गान करिहैं मुदित सतत संत बुधवर अमर।

इस काव्य मे कवि ने छप्पय छन्द एव व्रजभाषा को वर्णन के लिए अपनाया है। सामासिक शैली का पूर्ण प्रयोग है।

देहरादून (रचना-काल—कार्तिक शुक्ल २, १९७२ वि०)

व्रजभूमि के निवासी होते हुए भी इलाहाबाद मे रहकर और बालकृष्ण भट्ट के संसर्ग मे आकर श्रीधर पाठक ने पूर्वी बोली में अपनी 'देहरादून' रचना प्रस्तुत की। यो व्रजभाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था और खडी बोली के वह आदि आचार्य ही समझे जाते थे तथापि उन दोनो को पृष्ठभूमि मे लेजाकर एक विशेष 'बोली' मे रचना करना उनके स्वच्छन्दतावादी हृदय की मनोवृत्ति थी। पाठक जी के निधनोपरान्त श्री रामदास गौड ने उनके कुछेक संस्मरणों का उल्लेख किया है, उनमे से उनके एक संस्मरण से पाठक जी की 'देहरादून' रचना पर भी प्रकाश पडता है।

'पाठक जी बडे विनोदी थे। उदासी उनके चेहरे पर कभी नही देखी गई। वह अक्सर लोगो की भाषा की विशेषताओ की नकल किया करते थे। उनके मुँह से भट्ट जी (प० बालकृष्ण भट्ट) की इलाहाबादी बोली की नकल मुझे बडी प्यारी लगती थी। भट्ट जी की मृत्यु के बाद पाठक जी उन्हें बहुत स्मरण किया करते थे। एक बार उन्होंने 'देहरादूनवा' की एक प्रति मुझे भेंट की। मैंने 'रेयलिया', 'मेइलिया', 'सहबबवा' 'असबबवा' आदि देखकर उनसे पूछा कि इस प्रयोग मे क्या विशेषता है? बोले—'बरवा छन्द का यही नियम है'। मैंने कहा कि मैंने किसी रीति ग्रंथ मे ऐसा नियम तो नही देखा है। बोले—देखा तो मैंने भी नही है पर मैं तो भट्ट जी को प्रमाण मानता हूँ। वह कहा करते थे कि बरवा

छन्द में पहले और तीसरे चरण में अन्त में 'वा' 'या' का आना बहुत जरूरी है। इसीलिये तो उसे बरवा कहते हैं।"[1]

'देहरादून' काव्य से यह पूर्णरूपेण स्पष्ट है—

भले ही पाठक जी ने भट्ट जी की नकल की हो अथवा विनोदी स्वभाव के कारण 'वा' 'या' परक प्रथम और तृतीय चरण लिखे हों, यह रचना जन-स्तर के समीप अवश्य पहुँच जाती है। प्रान्तीय भाषा के स्थान पर 'बोली' को अपनाना काव्य को लोक-भूमि पर लाने का प्रमाण प्रस्तुत करता है। केवल यह भावना ही इतनी बलवती है, जिससे इस काव्य को स्वच्छन्दतावादी काव्य की कोटि में रखा जा सकता है।

खाँसी के रोग से पीड़ित होने पर डाक्टरों ने पाठक जी को १९१२ ई० में देहरादून जाने का सुझाव दिया। वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य और वन-शोभा उन्हें पहले से ही इतनी प्रिय थी कि पाठक जी ने उसे स्वीकार कर लिया। वहाँ के लिये वह प्रस्थित भी हुए। वहाँ पहुँचे भी, किन्तु लाभ न होने की दशा में वह दस दिन शिमला में ठहरकर इलाहाबाद लौट आये। इस रुग्ण परि-भ्रमण और प्रवास में जिस जो कुछ देखा व अनुभव कर सके घर पर रुग्ण अवस्था में ही समय-यापन के लिए 'बरवा' में लिपिबद्ध करने लगे। यह छन्द आपको बहुत प्रिय है।[2]

इस यात्रा में और देहरादून के निवास में कवि ने निम्नलिखित विषयों को स्पर्श किया है। रेल प्रस्थान—रेल मार्ग—अवध-रुहेलखण्ड—हरिद्वार—सुरंग प्रवेश—वनस्तवन—गिरिस्मर्ग—देहरा प्रवेश—स्टेशन—पथिक समाज—आर्य मन्दिर—देहरा शहर—रिस्पना—लाटभवन—रामदास गुरुभवन—निज डेरा—मसूरी दर्शन—देहरा त्याग आदि।

इस काव्य की रचना में कवि ने वर्णनात्मक परिपाटी का ही आश्रय लिया है, किन्तु कवि-सुलभ भावुकता का उन्होंने यहाँ भी परित्याग नहीं किया। इस कारण काव्य-निर्वाह में कवि द्वारा न्याय हो ही सका है। सरल और व्यावहा-रिक शैली में ही कवि ने इसे चित्रित किया है। काव्य की प्रारम्भिक पंक्तियाँ ही द्रष्टव्य हैं—

---

1. स्व० पाठक जी के कुछ संस्मरण—रामदास गौड़ एम० ए०, 'विशाल भारत' जनवरी १९२८ (माघ १९८४)।
2. सम्पादक श्रीधर पाठक—देहरादून—'विज्ञप्ति' प्रथमावृत्ति, पृष्ठ १ (पद्म कोट, इलाहाबाद)।

ग्यारह मई महिनवा तेरह साल
अदितवार, अध-दिनवा धूप दुकाल
कठिन घोर दुपहरिया लुअ्र फर जोर
चलेउ तेज असवरिया टेसन ओर
तुरतहि सब असवववा बिलटी कीन
भारी भीर सववबा सँग नहि लीन
बैठत तुरत रेयलिया सोटी दीन
बिजु अस चपल मेअलिआ चाल प्रवीन
पहिले चलिस चिविलिया कोमल चाल
पुनि पल पल अलबेलिया बढिस बेहाल[1]

उपर्युक्त पक्तियो का विकास स्वाभाविक गति से ही अग्रसर हो सका है। 'महिनवा' 'दिनवा' 'दुपहरिया' 'असवरिया' 'असववबा' 'सववबा' 'रेयलिया' 'मेअलिया' 'चिविलिया' 'अलवेलिया' तथा अवशिष्ट काव्य मे इस प्रकार के प्रयोगो ने इस काव्य को बडा ही मधुर और ललित बना दिया है। इस प्रकार के प्रयोग कवि द्वारा 'अल्पार्थ' मे और कही-कही विनोद मे भी प्रयुक्त किये हैं। 'महीना' की अपेक्षा 'महिनवा', दिन की अपेक्षा 'दिनवा' एव 'दोपहरी' की अपेक्षा 'दुपहरिया' आदि मे अधिक सारल्य एव माधुर्य है। इन ग्रहीत नवीन प्रयोगो मे मूल शब्दो की अपेक्षा उच्चारण मे कम प्रयास नही करना पडता है, परन्तु दीर्घ आकारान्त और ईकारान्त आदि लघु होकर मुख के लिये 'सुकरता' अवश्य सृजित कर देते हैं, जिससे शब्दो के उच्चारण मे किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव नही होता।

इन प्रयोगो के सम्बन्ध मे पाठक जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरिधर पाठक का निम्न कथन है—

इस बरवा मे पूर्वीय प्रयोगो का प्राधान्य है और 'वा' प्रत्यय का अप्रतिरुद्ध व्यवहार किया गया है। यही इस पद्य की विशेषता है। सामान्यत: 'वा' प्रत्यय का प्रयोग अल्पार्थ मे हुआ करता है जो कि इसका प्रकृति प्रयोजन है, परन्तु इस पद्य मे अधिकतर पाद-पूर्ति वा विनोद-वृद्धि की दृष्टि से इसे स्थान दिया गया है। कही-कही स्नेह वा वात्सल्य दुग्ध भी इस विचित्र कामधेनु से दुहा गया है और कही कोई और प्रयोजन भी निकाला गया है। × × × 'वा'

---

१ देहरादून (पक्तियाँ १–१०)।

प्रत्यय स्वयं दीर्घाकारान्त होकर अपने पूर्व वर्णों को ह्रस्व कर देने की निर्दि रखता है अर्थात् जिस शब्द के अन्त में यह युक्त किया जाता है उसके शेष स्वरों को यदि वे दीर्घ हों, ह्रस्व बना देना है। अकारान्त और आकारान्त पुल्लिग शब्दों के साथ प्रायः इसका प्रयोग होता है। इकारान्तों के साथ यह 'या' हो जाता है और उकारान्तों के साथ 'वा'; अकारान्त और आकारान्त स्त्रीलिंगों के साथ यह 'इया' रूप धारण कर लेता है।[1]

पाठक जी ने सनातनी वातावरण में जन्म लिया था और उसी प्रकार के पारिवारिक वातावरण में वह तब भी रह रहे थे, तथापि ऐसे रूढ़िवादी वायुमंडल ने उनको सीमित एवं संकुचित दृष्टिकोण का न होने दिया था। उन का हृदय पूर्ण उन्मुक्त था और किसी भी नवीन पदार्थ और व्यवहार का स्वागत करने के लिये वह सदैव प्रस्तुत रहते थे। पाठक जी 'हरि-हिन्द एवं हिन्दी' के परम भक्त थे। इनके प्रति उनकी आस्था उनके सम्पूर्ण काव्यों में छितरायी हुई मिलती है। 'देहरादून' रचना में भी इन्हीं के प्रति इनकी विशेष प्रवृत्तियों का अनुभव होता है। देहरादून जाते हुए गंगाजी के प्रति उनकी निष्ठा है। इसी से गंगा-स्तवन में उनकी वाणी तत्पर दिखलाई पड़ती है।

नमो नमो गिरि-तनया अद्भुत वारि
सुर-धुनि भारत-प्रनया अघ-तरवारि
नमो ब्रह्म-द्रव-रूपिनि प्रेम-फुहार
तरल तरंग अनूपिनि गंग-सुधार
तारिनि सगर सुअनया स्वर्ग-नसैनि
बसहु सदा मो मनया सर्वसु-दैनि

(देहरादून, ३१-३७ पंक्तियाँ)

देहरादून स्टेशन पर साहिब-मेम, गढ़वाली, कूर्माचली, गोरखा, पंजाबी एवं बंगाली आदि यात्री-समाज उतरता है। उनके मध्य में युक्त प्रदेश से भी बहुत से नर-नारी उतरते हैं। अन्य प्रदेशों के यात्रियों का पाठक जी भावुकता से वर्णन करते हैं, किन्तु युक्त प्रदेश के नर-नारी सद्गुण-विहीन हैं, इसी से 'नहिं मन परत बखानत मन अनखाय'—इन लोगों का वर्णन-मात्र बस होता है। यद्यपि ये लोग आर्यवंशज हैं, इनके पूर्वजों का नाम दिग्दिगन्त में

1. सम्पादक श्री गिरिधर पाठक, देहरादून—'विवृत्ति', प्रथमावृत्ति, पृष्ठ २।

प्रसिद्ध था, दशरथ, राम और अर्जुन की ये सन्तान हैं तथापि पूर्ण अयोग्य हैं।

उनहिन केर विरजवा ये सब लोग
पै उन कर पद-रजवा-परस-अजोग
इन महँ कोउ बडपनवा उन कर नाँहि
भरि रहे अगिन अगुनवा जन जन माँहि
इरखा द्वेस दुसहवा द्रोह दु-भाव
कुत्सा क्लेस कलहवा क्रोध कु-भाव
खान पान परहेजवा छूआ छूत
भोज अभोज सुभोजवा पूत अपूत
'आठ मनुख नौ चुल्हवा' सुविदित बात
अकथ-क्लेस-दुख-मुलवा जग विख्यात
अस अस दुसह सहसवा दोसवा—अँनि
करि रही तहस-नहसवा दिन अरु रैनि
इहि कारन यह देसवा सब महँ दीन
कुमति-अधीन असेसवा बुधि-बल-हीन
पै दुख-दूरि-करनवा कोउ न उपाय
हे हरि पीर-हरनवा होउ सहाय।

पाठक जी देश मे प्रसारित बुराइयो के लिये दुखी हैं। उनका राष्ट्रीय हृदय यह भले प्रकार समझता है कि देश इन्ही बुराइयों के कारण पतन के गर्त मे गिरेगा, साथ मे वह यह भी समझते हैं कि भारत मे कोई ऐसी शक्ति भी नही है जो पतनोन्मुख देश को मुक्त करने मे समर्थ हो सके। इसी से आस्था-युक्त होकर उन्हे ईश्वर से प्रार्थना करनी पडती है—'हे हरि पीर-हरनवा होउ सहाय।'

देहरादून से मसूरी शहर अत्यधिक दूर होते हुए भी दर्शनीय है। मध्य मे हिम की श्रेणियाँ एव वन आदि सभी प्रकार से सुशोभित हैं। श्याम-घनो के आगमन से वहाँ का दृश्य बडा ही लुभावना और सुहावना हो जाता है। यह मनोहर दृश्य केवल वर्षाऋतु मे ही दृष्टिगोचर न होकर अन्य ऋतुओ मे भी होते हैं। कवि ने इस स्थल पर आलकारिक मनोहारी भाषा मे चित्रण प्रस्तुत किया है —

पुनि जब स्याम सघनवा घन घुमड़ात
गिरि वन सिखर भवनवा सबहिं दुरात
पल पल चमकु बिजुरिया छुपि छुपि जात
मनु कोउ सुरग मेहरिया उझकि लुकात
कहुँ लुटि सोन लतरिया सम लहरात
मनु लुचि सची चुनरिया-कोर लखात

* * *

कहुँ कहुँ ओट बदरवा करति उजास
जिमि सागर बिच बड़वा-अनल-प्रभास

* * *

घिरि घिरि अभ्र-अनिकवा इमि रमनीक
बाढ़नि अधिक अधिकवा लागनि नीक ।[1]

पाठक जी का यह सन्निष्ट प्रकृति-चित्रण भी लोक-भाषा की सरसता के साहचर्य से काव्य की स्वच्छन्द भावना को पुष्ट करता है। फिर नारी-परक उत्प्रेक्षाओं के द्वारा काव्य की कोमलता में और भी वृद्धि हो गई है।

पाठक जी ने देहरादून में ठहरकर सभी दर्शनीय स्थानों को देखा और प्राकृतिक सौन्दर्य का उपभोग भी किया ; किन्तु उनका खाँसी का रोग शान्त न हुआ। अन्त में वह शिमला चले गये—

तौतहिं तनिहुँ नहिंन भा जब आराम
कियेउँ प्रनाम देहरवा-देहरि-धाम
शिमला सैल सुरतया करि गुन-ग्राम
प्रस्थित भएउँ तुरतवा तब तिहि ठाम।

(पंक्तियाँ ४३६-४४०)

उपर्युक्त उद्धरणों एवं विवेचना को देखने से यह पूर्ण स्पष्ट है कि यह काव्य अपने उद्देश्यों एवं अभिव्यञ्जना-पद्धति आदि किसी दृष्टिकोण से सीमित नहीं है। मानव को सर्व-सुलभ करना स्वच्छन्दतावादी काव्य की मूल प्रवृत्ति

---

१. देहरादून, पृष्ठ २४-२५-२६।

होती है। पाठक जी के अवशिष्ट काव्यो की अपेक्षा 'देहरादून' मे यह प्रवृत्ति अधिक उपलब्ध है। इसीलिये इस काव्य को स्वच्छन्दतावादी काव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

श्री गोपिका गीत (रचना-काल—आश्विन कृष्ण १०, १६७३ वि०)

रामायण और महाभारत महाकाव्यो के नायक राम और कृष्ण मे भारतीय सस्कृति एव उसकी विचारधारा को काफी वल मिला है। इनके मर्यादापूर्ण एव सामाजिक चरित्रों की महत्ता के कारण मध्यकाल मे देश उनसे अनुप्रेरित ही नही रहा, किन्तु सस्कृति और सभ्यता को मरक्षित किये हुए अपने को गौरवान्वित भी कर सका। राम का मर्यादित चरित्र आदर्श आचरण के उपादान प्रस्तुत कर सका जव कृष्ण की सुरीली वासुरी की तान जिज्ञासुओ को दार्शनिक भक्ति और प्रेम का पाठ पढाने मे भी समर्थ हो सकी। इसी मे देश का मध्यकाल राम और कृष्णमय है। इन्हीं के आशीर्वाद से भारतीयता और हिन्दुत्व अब तक अक्षुण्ण हैं।

कृष्ण का चरित्र राम के चरित्र की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय और सरस रहा। फलत भक्ति और भावना के क्षेत्र मे प्रथम द्वितीय से अग्रणी रहा। सम्पूर्ण अष्टछाप के कवियो के काव्य की मधुर मन्दाकिनी, मीरा-काव्य की प्रेममयी वाणी की सरस सरसी तथा घनानन्द, पद्माकर एव रत्नाकर आदि के काव्य की कोमल-कान्त-पदावली की लुभावनी छटा कृष्ण के कारण ही कृतकार्य हो सकी। कृष्ण का चरित्र श्रीमद्‌भागवत मे विस्तृत रूप से है। भागवत् का दशम स्कन्ध केवल कृष्ण-गाथा को ही प्रस्तुत करता है। इसी से सम्पूर्ण कृष्ण-भक्त कवियो ने इसी स्कन्ध के भक्तिमूलक कथानक को अपने काव्य का विषय बनाया।

भागवतकार ने कहा भी है—

तव कथामृत तप्त जीवन
कविभिरीडित कल्मषापहम्
श्रवण मगल श्रीमदातत
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जना ॥

(श्रीमद्‌भागवत, दशम स्कन्ध, अ० ३१–९)

कृष्ण के चरित्र की इस महत्ता के कारण ही भारतीय वातावरण ने उस का सदैव स्वागत किया है।

श्रीधर पाठक जी के प्रपितामह, पितामह एवं उनके पिता भगवद्भक्त थे। उनमें 'ईश्वरे निश्चला भक्ति' थी जो परम्परागत रूप से उत्तराधिकार में श्रीधर पाठक जी को भी मिली थी। भक्तिमूलक परिवार में जन्म लेने के कारण पाठक जी के संस्कारों पर भक्ति-भावना का प्रभाव पड़ा था और अपने पिता की प्रसन्नता के लिये वह भक्तिपरक कविताएँ लिखा करते थे।

'श्री गोपिका गीत' श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध का इकतीसवाँ अध्याय है। रास-क्रीड़ा में कृष्ण ने अपनी आत्मा गोपियों को आनन्द-विभोर कर दिया। इस रस-प्लावन काल में ही वह सहसा अन्तर्धान हो जाते हैं। सहचरत्व के नष्ट हो जाने से गोपियों के लिये दारुण वियोग उपस्थित हो जाता है। वह रोती-कलपती कृष्ण के चरणों का अनुसरण करती हुई उन्हें ढूँढती हैं तथा अन्धकार-वृद्धि से कृष्णमय गोपिकाएँ निराश हो जाती हैं। श्रीकृष्ण की भावना में डूबी हुई गोपिकाएँ यमुना के पुलिन पर लौट आती हैं और समवेत स्वर से श्रीकृष्ण के गुणों का गान करने लगती हैं। गोपियों के यह गीत ही 'श्री गोपिका गीत' की काव्य-सामग्री है। इस अवसर पर कृष्ण के व्यष्टिगत और समष्टिगत किये हुए उपकारों को वे स्मरण करती हैं। उनका स्नेह और दुलार जो गोपियों का प्राणाधार ही रहा उसका बखान अपने तप्त हृदय की मर्म व्यथा से करती हैं। उनका विश्वास है कि कृष्ण का यह चरित्र विश्व का मंगल करने के लिये है। इसी से वे जीवित हैं और अन्त तक जीवित रहेंगी।

उपर्युक्त भाव-धारा लेकर ही पाठक जी ने अपने 'श्री गोपिका गीत' को प्रस्तुत किया है। कवि ने बालकृष्ण भट्ट के लिए लिखित 'समुपस्थिति' में इस काव्य के सम्बन्ध में लिखा भी है—'इसमें मूल बहुत छूट गया है, पर शायद कुछ बड़ा बिगाड़ नहीं हुआ, उसकी छाया यहाँ कुछ आ गई है।' पाठक जी के इस स्वच्छन्द छायानुवाद में निस्सन्देह भागवत की भक्ति-भावना की रक्षा ही हो सकी है। मूल में गोपियों के गान में जिस उद्दाम भक्ति का स्रोत उमड़ा है, भुक्तभोगी होने के कारण उनके अन्तस्तल का समर्पण जिस सरलता एवं स्वाभाविकता से व्यक्त हो सका है और जिस मार्मिकता से अपने स्वामी के लिये रुदन करती हुई वे उसकी प्रतीक्षा में हैं—वह पाठक जी के काव्य में अवश्य ही उपलब्ध नहीं हो पाता तथापि गोपियों के आलम्बन के अनुराग को व्यक्त करने में उनको काफी सफलता मिली है। कवि मितव्ययिता से अपने उन्मन चित्त की अनुरागमयी भावनाओं को व्यक्त कर सका है, जिसमें स्त्रीत्व का नारी-

सुलभ वियोग-जनित करुण व्यथा की अभिव्यक्ति हैं।

कृष्ण के जन्म से व्रज-प्रदेश सुखी तथा धन्य हुआ और जब 'गरल आप', 'व्याल ताप', 'जलद वात' एव 'वज्रपात' आदि से उसका सर्व-प्रकारेण सरक्षण हुआ तब उसे कृतकार्य हो ही जाना चाहिए था। उपकार के साथ आकर्षण के लिये उनमे सौन्दर्य और प्रेम की माधुरी भी थी। इससे गोप और गोपियो की अन्तरात्माएँ अपने लाडले के लिये ललक ही उठनी चाहिए थी। गोपियो के सयोग का जीवन आनन्द का था—रास-क्रीडा का सुधामय था—उस रास-माधुरी मे वियोग का जीवन कैसे गरलमय न हो जाता। अन्तत गोपियाँ मानवीय थी और तज्जनित विकार अपने मानस मे छिपाये थी—

महर नन्द का पुत्र तू नहीं
निखिल सृष्टि का साक्षि रूप है।
उदित हुआ वृष्णि-वश मे
व्यथित विश्व के त्राण के लिये॥ (४)

जब कृष्ण का चरित्र विश्व के मगल के लिए महत्तम है फिर गोपियो के पक्ष मे इतनी निष्ठुरता और उदासीनता उनका स्वय का दुर्भाग्य ही कहा जावेगा, इसी से उनके दर्शनो के लिए वे आकुल हैं।

स्वजन-वृन्द के क्लेश हैं हरे
सुकृत हैं करे वीरता-भरे
हम प्रभो! तेरी प्रेम-किंकरी
वदन-चद का दर्श चारु दे। (६)

इस अनुरागमय जीवन के लिए गोपियो को बहुत कुछ सहन करना पडा, फिर भी वह विश्वासी अपने विश्वास को न निभा सका।

पति सुतादि की लाज छांड़ के
तव समीप हैं आगई छली।
मधुर गीत से मोह के हमें
उचित है अहो त्यागना नहीं। (१६)

'छली' शब्द के प्रयोग मे गोपियो के प्रेम की निष्कपट भावना व्यक्त हो उठी है। उनका अपना समर्पण अन्तरात्मा से निस्वार्थ था। वे क्या समझती थी कि उनका प्रेमी इस प्रकार वियोग द्वारा उनके हृदय पर आघात देकर

अपनी दारुण निष्ठुरता का व्यवहार करेगा ।

अपनी वाणी में गोपियाँ अपने प्रियतम के लिए करुण व्यथा छिपाये हैं । उनके निष्करुण व्यवहार के लिए उनके हृदय में जो पीड़ा है उसका अनुभव करके दर्शन के लिए याचना करना गोपियों के पक्ष की बड़ी बात है । हम यह तो कह सकते हैं कि इस स्थल पर भी नारी का चिरन्तन नारीत्व युगों-युगों की विनम्रता और शालीनता लिए खड़ा है । पाठक जी इस छायानुवाद द्वारा भागवत्कार की मूल भावनाओं को संरक्षण प्रदान करने में अवश्य ही सफल हो सके हैं, इसमें सन्देह नहीं ।

भागवत्कार ने गोपियों को कृष्ण की आत्मा कहकर अपने प्रियतम में एकाकार हो जाने के लिए उनकी आकुलता की स्वाभाविकता को प्रमाणित किया है । वस्तुत इस भावना से भागवत का अध्ययन करने में विशेष आनन्द मिल सकता है । यदि हम उनके आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध को छोड़ भी दें तो हमें उनके उदात्त प्रेम की अनुभूति होती है, जो विश्व में स्वाभाविक भी है । इस प्रकार 'श्री गोपिका गीत' में वर्णित प्रेम भी स्वच्छन्दतावादी भावना का पूर्ण स्वरूप प्रस्तुत करता है, इसमें संदेह नहीं ।

काव्य-रचना के दृष्टिकोण से १-२-५-८-१०-११ और १२ संख्या के छन्दों में अवश्य पाठ-दोष है । सर्वत्र 'तेरे' शब्द के प्रयोग में ही त्रुटि है । इस दोष को पाठक जी स्वयं जानते थे । इसी से पाठ-क्रम में उन्होंने स्पष्ट लिख दिया है "लघु के स्थान में व्यवहृत गुरु लघुवत उच्चार्य ।" तेरे (SS) के स्थान पर कवि (IS) अपेक्षित समझना है । समश्लोकी छन्द के प्रयोग में कवि ने संस्कृत श्लोक का ही प्रयोग नहीं किया है ; परन्तु इस तुकान्त के युग में भी उन्होंने इसे अतुकान्त ही रखा है । भाषा के सम्बन्ध में भी कवि ने युग की माँग के अनुसार खड़ी बोली का ही प्रयोग किया है । "आप ही खड़ी हिन्दी मानने वाले हृष्टि पड़ी और उनमें जो प्रथम श्लोक बना वह अच्छा लगा ।" साथ ही सरल अनुप्रासमयी भाषा के प्रयोग से काव्य में यत्र-तत्र शब्द-सौष्ठव भी विद्यमान है ।

भारत गीत (रचना-काल—द्वि० संस्करण १९८५ वि०)

हिन्दी काव्य की राष्ट्रीयता का प्रारम्भिक स्वरूप भारतेन्दु-युग में स्पष्ट परिलक्षित होता है, जिसका संकेत यथास्थान किया जा चुका है । जिस प्रकार आधुनिक हिन्दी-साहित्य की प्रगति के लिए कुन्दन, सभी प्रवृत्तियों का केन्द्र स्वरूप भारतेन्दु जी रहते हैं, उसी प्रकार राष्ट्रीयता की गतिविधि का प्रस्फुटन

भी उन्ही के द्वारा हुआ है। उस युग के बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रताप नारायण मिश्र एव राधाकृष्ण आदि सभी कवियो मे यह प्रवृत्ति विद्यमान है।

श्रीधर पाठक भारतेन्दु एव द्विवेदी-युग के मध्य की एक महत्वपूर्ण कडी हैं। वह भारतेन्दु-युग के अभ्युदयशील कवियो मे मे थे। इसमे राष्ट्रीयता की भावना उन्हें भी अभिप्रेरित किये विना न रह सकी। पाठक जी ने अपनी भक्ति-भावना और प्रतिभा मे उसे यथासाध्य पुष्ट किया और द्विवेदी-युग की राष्ट्रीय प्रगति के लिए उत्कृष्ट आदर्श रक्खा। कालान्तर मे माखनलाल चतुर्वेदी एव मैथिलीशरण गुप्त द्वारा देश के राष्ट्रीय सघर्ष के साथ-साथ यह भावना पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त हुई। पाठक जी मे देश-भक्ति की यह भावना थी—

वन्दनीय वह देश, जहाँ के देशी निज-अभिमानी हों।
बांधवता मे बंधे, परस्पर परता के अज्ञानी हो ॥
निन्दनीय वह देश, जहाँ के देशी निज-अज्ञानी हों।
सब प्रकार पर-तन्त्र पराई प्रभुता के अभिमानी हो ॥[1]

देश के प्रति स्वाभिमान रखना और एकता के सूत्र मे बंधे रहना—राष्ट्रीयता के सम्पोषण के लिए पाठक जी इन्हे परमावश्यक समझते हैं, किन्तु यही भावना आगे चलकर 'भारत-भारती' मे मानवमात्र को यो चुनौती दे रही है—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है ॥

उनका 'भारत-गीत', यो देश-भक्ति के गीतो का सग्रह है, किन्तु इस काव्य के द्वितीय सस्करण मे 'भ्रमर-गीत' एव 'चरगीत' सग्रहीत कर दिए गए हैं और परिशिष्ट १ तथा २ मे क्रमश 'विज्ञान-मगल', 'सान्ध्य अटन', 'आर्य महिला' एव मजदूरनियो के गाने योग्य देश-भक्तिपरक गीत भी सम्मिलित कर दिए गए हैं। इन रचनाओ मे राष्ट्रीय भावना के गीतो से विषयान्तर हो गया है जिनकी अपनी अलग महत्ता है। इन भारत-गीतो के अध्ययन से पाठक जी की राष्ट्रीयता-परक निम्न प्रवृत्तियो पर प्रकाश पडता है—

(१) देश के प्रति पूज्य भावनाओ का आरोप।
(२) देश के अतीत गौरव एव वर्तमान की शोचनीय परिस्थितियों का ज्ञान।
(३) देश के प्राकृतिक सौन्दर्य एव अन्य विभूतियो का उल्लेख।

---

१. श्रीधर पाठक—भारत गीत, स्मरणीय भाव, पृष्ठ २५, द्वि० सस्करण १६८५ वि० (गगा पुस्तकमाला, लखनऊ)।

(४) सुषुप्त देश व देशवासियों के उत्थान के लिए सम्यक् चेतावनी आदि-आदि।

(१) मातृभूमि का हृदय विशाल और उनकी भावनाएँ उदार होती हैं। देश की क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर सभी के लिए स्वतन्त्र रूप से उन्मुक्त हैं। सभी अपनी अभिरुचि के अनुकूल उनका उपभोग करते हैं और उसी से अन्न-जल से पोषित होकर बलवान होते हैं। इससे मातृ-भूमि के प्रति पूज्य भावना का होना स्वाभाविक ही है:—

त्रिभुवन-वन्द्य भारत-धाम
त्रिजग-सम्पति-सुकृत-सुख-थल, त्रिजग छवि-अभिराम।[1]

वन्दहुँ मातृ-भारत-धरनि
सकल-जग-सुख-श्रेनि, सुखमा-सुमति-सम्पति-सरनि
ज्ञान-धन, विज्ञान-धन-निधि, प्रेम-निर्झर-झरनि
त्रिजग पावन-हृदय-भावन,-भाव-जन-मन-भरनि
वन्दहुँ मातृ-भारत-धरनि।[2]

पाठक जी अपने देश के केवल अभिनन्दन से ही सन्तुष्ट न होकर विश्व की तुलना में उसे श्रेष्ठ ठहराकर उसके गौरव की अभिवृद्धि भी करते हैं। सभ्यता और संस्कृति के सम्बन्ध से भारत को विश्व-जननी का गौरव प्राप्त हो रहा है, इससे इस प्रकार का कथन अतिशयोक्ति-पूर्ण भी नहीं है:—

जय अति सुन्दर, जय गुन-कन्दरि
जगत-जोति, जग-सृष्टि-धुरन्धरि
श्रीधर प्रान प्रान बलिहारी
जय जय भारत भूमि हमारी।[3]

प्यारा देश जय देशेश
अजय अशेष, सदय विशेष
जहाँ न सम्भव अघ का लेश

१. श्रीधर पाठक—भारत गीत, भारत धाम, पृष्ठ २८।
२. ,, ,, भारत धरनि, पृष्ठ २१।
३. ,, ,, भारत भूमि, पृष्ठ २३।

सम्भव केवल पुण्य-प्रवेश
जय जय प्यारा भारत-देश ।[1]

पाठक जी ने तुलसी की 'श्री रामचन्द्र कृपाल भजु मन हरण भव-भय दारुणम्' की पद्धति पर ही 'नौमि भारतम्' और 'भारत वन्दना' लिखी हैं और अभिनव जयदेव की 'गीत गोविन्द' की अनुस्वारान्तमयी मधुर शैली मे 'भारताष्टक', 'भारत स्तव' एव 'स्वदेश पचक' आदि लिखे हैं।

१ सुख-धाम, अति-अभिराम-गुण-निधि, नौमि नित प्रिय भारतम्
सुठि सकल-जग ससेव्य सुभ-थल, सफल-जग-सेवा-रतम् ।[2]

२. भजे भारतम् चारु-शोभाऽभिरामम्
शुभं, शाश्वतं, भारती-भव्य-धामम्
पद पैतृकं मातृपीठ ललामम्
सदा सदयेऽह मुदा पुण्य-नामम् ।[3]

उपर्युक्त उदाहरणो मे प्रथम तुलसी की और द्वितीय अभिनव जयदेव की काव्य-पद्धति पर रचित है।

(२) देश के अतीत के गौरव के साथ वर्तमान की शोचनीय परिस्थितियो के चित्रण भी राष्ट्रीय भावनाओ मे बडे सार्थक होते हैं। एक से उत्कर्ष द्वितीय से अपकर्ष दिखलाकर कवि पाठक की सहानुभूति का अधिकारी हो जाता है। उत्कर्ष मे जहाँ स्वाभिमान और अहकार आ जाता है अपकर्षण मे उन्ही पर आघात लगने लगता है, जिससे पाठक तिलमिला जाता है। उसकी उस करुण स्थिति में ही देश के उत्थान और पतन की बात कहकर कवि उसमे देशभक्ति की स्थायी भावना जगा देता है :—

उन्नत-मन, अति उदार, साधन-धन-सिद्धि-द्वार
जतन-रतन-निधि अपार, दीन दीनताऽरी
सुर-तरु कै कामधेनु, कै हर सुख मांग-देनु
धन-पति-भंडार ऐन, जासु जग भिखारी
यूरप, अफगान-पाल, जाचक कीन्हे निहाल
विश्वपाल, कै गोपाल नटवर गरधारी

१. श्रीधर पाठक, भारतगीत, देशगीत, पृष्ठ २६ ।
२ " " नौमि भारतम्, पृष्ठ ३३ ।
३. " " भारताष्टक, पृष्ठ ३६ ।

कै यह कोई कमल-फूल, कोमल आनन्द-मूल
फूल हेत रम हूल, भौंर भीर भारी।[1]

अपनी सम्पन्नता और उदारता से भारत ने सभी ही देशों को जो उसके सम्पर्क मे आये हैं, उपकृत किया है, किन्तु कालान्तर मे उसके दुर्भाग्य ने उसे पतन के गर्त मे गिराकर उसके सौभाग्य को छीन ही लिया।

प्रेम का था यह आदि निवास।
सभ्यता, विद्या का घर खास॥
प्राप्त था सब सुख बिना प्रयास।
व्याप्त था विक्रम विभव विकास॥
द्रोह के पथ मे नहीं पडे।
बिछड़ने वाले यों बिछड़े।
पिछड़ने वाले यों पिछड़े॥

* * *

उन्होंने लेकिन यह क्या किया।
किए पर एक दम चौका दिया॥
सोमरस छोड द्रोह-मद पिया।
प्रेम का गला घोट दिस दिया॥
गिरे हो औंधे खोद गडे॥
बिछड़ने वाले यों बिछड़े।
पिछड़ने वाले यों पिछड़े॥

* * *

शीघ्र ही बढ़ा देश का क्लेश।
बदल गई सूरत बिगड़ा वेश॥
मेल का नाम हुआ निश्शेष।
फूट का धाम हो गया देश॥
पुण्य के फिसल पाँव बिछड़े॥
बिछड़ने वाले यों बिछड़े।
पिछड़ने वाले यों पिछड़े॥[2]

---

१. श्रीधर पाठक—भारत गीत, भारत-प्रशंसा, पृष्ठ ८६।
२. " " बिछड़ने वाले यों बिछड़े, पृष्ठ ६१-६२।

ऐसा कौन-सा व्यक्ति होगा जो देश के इस प्रकार के पतन की करुण गाथा सुनकर उसको पुन गौरव-युक्त करने के लिए प्रोत्साहित न हो उठे। राष्ट्रीय कवि-कर्म की यही सार्थकता है—जिसमे पाठक जी पूर्ण सफल है।

(३) एक देश-भक्त के लिए अपने देश का कण-कण तक पूज्य होता है। मातृभूमि के उपकारो से उपकृत भावुक उसकी रजकण तक मे प्यार-भरी मुस्कान और जीवन का अमर सदेश प्राप्त कर फूला नही समाता। वह उसके वन, पर्वत, नदी, नद और नाले मे विशुद्ध प्रकृति का साहचर्य अनुभव कर तृप्त हो जाता है और उसकी वाणी उनके अनुपमेय सौन्दर्य के मिस देश का गुण-गान गा उठती है।

भारत हमारा कैसा सुन्दर सुहा रहा है।
शुचि भाल पै हिमाचल, चरणों पै सिन्धु-अचल
उर पर विशाल-सरिता-सित-हीर-हार-चचल
मणि-बद्ध-नील-नभ का, विस्तीर्ण-पट अचचल
सारा सुदृश्य-वैभव मन को लुभा रहा है॥[1]

* * *

सेत हिमगिरि, सुपय सुरसरि, तेज-तप-मय तरनि
सरित-वन-कृषि-भरित-भुवि-छवि-सरस-कवि-मति हरनि
वदहुँ मातृ-भारत-धरनि।[2]

प्रकृति-चित्रण के साथ-साथ कवि भारत की महान विभूतियो को भी स्मरण करता है। कृष्ण, राम एव बुद्ध आदि का वर्णन करते हुए पाठक जी निम्नलिखित विभूतियो को अपने काव्य का विषय बनाते है।

त्यो नृप विक्रम, अशोक, कीरति-सुरभित-त्रिलोक
दीने अघ पुज रोकि पुण्य-डोर डारी
शकर, नानक, जुगिन्द त्यो ही श्री गुरु-गुविन्द
अन्तिम मुनि दयानन्द सुमिरत सुख भारी
जय-जय भुवि-भार-हरन, भारत-हितकारी।[3]

---

१. श्रीधर पाठक, भारत गीत, सुन्दर भारत, पृष्ठ ६५।
२. " " भारत-धरनि, पृष्ठ २१।
३. " " भारत-हितकारी, पृष्ठ ६१।

इसी प्रकार 'हिन्दी-हितकारी' के अन्तर्गत पाठक जी हिन्दी के नवरत्न कवियों का स्मरण करते हैं।

(४) अतीत में यह देश गौरव, अपनी सभ्यता और संस्कृति में विश्व के शीर्ष पर रहा। अब पराधीनता में इसका इतना अधःपतन हुआ कि अब गर्व करने के योग्य भारत में इसके पास कुछ भी नहीं। सम्पन्नता के स्थान पर निर्धनता का करुण-क्रन्दन—उसी के बच्चे दाने-दाने के लिए तरसें, सभ्यता और संस्कृति के स्थान पर अनैतिकता और अज्ञानता का आधिपत्य—उसी के सपूत कपूत कहलाये जाकर पग-पग पर ठोकरें खाएँ, सभी प्रकार से स्वतन्त्र और देवभूमि का दम भरने वाली भूमि अब परतन्त्र हो अपने दुर्भाग्य के लिए आठ-आठ आँसू रोये और विश्व में अपमानित हो—यह परिस्थितियाँ देश के लिये महान व्यथापूर्ण और निराशाजनक थीं। पाठक जी का भावुक हृदय देश के इन मार्मिक पतनों से तिलमिला उठा। इनके सम्मान की रक्षा के लिए, देश और देश-वासियों को जागरूक करने के लिए उन्होंने अपनी वाणी से प्रेरणा-प्रद और उत्साह-वर्द्धक शंखनाद किया :—

भारत, चेतहु नींद निवारी
बीती निशा उदित भये दिन-मनि चटकी भयो सवारो
निरखहु यह शोभा-प्रभात वर प्रभा, भानु की अद्भुत
जिहि प्रकार क्रीडा-कल्लोल-मय विहग करहिं प्रात-स्तुत

* * *

गहरी नींद परे मत सोवहु, कान हमारी मानहु
"सोय खोय जागत पावत" जग-प्रचलित सत्य अनुमानहु।[1]

निस्संदेह भारत अपनी आत्मलीनता को भूल जाने के कारण ही संसार में इतना निम्न हो गया अन्यथा कौन देश उसकी तुलना में खड़ा हो सकता था। इसी से 'सोवत खोवत जागत पावत' ध्वनित करते कवि ने पुनः उसे जाग्रत करने का संदेश सुनाया है।

नवयुवक राष्ट्र-वृन्द किसी भी राष्ट्र की आशा हैं। यदि वे अपने कर्तव्य को सर्वोचित रूप से समझ लेते हैं तो देश का दुर्भाग्य सौभाग्य में परिणत हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं। कवि ने इस आपद् परिस्थिति में देश को सुखी करने के लिए उन्हें भी सचेत किया है —

1. श्रीधर पाठक, भारत गीत, भारतोत्थान, पृष्ठ ५१।

ए हो ! नवयुववर, प्रिय छात्र-वृन्द
भारत-हृदि-नन्दन, आनन्द-कन्द

* * *

शैशव-गुन-सम्भव, नव नव तरग
नव वय, नव विद्या, नव-युव-उमग
बाढहु भुवि स्वर्गिक सेवा के हेतु
फहरै जग भारत कीरत की केतु ।[1]

आगे 'चरगीत' के अन्तर्गत भी पाठक जी चरो को देश-व्रत का पाठ ही पढाते हैं —

मन में अटल देश-व्रत भरले
तन मे अतुल तेज-बल भरले
शुभ सकल्प प्रेम-प्रण करले
तज दे छल-छन्दे ।
द्वेष के तज दे छल-छन्दे ॥
देश की सेवा कर बन्दे ॥[2]

पाठक जी की राष्ट्रीय प्रवृत्ति के इस सक्षिप्त विवेचन से यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि भारतेन्दु-युग मे जिस राष्ट्रीय भावना का प्रस्फुटन हुआ था उसकी अपेक्षा पाठक जी की वाणी मे अधिक बल और प्रभाव है। भारतेन्दु-युग मे इस दृष्टिकोण के सम्बन्ध मे सीमित भावनाएँ हैं। राजभक्ति के कारण उस युग के कवि स्वतन्त्रतापूर्वक अधिक कहने मे समर्थ भी न हो सके थे, किन्तु पाठक जी के काव्य में इस सकीर्ण भावना का परित्याग मिलता है। इस प्रकार पाठक जी की वाणी ने राष्ट्रीयता को नव-जीवन से प्रतिष्ठित कर द्विवेदी-युग मे अधिक स्वच्छन्दता से खेलने का अवसर प्रदान किया है। अनन्तर मैथिलीशरण गुप्त एव माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने राष्ट्रीय चिन्तनो द्वारा इसे शीर्ष स्थान पर पहुँचा दिया।

स—पाठक जी का गद्य-साहित्य

मूलत निबन्ध का आलोच्य विषय १८७५ ई० से १९२५ ई० तक की स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रगति पर दृष्टिपात करना है। इस भावना के कारण

---

१ श्रीधर पाठक—भारतगीत, भारत सुत, पृष्ठ ५५ ।
२. ,, ,, चरगीत, पृष्ठ १२६ ।

ही उपर्युक्त अर्द्ध शताब्दी के मध्यकाल में उसकी प्रगति का विवेचन करने का विनम्र प्रयास किया गया है। भारतेन्दु-युग में स्वच्छन्दतावादी भावना अंकुरित होकर पं० श्रीधर पाठक द्वारा पोषित हुई। अनन्तर द्विवेदी-युग में उसकी संकीर्ण एवं परम्परावादी भावनाओं द्वारा उसके विकास में व्याघात लगने पर भी पाठक जी द्वारा उसे जीवन-दान मिलता रहा। काव्य का यह नवोन्मेष १९२५ ई० तक चला। अनन्तर काव्य का यह स्वच्छन्दतावाद छायावाद में बदल गया। सम्पूर्ण निबन्ध इन्हीं काव्य-प्रगतियों पर आधारित होने के कारण इन पर ही प्रकाश डालता है। विषय काव्य से सम्बन्धित है, इसने किसी स्थल पर भी गद्य-साहित्य की प्रगति को विवेचन का विषय नहीं बनाया गया है।

आलोच्य विषय के अनुसार पाठक जी की कृतियों का अनुशीलन आवश्यक था, वह विगत पृष्ठों में किया ही जा चुका है। पाठक जी की कृतियों के सफल अनुशीलन के लिए उनका जीवन-वृत्त देना एवं व्यक्तित्व पर प्रकाश डालना भी आवश्यक हो गया। यदि ऐसी दशा में उनके गद्य-साहित्य पर प्रकाश न डाला जाता तो निबन्ध अपूर्ण लगता। केवल इसी प्रलोभन से उनके गद्य-साहित्य पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है। इसे विवेचन न समझकर केवल परिचय ही समझने की चेष्टा की जावेगी।

पाठक जी के गद्य-साहित्य में पूर्ण पुस्तक के रूप में 'तिलिस्माती मुँदरी' (१९१९ ई०) ही उपलब्ध होती है। शेष में छोटे-बड़े उनके अनेकों निबन्ध हैं, जिनमें अधिकतर 'हिन्दी प्रदीप', 'भारतेन्दु' एवं 'ब्राह्मण' पत्रिकाओं में छपते रहे हैं। उनके पत्रों की निधि भी बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है। यह पत्र श्री पिन्काट, महावीरप्रसाद द्विवेदी, बालमुकुन्द गुप्त एवं जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी आदि-आदि को लिखे गए थे। यदि यह पत्र प्रकाश में आ जावें तो तत्कालीन साहित्यिक प्रगति पर अच्छा प्रकाश पड़ सकता है।

पूर्ण पुस्तक होने के कारण 'तिलिस्माती मुँदरी' पर अलग से प्रकाश डाला गया है। 'पाठक जी की कृतियों के सामान्य परिचय' के अन्तर्गत उनके निबन्धों के (१) गम्भीर विवेचनात्मक निबन्ध, (२) कथात्मक निबन्ध एवं (३) फुट-कर एवं मनोरंजनार्थ लिखे निबन्ध तीन विभाग किये गये हैं, किन्तु हम यहाँ सभी का विवेचन एक साथ ही करेंगे। पाठक जी के पत्र अधिक संख्या में हैं, किन्तु वे अप्राप्य हैं इसी से उन पर विस्तृत प्रकाश डाल सकना कठिन है।

'तिलिस्माती मुँदरी' (या) (काश्मीर के राजा की लड़की) (रचना काल—७ मार्च, १९१६ ई०)

पाठक जी के गद्य-साहित्य मे उनके पत्रो और निबन्धो के साथ उनकी कहानी 'तिलिस्माती मुँदरी' को सन्निविष्ट किया जा सकता है। पाठक-साहित्य मे कहानी के नाम पर केवल यही रचना है। इससे इसका महत्व अवश्य बढ जाता है। पाठक जी ने 'भारतेन्दु-युग' (१८८७–१८८८ ई०) मे इस कहानी को लिखना प्रारम्भ किया था और उसकी समाप्ति 'द्विवेदी-युग' मे गद्य-साहित्य के प्रसार के द्वितीय उत्थान (१९५०–७५ वि०) मे होती है। इस रचना की इस प्रकार की प्रगति मे पाठक जी की युग के साथ रहने वाली प्रवृत्ति का भी पता चल जाता है।

नाटको एव निबन्धो की अभिवृद्धि के साथ-साथ 'भारतेन्दु-युग' मे उपन्यास लिखने की भी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। कितने ही उपन्यास अग्रेजी एव बगला से अनूदित होकर हिन्दी-जगत् के समक्ष प्रस्तुत हुए। अनूदित उपन्यासों के आदर्श मे यथासमय मौलिक उपन्यास भी लिखे गए। लाला श्रीनिवासदास (परीक्षा गुरु), बा० राधाकृष्णदास (निस्सहाय हिन्दू), प० बालकृष्ण भट्ट (नूतन ब्रह्मचारी) तथा (सौ अजान और एक सुजान) आदि इस युग के मौलिक उपन्यासकार थे। द्विवेदी-युग मे आकर उपर्युक्त परम्परा के मेल मे ही गोपालराम गहमरी, देवकीनन्दन खत्री एव किशोरीलाल गोस्वामी आदि के नाम लिए जा सकते हैं। उन्होने चटपटी और सरल भाषा मे जासूसी उपन्यास भी लिखे थे। पाठक जी के इस उपन्यास का आधार वस्तुत १८६१ ई० की एक अग्रेजी पत्र मे प्रकाशित कहानी है।

'तिलिस्माती मुँदरी' मे नौ अध्याय हैं। पाठक जी ने इसमे हिन्दुस्तानी भाषा का ही प्रयोग किया है। इसी से इसमे फारसी और अरबी के शब्दो का आजाना स्वाभाविक है। अरबी और फारसी के शब्दो के सम्बन्ध मे पाठक जी का कथन है कि "इस कारण वह (अरबी-फारसी के शब्द) हिन्दी के कुनबे में सम्मिलित हैं और उनका हिन्दी पुस्तको मे विशेषकर कहानी की पुस्तको मे व्यवहार करना मैं कोई अपराध की बात नही समझता।" उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि पाठक जी इसे कहानी का नाम प्रदान करते हैं।

इस कहानी से काश्मीर के राजा का सिंहासनच्युत होना, उसकी दोहती

को मार दिए जाने के चार बार के प्रयास एवं पुनः काश्मीर के राजा का सिंहासनासीन होना आदि घटनाओं का समावेश है। कहानी का स्थल भी केवल एक ही प्रदेश न रहकर, गंगोत्तरी, काश्मीर एवं लाहौर आदि हैं। उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि यह कहानी जीवन-व्यापी समस्या का निरूपण करती है। इससे इसका उद्देश्य लघु न होकर महान है। फलस्वरूप इस कहानी को उपन्यास संज्ञा देना ही उचित होगा।

तत्कालीन प्रकाशित जासूसी उपन्यासों की परम्परा में 'तिलिस्माती मुंदरी' भी एक कड़ी है। इस प्रकार के उपन्यासों में घटनाओं की ही प्रधानता रहती है, चरित्रों की नहीं। फलस्वरूप इस उपन्यास में केवल घटनाएँ ही आकर्षण का विषय हैं, घटनाओं से अनुशासित चरित्र गौण होकर रह गये हैं।

उपर्युक्त विवेचन से इस कहानी को उपन्यास-कोटि में रखना ही उचित होगा। फलस्वरूप उपन्यास-तत्वों के अन्तर्गत इस पर विचार करने से इसके अस्तित्व का मूल्यांकन करने में सुविधा होगी।

कथावस्तु—काश्मीर के राज-सिंहासन से च्युत वहाँ का राजा गंगोत्तरी के किनारे योगी का जीवन व्यतीत करता था। उसने गंगा में गिरे हुए दो कौओं को जीवन-दान दिया। उन्होंने आभारी होकर एक अँगूठी योगी को प्रदान की। योगी पक्षियों की बोली समझने लगा। उसने अपनी प्रिय पुत्री का कुशलवृत्त लाने के लिए कौओं को काश्मीर भेजा। कौओं से अपनी पुत्री के निधन एवं विमाता द्वारा एकमात्र दोहली के प्राण-संकट का वृत्तांत प्राप्त कर वह बड़ा दुःखी हुआ। उसने कौओं को दोहली की देखभाल के लिए काश्मीर के राजमहल में नियुक्त किया और पक्षियों की बोली समझने के लिए वह प्रदत्त अँगूठी भी दोहली के समीप भेज दी।

दोहली इच्छा होते हुए भी अपने नाना के समीप न पहुँच सकी। राजा के शिकार पर जाने पर विमाता ने बन्नू गुलाम की सहायता से दोहली के प्राण लेने के लिए विष मिश्रित रोटी दी। परन्तु तोता एवं कौए की सावधानता से उसके प्राण बचे। विमाता ने नौकर को मारना प्रारम्भ किया। तोता ने विमाता के बच्चे के पास पर्दे में आग लगाकर दोहली को संकट से मुक्त किया। इन मित्र पक्षियों की सहायता से दोहली महल से भाग निकली। पक्षियों ने उसके भोजन सम्बन्धी तथा अन्य व्यवस्थाएं कीं। दोहली की उंगली से मुंदरी के गिर जाने से उसके लिए पुनः संकट आ गया। अँगूठी विमाता के सिपाही को मिली। पर उसके द्वारा तत्काल विमाता के पास पहुँचा दी गई।

विमाता और बब्बू गुलाम की योजना से दोहती के गले में पत्थर बांधकर उसे झील मे गिराया गया, किन्तु पक्षियो एव माहगीर की सहायता से वह पुन बच गई। पक्षियो ने पुनः उस दोहती को उसके नाना के पास पहुँचाना चाहा; परन्तु दुर्भाग्य से वह एक कजरी के हाथ लग गई। वह उसे बेचने लाहौर ले गई। वहां कोतवाल की बीवी ने उसे खरीद लिया। समवयस्का होने के कारण कोतवाल की सुपुत्री दयादेयी एव दोहती (चादनी) बडे प्रेम से साथ-साथ रहने लगी। नाना को अपनी दोहती के सकुशल रहने का समाचार प्राप्त कर बडी प्रसन्नता हुई। विमाता ने लाहौर पर आक्रमण किया। प्रत्येक घर की तलाशी हुई। कोतवाल की बीवी एव दयादेयी की सहायता से दोहती मीनार मे छिप गई। काली लौंडी ने यह समाचार शत्रु-पक्ष को दिया। दोहती के स्थान पर दयादेयी लौडी बना ली गई। दोहती दयादेयी को बचाने के लिए स्वय बन्दिनी बनी। यह सभी गुलाम और लौंडी काश्मीर भेजे गए। विमाता ने दोहती को देखकर उसे लौंडियो से अलग कर लिया। इसी बीच कौवो का सदेश पाकर योगी वन-उकावो की सहायता से काश्मीर आया। उसने पुन राज्य प्राप्त किया। विमाता और बब्बू को क्षमा प्रदान की गई। दोहती का विवाह लाहौर के राजकुमार से कर दिया गया। इस नव-दम्पति को काश्मीर का राज्य सौंप कर वह योगाभ्यास के लिए पुन गगोत्तरी चला गया। दोहती के पक्षी-मित्र उसके समीप वाटिका मे रहने लगे।

उपर्युक्त कथानक से यह पूर्ण स्पष्ट है कि इसमे मानवीय जीवन-तत्व की पूर्ण उपेक्षा कर दी गई है। यथार्थ जीवन से कोसो दूर सम्भावित और असम्भावित घटनाओं से समन्वित यह कहानी परी-देश की कहानी-सी परिलक्षित होती है। इसमे न तो रस-परिपाक ही हो सका है और न उद्देश्य का स्पष्ट निदर्शन ही। घटना-प्रधान यह कहानी केवल घटनाओ का चित्रण करती चली जाती है। मानवीय पात्रो का विकास होने का अवसर ही नही आ सका है।

यह अवश्य सत्य है कि इसमें न जासूसी नकावपोश व्यक्ति दृष्टिगोचर होते हैं न वासनामय प्रेम का माधुर्य है और न जासूसो के हथकडे ही प्रयुक्त होते दिखाई पडते हैं। इन सभी के स्थान पर 'तिलिस्माती मुँदरी' का एकाधिपत्य है। उसके महत्तम प्रभाव को देखकर आश्चर्य-चकित हुए बिना नही रहा जाता। हसो द्वारा दोहती का झील पार करना, उल्लू और उल्लुन की सहायता से दोहती का मीनार से उतरना एव वन्य उकावो की सहायता से योगी का गगोत्तरी से काश्मीर पहुँचना आदि ऐसी घटनाएँ हैं, जो मानवेतर हैं।

दोहती के दुःखी जीवन में अवश्य करुणा का अंश है। विमाता कही जाने वाली नारी से वह इतनी अधिक पीड़ित है। यदि उसे पक्षियों का सहयोग न मिला होता तो उसका जीवन असम्भव ही होता। इस प्रकार की मार्मिक घटनाएँ विश्व में पग-पग पर घटित होती हैं—यह मानवीय सत्य ही इस उपन्यास का मूलाधार है।

चरित्र-चित्रण—यह उपन्यास घटना-प्रधान है, चरित्र-प्रधान नहीं। फल-स्वरूप घटनाओं के प्रभाव से चरित्र दब गए हैं। अधिकांश पात्रों का संकेत तो मिलता है; किन्तु उनके प्रमुख कार्य न होने के कारण उनके चरित्र प्रकाश में नहीं आ सके हैं। नारी-पात्रों में दोहती, पुरुष-पात्रों में जोगी एवं पक्षी-पात्रों में तोता अधिक कर्मण्य हैं, कुत्सित कार्यों में विमाता सक्रिय है और उसकी कुत्सित योजनाओं में बच्चू गुलाम भी सहयोगी है।

दोहती कोमल एवं दयालु-हृदया है। अपने उपकारियों से प्राप्त मुँदरी के खो जाने से वह अनुतापित एवं निवसित परिवार की अपराधिनी बालिका के समान ही भयभीत एवं दुःखी है। विवेकयुक्त होते हुए भी वह परिस्थितियों से चालित है। वह दैवी विधान से इतनी दुःखी है कि संसार के रूप में जो उजर मोहरा है तोता के बार-बार संकेत करने पर भी मारने को उद्यत नहीं होती। विमाता और बच्चू गुलाम को क्षमा प्रदान करने में उसकी उदार एवं कर्तव्य-शील भावनाओं का ही पता चलता है। दयादेवी के उसके स्थान पर जोगिन बना लिये जाने पर वह स्वयं बन्दी-गृह में जा पहुँचती है। इसीसे उसकी कर्तव्य भावना एवं आभार के प्रति विनम्रता टपकती है।

दयादेवी एवं हजरी के जीवन में भी स्नेह का पक्ष है। दयालु दोहती के पथ-ज्ञान से उसकी मित्र बन जाती है और उसके स्थान पर स्वयं जोगिन बनती है। उसके घर से और जोगन के विचार की स्थिति में यह उसके भोजन व अन्य सुखों की व्यवस्था के लिए तत्पर रहती है। दोहती से हजरा कहती भी उसके साथ स्नेह का व्यवहार करती है। उसे दुःख भी नहीं होने देती है।

विमाता दुष्टात्मा है और बच्चू उसका सहयोगी है। यह दोनों दोहती को पीड़ित करने का निरन्तर प्रयत्न करते हैं, उनका उचित ही प्रतिकार तोता और जोगी करते हैं। तोता दोहती के हित चिन्तन में जोगी को संदेश लाने और ले जाने में व्यस्त रहता है। विमाता के षड्यन्त्रकारी प्रयत्नों को विफल करने का श्रेय तोता और जोगी को ही है।

योगी मे अपत्य स्नेह फूट-फूटकर भरा है। वह अपनी दोहती के लिए बडा ही आकुल है। कोतवाल के गृह मे उसकी व्यवस्था से उसे सुख ही हुआ था। मुरारसिंह को सबोधित करते हुए उसने काश्मीर की भूमि मे अपना पैर रक्खा था। उसके इस कर्म मे एक दृढता है और विश्वास है। भिन्न-भिन्न स्थलो पर घटित घटनाओ को एक सूत्र मे पिरोने का कार्य योगी पर ही आधारित है।

वार्त्तालाप (सम्वाद)—अभिनयात्मक स्वरूप प्रदान करने के लिए इस उपन्यास मे सम्वाद बहुत कम हैं। जो सम्वाद हैं भी उन पर तिलिस्माती मुँदरी का प्रभाव है। यो पक्षी पक्षी-भर ही हैं, किन्तु मुँदरी के प्रभाव से उसका धारण-कर्त्ता पक्षियो की भाषा समझने मे समर्थ हो जाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पशु-पक्षी की भावनाएँ भी मानवीय भावनाओ के अनुकूल ही निसृत होती है। दोहती की अँगुली से गिरी हुई मुँदरी सिपाही को प्राप्त हो जाती है। उसमे पक्षियों की बोली समझने की शक्ति आ जाती है। सिपाही और कौवो के मध्य का वार्त्तालाप श्रवण करने योग्य है—

सिपाही—कौन जाता है ?

कौवे—हम दो कम-नसीब कौवे हैं और आपके ताबेदार हैं।

सिपाही—तुम चिडिया होकर इस तरह बात क्योकर कर सकते हो ?

एक कौवा—साहब! आपकी उँगली मे एक जादू की अँगूठी है, जिसके ज़ोर से आप हमारी बोली समझ सकते हैं और हमको मजबूरन आपके हर सवाल का जवाब देना पडता है।

सिपाही—हाँ! यह बात है ? अच्छा तो बतला किस राजा की लडकी का अभी तू ज़िक्र कर रहा था ?

कौवा—काश्मीर के राजा की लडकी का।

सिपाही—क्या खूब इस लडकी के पकडने वाले को तो पचास अशर्फी का इनाम है। क्या वह लडकी इस वक्त यही कही पर है ?[1]

मुँदरी के प्रभाव से विहीन दोहती और कजरी का वार्त्तालाप भी देखिये—

दोहती—वह तोता मेरा है और मेरा पता लगाता हुआ मेरे पास आया है। इन लडको ने मुझसे छीन लिया है—सिर्फ यह तोता ही मेरा दुनियाँ में एक दोस्त है।

कजरी—अच्छा, अगर तू अच्छी तरह रहेगी और रज न करेगी कि जिस्से उम्दा और मोटी-ताजी मालूम पडे जबकि हम तुझे लाहौर मे बेचने के लिए ले जाँय तो तेरा तोता तुझे मिल जायगा।[2]

---

१. श्रीधर पाठक—तिलिस्माती मुँदरी, पृष्ठ १२।
२. ,, ,, ,, पृष्ठ २८।

इस प्रकार के वार्तालाप उपन्यास में एक-आध स्थल पर और भी हैं। कहीं-कहीं वार्तालाप का कार्य पक्षियों के संकेत से ही निकाला गया है।

शैली—तिलिस्माती मुँदरी में साधारण रूप से दैनिक बोलचाल के शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसमें अरबी-फारसी के शब्दों के प्रयोग भी स्थल-स्थल पर हुए हैं। इस सम्बन्ध में पाठक जी की अपनी नीति थी जिसका उल्लेख उन्होंने इस उपन्यास के 'नोट' के अन्तर्गत किया है—

"इसमें फारसी, अरबी के अनेक शब्द आये हैं, परन्तु मैं आशा करता हूँ कि उनके कारण हिन्दी के प्रेमी पाठक मुझ पर क्षुब्ध न होंगे, क्योंकि करीब-करीब यह सारे शब्द लाखों हिन्दी बोलने वालों की रोज की बोलचाल में आते हैं, इस कारण वह हिन्दी के कुनबे में सम्मिलित हैं और उनका हिन्दी पुस्तकों में विशेषकर कहानी की पुस्तकों में व्यवहार करना मैं कोई अपराध की बात नहीं समझता।"

तिलिस्माती मुँदरी में जिस भाषा-शैली का प्रयोग किया गया है, उस पर निम्न अंश से प्रकाश पड़ता है—

"डेरा तरबूजों के पास ही डाला गया और दूसरे रोज सुबह को, बाद तरबूजों की दूसरी जियाफत के वहाँ से कूच हुआ और गधों पर जितने आ सके तरबूज लाद दिये गये, क्योंकि डर था कि शायद दूसरे पड़ाव का कुआँ भी सूखा निकले, लेकिन वह सूखा न था। वह लोग बाकी रेगिस्तान को बगैर किसी मुसीबत के तै कर गये। अब वह कजरी राजा की लड़की पर दुचन्द निसार थे, क्योंकि उसने उसकी जान बचाई थी, और कजरी ने उससे कहा कि 'मैं तो तुझे छोड़ दूँ लेकिन मेरा खाविन्द मना करता है, मगर तू अन्देशा मत कर। मैं ऐसा करूँगी कि तू किसी नेक बीबी के हाथ बेची जायगी जो तेरी खूब परवरिश करेगी और तुझे खुश रखेगी'।"[1]

इस प्रकार की शैली में फारसी तत्सम शब्द जैसे 'जियाफत', 'दुचन्द' 'खाविन्द' आदि शब्दों के प्रयोग हुए हैं। 'बाद तरबूजों के दूसरी जियाफत के (डेरा) वहाँ से कूच हुआ' इस वाक्य के प्रयोग से भी फारसी की शैली को अपनाया गया है।

उद्देश्य—अन्य जासूसी उपन्यासों के समान इस उपन्यास का उद्देश्य भी पाठक को कौतूहल एवं आश्चर्य की स्थिति में डाल देना है। तिलिस्माती मुँदरी से यह सभी स्पष्ट हो जाता है।

१. श्रीधर पाठक—तिलिस्माती मुँदरी, पृष्ठ ३२।

इस तिलिस्म के प्रभाव को देखने के लिए लेखक ने पृष्ठभूमि मे विमाता के दुर्व्यवहारो का चित्रण किया है। दोहती का प्राण सकट मे आ जाने पर तिलिस्माती मुंदरी उस सकट का निराकरण कर जाती है, जिससे सीमा पर पहुँची हुई पाठक की भावनाओ को पुन विश्राम मिल जाता है और पाठक के लिए कौतूहल की सामग्री प्रस्तुत हो जाती है। विमाता के नृशस व्यवहार एव लाहौर मे स्त्रियो का बेचा जाना—ये जीवन के यथार्थ चित्रण हैं, जिनको पाठक जी ने स्पर्श करने का प्रयास किया है।

उपन्यास के उपर्युक्त तत्वो का विवेचन करने से उसके सम्पूर्ण अगो पर प्रकाश अवश्य पड जाता है। यद्यपि इसमे यत्र-तत्र असम्भावित घटनाओ का भी समावेश है, किन्तु यथार्थ का वातावरण प्रस्तुत होने के कारण उपन्यास मानवेतर नही लगता है। भारतीय तन्त्र-शास्त्र के अन्तर्गत इस प्रकार की सिद्धियाँ मिलती रही हैं, जिनसे असम्भव कार्य भी सम्भव हो सके है। इससे तिलिस्म से युक्त यह मुंदरी भी विशेष आश्चर्य का पदार्थ नही रह जाती है।

पाठक जी के निबन्ध एवं पत्र आदि

यद्यपि पाठक जी के निबन्ध अधिक सख्या मे उपलब्ध हैं, तथापि 'पाठक जी की कृतियो के सामान्य परिचय' के अन्तर्गत उनके प्रमुख निबन्धो की तिथि एव उन्हें प्रकाशित करने वाले पत्रो का नाम दिया गया है।

'निबन्ध' सज्ञा के विचार के अनुसार ऐसे बहुत कम लेख हैं, जिनमे गभीरता का पुट है। अधिकाश ऐसे ही लेख हैं जिनमे मनोरजन एव हास्य का समन्वय है। 'हिन्दी प्रदीप' के दिसम्बर १८८४ ई० के अक मे उन्होने एक औषधि का उल्लेख किया था जो निम्न प्रकार से है—

बीमार हिन्द के लिये सिहतावर जोशांदा

फूट के कडवे दाने	=३ माशे
तुखम कुढग	=१ तोला
जिद्द और काहिली की सूखी फली	=२ तोला
रोग़न फसाद	=६ माशे
गुल गुलामी	=२ माशे
मगज पण्डिताई	=३ तोला

इन सब दवाइयों को कूट-पीसकर कपरछन कर पाँच सेर काले पानी मे

चढ़ा दो। जब पानी जलते-जलते छटाँक भर रह जाय तो सेर भर बर्फ और सोडा वाटर में मिलाय दिलों हिन्द को पिला दो और तीन तिला मरहम बदन भर में पोत दो तो जरूर सब नासूर फौरन दूर हो जावें जो पुरा देगा।

मरहम

विलायती कुतिया की जबान
अंग्रेजी लियाकत का तेल
लाल समुद्र का पानी
काले आदमियों की मोमियाई।

यकीन कामिल रखो, इन दो दवाइयों से हुनरमन्द-हिन्दोस्तान को जरूर आराम हो, इस बुढ़ापे में एक बार फिर पलने के से हट्टे-कट्टे मस्त-मुस्टंडे हो उठेंगे।

'अफ़ीम-मस्त दिल शिकस्त अक्किल नफगान कुरमान।'

उपर्युक्त निबन्ध के अन्तर्गत न जाकर परिहास के अन्तर्गत ही सन्निविष्ट होगा। यह सत्य है—उपर्युक्त पंक्तियाँ साधारणतया मनोरंजन ही प्रस्तुत करेंगी; किन्तु इनसे मनोरंजन केवल उन्हीं का होगा जो विचार एवं भावना शून्य हैं। राष्ट्रीय भावना एवं भारतीय संस्कृति के उपासक के लिए उपर्युक्त पंक्तियाँ बड़ी ही मार्मिक हैं।

जुलाई १८८५ ई० के 'हिन्दी प्रदीप' में उनका 'आता है' निबन्ध छपा था। यह निबन्ध गद्य-पद्यमय शैली के कारण भी बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। इसका कुछ अंश भी देखिए—

आता है

आता है—किसका मालूम क्या आता है—सच जानिये हमें तो कुछ नहीं आता जो आपसे कहना सकें कि यहाँ-वहाँ क्या आता है—हाँ, इतना अलबत्ता कह सकते हैं कि आजकल गर्मी खूब पड़ रही है, सो सभी के बदन में पसीना आता है, जिससे जी ऐसा उकताता और घबराता है कि कुछ करते नहीं बन आता—बल्कि कभी-कभी तो जी में ऐसा पागलपन सा आता है कि मकान के छत, जो नीलाम हो रही तब भगा ले जाता है और उस नखलिस्तान में पहुँच जाता है, तभी चैन आता है। और, ज्यों ज्यों गर्मी की ऋतु बढ़ाई इस गगन में भ्रमण करती हुई नयन-बाण-चलान-विलासिनी सुलोचनी रमणियों की हठीली चाल की इस देह निगोड़ी का आदर हो जाता। × × ×

छलकता बेधड़क यह वारिशे दीवाना आता है।
सुनाया हमने इतना आपको खिल करके मुसफिक आज।
यकीं है अब तो समझोगे हमे कुछ भी तो आता है।

भारतेन्दु-युग मे प० प्रतापनारायण मिश्र एव प० बालकृष्ण भट्ट ने साधारण विषयो के निवन्धो को लिखने के लिए हास्य का पुट देकर उनको सजीव स्वरूप दिया है, उसी परिपाटी पर 'आता है' विषय पर उनका निवन्ध है ।

देश के मतमतान्तरो पैं भी पाठक जी को वडा दुख एव क्षोभ है। जनवरी १८८५ ई० के 'हिन्दी प्रदीप' के अक मे 'एक अनोखे सैलानी की अनोखी कहानी' के अन्तर्गत पाठक जी का कथन है—

"× × × उसमे कभी शिव-समुदाय वैष्णवो को गाली देते थे। उधर शाक्त अपनी वारुणी के आनन्द मे मस्त अपनी ही तान गा रहे थे। कभी नागे लोग धोती लगोटा फेंक नगे हो शैव और सन्यासियो पर हल्ला करते थे। उधर दयानन्दी पोपो को गाली सुना रहे थे।"

इस प्रकार पाठक जी अपने निवन्धो द्वारा समाज मे प्रचलित विवाहो के झगडे, बाल-विवाह-प्रथा, वैधव्य जीवन, आधुनिक शिक्षा की बुराइयो एवं वेकारी आदि पर भी प्रकाश डालते हैं। उनके निवन्धो मे सामाजिकता कूट-कूट कर भरी हुई है।

गम्भीर निवन्धो के मध्य मे पाठक जी के 'सक्षिप्त जीवन परिचय' (१९०६ ई०) ('आराध्य शोकाजलि' के अन्तर्गत अपने पूज्यपाद पिता जी प० लीलाधर का जीवन-वृत्त) एव हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का लखनऊ (१९१५) के वार्षिकोत्सव मे हिन्दी की प्रगति पर व्याख्यान रखे जा सकते हैं।

प्रथम निवन्ध जीवन-चरित्र है, इससे पाठक जी ने अपने पूज्यपाद पिता जी के प्रपितामह श्री कुशल मिश्र से लेकर वश की विभूतियो का वर्णन करने की चेष्टा की है। उनकी साहित्यिकता, विद्वत्ता एव शास्त्रीयता के सम्बन्ध मे पूर्ण प्रकाश डालने का प्रयास किया है। निम्न अश स्वय पाठक जी से सम्बन्धित है—

"× × × मैं उनका (प० लीलाधर का) एक ही अवशिष्ट पुत्र हूँ, मुझे गोपाल जी का प्रसाद समझते थे, यद्यपि मेरे अग्रेजी ससर्ग-दूषित स्वतन्त्र

सिद्धान्तों पर प्राय: खेद करते थे। अन्तर से मुझ पर प्रसन्न थे पर मेरे सामने बड़ाई कभी न करते थे, ऐसा करना हानिकारक मानते थे। मुझ पर उनका अथाह वात्सल्य था। मेरी भक्ति-विषयक कविता की प्रशंसा करते थे, परन्तु दोष को व्यर्थ की बकवाद बतलाते थे। उनकी आज्ञा थी कि सब कविता केवल भगवत् सम्बन्ध में होनी चाहिये; परन्तु इस आज्ञा का पालन मुझसे न हो सका। इसका मुझे बहुत अनुताप है।"

निबन्ध परिचयात्मक रहा है। इसमें पाठक जी ने सहृदयता-पूर्वक वास्तविक तथ्यों पर भावुक शैली में प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इस अंश में 'हास' एवं 'व्यंग्य' का पुट नहीं है। इससे गम्भीरता का आ जाना स्वाभाविक ही है।

सम्मेलन के लखनऊ के पंचम अधिवेशन का उनका व्याख्यान गम्भीर साहित्यिक पुट से परिपूर्ण है। उसकी शैली भी संस्कृत-गर्भिता है। पाठक जी ने 'हिन्दी' शब्द की सार्थकता, साहित्य और जातीयता, साहित्य-सर्जना के लिए उपयोगी विषय नाटक, उपन्यास, काव्य-विषयक उनकी प्रगति एवं अस्तित्व के सम्बन्ध में चर्चा की है। साथ में प० श्याम बिहारी मिश्र एवं गणेश बिहारी मिश्र कृत 'मिश्रबन्धु विनोद', प्रो० रामदास गौड़ एम० ए० द्वारा अनूदित 'भारी भ्रम', श्रीयुत विनायक गणेश एम० ए० कृत 'विकासवाद', प० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा रचित 'प्रिय प्रवास' एवं श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'भारत-भारती' आदि के सम्बन्ध में परिचयात्मक विवरण प्रदान किये हैं।

"हिन्दी हमारी भाषा का प्रकृत या 'जनम' का नाम है, जिसका प्रयोग हमारे साहित्य में बाहुल्य के साथ हो चुका है और होता है। अब वर्तमान के अनेकों सशोधक जो इस नाम के व्यवहार को त्याज्य सिद्ध करने के लिए भाँति-भाँति की युक्तियाँ देते हुए इसके बहिष्कार में तत्पर हैं, केवल अपनी शक्ति और समय के अपव्यय में प्रवृत्त हैं। 'हिन्दू' शब्द का कि जिससे 'हिन्दी' शब्द सम्बद्ध है किसी दूसरी भाषा में अर्थ चाहे जो हो, चाहे वह अवमानना-सूचक ही चाहे पराभवज हो और वहाँ अर्थ चाहे उसका संस्कृत में कुछ भी हो (संस्कृत में उणादि से बना-बना नहीं हो सकता) हमारी इस भाषा में उसका यह अर्थ नहीं है।"[1]

---

१. प० श्रीधर पाठक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, लखनऊ के पंचम अधिवेशन का सभापतीय भाषण—पंचम हिन्दी साहित्य सम्मेलन, लखनऊ, कार्यविवरण प्रथम भाग, पृष्ठ १७, द्वितीय संस्करण सम्वत् १९८५ वि०।

'हिन्दी' शब्द पर तत्कालीन साहित्यिक वातावरण मे बड़ी आपत्ति थी। कुछ उसके स्थान पर 'आर्यभाषा' नामकरण करना चाहते थे, किन्तु 'हिन्दू' शब्द के साथ 'हिन्दी' इतना निकट का परिचयात्मक शब्द है कि पाठक जी अन्य शब्द को अगीकार करना ही नही चाहते।

साहित्य और समाज का बडा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। फलस्वरूप सामाजिक विकास के लिए साहित्य के सम्पूर्ण अगो का विकास ही आवश्यक और परमोपयोगी है। इस सम्बन्ध मे पाठक जी का कथन है —

"साहित्य को सर्वांगपूर्ण और सर्वांग-सुन्दर बनाने और रखने तथा उसके अग-भग की सभावना रोकने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसके सब अगो और प्रत्येक अग पर कडी और युगपत दृष्टि रखी जाय। जब तक किसी उद्यान का प्रत्येक वीरुध, प्रत्येक पौधा, प्रत्येक गुल्म, प्रत्येक लता, प्रत्येक रौस, प्रत्येक क्यारी, फल, प्रत्येक फूल सुचतुर माली के निरन्तर निरीक्षण मे रहता है तब तक उसकी स्थिति रमणीय रहती है। निरीक्षण मे शिथिलता आते ही दशा विगड जाती है।"[1]

तार्किक एव विवेचनात्मक शैली पर चलने के कारण पाठक जी अपने विचार-प्रदर्शन मे दुरूह हो गये हैं, जो सभी प्रकार से स्वाभाविक है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से वह स्पष्ट है कि पाठक जी का गद्य साहित्य एव समाज की प्रगतियो पर पूर्ण प्रकाश डालता है। निबन्ध अपनी प्रवृत्ति मे भारतेन्दु-युग के निबन्धो की शृङ्खला में ही आवद्ध है। अपने विचार प्रकट करने में पाठक जी वैसे ही स्वच्छन्द हैं जैसे वह काव्य मे रहे हैं। फिर भी यह सत्य है कि उनका काव्य गद्य की अपेक्षा महत्वपूर्ण है। उनका काव्य साहित्य मे नवीन धारा का वपन कर सका जब कि गद्य सामयिक परिस्थितियो का दिग्दर्शन मात्र है।

पाठक जी के पत्र

पत्र व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित रहने के कारण लेखक के जीवन एव उसकी अभिरुचि पर प्रकाश डालते हैं। इस प्रकार लेखक की जीवन-प्रगति

---

१. श्रीधर पाठक—लखनऊ के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पचम अधिवेशन का अध्यक्षीय भाषण।

पर यथोचित प्रकाश पड़ जाता है। पाठक जी का श्री रत्नाकर, महावीरप्रसाद द्विवेदी, बालमुकुन्द गुप्त, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण', लोचनप्रसाद पाण्डेय एवं बनारसीदास चतुर्वेदी आदि-आदि से पत्र-व्यवहार चलता रहा है। भाषा और साहित्य के निर्माण के सम्बन्ध में पाठक जी के ये पत्र बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। यदि पत्रों की यह निधि जो अन्धकार के गर्त में पड़ी है, प्रकाश में आ जाय तो भारतेन्दु एवं द्विवेदी-युगों पर भी एक नवीन प्रकाश पड़ सकता है। कितनी ही ज्ञातव्य बातों और तथ्यों से हिन्दी-विश्व अवगत हो सकता है। 'मनोविनोद' के १९१७ ई० के नवीन संस्करण के परिशिष्ट भाग में उनके कुछ पत्र उद्धृत हैं। ये पत्र संस्कृत एवं हिन्दी दोनों में ही हैं, किन्तु उनमें काव्य का स्वरूप विद्यमान है।

स्वस्ति सर्वगुणमण्डितेषु मे पण्डितेषु निजधर्मकर्मसु
'मन्निलाल' इतिनामशर्मसु श्रीधरस्यनतयस्त्वितरतराम्
सत्यभाव इह सर्वतः सदाऽभीप्सित स भवतां भवाद्भवे
यापितोऽत्र समयो मयामुदात्वद्वियोगत इतस्तु योगत
आगरारम्यनगरस्य कालिजादागतोऽस्मि तु गृहं परीक्षित
सार्द्धसप्तनवनीतिनयरान्तुलंभान्सन्तु लभेस्म सर्वतः

(दिसम्बर, १८७३)

प्रयाग में ५ जनवरी १८८४ ई० को पाठक जी ने भारतेन्दु जी को निम्न पत्र लिखा था—

हरिश्चन्द्र हरि-चन्द-गुण-उदाहरण-एकत्र
नहिं केवल तुम इन्दु हो, किन्तु भारती-मित्र
अति विचित्र विधि-कृत्य हो अति अद्भुत—मति-गेह
नित्य-नित्य शोभित रहो, लहो जगत-जय-नेह
अमृत-सरोवर-हृदय-पर हैं पियूष - वचनालि
हे कवि कुल-कमलार्कवर, हे शोभा-श्रुति-मालि
परम धन्य तुमसे सुजन परम धन्य तुम मित्र
परम धन्य मानो रहो तुम मम सुहृद विचित्र।

श्री लोचनप्रसाद जी पाण्डेय अपना 'प्रवासी' काव्य पाठक जी से संशोधित कराना चाहते थे; किन्तु रुग्णता के कारण ऐसा सम्भव नहीं हुआ। जब

परिस्थिति मे पाठक जी ने पाण्डेय जी को ये पत्र लिखे थे—

खुशहाल पर्वत, श्रीप्रयाग
११ सितम्बर, १९०९

नमस्कार

आपका कृपापत्र जब आया मैं बीमार था, अब भी बीमार सा ही हूँ। आपकी कृति को अवकाश मिलने पर अवलोकन करूँगा।

शुभैषी—श्रीधर पाठक

इस पुस्तक के सम्बन्ध मे पाण्डेय जी को पाठक जी ने तीन पत्र लिखे थे। ११ सितम्बर १९०९ ई० के पत्र की प्रतिलिपि ऊपर दी ही जा चुकी है। इसके अतिरिक्त १५–११–१९०९ ई० एव २५–१०–१४ ई० को भी उन्होंने उनको पत्र लिखे थे।

१९२३ ई० के नवम्बर मे और उसके बाद पाठक जी के चार कार्ड पाण्डेय जी के पास पहुँचे थे। प्रथम पत्र की प्रतिलिपि देखिये, जिसे उन्होंने अस्वस्थ दशा में लिखा था।

श्रीप्रयाग
८–११–२३

प्रियवर पाण्डेय जी,

बहुत दिनो बाद आपको पत्र लिख रहा हूँ। आशा है आप सपरिवार सुजीवन-सुख सानन्द उपभोग कर रहे होंगे। आप जानते होंगे कि मैं बरसों से श्वास-रोग से ग्रस्त हू। उसी रोग के कारण इस शीत ऋतु का कुछ भाग मैं श्री जगन्नाथपुरी में व्यतीत करना चाहता हूँ। परन्तु उत्कल देश मे मेरा कोई परिचित अथवा मित्र नही है। आप उत्कल भाषा के श्रेष्ठ कवि हैं अत. सम्भव है वहाँ आपके कोई मित्र हों। यदि हो तो उनके नाम और पते आप मुझको बता दें तो बडा अनुग्रह हो। उनके द्वारा वहाँ मैं मकान आदि का प्रबन्ध कर सकूँगा। कष्ट जो आपको दे रहा हूँ, आशा है आप क्षमा करेंगे।

कृपाभिलाषी,
श्रीधर पाठक

इसके अतिरिक्त पाठक जी के २०–११–२३, २८–११–२३ एवं १०–१२–२३ के तीन पत्र उनकी सेवा मे और पहुँचे थे।

'कविवर प० श्रीधर पाठक से भेंट' शीर्षक के अन्तर्गत पाण्डेय जी ने उपर्युक्त सभी पत्रों का प्रकाशन फरवरी १९२९ (फाल्गुन १९८५) के 'विशाल भारत' में कराया था।

उपर्युक्त के अतिरिक्त इसी प्रबन्ध में 'प० श्रीधर पाठक की जीवनी के सूत्र एवं व्यक्तित्व' के अन्तर्गत कुछ महत्वपूर्ण पत्र सन्निविष्ट हैं। स्वामी भगीरथ पुरी के लिये लिखित पत्र में एक छात्र की सी विनम्रता, बालमुकुन्द गुप्त एवं गंगाप्रसाद अग्निहोत्री के लिए लिखे हुए पत्रों में मैत्री भाव एवं बनारसीदास चतुर्वेदी के प्रति लिखित पत्रों में आत्मीयता स्पष्ट व्यक्त होती है।

अध्याय १०

पाठकोत्तर स्वच्छन्दतावादी काव्य-परम्परा की प्रगति

(१६००—१६२५ ई०)

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' (१८६८—१६१५ ई०)

जीवन-वृत्त और व्यक्तित्व—द्विवेदी-युग मे दो प्रकार की काव्य-प्रवृत्तियाँ हिन्दी-जगत् मे प्रचलित थी। प्रथम प्रकार की वे प्रवृत्तियाँ थी, जिन पर द्विवेदी जी का पूर्ण आभार था अथवा उनकी विचारधाराओ से पूर्णरूपेण अनुशासित एव अनुप्रेरित थी। द्वितीय प्रकार की वे प्रवृत्तियाँ थी, जो द्विवेदी जी की विचार-धाराओ से मुक्त थी। इस परिपाटी के कवि और साहित्यिक काव्य के इति-वृत्तात्मक अनुशासन से दूर थे।

'पूर्ण' जी ऐसी ही विभूति थे जो द्विवेदी-युग मे साहित्य-सर्जना करते हुए भी युग की प्रवृत्तियो से पूर्ण अछूते थे। उनका निजी मार्ग था, जिस पर वह चलकर द्विवेदी-मण्डल की काव्य-भूमि से बाहर अपना क्षेत्र बनाये हुये थे। उनके काव्य-विवेचन मे प्रविष्ट हुआ जाय उससे पूर्व उनके जीवन और व्यक्तित्व का अध्ययन उपयोगी होगा। इससे इस स्थल पर उनका जीवन-परिचय अत्यावश्यक है।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का जन्म मार्गशीर्ष कृष्ण १३, स० १६२५ वि० को जबलपुर मे हुआ था। उनके पिता का नाम राय वशीधर था। वह जबलपुर में वकालत करते थे। यह श्रीवास्तव दूसरे कायस्थ थे। इनके पूर्वज कानपुर जिले में घाटमपुर तहसील के भदरस (भद्रपुर) ग्राम के रहने वाले थे। 'राय' बादशाही काल की पदवी थी। इनका परिवार सभी प्रकार से सम्मानित और

सुनिश्चित था। राय देवीप्रसाद चार वर्ष के भी न हो पाये थे कि उनके पिता का अकाल निधन हो गया।

पिता के निधनोपरान्त उनके चाचा राय मीलाधर ने उनका पालन-पोषण किया और उन्हीं के निरीक्षण में कानपुर में उनका विद्यार्थी-जीवन प्रारम्भ हुआ। वह अपने बाल्यकाल से ही प्रतिभा-सम्पन्न और विद्याव्यसनी थे। विद्यार्थी-जीवन के प्रारम्भिक काल से ही उनमें कविता की प्रवृत्ति थी और धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन का प्रेम था। अपनी कक्षाओं में वह सदैव प्रथम रहा करते थे। १८८१ ई० में उन्होंने मिडिल परीक्षा, अनन्तर कलकत्ता यूनिवर्सिटी से एण्ट्रेन्स, एफ० ए०, बी० ए० एवं बी० एल० परीक्षाएँ उत्तम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। परीक्षाओं से निवृत्त होकर उन्होंने अपने परिवार का पैतृक व्यवसाय वकालत कानपुर में प्रारम्भ की और वहाँ के वकीलों में उच्च स्थान प्राप्त कर लिया। वह दीवानी के प्रमुख और सफल वकीलों में थे।

सामाजिक सेवाओं और अपने काव्योत्कर्ष के कारण कानपुर के सामाजिक जीवन के वह प्राण थे। सभा-सोसाइटियों के वह सूत्रधार थे और नगर के हित के कार्य करने में वह कभी पीछे न हटते थे। 'पूर्ण' जी से पूर्व कानपुर के नागरिक जीवन में प० पृथ्वीनाथ वकील ने नवजीवन फूँका था और उनके अनन्तर उस दायित्व का उनके द्वारा पूर्ण संवहन किया गया। 'कानपुर स्पृदिल एसोसियेशन' के वह सभापति थे। 'सनातन-धर्म-प्रवर्द्धिनी' सभा के स्थान पर उन्होंने अपने प्रयास से 'श्री ब्रह्मावर्त-सनातनधर्म-महामण्डल' की संस्थापना की थी। इसी संस्था के तत्त्वावधान में आगे चलकर 'सनातन धर्म मन्दिर' की स्थापना हुई।

दक्षिण-अफ्रीका में भारतवासियों पर किये गये अत्याचारों के विरोध में कानपुर के युक्त प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन में स्वागताध्यक्ष के पद से तथा १९१५ ई० में गोरखपुर के युक्त-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति पद से उन्होंने बड़े ओजपूर्ण भाषण दिये थे। कानपुर में [illegible] कांग्रेस के अवसर पर उनके अंग्रेजी भाषण का सारांश उन्होंने इसी [illegible] में उपस्थित जन-समाज को हिन्दी में सुनाया था। हिन्दू-विश्वविद्यालय के लिये धन एकत्रित करने के लिये आये हुए श्री मदनमोहन मालवीय के स्वागत में उन्होंने एक सामयिक कविता पढ़ी थी।

वह [illegible] धर्मनिष्ठ थे। आर्य-समाज के सिद्धान्तों की वह [illegible] और [illegible] थे। '[illegible] की [illegible]' कविता में उनका

आर्य-समाज का विरोध स्पष्ट झलकता है। वेदान्त के वह स्वयं बड़े ज्ञाता थे। आचार्य शंकर के 'तत्त्वबोध' एवं 'मृत्युंजय' दार्शनिक ग्रन्थों का हिन्दी में छन्दोबद्ध अनुवाद किया था। 'कान्ह तुम्हारी गैया कहाँ गई' में उनका गो-प्रेम झलकता है। वह गोवध के बड़े विरोधी थे। राजनीतिक दृष्टिकोण में वह 'नरम दल' के थे।

'धाराधरधावन' (कालिदास के 'मेघदूत' का अनुवाद) 'चन्द्रकलाभानुकुमार नाटक', 'स्वदेशी कुण्डल', 'राम-रावण विरोध', 'चम्पू', 'राजदर्शन' एवं 'धर्मकुसुमाकर' आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ थीं।

यद्यपि वह ब्रजभाषा के कवि थे तथापि उन्होंने 'स्वदेशी कुण्डल', 'सन् १९१० का स्वागत', 'नवीन संवत्सर का स्वागत', 'हिन्दू विश्वविद्यालय', 'क्या हिन्दी मुर्दा भाषा है' तथा [illegible] वियोग' आदि-आदि [illegible] उनकी खड़ी बोली की रचनायें हैं।

'गोरखपुर के प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' से लौटने के उपरान्त उन्हें ताप आना प्रारम्भ हुआ। अनन्तर ४७ वर्ष की अवस्था में ३० जून, १९१५ ई० को १२ बजे मध्याह्न में उनका देहान्त हो गया। उनके निधन से सम्पूर्ण कानपुर में शोक छा गया और उस दिन का सार्वजनिक कार्य बन्द कर दिया गया। उनकी अन्त्येष्टि क्रिया के समय नगर के प्रमुख सम्भ्रान्त व्यक्ति उपस्थित थे। अनन्तर क्राइस्ट चर्च कालेज में कलक्टर महोदय एवं प्रयागनारायण के शिवालय में बाबू विक्रमाजीतसिंह की अध्यक्षता में शोक सभाएँ हुईं। कानपुर के 'रसिक समाज' ने उनके निधन पर शोक-विषयक कवितायें पढ़ीं।

काव्य की प्रवृत्तियाँ—'पूर्ण' जी के जीवन-वृत्त देने से पूर्व युग की काव्य-प्रवृत्तियों का भी संकेत किया जा चुका है और यह भी कहा जा चुका है कि पूर्ण जी 'द्विवेदी-कवि-मण्डल' की बाहर की विभूति थे। इस कोटि के कवियों के काव्य में दो भाषा शैलियों और दो भाव-क्षेत्रों का समन्वय मि[illegible] है। इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है—

"इन कवियों में अधिकांश दो रंगी कवि थे जो ब्रजभाषा में शृंगार, वीर, भक्ति आदि की पुरानी परिपाटी की कविता कवित्त-सवैयों या गेय पदों में करते आते थे और खड़ी बोली में नूतन विषयों को लेकर चलते थे।·· देश-दशा, समाज-दशा, स्वदेश-प्रेम, आचरण सम्बन्धी उपदेश आदि ही तक नई

वडाई पावे इंगलिस्तान हिन्द से, उसमे हिन्दुस्तान ;
हुआ जब दोनो का सम्बन्ध, बढे जग मे दोनों का मान ।
हमारा आर्य देश है, आर्य, पराये नहीं आप के जार्ज ।
पूर्व सम्बन्ध बिना, सम्राट, न मिलता तुम्हे यहाँ का चार्ज ।[1]

दरबार के उपलक्ष मे पाठशाला के विद्यार्थियो को आनन्द है और दीन-दु.खियो को भी सुख का अनुभव होता है—

क्या अच्छी तातील मिली है, सबके मन की कली खिली है।
आओ मित्र मिठाई खावें, महाराज की विजय मनावें।
क्या-क्या खावें कितना खावें, ऐसा पेट कहाँ से लावें।
किस व्यजन की करें वडाई, भारत-भूपति जयति सदाई।
अधिक भूप का आयुर्वल हो, दिल्ली का दरबार सफल हो।
हुर्रे-हुर्रे हिप-हिप हुर्रे, उडा देव चिन्ता के घुर्रे।[2]

* * *

दुबरे दरिद्री दीन, कगाल सकट लीन,
भूखे सदा के हीन, तिन आज भोजन कीन।[3]

'स्वदेशी कुण्डल' देश-भक्ति की उनकी सफल रचना है। देश की दीन-हीनता, पारस्परिक विद्वेष एव पराधीनता से उत्पन्न दारुण सन्ताप आदि ऐसी परिस्थितियाँ हैं, जिनको कवि सफलता से अकित कर सका है।

देशी प्यारे भाइयो ! हे भारत सन्तान।
अपनी माता भूमि का है कुछ तुमको ध्यान।
है कुछ तुमको ध्यान ? दशा है उसकी कैसी ?
शोभा देती नहीं किसी को निद्रा ऐसी ?
वाजिब है हे मित्र, तुम्हे भी दूरदेशी,
सुन लो चारों ओर मचा है शोर 'स्वदेशी'।[4]

देश के जागरण का शखनाद करते हुए भी कवि देश-भक्ति और राज-भक्ति

---

१ पूर्ण-संग्रह, दिल्ली दरबार, पृष्ठ २६२ (गगा पुस्तकमाला, लखनऊ)
२ ,, ,, ,, २६४ ,,
३. ,, ,, ,, २६४ ,,
४. ,, स्वदेशी कुण्डल ,, ३०४

बैठो ऋतुराज तापै जग की करत सैर,
सौरभ अतक जग माहि विस्तारो है।
धावत महावत अनंग के इसारे वीर,
सुरभि समीर यह मतग मतवारो है।'[1]

इस प्रकृति-चित्रण मे श्रीधर पाठक के समान सजीव स्वच्छन्दतावादी स्वरूप न होने पर भी कवि की सहृदयता तो स्पष्ट व्यक्त होती ही है, इसमे सन्देह नही।

उपर्युक्त सक्षिप्त विवेचन से 'पूर्ण' जी की काव्यगत प्रवृत्तियो पर प्रकाश पड जाता है। यह अवश्य सत्य है कि श्रीधर पाठक के समान स्वच्छन्दतावादी काव्य का स्वरूप उनमे नही है, किन्तु भारतेन्दु-युग की स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रेरक प्रवृत्तियाँ जो द्विवेदी-युगीन परम्परावादी प्रवृत्तियो से आत्मसात करली गई थी, उनको नूतन प्रेरणा 'पूर्ण' जी के काव्य मे अवश्य मिली। इतने ही द्विवेदी-कवि-मण्डली से वह मुक्त थे और इतने ही यह स्वच्छन्दतावादी थे।

प० रामचन्द्र शुक्ल (१९८४ ई०–१९४१ ई०)

जीवनवृत्त और व्यक्तित्व—हिन्दी के पुण्य और सौभाग्य से आचार्य शुक्ल जी कवि और लेखक की सपूर्ण सम्भावित प्रतिभा से युक्त हो अवतरित हुए थे। लेखक की अपेक्षा उनमे कवि-सुलभ सस्कारो का आधिक्य था। फलत गद्य-रचनाओ मे भी यत्रतत्र उनकी भावुकता और सहृदयता टपकी पडती है। यह केवल इसलिये सभव हो सका कि वह अपने कवि-हृदय की विशाल परिधि मे गद्य के विवेचनात्मक स्वरूपो को सोचा करते थे। उनका मानस मध्यकालीन काव्य-सरोवर को लहराता हुआ देखकर तृप्त था। उधर से कुछ निश्चिन्त से थे। साहित्य के गद्य-पक्ष को निर्बल और शिथिल देखकर वह अग्रसर हुये—इस दिशा मे द्विवेदी जी का जो भी अपूर्ण कार्य अवशिष्ट था, उसे उन्होने पूर्ण किया। फलत तुलसी, सूर एव जायसी के भाव-रत्नो को खोजकर हिन्दी-विश्व को चकित कर दिया और काव्य-रस के स्थायी भावो का प्रत्येक कोण से निरीक्षण कर काव्य को सभी प्रकार से पुष्ट करने की सामग्री प्रस्तुत कर दी। यह कार्य छोटा न था। भगवान् ने उन्हें महान् व्यक्तित्व

---

१ पूर्ण-सग्रह, प्रकृति-सौंदर्य-वर्णन, पृष्ठ ९५।

दिया था, जिसके बल पर वह बढ़ कर नर गये थे।

आचार्य शुक्ल के वंश का गोत्र गर्ग है और वह सरयूपारी ब्राह्मण हैं। इनके पूर्वज जिला गोरखपुर के अन्तर्गत भेड़ी नामक गाँव में निवास करते थे। शुक्ल जी के पितामह पं० शिवदत्त शुक्ल का ३० वर्ष की अवस्था में ही असमय निधन हो के गया था। शुक्ल जी की पितामही अपने एकमात्र पुत्र पं० चन्द्रबली शुक्ल (पं० रामचन्द्र शुक्ल के पिता) को लेकर बस्ती की बूढ़ी रानी साहिबा के साथ रहने लगीं। रानी साहिबा इन्हें बहुत मानती थीं। चन्द्रबली शुक्ल काशी के क्वीन्स कॉलेज से एण्ट्रेन्स परीक्षा उत्तीर्ण कर सुपरवाइजर कानूनगो के पद पर सरकारी नौकरी करने लगे। इनका विवाह गाना के प्रतिष्ठित मिश्र परिवार की कन्या से हुआ था।

बस्ती के समीप ही अगोना ग्राम में रानी साहिबा ने शुक्ल जी की पितामही एवं पिता के लिये मकान बनवा दिया था। इसी अगोना ग्राम (बस्ती) में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का आश्विन पूर्णिमा सं० १९४१ वि० को जन्म हुआ था।

६ वर्ष की अवस्था में राठ (हमीरपुर) में, जहाँ शुक्ल जी के पिता सुपरवाइजर कानूनगो होकर गये थे, इनका विद्यारम्भ कराया गया। इनका वहाँ दो वर्ष भी अध्ययन न हो पाया था कि उनकी नियुक्ति मिर्जापुर में सदर कानूनगो के पद पर हो गई। मिर्जापुर में [illegible] निवास की व्यवस्था के लिये गये हुये थे कि शुक्ल जी की माता जी का असामयिक निधन हो गया। [illegible] उन्होंने बीस दिन के छोटे शिशु शुक्ल जी के अनुज [illegible] को छोड़ा।

अनन्तर शुक्ल जी के पिता सम्पूर्ण परिवार को मिर्जापुर ले आये। मिर्जापुर के 'रमई पट्टी' मुहल्ले में [illegible]। यहाँ शुक्ल जी के पिताजी ने अपना निवास बनाया था वहाँ [illegible] पास-पास [illegible] थे। इस स्थल का वातावरण बड़ा ही सांस्कृतिक एवं साहित्यिक था। इनके पड़ोस में ही प्रकृति के भावुक पुजारी पं० विन्ध्येश्वरीप्रसाद एवं भारतीय संस्कृति के अनन्य अनुरागी [illegible] निवास करते थे। [illegible] प्रतिदिन रामायण, महाभारत एवं भागवत आदि का पाठ [illegible] था, [illegible] पं० विन्ध्येश्वरीप्रसाद के [illegible] [illegible] [illegible]

काव्य के मधुर एव ललित श्लोको को वह मधुर कण्ठ से गाया करते थे। बडे होने पर शुक्ल जी भी उक्त शिष्य-मडली मे सम्मिलित होकर जाने लगे। इसी प्रवृत्ति ने उन्हे प्रकृति-अनुरागी एव सस्कृत-प्रेमी बना दिया। इस प्रकार का वातावरण शुक्ल जी के पिताजी के अनुकूल न होते हुए भी उनको पूर्ण रुचिकर था। राठ की अपेक्षा यहाँ के वातावरण ने उनके जीवन-निर्माण मे विशेष सहयोग दिया। मिर्जापुर के स्थानीय जुबिली स्कूल मे ९ वर्ष की अवस्था मे प्रविष्ट होकर उन्होने उर्दू के साथ अग्रेजी पढना प्रारम्भ किया। साढे चौदह वर्ष की अवस्था मे उन्होने प्रथम श्रेणी मे मिडिल परीक्षा पास की। अनन्तर यथासमय ही उन्होने एण्ट्रेन्स परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। एफ० ए० का अध्ययन करने के लिये कायस्थ पाठशाला, प्रयाग मे प्रविष्ट भी हुये, किन्तु गृह-कलह के कारण उनका अध्ययन न चल सका। वह अगोना लौट आये। कुछ दिनो के उपरान्त पुन कानून पढने के लिये वह प्रयाग गये, किन्तु दो वर्ष अध्ययनोपरात अनुत्तीर्ण होने पर मिर्जापुर लौट गये। कुछ दिनो तक मिशन स्कूल मे अध्यापक के पद पर भी कार्य किया।

जब शुक्ल जी ग्यारह वर्ष के थे उसी समय उनके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया था। बारह वर्ष की अवस्था मे शुक्ल जी का भी विवाह हो गया था। उनकी विमाता का व्यवहार शुक्ल जी एव उनके अनुजो के प्रति अच्छा न था, किन्तु जब तक उनकी दादी जीवित रही, सब यथोचित रूप मे निभता रहा। उनकी मृत्यु के उपरान्त विमाता ने बच्चो को कष्ट देना प्रारम्भ किया। उनके पिताजी भी रुष्ट हो गए, लडको की फीस भी बन्द कर दी गई थी। इस कलह ने शुक्ल जी को ६-७ वर्ष तक पीडित रखा।

आगे चलकर शुक्ल जी के पिता का स्वभाव बदल गया था। अब शुक्ल जी एव उनके भाइयो से वह रुष्ट न रहते थे। फारसी के स्थान पर हिन्दी के प्रति उनकी अभिरुचि बढने लगी। रामायण, रामचन्द्रिका एव भारतेन्दु जी के ग्रथो का वह अवलोकन करते थे। उनके इस प्रकार के परिवर्तन पर रमई पट्टी के साहित्यिक वातावरण का बहुत प्रभाव पडा था। 'मनोहर छटा' नाम की इनकी प्रथम कविता सरस्वती भाग २, सख्या १० मे छप चुकी थी। अनतर 'शिशिर पथिक', 'वसन्त पथिक', 'भारत और वसन्त' तथा 'दुर्गावती' आदि उनकी रचनाएँ प्रकाशित हुईं। उनके पिता उनसे प्रसन्न रहने लगे। प्रेमघन जी की 'आनन्द कादम्बिनी' मे उनकी रचनाऐं निरन्तर निकलने लगी।

शुक्ल जी सदैव से अध्ययनशील रहे हैं। मिर्जापुर के अग्रेजी के विद्वान्

प० रामगरीब चौबे ने इनको अंग्रेजी अध्ययन का प्रोत्साहन दिया था। काशी में काशीप्रसाद जायसवाल से भेंट होने पर इनका हिन्दी का अनुराग बढ़ा। काशी के पण्डित केदारनाथ जी पाठक से भेंट हो जाने पर उनकी कृपा से उन्हें हिन्दी और बंगला की पुस्तकें पढ़ने को मिलने लगीं।

ख्याति हो जाने पर नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी के हिन्दी कोश के सहायक सम्पादक के पद पर आप बुलाये गये। उन्होंने 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' का भी आठ-नौ वर्ष सम्पादन किया था। इसके उपरान्त काशी, हिन्दू-विश्वविद्यालय में हिन्दी अध्यापक के पद पर नियुक्त हुये और जीवन-पर्यन्त वहीं रहे। बा० श्यामसुन्दरदास के निधन के उपरान्त उन्होंने हिन्दू-विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष-पद पर भी कार्य किया था।

'What has India to do ?' 'Hindi and the Mussalmans' आदि उनके अंग्रेजी के मौलिक लेख भी प्रकाशित हुये थे। 'कल्पना का आनन्द' (एडिसन के Essays on the Imagination), 'मेगस्थनीज का भारतवर्षीय वर्णन' (अंग्रेजी से अनुवादित), 'राज्य प्रबन्ध शिक्षा' (सर टी० माधव राव के Minor Hints का अनुवाद), 'आदर्श जीवन' (Plain living and high thinking का अनुवाद) 'विश्व प्रपंच' (Riddle of the Universe का अनुवाद), 'शशांक' (बंगला से अनूदित नाटक), हिन्दी-साहित्य का इतिहास, भारत का प्राचीन इतिहास, बुद्ध चरित (आर्नल्ड के Light of Asia का अनुवाद) तथा चिन्तामणि की विवेचना साहित्य इन्होंने हिन्दी को प्रदान किया।

जीवन-पर्यन्त हिन्दी की सेवा कर २ फरवरी १९४१ ई० को यह दिवंगत हुए थे।

काव्य की प्रवृत्तियाँ—यों गद्य साहित्य की अपेक्षा इन्होंने पद्य-साहित्य कम लिखा है। उनका पद्य-साहित्य भी हिन्दी की अपूर्व निधि है, किन्तु उनका काव्य-साहित्य उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसलिये हम उनके काव्य की आलोचना न कर उनकी प्रवृत्तियों पर विचार करना ही इस प्रसंग में उचित समझते हैं।

[illegible] के साथ प० विन्ध्येश्वरीप्रसाद [illegible] पिता एवं [illegible] प्रेरणा से [illegible] को मिला था। वह [illegible] थे। जिससे उनकी प्रकृति और भारतीय [illegible] हुए, साथ ही [illegible] मिर्जापुर के [illegible] माधुरी से [illegible] कर दिया। इस प्रकार की 'राम [illegible]'

आज भी इतनी सवल और महत्तम है कि पाश्चात्य 'नूतन करालता' दूर हाथ जोडे खडी है ।

पडित 'श्री विन्ध्य' जी की मधुर सरस वाणी,
भारत की भारती की ज्योति को जगाती है ।
वीथियो मे स्वच्छ शुभ्र शिष्यों की फिरती हुई,
मण्डली पुराना दृश्य सामने फिराती है ।
परम पुनीत रीति नीति भरी 'भद्र' जी की,
द्वापर की छाया वट-दृत बीच छाती है ।
यों इस भूखण्ड की निराली आर्य माधुरी का,
नूतन करालता न लोप कर पाती है ।

उपर्युक्त पक्तियो मे भारतीयता और राष्ट्रीयता के प्रति उनका अनन्य प्रेम झलकता है । उन्हे अतीत के भारत पर भी गर्व है जब उसने दूर-दूर के देशों को पराजित कर उन पर अपना अधिकार किया था ।

पारसिन को मान मर्दन कियो इन बहु वार ।
मेमिरमिस को जाय ठेल्यो वाविलिन के द्वार ।।
यव सुमात्रा आदि दीपन थापि निज अधिकार ।
कियो अपने हाथ मे सब पूर्व को अधिकार ।।

भारत की इतनी महत्ता होते हुए भी पाश्चात्य देश उसकी जो उपेक्षा किये हैं, शुक्ल जी उससे दु खी हैं । भारत ने अपनी विचार-धाराओ, विद्वत्ता एव कला-कौशलो से आज के सभ्य कहे जाने वाले सभी राष्ट्रो को आभारी किया है । आज वही उपकृत देश अभिमानवश शिरोत्थान किये हैं और भारत का सम्मान करने मे भी लज्जा का अनुभव करते हैं—

विविध विद्या-कला-कौशल जगत मे फैलाय ।
कियो अपने जान तो उपकार ही इन हाय ।
हा, कृतघ्न प्रतीचि जन सब सीखि इनते ज्ञान ।
विभव मद मे चूर सकुचत करत अब सम्मान ।।

देश के उत्थान-पतन के साथ शुक्ल जी के मानस की करुणा का उद्रेक तो हुआ ही है साथ ही उनकी अन्य रचनाओ में भी यह भावना व्यक्त होती है । 'शिशिर पथिक' की नायक-नायिका दोनो का परस्पर का प्रेम भी करुण भारतीय है । नायिका का पत्नी-व्रत ही साधना के स्वरूप मे विद्यमान है,

जिनमें जीवन के कठोर पहलुओं को भी ग्रहण करती हुई जीवन को सुरक्षित किये हुए है —

अब कहौ परिचै तुम आपनो,
इत चले कित तें, कित जावगे ?
विचलि कै चित के केहि वेग सों
पग धर्यो पथ-भीर अपार हूँ ?
सलिल सों निज सींचनि बाग पै,
सघन लागनि जो तन देति हैं ?
पथिक ! बैठि अरे ! तुव बाट कोऊ,
युवति जोवति है कतहूँ कोऊ ?
नयन लोल निरन्तर धावते
तुमहि हेरन को पथ-बीच से ?
श्रवण-द्वार कोऊ रहते खुले
कहुँ अरे, तुम आहट लेन को ?
कहु कहूँ तोहि आवत जानि कै,
निरखना नव मोद-प्रकाशिनी ।
प्रथम पावन हेतुहि तोन है,

लोगो की अन्तिम कामना रहती है कि वे काशी मे मोक्ष-लाभ करें, किन्तु मेरी अन्तिम कामना यही है कि अन्तिम समय मेरे सामने मिर्जापुर का वही प्रकृति का दिव्य खण्ड हो, जो मेरे मन मे, भीतर-बाहर बसा हुआ है।

आपने कवि-सम्मेलन की आयोजना पुस्तकालय भवन मे की है, यह ठीक नही। दूसरी बार कवि-सम्मेलन कीजिये, तब पहाड पर झाडियो मे कीजिये, जब पानी बरस रहा हो, झरने झर रहे हो, तब मैं भी हूँगा, और आप लोग भी। तब मिर्जापुर के कवि-सम्मेलन का आनन्द रहेगा। यो तो कवि-सम्मेलन सर्वत्र ही होते हैं।"[1]

आचार्य शुक्लजी की जिस अन्तिम आकाक्षा का उपर्युक्त पक्तियो मे प्रस्फुटन है उनसे ही उनके हृदय की प्रकृति-परक उदात्त भावना का परिचय मिलता है। यदि उनका कवि-हृदय गद्य-साहित्य के सृजन मे सलग्न न हो गया होता तो आज वह प्रकृति के सबसे बडे मनीषी कवि सिद्ध होते तथापि उनका उपलब्ध प्रकृति-काव्य कम महत्वपूर्ण नही। उसमे काव्य की स्वच्छन्द भावना का प्रदर्शन है। कवि अबाध रूप से प्रकृति के स्वच्छन्द स्वरूप को देखता है। उसके उस कृत्य मे कवि की किसी वासना को गन्ध नही है। उन्होने अपने प्रकृति-काव्य से ठा० जगमोहनसिंह एव प० श्रीधर पाठक की प्रकृति-परम्परा का चिरजीवी रखा है, यही शुक्लजी के प्रकृति-काव्य की विशेषता है।

विकल पीडित पीय पयान ते,
चहुँ रह्यो नलिनी-दल घेरि जो।
भुजन भेंटि तिन्हें अनुराग सो,
गमन उद्यत भानु लखात है॥
तजि तुरन्त चले मुँह फेरि कै,
शिशिर-शीत-सशकित मेदिनी।
विहग आरत बैन पुकारते,
रहि गये पर नेकु सुन्यो नहीं॥
तनि गए सित ओस-वितान हू,
अनिल-झार-बहार धरा परी।

---

१. 'साहित्य सदेश', शुक्ल अक, भाग ४, अक ८-९, पृष्ठ ३६६ (अप्रेल-मई १९४१)।

दुरन लोग लगे घर बीच हैं।
विवर भीतर कीट पतग से।
युग भुजा उर बीच समेटि पै,
लगहु भागत गेयन फेरि कै।
चपत चवल चोंच मरोर हैं,
सरमि भूलि गईं सब तान हैं।
तम चहुँ दिसि चादर फेरि दै,
प्रकृति-रूप छिपो घुघटो गहै।
रहि गये सब शीत-प्रताप तें,
निपट निर्जन घाट अरु बाट हू॥

करती हैं फलियां सकेत जहाँ मुडते हैं
और अधिकार का न ज्ञान इस काल मे।
बैठते हैं प्रीति-भोज हेतु आस पास सब
पक्षियो के साथ इस भरी हुई थाल मे।
हाँक पर एक साथ पखो ने सराटे भरे
हम मेड पार हुए एक ही उछाल मे॥

कवि ने वसन्तकालीन हरित-भरित दृश्यो को ही अपने गान का विषय नही बनाया है। शरपत्र (सरपतक) के किनारे सूखी तलैया को भी अपने काव्य का विषय बनाकर अपनी स्वच्छन्द भावना को प्रमाणित किया है।

सूखती तलैया के चारों ओर चिपकी हुई
लाल-लाल काइयो की भूमि पार करते।
गहरे पडे गोपद के चिह्नों से अकित जो
श्वेत बक जहाँ हरी दूब मे विचरते॥
बैठ कुछ काल एक पास के मधूक तले
मन मे सन्नाटे का निराला सुर भरते।
आए 'शरपत्र' के किनारे जहाँ रूखे खुले
टीले ककरीले हैं हेमन्त मे निखरते॥

'बुद्ध-चरित' मे भी कवि ने प्रकृति के स्थलो के प्रति न्याय किया है। आर्नोल्ड के Light of Asia का रूपान्तर होने के कारण 'बुद्ध-चरित' मे जो ऐसे स्थल हैं भी वस्तुत वे सब मूल कवि की ही भावनायें हैं, तथापि अभिरुचि के अनुकूल होने के कारण ही शुक्लजी इस रूपान्तर को इतना सुन्दर स्वरूप दे सके हैं—इसके लिये वह साधुवाद के पात्र है।

विवाहोपरान्त गौतमबुद्ध के 'रगभवन' के निर्माण की व्यवस्था है। उस स्थल का शुक्लजी ने यो वर्णन किया है—

खडो उत्तर ओर हिमगिरि की अमल प्राकार
नील नभ के बीच निखरो धवल मालाकार।
विदित वसुधा बीच जो अद्भुत अगम्य अपार,
जासु विपुल अधित्यका औ उठे विकट कगार,
शृङ्ग तुङ्ग तुषार मण्डित, वक्ष विशद विशाल,
लहलहे अति ढार औ बहु दरी, खोह कराल,

जात मानव ध्यान सें ऊँचे चढ़ाय-चढ़ाय,
अमर धाम तराय गगन सुरन बीच रमाय।
निर्झरन सों खचित घो घन-आवरण सों छाय,
श्वेत हिम तर रही काननराजि जहँ लहराय।
अन्त नीचे चीड़, अर्जुन, देवदारु अपार।
गरज चीतन की परै सुनि, कढ़िन की चीत्कार।
कहूँ चट्टानन पै घरें धनमेघ हैं किलकार।
गरुड़ के फिनकार ऊपर गरुड़ हैं मँडरात।
घोर नीचे हरो पट पर दूर लौं दरसात,
देववेदिन तर बिछायौं मनो आसन नाव।[1]

Northwards soared
The stainless ramps of huge Himala's wall
Ranged in white ranks against the blue-untrod,
Infinite, wonderful—whose uplands vast,
And lifted universe of crest and crag,
Shoulder and shelf, green slope and icy horn,
Riven ravine and splintered precipice
Led climbing thought higher and higher, until
It seemed to stand in heaven and speak with gods.
Beneath the snows dark forests spread, sharp-laced
With leaving cataracts and veiled with clouds
Lower grew rose-oaks and the great fir groves
Where echoed pheasant's call and panther's cry,
Clatter of wild sheep on the stones and scream
Of circling eagles under these the plain

१. पं० रामचन्द्र शुक्ल, 'बुद्धचरित', [illegible]

Ieamed like a praying carpet at the foot
Of those divinest altars)[1]

इसी प्रकार रूपान्तर का एक अन्य स्थल भी द्रष्टव्य है—

नृपद्वार कुमारि चलीं पुर की,
अंगराग सुगन्ध उठै गहरी।
सजि भूषण अम्बर रंग-विरंग,
उमगन सों मन मांहि भरी।
कवरीन मे मंजु प्रसून गुछे,
दृगकोरन काजर-लीक परी।
सित भाल पैरोचन-विन्दु लसै,
पग जावक-रेख रची उछरी॥[2]

Thus flocked
Kapilvastu's maidens to the gate
Each with her dark hair newly
Smoothed and bound,
Eye lashes lustured with the soorma stick,
Fresh, bathed and scented, all in shawls and cloths
Of gayest, slender hands and feet new-stained
With crimson and the tilka,
spots stamped bright,[3]

शुक्ल जी की ब्रजभाषा माधुर्य-प्रसाद-समन्वित, सानुप्रासिक और स्वाभाविक प्रवाह से परिपूर्ण है। इन गुणो का समन्वय होते हुये भी इन गुणो को लाने मे वह कही भी प्रयत्नशील नही है। इसी से 'बुद्धचरित' उनका विशेष सफल काव्य है।

'बुद्धचरित' के उपर्युक्त प्रकृति-परक रचना मे भी शुक्ल जी का वही दृष्टिकोण रहा है जो उनकी प्रकृति की अन्य रचनाओ के सम्बन्ध मे है।

प्रकृति-काव्य के सम्बन्ध मे स्वयं आचार्य शुक्लजी का क्या दृष्टिकोण रहा है वह भी विचारणीय है—

1 Arnold 'Light of Asia' Canto 2
२. श्री रामचन्द्र शुक्ल, 'बुद्ध-चरित', द्वितीय सर्ग, पृष्ठ २४ (ना० प्र० स०)।
3 Arnold 'Light of Asia' Canto 2

प्रकृति के शुद्ध रूप देखने को आँखें नहीं
जिन्हें वे ही भीतरी रहस्य समझाते हैं।
झूठे-झूठे भावों के आरोप से आच्छन्न उसे
करके पाखंड कला अपनी दिखाते हैं॥
अपने कलेवर की मैली सी कुचैली वृत्ति
छोपके निराली छटा उसकी छिपाते हैं।
अश्रु-श्वास-ज्वार-ज्वाला नीरस रुदन नृत्य
देख नचना ही सभी तार पे बजाते हैं॥

फतेहपुर मे भी रहे थे। प० रूपनारायण पाण्डेय जब एक वर्ष के थे तभी उनके पिता का देहान्त हो गया था। इससे उनके लालन-पालन का पूर्ण दायित्व उनके पितामह पर आया। परिवार मे रूढिवादिता के कारण उनके पितामह ने उनके अंग्रेजी अध्ययन की व्यवस्था न की। प्रारम्भ मे उन्होंने स्वय ही सस्कृत का अध्ययन कराया। अनन्तर पण्डित ज्ञानेश्वर एव पण्डित रामकृष्ण शास्त्री के निरीक्षण मे उनका सस्कृत का अध्ययन चला। यथासमय ही उन्होंने केनिंग कालेज से सस्कृत की प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की। मध्यमा परीक्षा के तीन खण्ड उन्होंने उत्तीर्ण कर लिए थे। इसी समय पितामह के देहान्त हो जाने के कारण उन्हे अपना अध्ययन स्थगित कर देना पडा। परिवार का भार आ जाने के कारण निर्वाहार्थ वृत्ति के लिए उन्हे नौकरी खोजनी पडी। नौकरी काल मे भी वह एक जिज्ञासु विद्यार्थी के समान अध्ययन मे जुटे रहे। वर्णमाला देखकर ही उन्होंने एक सप्ताह मे बॅगला भाषा का ज्ञान कर लिया था। अनन्तर सब-जज बाबू कालीप्रसन्नसिंह के यहाँ रहकर 'कृत्तिवास रामायण' के पद्यानुवाद करने मे बॅगला से वह भली-भाँति परिचित हो गए थे। इसी प्रकार स्वाध्ययन के बल पर ही उन्होंने मराठी, गुजराती एव उर्दू भाषाओ को सीखा तथा अंग्रेजी भाषा से परिचित हुए।

'कृत्तिवास रामायण' के अनुवाद के उपरान्त लखनऊ रहकर 'नागरी-प्रचारक-पत्र' का सात वर्ष तक सम्पादन करते रहे। इसके आर्थिक भार का उत्तर-दायित्व इलाहाबाद बैंक की लखनऊ शाखा के बाबू गोपाललाल खन्ना को था। वह बडे हिन्दी-प्रेमी थे। वह क्लर्क थे। अनन्तर वह सहायक मैनेजर हो गए थे। पत्र के सम्पादन का भार पाण्डेय जी पर था। उनके द्वारा 'भारत धर्म महामण्डल' की मुख-पत्रिका 'निगमागम चन्द्रिका' का भी ३ वर्ष तक सम्पादन किया गया। दो वर्ष काशी के मासिक पत्र 'इन्दु' के सम्पादकीय विभाग मे रहकर आपने अपनी सम्पादन-कुशलता का परिचय दिया था। इसके उपरान्त पत्नी के निधन पर लखनऊ लौट आए थे। एक वर्ष के अनन्तर वह इण्डियन प्रेस, प्रयाग के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हो कर गए। वहाँ वह ३ वर्ष रहे। दो वर्ष 'कान्यकुब्ज' मासिक पत्रिका का भी सम्पादन किया। अनन्तर पुनः लखनऊ आकर नवल किशोर प्रेस से 'माधुरी' निकलवाई। प्रारम्भ मे उन्होंने पाच वर्ष उसका सम्पादन किया। इसी समय प्रेस के अधिकारियो मे पारस्परिक विद्वेष के कारण वह वहाँ से हटकर ३ वर्ष तक 'सुधा' का सम्पादन करते रहे। मध्य मे 'माधुरी' प्रेमचन्द जी से सम्पादित होती रही। बारह वर्ष का यह समय

'माधुरी' के लिए बड़े सङ्कट का रहा। १९३२ ई० में पाण्डेय जी ने पुनः माधुरी-सम्पादन का कार्य सम्हाला और १९५० ई० तक उसका सम्पादन किया।

उन्होंने अपने जीवन में पत्रों का ही सम्पादन विशेष रूप से किया है। इसी से सम्पादन-कला में वह विशेष पटु हैं। अपनी अध्ययनशीलता एवं लिखने की सुरुचि के कारण ही वह अब तक लगभग १०० पुस्तकें लिख सके हैं। इन पुस्तकों में अधिकांशतः बँगला तथा संस्कृत भाषाओं की पुस्तकों के सफल अनुवाद हैं। आप गद्य तथा पद्य दोनों ही अधिकार और विश्वास के साथ लिखते चले आ रहे हैं।

काव्य की परिभाषा में वह मम्मट से सहमत हैं। कालिदास का संस्कृत साहित्य इन्हें विशेष प्रिय है। अब भी समय मिलने पर वह कालिदास की कृतियों का ही अध्ययन करते हैं। इनकी रचनाएँ भावना-प्रधान हैं और प्रासादिकता उनका विशेष गुण है।

आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी कानपुर आने पर अपने परम मित्र पं० गोविन्दप्रसाद वाजपेयी के निवास पर ही ठहरा करते थे। एक बार आचार्य द्विवेदी जी ने 'फेंका धनुष की' समस्या पाण्डेय जी को दी। पाण्डेय जी ने बड़े चातुर्य के साथ उक्त समस्या की पूर्ति निम्न घनाक्षरी में की।

शङ्कर की सेवा में उपस्थित उमा को देख,
काम ने वसन्त ने चढ़ाई एक साथ की।
योगिराज का भी मन चञ्चल हुआ तो पर
रोक ली प्रवृत्ति वहीं बढ़ती उमङ्ग की॥
क्रोध से तृतीय नेत्र खोलकर देखते ही,
राख ही दिखाई पड़ी मदन के संग की।
होकर अचेत ज्यों ही जड़ से उखाड़ी गई,
लतिका समान गिरी 'फेंका धनुष की'॥

द्विवेदी जी उनकी इस काव्य-प्रतिभा से बड़े ही प्रसन्न हुए और तत्काल आशीर्वाद द्वारा [illegible] पाण्डेय [illegible] किया।

काव्य की प्रवृत्तियाँ—इनकी प्रारम्भिक रचनाओं [illegible] ब्रज-भाषा की रचनाएँ [illegible] थीं; किन्तु [illegible] दोनों [illegible] के लिए [illegible]। [illegible] दोनों [illegible] [illegible] है।

कहते हैं सब लोग हमे, हम दीन-हीन हैं भिक्षुक हैं।
कुछ भी हो, हम लोग अभी अच्छे होने के इच्छुक हैं।
सच है, वैभव नहीं रहा पर बुद्धि हमारी दीन नहीं,
पौरुष कम है ; मगर हुए हैं मनुष्यत्व से हीन नहीं।[1]

—इस प्रकार की सीधी-सच्ची भाषा का ही उनके काव्य मे सर्वत्र प्रयोग है।

द्विवेदी-युग राष्ट्र-निर्माण का युग था। इससे राष्ट्र, समाज, जाति एव धर्म आदि के नव-निर्माण के लिए इस समय के कवियो की रचनाओं मे उपदेशात्मक एव इतिवृत्तात्मक काव्य का प्राधान्य था। यद्यपि पाण्डेय जी के काव्य मे सर्वत्र ऐसे उपदेश का आग्रह नही है तथापि देश, जाति एव धर्म-विषयक रचनाओ के अन्त मे वह निर्माण-विषयक सन्देश दे ही देते हैं—

ब्रह्मदेव, फिर उठो देश का हित करने को,
रोग, शोक, दारिद्र्य, दु ख दुर्मति हरने को।
ज्ञान, प्रेम, आनन्द प्राप्त कर कर्मी हम हो,
आलस, वैर, विकार, वासना, विप्लव कम हो।
देखे फिर सारा जगत, क्या है सच्ची सभ्यता,
पराकाष्ठा धर्म की और भाव की भव्यता।[2]

और—

पालन कर कर्त्तव्य जगत के तुम भी गुरु बन जा सकते,
प्रथम प्रतिष्ठा पासकते, फिर पुरुष-सिंह कहला सकते।
इच्छा करने से तुरन्त तुम हो सकते सब के समकक्ष,
हो सकते समकक्ष न केवल, बन सकते सबके अध्यक्ष।[3]

इस प्रकार के निर्माण-विषयक नैतिक सन्देश उनकी अन्य रचनाओ से भी उपलब्ध किए जा सकते हैं। युग का यह ऐसा प्रभाव था जिसको पाण्डेय जी दूर नही कर सके हैं। समाज एव राष्ट्र के इस प्रकार के हित-सम्पादन मे ही वह 'शिव' आँकते हैं।

---

१. रूपनारायण पाण्डेय— मातृभूमि, पराग, पृष्ठ २२ (गगा पुस्तकमाला, लखनऊ)।

२ रूपनारायण पाण्डेय—दिग्दर्शन, पराग, पृष्ठ १५ (गगा पुस्तकमाला, लखनऊ)।

३ रूपनारायण पाण्डेय—प्रोत्साहन, पराग, पृष्ठ २२ (गगा पुस्तकमाला, लखनऊ)

'वन-विहंगम' रचना में उनकी भावुकता और मधुरता स्पष्ट परिलक्षित होती है। यद्यपि यह रचना कपोत-कपोती के त्यागभरे कथानक पर आधारित है तथापि बीच-बीच में कवि ने उपदेशों का पुट भी दिया है। बच्चों के वात्सल्य के कारण कपोत और कपोती ने प्राणों को होम दिया है। इस महान त्याग के कारण ही इस काव्य का उद्देश्य महत्तम बन गया है—

वन-बीच बसे थे, फँसे थे ममत्व में, एक कपोत, कपोती कहीं,
दिन रात न छोड़ता एक को दूसरा, ऐसे हिले-मिले दोनों वहीं।
बढ़ने लगा नित्य नया-नया नेह, नई-नई कामना होती रही,
कहने का प्रयोजन है इतना, उनके सुख की रही सीमा नहीं॥[1]

स्थल-स्थल पर उनके काव्य में दुःखवाद एवं निराशा का दृष्टिकोण भी झलकता है। ऐसे स्थलों पर वैयक्तिक अनुभूति के कारण कवि-मन ही कोमल हो गया है—

अहह, अधम आँधी, आ गई तू कहाँ से ?
प्रलय-घन-घटा सी छा गई तू कहाँ से ?
पर-दुख-सुख तूने हा ! न देखा, न भाला,
कुसुम अधखिला ही हाय, यों तोड़ डाला।
तड़प-तड़प माली अश्रुधारा बहाता,
मलिन-मलिनिया का दुःख देखा न जाता।
निठुर फल मिला क्या व्यर्थ पीड़ा दिये से,
इस नव लतिका की गोद सूनी किये से ?[2]

यह दुःखवाद ही, जो जीवन की निराशा पर टिका है, [illegible] निराशामूलक हो गया है। वस्तुतः 'दलित कुसुम' का कवि द्वारा [illegible] ही सार्थक है।

इसी प्रकार [illegible] के आधार पर लिखित '[illegible]' नामक रचना में [illegible] है—

1. रूपनारायण पाण्डेय—वन विहंगम, पराग, पृष्ठ ८८ (गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ)।
2. रूपनारायण पाण्डेय—दलित कुसुम, पराग, पृष्ठ ८८ (गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ)।

चन्द्रिका-सदृश दम-भर खिलकर, हा हन्त ! हुई अन्तर्हित यों,
कर हृदय हमारा अन्धकार, उठ गई जगत से दम भर मे।
प्रियतमे, देवि, तुम तो अनन्त-सौभाग्य शालिनी निश्चय हो,
बालक-वियोग-वेदना नहीं सह सकीं, गई पीछे उसके।

शोक-सूचक रचनाओं मे यो ही कवि का व्यक्तिवाद प्रस्तुत रहता है, वही इस स्थल पर भी है। कवि ने पंक्तियो को अतुकान्त रखने का प्रयास किया है।

अंग्रेजी की Sonnet के ढग पर पाण्डेय जी ने भी पंक्तियाँ लिखी हैं। इस स्थल पर चांदनी रात के उपलक्ष मे लिखी हुई उनकी चतुर्दशपदी दृष्टव्य है :—

नील नभोमण्डल मे कैसा सुन्दर रग झलकता है,
जिसको देख हृदय प्याले से रसमय भाव छलकता है।
छाई शुभ्र शरद की शोभा पूर्ण इन्दु के मण्डल मे।
सागर सारा समा रहा ज्यों एक बिंदु के मण्डल मे।
शुक्ला अभिसारिका सदृश यह शरद-शर्वरी मन-भाई,
प्रिय प्रभात से मिलने को हँसती सी देखो, है आई।
चटकीली चाँदनी पडी चादर सी चन्द्र-वदन पर है,
तारे हैं या चाँदी के तारों का काम मनोहर है।[1]

उपर्युक्त के अतिरिक्त ग्रीष्म आदि के वर्णन मे भी कवि ने अपने को परम्परा-पालन से मुक्त रखा है। प्रकृति का भी कवि मे मौलिक निरीक्षण है।

उपर्युक्त काव्य के संक्षिप्त विवेचन से इतना स्पष्ट है कि प० श्रीधर पाठक द्वारा प्रतिपादित काव्य की स्वच्छन्दतावादी धारा अथवा द्विवेदी जी की परम्परागत काव्य की प्रगति के प्रति उनका कोई विशेष आग्रह नही है। कवि ने सामयिक परिस्थितियों को ही अपने काव्य का विषय बनाकर ईमानदारी के साथ सरल और प्रासादिक शैली मे उनका वर्णन कर दिया है। द्विवेदी-युग मे रहकर भी उनका काव्य छायावादी युग की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने मे प्रवृत्त है, यही उनके काव्य की विशेषता है।

मन्नन द्विवेदी गजपुरी (१८८५ ई०—१९२१ ई०)

जीवनवृत्त और व्यक्तित्व—मन्नन द्विवेदी गजपुरी के पूर्वज जिला गोरखपुर के अन्तर्गत राप्ती नदी के किनारे गजपुर ग्राम के रहने वाले थे। इनके पिता

१. रूपनारायण पाण्डेय—चाँदनी रात, पराग, पृष्ठ ८९।

पं० मातादीन द्विवेदी अपने ग्राम के जमींदार थे और वह ब्रजभाषा के अच्छे कवि भी थे। आप सरयूपारीण कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। आपके ही परिवार में मन्नन द्विवेदी का सं० १९४२ वि० में जन्म हुआ था। उन्होंने सं० १९६५ में गवर्नमेंट कालेज, बनारस से बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इनकी छोटी अवस्था से ही वह कविता करने लगे थे।

आजमगढ़ जिले में वह तहसीलदार थे। अवकाश-प्राप्त समय में वह साहित्य-सेवा किया करते थे। 'सरस्वती' एवं अन्य पत्रिकाओं में इनकी कविताएँ प्रकाशित होती रही हैं। सं० १९७८ में उनका देहान्त हो गया था।

काव्य की प्रवृत्तियाँ—द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता एवं नैतिकता के बन्धन से मन्नन द्विवेदी दूर थे। वे राष्ट्रीयता की प्रगति के साथ, जो द्विवेदी-युग की प्रमुख प्रवृत्ति थी, उनका काव्य भी अग्रसर हुआ है। उनकी वाणी में भी देश के नव-निर्माण का स्वर है। देश के अतीत के स्वर्णिम-युग का गान कर पतनावस्था से दुःखी होकर कवि पुनः उत्थान की भावना प्रकट करता है। इस भावना से राष्ट्रीयता के स्थान पर कवि-हृदय की विशालता ही ज्ञात होती है।

जन्म-प्रदायिनी माँ से मातृभूमि का पद उच्च और श्रेष्ठ है। इस सम्बन्ध में द्विवेदी जी का कथन है—

जन्म दिया माता सा जिसने किया सदा लालन-पालन।
जिसके मिट्टी जल वायु से, रचा गया हम सबका तन ॥
गिरिवर गण रक्षा करते हैं, उच्च उठा के शृंग महान।
जिसके लता द्रुमादिक करते, हमको अपनी छाया दान ॥
माता केवल बालकाल में, निज अंक में धरती है।
हम असमर्थ जब तलक तभी तक पालन पोषण करती है ॥
मातृ-भूमि करती है मेरा, लालन सदा मृत्यु-पर्यन्त।
जिसके दया प्रवाहों का नहिं, होता सपने में भी अन्त ॥

० ० ०

ऐसी मातृ-भूमि मेरी है, स्वर्ग लोक से भी प्यारी।
जिसके पद-कमलों पर मेरा तन-मन-धन सब बलिहारी ॥

[illegible]

विचलित कर देती है और वह करुण होकर पूछ उठता है —

बतादे गगा कहाँ गया है, प्रताप पौरुष विभव हमारा ?
कहाँ युधिष्ठिर, कहाँ है अर्जुन, कहाँ है भारत का कृष्ण प्यारा ?

अनन्तर कवि ईश्वर से अनन्य कामना करता है —

सिखादे ऐसा उपाय मोहन, रहे न भाई पृथक् हमारे।
सिखादे गीता की कर्म शिक्षा, बजाकर वशी सुनादे प्यारे॥
अँधेरा फैला है घर मे माधो, हमारा दीपक जलादे प्यारे।
दिवाला देखो हुआ हमारा, दिवाली फिर भी दिखादे प्यारे॥

जन्म-भूमि के प्रेम के साथ कवि मे दु खवाद का भी मिश्रण था। द्विवेदी जी की रचना 'वीर वानापार्ट के अन्तिम दिन' निस्सन्देह बडी करुण है —

आज दिखाई पडते हैं जो सुमन सुभग शोभाशाली
कल प्रभात ही उन्हें तोडने वह देखो आता माली।[1]

विश्वव्यापी यह असारता अपने स्वरूप मे सर्वत्र विद्यमान है। इसका ऐसा प्रभावशाली बन्धन है कि आज तक उससे कोई भी नही बच सका है। मरणासन्न बोनापार्ट की निम्न भावनाओ मे उसके हृदय का सच्चा प्रस्फुटन है। जिस प्रकार वह अपने वीर-कृत्यो मे महान् था उसी प्रकार उसकी भावनाएँ भी महान् थी। उसके हृदय की स्वच्छन्द पुकार थी —

मर जाने पर मुझे कार्सिका-द्वीप भेज देना होगा।
जिसकी है यह देह उसी मे इसे मिला देना होगा॥
अथवा मुझको मेरे प्यारे फ्रास देश को भिजवाना।
मेरी 'कब्र' 'सीन' सरिता के परिचित तट पर बनवाना॥
मेरे सगे सहोदर के सम फ्रास निवासी आवेंगे।
बैठ बैठ गुण गाकर मेरा आँसू वहीं बहावेंगे॥
अथवा मुझे सुला देना तुम, उस प्यारे झरने के तीर।
जिसका जल पीकर जीता था यह नृप सैनिक बन्दीवर॥[2]

बोनापार्ट के इस प्रकार के सोचने मे मस्ती अवश्य है। वन्दीगृह का वन्दी बोनापार्ट जब लौकिक कारा से मुक्त हो जावेगा तब उसके शव का क्या होगा ?

---

१ मन्नन द्विवेदी—'वीर बोनापार्ट के अन्तिम दिन' सरस्वती, जून १९१३।
२ ,, ,, ,,

उनकी आत्मा पूर्ण होती है अथवा नहीं, यह तो भविष्य ही जाने, किन्तु उनकी विचारधारा पूर्ण जानती है, यह सत्य है।

जब हाथ बढ़ाया लेने को हा, हृदय उसे दे देने को,
तब टूट गई पाँखुरी यहीं सोती थी फैली छिन्न-भिन्न।
आनन्द मृत्यु का भी मानस करते हैं होता कभी-कभी,
क्या छुपाने हो ये मुझसे यह मोदमत्त विनोद हुआ।
या जड़ शरीर को छोड़ प्रेममय होकर अन्तर्धान हुआ,
मिल गया स्नेह के सागर में उसके जल का कण होकर के।
या खण्डित कर शरीर अपना करने में मेरा शुभ स्वागत,
वह हाय बढ़ा प्यारा-प्यारा देकर सुगन्ध-उपहार मुझे।
प्राणेश कहाँ वह लोप हुआ जिसका ऐसा वह लोप हुआ,
मैं व्याकुल बैठा सोच रहा, हूँ पड़ी पाँखुरी उसकी सुध।'[1]

इन पंक्तियों में द्विवेदी जी की स्वच्छन्दतावादी भावनाओं के दर्शन सुलभ हैं। इनकी भावनाएँ स्वच्छन्दतापूर्वक भाव-लोक में भ्रमण करती हुई इस [illegible] शाश्वत प्रेम के स्वरूप को भी व्यक्त करती हैं। इसमें स्नेह का विरह न होकर मृत्यु का निरीक्षण है।

द्विवेदी-युग में काव्य के स्थूल स्वरूप को मानने वाले कवि थे। [illegible] पंक्तियों में द्विवेदी के प्रभाव के [illegible] भी स्वच्छन्दता थी, [illegible] की मौलिकता और सरलता का समावेश रहा था। [illegible] विचारधाराओं के साथ [illegible] नहीं थे। [illegible] द्विवेदी की 'रमेशी' [illegible] विशेषता है। पंक्तियाँ [illegible] और [illegible]: —

सुन्दरता की [illegible] तुम, [illegible] की [illegible] पायेगी।
तुमको [illegible] आना जी, [illegible] भगवान् [illegible]॥
[illegible] पायेगी।
[illegible] प्रकार करेगी॥
प्रेम-[illegible] प्रेमी [illegible], [illegible] पायेगी।
[illegible] करेगी॥
[illegible] करेगी।
[illegible] करेगी॥

१ [illegible] द्विवेदी, गुलाब की पाँखुरी, सरस्वती, [illegible] १९१५।

छिन्न-भिन्न डालों का होना, अपने ही हित जान चमेली।
हरे-हरे पत्ते निकलेंगे सुमनों के समान चमेली॥
भ्रमर-भीर गुंजार करेगी, तुझमें हास विलास चमेली।
दिग्‌दिगन्त सुरभित होवेगा, पाकर सुखद सुवास चमेली॥
अटल नियम को भूल न जाना, जग में नवका नाश चमेली।
अस्त अंशुमाली भी होता, घूम अखिल आकाश चमेली॥
नहीं रहेगा मूल न शाखा, नहीं मनोहर फूल चमेली।
निराकार से मिलकर होना, प्रियतम-पद की धूल चमेली॥[1]

द्विवेदी जी के काव्य का उत्कृष्ट स्वरूप इस रचना में प्रस्फुटित हुआ है। कवि ने 'चमेली' के द्वारा लौकिक जीवन को 'जन्म' से लेकर 'मरण' तक निरीक्षण किया है। जीवन में निर्भय एवं निशंक होकर कालयापन करने का शुभ सन्देश देकर उसे स्वच्छन्दजीवी बनाये जाने का प्रयास किया गया है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन एवं कवि के उद्धरणों से यह पूर्ण स्पष्ट है कि मन्नन द्विवेदी गजपुरी भाव, भाषा एवं छन्द आदि के सम्बन्ध में परम्परावादी नहीं हैं। उनकी भावनाएँ भी उन्मुक्त हैं। इस प्रकार श्रीधर पाठक द्वारा जिस स्वाभाविक एवं सरल जीवन का दर्शन कराया गया था द्विवेदी जी के काव्य ने भी उसी पथ पर चलकर हिन्दी को गौरवान्वित किया है।

बदरीनाथ भट्ट (१८८६ ई०–१९३३ ई०)

जीवनवृत्त और व्यक्तित्व—खड़ी बोली के बाह्य स्वरूप के निर्मित हो जाने पर उसकी अन्तर्भावना को प्रमुखता देकर चलने वाले कवियों में मैथिली-शरण गुप्त एवं मुकुटधर पाण्डेय के साथ बदरीनाथ भट्ट का भी नाम लिया जाता है। इन लोगों ने विचारों के क्षेत्र में क्रान्ति उपस्थित कर दी और श्रीधर पाठक की स्वच्छन्दतावादी भावना को सफलतापूर्वक अग्रसर किया।

भट्ट जी आगरा (गोकुलपुरा) के रहने वाले थे। उनके पिता रामेश्वर भट्ट हिन्दी और संस्कृत के विद्वान् थे। उन्होंने अपने जीवन में कितनी ही संस्कृत और हिन्दी काव्य-पुस्तकों की टीकाएँ की थीं। पिता की साहित्य-मर्मज्ञता का बदरीनाथ भट्ट जी पर भी प्रभाव पड़ा था। उन्होंने हिन्दी गद्य-पद्य में लिखना आरम्भ किया। द्विवेदी जी के 'सरस्वती' के सम्पादन-काल में उनकी गद्य-पद्य की रचनाएँ सरस्वती में बहुधा निकला करती थीं।

१ श्री मन्नन द्विवेदी, 'चमेली', सरस्वती, जनवरी, १९१९।

सन् १८८६ ई० में लगभग उनका जन्म हुआ था। आपने बी० ए० तक अध्ययन किया था। अपनी योग्यता के कारण ही आपने लखनऊ विश्वविद्यालय में हिन्दी-अध्यापक का पद प्राप्त किया था।

काव्य की प्रवृत्तियाँ—[illegible] के द्वितीय उत्थान के मैथिलीशरण गुप्त एवं मुकुटधर पाण्डेय के समान बदरीनाथ भट्ट जी भी अन्तर्भावनाओं को काव्य में प्रमुखता देकर चले थे। उनके हृदय में भी चिर-व्यापी अनन्त सत्ता के लिए जिज्ञासा उठी थी और संसार की असारता ने उन्हें [illegible] भी व्यथित किया था। 'प्रार्थना'[1] के अन्तर्गत 'अन्तरतम-[illegible] [illegible]' भावना को भट्ट जी व्यक्त करते हैं। इसमें कवि अपने को मानव उद्धार एवं कल्याण की संकुचित सीमा में ही आबद्ध नहीं कर देना चाहता है उन्हें स्वतः पर 'भारतमाता' की कल्याण कामना करते हुए राष्ट्रीय भावना के विकास और प्रसार की अनन्य कामना भी करते हैं। इस प्रकार [illegible] 'स्वार्थ' के आवरण को भी हटा देने की आवश्यकता है। इस प्रकार यह सब हित-चिन्तन देश के लिए है—राष्ट्र-निर्माण के लिये है। [illegible] 'मुस्लिम एकता', 'हिन्दू देश की दुर्गति', '[illegible]' एवं [illegible] आदि की 'प्रार्थना'[2] करता है। देशवासियों की निष्क्रियता और आलस्य ही से वास्तव में देश की दुर्गति थी

ऐ सोने वाले जाग जाग
ले माल लुटेरा चला गया

o o o

[illegible] चारों ओर घोर [illegible] का [illegible],
[illegible] जाने सब [illegible] और [illegible] है [illegible] जाग।
ऐ सोने वाले जाग जाग
[illegible]
है समय [illegible], [illegible] की ओर [illegible]
ऐ सोने वाले जाग जाग[3]

[illegible]

१. बदरीनाथ भट्ट, 'प्रार्थना', सरस्वती, अप्रैल १९१४।
२. " 'प्रार्थना सप्तक', सरस्वती, मार्च १९१४।
३. " 'चेतावनी' माधुरी [illegible], १९२२-२३।

करता है। इस प्रकार की प्रेरणा वस्तुतः बड़ी ही सरल और स्वाभाविक है —

अब तो आँखें खोलो प्यारे
पूर्व दिशा अब तरुण हुई है,
प्रकृति-देवि पट बदल रही है।
यम ने तम की बाँह गही है,
छिपकर भागे तारे।
उषा देवि के दर्शन पाकर
हुए प्रफुल्लित सभी चराचर
तुम क्यों सोये शीश झुकाकर
सुधि बुधि सभी बिसारे।
अब तो आँखें खोलो प्यारे ॥[1]

प्रकृति, जो मानव के समान ही सजीव है, अपने परिवर्तनों से अपने जीवन को व्यक्त करती है फिर मानव की अलसायी हुई स्थिति कितनी लज्जास्पद है।

भट्ट जी ने प्रकृति के सरल और स्वाभाविक स्वरूप को देखा है। मुकुटधर पाण्डेय के समान प्रकृति मे अव्यक्त ईश्वरीय सत्ता को उन्होने नही देखा है। इस कारण वह विशुद्ध प्रकृतिवादी कहे जा सकते हैं :—

खिला है नया फूल उपवन मे,
सुखी हो रहे हैं सब तरुवर बेलें हँसती मन मे ॥
प्रात समीर लगी, सुख पाया, पहली दशा भुलाई।
जिधर निहारा उधर प्रेम की थाली परसी पाई ॥
रूप अनूठा लेकर आया, मृदु सुगंध फैलाई।
सब के हृदय-देश मे अपनी प्रभुता ध्वजा उड़ाई ॥
जीत लिया है तूने सबको ऐसी लहर चलाई।
रोकर हँसकर सभी तरह से अपनी बात बनाई ॥[2]

प्रकृति के सस्मित स्वरूप को देखकर कवि जीवन के शुक्ल पक्ष पर दृष्टि-

---

१. बदरीनाथ भट्ट, अनुरोध, पद्य-संग्रह, सम्पादक व्रजराज एवं गोपाल स्वरूप सं० १९७८, (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)।

१. बदरीनाथ भट्ट, नया फूल, सरस्वती, जुलाई, १९१५।

पात करता है। गद्य में 'भूगी पनी' में 'समय का फेर' अनुनय [illegible] वाद को भी अपने ढंग में दिखाते हैं।

पड़ी भूमि पर होकर मानो पीला तेरा रंग हुआ है।
सब रस रूप समय ने लूटा चुरमुर सारा अंग हुआ है॥
जिस पर रहती थी मंडरातीं नित, फूल-फूल पर जाती भ्रमरी थी।
वही हुआ अब धूल फेंकती उजड़ा सारा ढंग हुआ है॥

० ० ०

अब क्या जुड़ सकती है तरु में ? किसकी है तू कौन है तेरा ?
इस दुनिया में कोई किसी के दुःख में कभी न संग हुआ है।
'दुःख' क्या है ? अभिमान प्रतिध्वनि, है आशा का रूप निराला।
है जीवन का हेतु मरण ज्यों मणि का हेतु भुजंग हुआ है।[1]

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन में भट्ट जी की प्रमुख काव्य-प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। भट्ट जी भी मुकुटधर पाण्डेय [illegible] द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता एवं नैतिकतावादिता में [illegible] थे। उन्होंने जीवन-निर्माण के सन्दर्भ में [illegible] प्रस्तुत किया है। [illegible] भी व्यक्त हुआ है। [illegible] जीवन की असारता, परिवर्तनशीलता एवं दुःखवाद [illegible] की है।

इस प्रकार [illegible]

रामनरेश त्रिपाठी (जन्म—१८८९ ई०)

जीवनवृत्त और कृतित्व—[illegible]

[illegible]

१. बदरीनाथ भट्ट, 'समय का फेर', [illegible] १९१५।

हुआ था। आपके पिता का नाम प० रामदत्त त्रिपाठी था। उनका परिवार सरयूपारीय ब्राह्मण है। वह गीता, रामायण एव महाभारत आदि धार्मिक ग्रथो के बडे ही प्रेमी थे। उन्ही से त्रिपाठी जी को रामायण का अनुराग हुआ था। त्रिपाठी जी का अध्ययन कक्षा ६ से अधिक नही चल सका। अपने जन्म-ग्राम से अपर प्रायमरी परीक्षा उत्तीर्ण कर वह जोनपुर के हाई स्कूल मे अग्रेजी पढने गए, किन्तु अग्रेजी पढने के सम्बन्ध मे पिता जी का उनसे विरोध हो गया। वह अग्रेजी के पक्ष मे न थे। नौकरी करके धन कमाने की उनकी आकाक्षा थी। उनकी रुष्टता के कारण उन्हे बिना सूचित किये वह कलकत्ता भाग गये।

कलकत्ता मे वह सग्रहणी रोग से पीडित हो गए। डाक्टरो ने भी उनके जीवन के लिए निराशा प्रकट की। अन्त मे वह राजस्थान चले गए और फतहपुर (शेखावटी) मे जाकर ठहरे। वहाँ वह स्वस्थ हो गये। अन्त मे वह घर लौट गये, किन्तु उनमे रोग के कुछ लक्षण विद्यमान थे। इससे आप पुन वहीं चले गये। वहाँ मारवाडी सज्जनो के सहयोग से एक पुस्तकालय स्थापित किया। पुस्तकालय से हिन्दी, सस्कृत एव अग्रेजी पुस्तको का आपने जमकर अध्ययन किया।

कलकत्ता मे रहकर उन्होने बगला भाषा का ज्ञान किया था और राजपूताने मे निवास करने से गुजराती आदि सीखने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। त्रिपाठी जी के साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ राजस्थान से ही होता है। वहाँ आपने कितनी ही काव्य-पुस्तकें लिखी।

१९१५ ई० मे पिता के देहान्त पर आप अपनी जन्मभूमि मे लौट आये। दो वर्ष के उपरान्त १९१७ ई० मे वह प्रयाग मे जाकर रहने लगे। नवयुवक थे ही, राष्ट्रीय आन्दोलनो में उन्होने सक्रिय भाग लिया। आन्दोलनो मे उनको कारावास भी हुआ। १९२४ ई० मे आपने हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग और १९३१ ई० मे हिन्दी-मन्दिर-प्रेस, प्रयाग की स्थापना की।

'मिलन', 'स्वप्न' एव 'पथिक' आदि उनकी महत्वपूर्ण राष्ट्रीय रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त उन्होने कविता कौमुदी, ग्राम गीतो के सग्रह तथा अन्य कितना ही गद्य और पद्य साहित्य का सृजन किया। सुल्तानपुर से आपने 'उद्योग' नाम की पाक्षिक पत्रिका निकाली थी। १९३१ ई० से आपने 'वानर' का सम्पादन प्रारम्भ किया। कुछ समय तक सम्मेलन पत्रिका का सपादन भी किया था।

आपने सुल्तानपुर में अपना घर बनवा लिया है। अब आप आजकल सपरिवार वहीं रह रहे हैं।

काव्य की प्रवृत्तियाँ—त्रिपाठी जी की काव्य-विषयक देन के सम्बन्ध में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है—

"काव्य क्षेत्र में जिस स्वाभाविक स्वच्छन्दता (Romanticism) का आभास पं० श्रीधर पाठक ने दिया था उसके पथ पर चलने वाले द्वितीय उत्थान में त्रिपाठी जी दिखाई पड़े। 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' नामक इनके तीनों खण्ड-काव्यों में इनकी कल्पना ऐसे मर्म पथ पर चली है जिस पर मनुष्य मात्र का हृदय स्वभावतः ढलता आया है। ऐतिहासिक या पौराणिक कथाओं के भीतर न बँधकर अपनी भावना के अनुकूल स्वच्छन्द संचरण के लिए कवि ने नूतन कथाओं की उद्भावना की है। कल्पित आख्यानों की ओर यह विशेष झुकाव स्वच्छन्द मार्ग का अभिलाष सूचित करता है।"[1]

त्रिपाठी जी के उपर्युक्त तीनों खण्डकाव्य ही स्वाभाविक स्वच्छन्द भावना के लिए प्रसिद्ध हैं। अतः इनके तीनों काव्यों की अलग-अलग विवेचना ही उचित होगी।

'मिलन' (१९१७ ई०) में युवक (आनन्दकुमार) युवती (विजया) दोनों ही राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। देश की दयनीय परिस्थिति से दोनों ही व्यथित और सन्तप्त हैं।

शत्रुओं से देश को मुक्त करने के लिए युवक से सहायता करना हुआ कहता है—

रक्षित रखने को भूतल पर
मनुष्यता का मान।
बढ़ो आगे ईश्वर दे,
सब [illegible] [illegible]।
कठिन-कर्ममय संग्रामों में,
[illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible],
अपना [illegible] [illegible]।

(सर्ग ३—११)

---

१. पं० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, (आठवाँ संस्करण) [illegible] [illegible], पृष्ठ [illegible]

इस भावना से प्रेरित होकर अपनी प्रियतमा से विदा लेने के लिए उसके पास पहुँचा।

प्रिये, विदा प्रियतमे विदा दो,
सुमुखि सहर्ष सहास।
मै पतग हूँ प्रेम-डोर का,
फिर आऊँगा पास।
(सर्ग १—१२)

किन्तु नारी इस वियोग के प्रस्ताव से दुखी हो उठी। वह क्षण भर के लिये किंकर्त्तव्य-विमूढ थी—

शक्ति नही जो नाथ तुम्हारा,
सुन भी सकूँ प्रयाण।
रहते प्राण न जाने दूँगी,
मेरे जीवन प्राण।
सुन प्रणयी के इन्दु-वदन मे
मृदुल कौमुदी - हास।
विकसित हुआ झुकाया उसने,
शशि को शशि के पास।
(सर्ग १—१३)

दमयन्ती, सीता एव द्रौपदी के देश मे पल्लविता विजया भी अपने प्रियतम की सहगामिनी बनने के लिए आकुल हो उठती है। नारी-वेश को परिवर्तित कर पुरुष-वेश मे चल देती है। दोनो ही नौका से यात्रा करते हैं। तीव्र पवन से नौका टूट जाती है और दोनों ही अतल जल मे प्रवेश करते है, दोनों ही अचेत हो जाते हैं और एक-दूसरे से बिछुड जाते हैं, युवती सचेत होने पर कहती है —

प्रियतम बिना न जी सकती हूँ
बच न सकेंगे प्राण।
(सर्ग २—७)

प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है,
प्रेम अशक अशोक।
ईश्वर का प्रतिविम्ब प्रेम है,
प्रेम हृदय आलोक।

उत्साहित करता है। अन्त मे उसे प्राणदड स्वरूप विष-प्याला पीने को दिया जाता है। उसकी पत्नी इस दुर्वृत्त को सुनकर भीड चीर युवक के पास आकर विषपान करके मर जाती है। 'साधु' भी युवक की देश-सेवा से प्रसन्न हो प्राण त्याग देता है। युवक का पुत्र भी राज-कर्मचारी द्वारा मार दिया जाता है। प्रजा मे असन्तोष और उदासीनता का साम्राज्य छा जाता है। प्रजा राजा को देश-परित्याग को बाध्य कर देती है। उन चारो की पुण्य स्मृति मे मेला लगता है और कवि उनकी प्रशसा के गान करते हैं।

पत्नी अपने पति को प्राप्त कर अपने हृदय के उदात्त प्रेम को प्रकट कर उठती है। पति और फिर हिन्दू नारी का पति उसका सर्वस्व था।

हे जीवन की ज्योति, हृदय की शक्ति, आँख के तारे।
हे स्मृति के आधार, प्राण के प्राण, प्रेम सम प्यारे॥
हे मेरे मन की तरग, जीवन के एक सहारा।
सौ सुधाशु लाखों कमलों से मुख है मंजु तुम्हारा॥ (१–१४)

मेरे मुख को चन्द्र बताकर तुम चकोर बनते थे।
नीर भरे घन से मेरे कच देख मोर बनते थे।
आँखो का जीवन कह मुझको सदा देखते रहते।
मेरी बातों को स्वप्राण की सांस तुम्हीं थे कहते॥ (१–२८)

तीव्र प्रेम का स्वरूप पति-पत्नी दोनो मे विद्यमान था, किन्तु पथिक का हृदय प्रकृति-प्रेम से ओत-प्रोत था। उसके समक्ष वह लौकिक प्रेम मे भी आबद्ध नही होना चाहता।

यदि तुम प्यार करती हो कोमल-करुण हृदय से।
करो न मुझको देवि दयामयि, वचित प्रकृति प्रणय से। (१–४६)

इसी समय एक साधु उसे देशभक्ति का अमर सदेश सुनाता है और उससे देशभक्ति की आशा करता है।

पैदा कर जिस देश जाति ने तुमको पाला-पोसा।
किये हुये हैं वह निज हित का तुमसे बड़ा भरोसा॥
उससे होना उऋण प्रथम है सत्कर्त्तव्य तुम्हारा।
फिर दे सकते हो वसुधा को शेष स्वजीवन सारा॥ (२–४८)

पथिक देश मे घूमकर उसकी स्थिति से परिचित होता है। स्थल-स्थल पर देश मे जनता का करुण-क्रन्दन है। निर्धनता का साम्राज्य है। वह प्रजा को उसके कर्त्तव्य समझाता है—

इसका क्या कारण है तुमने कभी हृदय में सोचा ?
किस बल से जनता का जीवन है जाता दबोचा ?
सोचो तो क्या निज जीवन के स्वयं नहीं तुम दुःख हो ?
क्या तुम सब स्वतन्त्र शासन के सुख से नहीं विमुख हो ? (३–३०)

राजा के हृदय में पथिक की देश-भक्ति का ज्वार आ गया, जिसकी क्रोधाग्नि में पत्नी, पुत्र, साधु एवं पथिक स्वयं बलिदान हो गये।

जननी की मृत्यु पर प्रबोध बालक का हृदय छटपटा उठा।

" 'पथिक' मेरी दक्षिण-यात्रा का स्मृति-चिह्न है और यह 'स्वप्न' उत्तर-यात्रा का। इसमे मैंने आजकल के नवयुवकों के द्विविधामय हृदय को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। आजकल एक ओर तो देश का दुर्दैन्य करुण रस उत्पन्न कर रहा है, दूसरी ओर सौन्दर्य, शृगार और सुख के लिए प्रकृति का प्रोत्साहन है। नवयुवकों का मार्ग शृगार और करुण रस के बीच का है। शुद्ध हृदय के लिए दोनो ओर प्रबल आकर्षण है। किधर जाना चाहिये ? इस समस्या का हल करने के लिये ही यह 'स्वप्न' तैयार किया है। इससे इसमें दो परस्पर विरोधी रसो का मिश्रण हो गया है।

मैं प्रकृति का पुजारी हूँ। इसमे प्रकृति के प्रति मेरा आन्तरिक अनुराग पथिक की तरह इसमे भी जहाँ-तहाँ उमड पडा है। काश्मीर मे जिन प्राकृतिक दृश्यों ने मुझे लुभा लिया था, उनका वर्णन मैंने इसके अनेक पद्यो मे किया है।"[1]

स्वच्छन्दतावादी काव्य मे 'स्वप्न' काव्य भी महत्वपूर्ण है, किन्तु यह रचना आलोच्य काल की सीमा के बाहर पडती है। इसमे इस स्थल पर उसकी विशद विवेचना नही की गई है, किन्तु यह सत्य है कि सुमना के द्वारा उसके पति वसन्त का स्वप्न पूर्ण होता है। उसने परिस्थिति की अनिश्चित दशा मे अपने पति को सहयोग प्रदान कर भारतीय अर्द्धांगिनी नारी के कर्तव्य को यथोचित रूप से निवाहा है। उसने अपने जीवन के साथ अपने पति के जीवन को भी धन्य किया।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि त्रिपाठी जी ने लौकिक प्रेम और व्यावहारिक राष्ट्रीयता का स्वरूप हमारे सामने रखने का प्रयास किया है। उनके काव्य का यह स्वरूप बडा ही स्वाभाविक और हृदयाकर्षक है। प्रासादिक भाषा के प्रयोग से प्रेम की उदात्त भावनाएँ हृदय को स्पर्श करने मे सफल हैं। फलस्वरूप त्रिपाठी जी के काव्य का स्वरूप बडा ही मधुर और प्रिय हो गया है।

वास्तव में प० श्रीधर पाठक के उपरान्त हिन्दी-काव्य मे इतनी विशुद्ध और प्रबल स्वच्छन्दतावादी भावना प० रामनरेश त्रिपाठी मे ही आ सकी है। ग्राम-गीतो का सग्रह भी उनकी इसी प्रवृत्ति का द्योतक है। फलत त्रिपाठी जी के काव्य का अध्ययन स्वच्छन्दतावादी काव्य के सम्बन्ध मे बड़ा ही महत्वपूर्ण है।

---

१ श्री रामनरेश त्रिपाठी, स्वप्न की प्रेरणा—स्वप्न—भूमिका अंश (हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग)।

के सस्मरणो को वह बड़े प्रेमपूर्वक सुनाया करते थे। सम्वत् १६५७ मे उन्होंने अपनी माता के साथ धारा क्षेत्र, ओंकारेश्वर, पुष्कर, उज्जैन, जयपुर, व्रज एव अयोध्या आदि की तीर्थ-यात्राएँ की थी। उस समय ही अमरकण्टक पर्वत के मध्य मे नौका द्वारा नर्मदा की यात्रा उन्होने की थी, जिसे वह आजीवन न भूले थे।

प्रसाद जी का विद्यालय-जीवन बहुत ही अल्पकालिक रहा। उन्होंने स्थानीय क्वीन्स कालेज मे कक्षा ७ तक ही अध्ययन किया था। इसी समय सम्वत् १६५८ मे उनके पूज्यपाद पिता जी के असामयिक निधन से परिवार पर नवीन वज्रपात हुआ। घर और बाहर का पूर्ण दायित्व उनके ज्येष्ठ भ्राता शम्भूरत्न पर आया। उन्होंने प्रसाद जी के अग्रेजी और सस्कृत के अध्ययन की व्यवस्था घर पर ही की। श्री दीनबन्धु ब्रह्मचारी से उन्हे सस्कृत एव उपनिषद आदि पढ़ने का सुअवसर मिला था। अपने विद्यानुराग बल से ही वह बौद्ध-कालीन इतिहास, वेद, पुराण एव स्मृतियो आदि के अध्ययन कर सके थे। पितामह और पिता के समय से ही समस्याओ की पूर्ति करनेवाले कवियो का उनके द्वार पर जमघट रहा करता था। फलस्वरूप वह व्रजभाषा की कविता करने की ओर अग्रसर हुये थे।

प्रसाद जी की पन्द्रह वर्ष की अवस्था मे उनकी माता जी का भी देहान्त हो गया। प्रसाद जी के जीवन मे एकाकीपन आ गया। उन्हे पढाई-लिखाई के उपरान्त दुकान पर भी बैठना पडता था। उनका कवि-कर्म वहाँ भी चला; किन्तु उनके भाई को जब उनकी इस प्रवृत्ति का पता चला तो वह रुष्ट हुये। अनन्तर वह उनसे छिपाकर कविता करने लगे। जब साहित्यिको के मध्य मे उनका सम्मान बढा तब शम्भूरत्न जी भी उनसे प्रसन्न हो गये।

शम्भूरत्न भी अपने पितामह और पिता के समान उदार और दानी थे। इससे परिवार पर ऋण हो गया था। जब प्रसाद जी १७ वर्ष के थे उसी समय उनके अग्रज का भी देहान्त हो गया।

अभी तक के निश्चित जीवन के उपरान्त उन पर परिवार का बोझ आ पडा, साथ में पारिवारिक ऋण ने उन्हें विशेष चिन्तित बना दिया। ससार मे शम्भूरत्न की पत्नी के अतिरिक्त उनका अपना कोई न था। अन्य जो अपने को उनका बतलाते थे वे उनकी अवशिष्ट सम्पदा को हडप जाने के लिये प्रयत्नशील थे।

इतने प्रबल व्यवधानों के होते हुए भी प्रसाद जी अपने अध्ययन मे सदैव

सचेष्ट रहे। व्यक्तित्व के विकास के साथ उनको संसार की अनुभूतियों का ज्ञान भी हुआ। दर्शन आदि के अध्ययन की ओर प्रवृत्ति थी ही। फलस्वरूप उनकी रचनाओं में दर्शन का पुट आ जाना स्वाभाविक था। आर्य-समाज के आन्दोलन ने भी उन्हें प्रभावित कर रखा था, जिसकी स्पष्ट छाप उनके उपन्यासों में उपलब्ध होती है।

प्रसाद जी को अपने विवाह स्वयं करने पड़े थे। उन्होंने अपने जीवन में तीन विवाह किये थे। प्रथम दो पत्नियों के निधन पर वह जीवन से उदासीन हो गये थे; किन्तु अपनी भाभी के आग्रह पर उन्होंने तीसरी शादी भी की। इसी तृतीय पत्नी से रत्नशंकर पुत्र-रत्न उत्पन्न हुए थे। तत्परतापूर्वक व्यापार में लगे रहकर उन्होंने १९२९-३० ई० को पारिवारिक ऋण से अपने को मुक्त कर पाया था।

इतने व्यवधानों में होते हुए भी उनका अध्ययन अबाध रूप से चलता रहा। उनकी रचनाएँ 'इन्दु' एवं 'जागरण' में प्रकाशित होती रहती थीं। 'इन्दु' का तो उनके आदेशानुसार उनके भांजे श्री अम्बिका प्रसाद गुप्त ने प्रकाशन आरम्भ किया था और 'जागरण' का प्रकाशन 'पुस्तक मंदिर' से किया गया था। 'इन्दु' के समान यह पत्र भी साहित्यिक था। बाद में चलकर यह पत्र प्रेमचन्द जी को दे दिया था। उन्होंने उसको साप्ताहिक पत्र के रूप में निकाला।

प्रसाद जी की नारियल बाजार की दूकान पर नित्य ही साहित्यिक गोष्ठी जुटती थी। यह साहित्यिक वार्तालाप ६ बजे से ८ बजे रात्रि तक नित्य ही चला करता था। वाद-विवाद होता था और साहित्य विषयों पर तर्क भी चलता था। उनके मित्र बहुत कम थे। रायकृष्णदास, केशवप्रसाद मिश्र एवं विनोदशंकर व्यास आदि ही उनके मित्र थे। वे घर पर से बहुत कम बाहर निकलते थे। जब बाहर जाते भी थे तो इसी गोष्ठी में नहीं जाया करते थे।

प्रसाद जी ने अपने घर में नागर तत्त्व का शिवलिंग स्थापित कर रखा था। नित्य नियम से २-३ घंटे का समय इसमें व्यतीत किया करते थे। गीता और उपनिषद् आदि वह इसी अवधि में अध्ययन किया करते थे।

प्रसाद जी बड़े स्वभाव के संकोची थे। उन्होंने कभी किसी अभि-नन्दन और सभा-सोसाइटियों का सभापतित्व नहीं किया। [illegible] पर वह [illegible] दिया करते थे। [illegible] में [illegible] और [illegible] कविता रही थी, जिसको पुरस्कार [illegible] थे।

यो नाटक, उपन्यास, कहानी एव काव्य लिखकर उन्होने हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि की ही थी, किन्तु 'कामायनी' महाकाव्य लिखकर उन्हे परम सन्तोष हुआ था।

वस्तुत 'कामायनी' महाकाव्य लिखने के अथक परिश्रम ने उन्हे थका दिया था। १६३६ ई० की लखनऊ-प्रदर्शनी देखने के लिये वह गये। लौटकर २८ जनवरी १६३७ ई० से वह ज्वरग्रस्त हुए। २२ फरवरी १६३७ को उनके कफ की परीक्षा हुई। उन्हे राजयक्ष्मा का रोग था। उनका शरीर क्रमश सूखने लगा। अन्तिम दिनो मे उन्हे चर्म रोग हो गया था, जिससे उनकी मुखाकृति भयानक-सी लगने लगी थी। डाक्टरो ने स्थान बदलने की भी राय दी, किन्तु उन्होने उसे पसन्द नही किया। ६-१० नवम्बर से उनकी हालत बहुत बिगडी। १४ नवम्बर एकादशी को उनके रोग ने सभी को निराश कर दिया। साँस लेने मे भी कष्ट होने लगा। १५ नवम्बर १६३७ ई० को प्रात साढे चार बजे उनका निधन हो गया। प्रसाद जी के महामहिम व्यक्तित्व को खोकर हिन्दी की निस्सन्देह बडी क्षति हुई, जिसकी पूर्ति की कोई सम्भावना नही है।

काव्य की प्रवृत्तियाँ—भारतेन्दु जी के काव्य के दो स्वरूप थे। प्रथम मे रीतिकाव्य-पद्धति का प्राधान्य था, द्वितीय मे नूतन परिस्थितियो के आग्रह से सृजित काव्य का। भारतेन्दु जी की इन दोनो पद्धतियो पर क्रमश. जगन्नाथदास 'रत्नाकर' जी एव श्रीधर पाठक जी चले। भारतेन्दु-युग के उपरान्त द्विवेदी-युग के प्रारम्भ मे भारतेन्दु जी की द्वितीय विकसित काव्य-पद्धति के अन्तर्गत प्रसाद जी का समावेश हुआ। वह भारतेन्दु एव द्विवेदी-युग दोनो की सधिकाल के विकासशील भावुक कवि थे।

'द्विवेदी-युग' के आरम्भ के पूर्व श्रीधर पाठक का खडी बोली और ब्रज-भाषा का काव्य प्रभूत मात्रा में था ही। कहना अतिशयोक्ति न होगा कि स्वय द्विवेदी जी को भी पाठक जी के काव्य से प्रेरणाएँ मिली थी। ये प्रेरणाएँ भावनात्मक न होकर प्रधानत शैलीगत ही थी। यदि द्विवेदी जी ने उनकी भावनाओ का समावेश कर काव्य का आदर्श रखा होता तो द्विवेदी-युग का आज अस्तित्व न होता, क्योकि पाठक जी मे भावनाओ का प्राधान्य था जबकि द्विवेदी जी मे केवल भाषा-निर्माण का ही आग्रह था।

मैथिलीशरण गुप्त एव जयशकर प्रसाद दोनो कवि ही प्रारम्भ मे ब्रजभाषा के कवि थे। गुप्त जी के 'सरस्वती' के अन्तर्गत आ जाने पर उनके काव्य मे खडी बोली के काव्य के लिए आग्रह अवश्य बढा, किन्तु भावनाओ के क्षेत्र मे

के सौंदर्य को देखकर उनमे उसके निर्माण करने वाले के लिये जिज्ञासा उठती है। ग्यारह वर्ष की अवस्था मे पुरी एव अमरकण्टक की यात्राओ से प्रसाद जी के मानस मे प्रकृति-सौंदर्य का स्थायी स्वरूप चित्रित हो गया था। साथ मे कवि का दर्शन का अध्ययन था ही। इसमे काव्य मे दार्शनिकता का पुट आजाना स्वाभाविक था।

पात विन कीन्ह्यो जिन्हें पतझर रोष करि
तिन सब द्रुमन सुमन पूर कीने तू।
शारद कुमोदिनी के विरह विहाल अलि,
सहकार मजरी सो मोद भरि दीने तू।
नगर वनाली कोकिला की काकली सो भर्यो,
सुखद प्रसाद रस रग केलि भीने तू।
छोह छरि लीने मन औरे करि दीने,
रे वसन्त रस भीने कौन मन्त्र पढ़ि दीने तू।

कवि ने परम्परागत समस्यापूर्ति के समान 'वसन्त' के वैभव का वर्णन किया है। पतझड के कारण जो प्रकृति मे उदासीनता आदि थी उसको भी वसन्त ने वलपूर्वक नष्ट कर दिया है। उपर्युक्त कवित्त की पक्तियो से स्पष्ट है कि कवि जीवन मे अधिक कहने के लिए अभ्यास-सा कर रहा है।

कमल-कोश भरे मकरन्द सो,
जिमि विराजत चारु अमन्द सो॥
निज सुगन्ध लिये वह आप ही,
रहत मोद भरे चुपचाप ही॥
धरत रूप मनोहर मोद सों,
हृदय हूँ तिमि कज विनोद सों॥
वह सुधारत मजुल नेम को,
लहत है जब नीरव प्रेम को॥

'नीरव' की अनुभूति इतनी सुखद और मधुर होती है कि उसको व्यक्त कर सकता भी कठिन है।

करन व्यक्त चहै वहि भाव को,
पर न पावत कोउ उपाव को॥
तिमि करौ तुम केलि अमन्द सो,
हृदय में करिकै छल छन्द सो॥

तदपि नाहिं कछौ बखान हौ,
प्रगट होत यही छिपि जात हौ ॥

कवि सौन्दर्य के साथ प्रेम का भी कवि है। इसके ऊपर परोक्ष सत्ता के साथ उसका प्रेम है। जो दृगों से गुप्त-सा है, उसका प्रकट हो सकना कठिन है। उपर्युक्त पंक्तियों ने ही कवि को वास्तव में रहस्यवादी बना दिया है।

ऐसो ब्रह्म लेउँ का करिहैं ?
जो नहिं करत, सुनत नहिं जो कछु, जो जन-पीर न हरिहै ॥
होय जो ऐसो ध्यान तुम्हारो ताहि दिखाओ मुनि को।
हमरी मति तो इन झगड़न समुझि सकत नहिं तनिको ॥

इस प्रकार कवि प्रसाद ने 'जिज्ञासा' की भावना पर लिखे हैं, जिसका जीवन में विकास होता गया है।

गीति-नाट्य की शैली पर लिखी हुई उपर्युक्त पंक्तियों की उनकी अभिव्य-जना के दृष्टिकोण से भी महत्ता है। तुकान्त विहीन मात्रिक छन्द को कवि ने अपनाकर हिन्दी-कविता के समक्ष एक आदर्श रखने का प्रयास किया है। उपर्युक्त अभिव्यजना-पद्धति की विशेषता के साथ प्रसाद जी का प्रकृति का भावनात्मक निरीक्षण भी बडा सूक्ष्म है।

प्रकृति के प्रति 'चित्राधार' मे तादात्म्य अवश्य नही है, किन्तु प्रेम का स्वरूप उसके द्वारा अवश्य जग चुका था। जगन्नियन्ता के प्रति जिज्ञासा भी उसी प्रेम का एक प्रस्फुटन था। 'कानन कुसुम' मे प्रसाद जी का प्रेमानुभव आगे बढा है और उनकी ईश्वर के प्रति जिज्ञासाएँ भी अधिक मुखर हो उठी हैं।

तुम्हारा स्मित हो जिसे निरखना
वो देख सकता है चन्द्रिका को
तुम्हारे हँसने की धुन मे नदियाँ
निनाद करती ही जा रही हैं
विशाल मन्दिर की यामिनी मे
जिसे देखना हो दीप-माला
तो तारका-गण की ज्योति उसका
पता अनूठा बता रही है।

(कानन कुसुम—प्रभो !)

'चित्राधार' की जिज्ञासा इन पंक्तियो मे अधिक सुस्पष्ट है। प्रसाद जी ने प्रकृति के द्वारा ईश्वर के सर्वव्यापक स्वरूप को देखने की चेष्टा की है। इस प्रकार काव्य की रूप-रेखा अधिक उभर आई है।

प्रसाद जी मानवता के कवि हैं। मानवी अभावो से उन्हे भी विशेष पीडा थी। 'गान' के अन्तर्गत कवि निर्माण का नव-सदेश सुनाता है। यदि वह हार्दिक विकारो को दूर कर अपने उन्मुक्त हृदय से विश्व मे व्यवहार करता है तो विश्व की सकीर्णता की कडिया तत्काल ही टूट जावेंगी, यह निस्सन्देह सत्य है।

युवकों के लिये कवि का सदेश है —

खुले-किवाड-सदृश हो छाती सबसे ही मिल जाने को,
मानस शान्त, सरोज हृदय हो सुरभि-सहित खिल जाने को।
जो अछूत का जगन्नाथ हो, कृषक-करो का हढ़ हल हो,
दुखिया की आँखों का आँसू और मजूरों का कल हो॥

की रचनाओं द्वारा कवि अन्तर्मुखी हो उठा है। प्रकृति के पदार्थों में प्रसाद जी जीवन आंकने लगते हैं और प्रसाद जी के कवि-हृदय की वैयक्तिकता का स्फुरण होने लगता है :—

किरण, तुम क्यों बिखरी हो आज,
रंगी हो तुम किसके अनुराग।
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग।
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
मधुर मुरली-सी फिर भी मौन।
किसी अज्ञात विश्व की विकल,
वेदना दूती सी तुम कौन ?

सुदिन-मणि-वलय विभूषित उषा,
सुन्दरी के कर का संकेत।
कर रही हो तुम किसको मधुर,
किसे दिखलाती प्रेम निकेत।
चपल, ठहरो कुछ लो विश्राम,
चल चुकी हो पथ शून्य अनन्त।
सुमन मन्दिर के खोलो द्वार,
जगे फिरे सोया वहाँ वसन्त।

प्रसाद जी के मानस का उपर्युक्त पंक्तियों में तादात्म्य हो उठा है। 'किरण' में भी कवि ने अव्यक्त प्राण को परखने का प्रयास किया है। इस प्रकार पंक्तियों में काव्य का छायावादी स्वरूप पूर्ण रूप से विद्यमान है।

'विषाद' की निम्न पंक्तियाँ भी बड़ी ही मधुर हैं। कवि की कोमल भावनाओं ने प्रसाद जी को और भी उच्च स्तर पर पहुँचा दिया है :—

कौन प्रकृति के करुण काव्य सा,
वृक्ष पत्र की मधु छाया में।
लिखा हुआ सा अचल पड़ा है,
अमृत सदृश्य नश्वर काया में।

किसी हृदय का यह विषाद है,
छेड़ो मत यह सुख का कण है।
उत्तेजित कर मत दौड़ाओ,
करुणा का विश्रान्त चरण है।

इन पक्तियो मे भी छायावाद का स्वरूप उपलब्ध होता है।

" 'आँसू' काव्य मे मानवी विरह का स्वरूप छनकर हमारे सामने आया है। उसमे काव्य का छायावाद अथवा रहस्यवाद अणुमात्र को भी नहीं है; किन्तु मानव के विलासी जीवन की वियुक्ति के कारण उस जीवन मे जो विरह है—वही आसू के विरह का विषय है। इस प्रकार 'आसू' काव्य मे मानव-जीवन का सस्पर्श है और वह लोक-जीवन के अधिक समीप है। इस काव्य के सम्बन्ध में आचार्य पं० नन्ददुलारे वाजपेयी का कथन है—

"आँसू' प्रसाद जी की पूर्व की रचनाओ से बहुत आगे है। उसमे 'चित्राधार' की सी हलकी, चमत्कार-चचल दृष्टि नही है, न 'प्रेम पथिक' का सा 'रोमाण्टिक' प्रेमादर्श का निरूपण है—वह अधिक गहरी चीज है। 'आँसू' कवि के जीवन की वास्तविक प्रयोगशाला का आविष्कार है। 'आँसू' मे कवि निस्सकोच भाव से विलास-जीवन का वैभव दिखाता है, फिर उसके अभाव मे आँसू बहाता और अन्त मे जीवन से समझौता करता है। विलास मे जो मद, जो विराट् आकर्षण है उसे कवि उतने ही विराट् रूपको और उपमानो से प्रकट करता है। उसके अभाव मे जो वेदना है वही आँसू बनकर निकलती है।"[1]

इस करुणा कलित हृदय मे
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती ?

* * *

मानस-सागर के तट पर
क्यों लोल लहर की बातें
कल-कल ध्वनि से हैं कहती
कुछ विस्मृत बीती बातें ?

---

१. आचार्य पंडित नन्ददुलारे वाजपेयी, 'हिन्दी साहित्य - बीसवीं शताब्दी' श्री जयशकर प्रसाद, पृष्ठ १२१।

'आँसू' के चित्रण बडे ही मनोवैज्ञानिक एव सजीव बन पडे है। अपनी कोमल भावनाओ के कारण ही 'कामायनी' के उपरान्त प्रसाद जी का 'आँसू' अमर काव्य है।

'आँसू' मे कवि की जिस विकल रागिनी का समन्वय है, वह 'लहर' मे प्रशान्त हो उठती है। 'आँसू' के वियोग ने कवि को जीवन के 'सयोग' पक्ष की ओर देखने का अवसर दिया है। इसीलिये इसमे सुख का एक आदर्श हमारे सामने आ सका है। 'कामायनी' कवि की मानवी सृष्टि की अपूर्व कथा है। इसमे मानव के प्रतीक मनु की सम्पूर्ण चित्तवृत्तियो का सफल चित्रण है। महाकवि प्रसाद ने जीवन मे ज्ञान और भक्ति तथा आत्मा और शरीर दोनो युग्मो की सार्थकता को सिद्ध किया है।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि पडित श्रीधर पाठक मे स्वच्छन्दतावादी काव्य की जो प्रवृत्तियाँ थी वह अधिक विकसित रूप मे प्रसाद जी मे आ गई हैं। उनमे प्रकृति, प्रेम एव मानवता आदि की जो प्रवृत्तियाँ थी प्रसाद जी ने अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर उन्हे और सुदृढ और पुष्ट किया है, प्रसाद जी की यही मौलिक विशेषता थी। उनके द्वारा ही छायावादी एव रहस्यवादी काव्य की परम्परा का प्रारम्भ है, जिसको आगे चलकर पत, निराला एव महादेवी आदि ने एक विशेष दिशा प्रदान की है।

१९२५ ई० के उपरान्त स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्ति मे छायावादी एव रहस्यवादी भावना ने सयुक्त होकर उसे विशेष बलशाली बना दिया, जिसके कारण द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता त्राहि-त्राहि कर उठी और अपने को तिरोहित कर ले जाने मे ही अपना कल्याण समझी।

मुकुटधर पाण्डेय (जन्म—१८९५ ई०)

जीवनवृत्त एव व्यक्तित्व—प्रकृति-परक एव रहस्यात्मक अनुभूति लेकर चलने वाले कवियो मे मुकुटधर पाडेय का प्रमुख स्थान है। आत्माभिव्यजन मे द्विवेदी-युग के किसी भी कवि से वह कही आगे हैं।

मध्यप्रदेश मे छत्तीसगढ के बिलासपुर जिले मे महा नदी के किनारे बालपुर नामक ग्राम है। मुकुटधर पाडेय का जन्म इसी ग्राम मे आश्विन स० १९५२ मे हुआ था। आप सरयूपारीय ब्राह्मण वश से हैं, आपका वश प्राचीनता और प्रतिष्ठा के दृष्टिकोण से उस क्षेत्र मे बडा सम्मानित था। पाडेय जी की माता देवहुती देवी नारी-सुलभ शीलता और सद्गुणो के कारण समाज की आदर्श

महिला थी और पिता प० चिन्तामणि पाडेय सच्चरित्र और अध्ययनशील व्यक्ति थे। सामाजिक भावना उनमे बड़ी ही प्रवल थी। उन्होंने अपने ग्राम मे हिन्दी का एक विशाल पुस्तकालय खोल रखा था तथा एक विद्यालय की स्थापना कर रखी थी। ग्रामीण-क्षेत्र की अज्ञानता को मिटाने के लिये इन दोनो सस्थाओ ने वडा काम किया था। उनकी पितामही कुसुमदेवी एव पितामह प० शालिग्राम पाडेय भी वडे ही सच्चरित्र और धार्मिक थे। मुकुटधर पाडेय चार भाई हैं—पाडेय पुरुपोत्तम प्रसाद, पाडेय लोचन प्रसाद 'काव्य विनोद' एव पाडेय मुरलीधर। 'पाडेय परिवार' के चारो भाई वडे ही साहित्यिक और कवि हैं। लोचन प्रसाद पाडेय हिन्दी एव उत्कल भाषा के उत्कृष्ट कोटि के कवि और लेखक हैं। पुरुषोत्तम प्रसाद और लोचन प्रसाद के ससर्ग और उनके काव्यादर्शो ने मुरलीधर एव मुकुटधर को कवि वना दिया है।

उन्होने स० १९७२ मे प्रयाग विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की थी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये उन्होने प्रयाग के क्रिश्चियन कालेज मे नाम भी लिखाया था। किन्तु अस्वस्थता के कारण वहाँ उनका अध्ययन न चल सका और अपने गाँव मे लौट आये। वहाँ अपने पिता द्वारा सस्थापित पाठशाला मे अध्यापन कार्य करने लगे।

काव्य की प्रवृत्तियाँ—आधुनिक काव्य के द्वितीय उत्थान मे परम्परावादी, वगला तथा अग्रेजी काव्य के प्रभाव मे रचना करने वाले कवि हिन्दी-काव्य मे प्रयुक्त अभिव्यजना-शैली मे देख रहे थे कि कल्पना एव अन्तर्भावनाओ का पूर्ण वहिष्कार सा था। क्रमश. नूतन भावनाओ को अपनाकर चलने वाले कवियो मे इनको काव्य मे अधिकाधिक स्थान देने की प्रवृत्ति वढी। इस ओर जो कवि वढे भी उनमे मुकुटधर पाडेय का मुख्य स्थान है।

इस सम्वन्ध में पाडेय जी मे विशेपता रही है कि वह प्रत्येक विपय के अन्तरतम तक मे प्रविष्ट हो सके हैं। विश्व की असारता की अनुभूति प्रत्येक मानव को पल-पल पर और पग-पग पर होती है। इस सम्वन्ध मे काल जितना कुटिल है उतना अन्य कोई नही। वही मानव को थपेडे मारकर जीवन की वस्तुस्थिति का पता देता है।

ये कल मुदित हम आज हमको मोद पाना है नहीं,
इस जिन्दगी का भाइयो, कुछ भी ठिकाना है नहीं।
पाकर क्षणिक सुख भोग हैं हा, हम अभी फूले हुये,
घट जाय कैसे कौनसी घटना, इसे भूले हुये।

है उदय से ही अस्त जीवन से मरण प्रत्यक्ष है,
सयोग से समझो सदा दुस्सह वियोग समक्ष है।
सुख-कौमुदी छिटकी अभी दुख-मेघ देखो घिर रहा,
यों नित्य सुख के सग ही दुख भी सदा ही फिर रहा।

* * *

रहते किसी को ज्ञात परिवर्तन भला ये क्या कहीं ?
है काल की यह कुटिलता जानी कभी जाती नहीं।[1]

जीवन का यही दुखवाद छायावादी युग मे प्रकर्ष को प्राप्त हुआ था, जिसकी अनुभूति प्रसाद, पन्त, निराला एव महादेवी सभी को हुई थी।

जीवन की परिवर्तनशीलता और अमारता की कटुता का उसी समय विनाश हो सकता है जब विश्व की मानवी सृष्टि जगन्नियन्ता की विभूति को पहिचान ले। जीवन के दु ख ही मानव को इस ओर अभिप्रेरित करते है। फलत वह ईश्वरीय सत्ता से अवगत होने के लिये आतुर हो उठता है। लौकिक साधनो से नियन्त्रित होने के कारण कवि ने उस सत्ता को वेद, शास्त्र, पुराण एव गीता आदि मे ढूँढने का प्रयास किया, किन्तु वह निष्फल रहा। ऊपर से उनके इतने सारगर्भित होने पर भी भीतर कितना छिछलापन था—यह जानकर कवि को परिताप भी हुआ। अन्त मे उसे उस सत्ता का ज्ञान भी हुआ जो धर्मज्ञो के लिये कितना विचित्र था।

दीन हीन के अश्रुनीर मे।
पतितों की परिताप पीर में,
सन्ध्या की चचल समीर में,
करता था तू गान।

सरल स्वभाव कृषक के हल मे
पतिव्रता रमणी के बल मे,
श्रम सीकर से सिंचित घन में,
विषय मुक्त हरिजन के मन में,
कवि के सत्य पवित्र वचन मे,
तेरा मिला प्रमाण।

---

१. मुकुटधर पाडेय, काल की कुटिलता, 'कविता कुसुम माला' सम्पा० पाडेय लोचनप्रसाद (इण्डियन प्रेस, प्रयाग)।

देखा मैंने यहीं मुक्ति थी,
यहीं भोग था, यही भुक्ति थी,
घर में ही सब योग युक्ति थी,
घर ही था निर्वाण।[1]

इन पक्तियों मे रूढिवादिता का पूर्ण परित्याग है। प्रासादिक शैली मे रचित पक्तियाँ मार्मिक हैं।

इसके समतुल्य ही प्रकृति के व्यापक स्वरूप मे भी उसी सत्ता के प्रति जिज्ञासा है। यह जिज्ञासा ही आगे चलकर रहस्यात्मकता मे परिवर्तित हो गई है।

प्राची मे अरुणोदय-अनूप,
है दिखा रहा निज दिव्य रूप,
लाली यह किसके अधरों की,
लख जिसे मलिन नक्षत्र-हीर।
विकसित सर मे किंजल्क-जाल,
शोभित उन पर नीहार-माल।
किस सदय बन्धु की आँखों से,
है टपक पड़ा यह प्रेम-नीर ?[2]

'रूप का जादू' भी बडा ही मोहक है, जिसने कवि को मत्र-मुग्ध कर रखा है।

निशिकर ने आ शरद-निशा में, बरसाया मधु दशों दिशा मे,
विचरण करके नभो देश मे, गमन किया निज धाम।
पर चकोर ने कहा भ्रान्त हो,
प्रिय वियोग दुख से अशान्त हो,
गया छोड़कर के जीवन धन, मुझे कहाँ ? हा राम!
हुआ प्रथम जब उसका दर्शन, गया हाथ से निकल तभी तम।
सोचा मैंने—यह शोभा की सीमा है प्रख्यात।
वह चित-चोर कहाँ बसता था,

१. मुकुटधर पाण्डेय, सरस्वती, दिसम्बर, १९१७।
२ मुकुटधर पाण्डेय, अधीर, कविता कौमुदी भाग २, पृष्ठ ५५८-५५९

किसको देख-देख हँसता था,
पूँछ सका मैं उसे मोहवश नहीं एक भी बात ॥[1]

अव्यक्त के लिये यह जिज्ञासा ही पाण्डेय जी को रहस्यवादी कवि के समीप प्रतिष्ठित कर देती है।

पाण्डेय जी की 'आँसू' तथा 'हृदय' नामक रचनाओं में वैयक्तिकता के साथ-साथ दुःख एवं सहानुभूतियों की मनोवृत्तियों का पूर्ण समावेश है। प्रासादिक एवं मधुर शैली के साथ भावना में एक मस्ती है। इस प्रकार उनके काव्य में स्वच्छन्द काव्य का स्वरूप उपलब्ध हो जाता है।

देखकर प्रिय को पड़ा त्रयताप में,
वेदना होती हृदय-घन को महा।
शोक विह्वल वह कराह-कराह कर,
आँसुओं की धार देता है वहा।

* * *

प्रेमियों के हृदय-सागर में रुढे
यत्न से इन मोतियों को गूँथ कर
जो बनाता हार अपने कण्ठ का
भाइयो, है विश्व में वह धन्य नर।[2]

'आँसुओं' की सार्थकता यदि प्रेमी के लिये अविरल धारा बहाने में है तो 'हृदय' का अस्तित्व केवल इस पर ही आधारित है कि वह सहानुभूति के अवसरों को न जाने दे। केवल इस भावना पर ही उसकी महत्ता अवलम्बित है—

वह सिसकता जो सड़क पर है खड़ा
है नहीं घर-द्वार का जिसके पता
बाँह ऐसे दीन की गहता हृदय
और उसके आँसुओं को पोंछता

* * *

प्यार की दो बात कहने के लिये
जिस दुखी के पास है कोई नहीं।

---

१ मुकुटधर पाण्डेय, रूप का जादू, कविता-कौमुदी, पृष्ठ ५६० ।
२. " आँसू, सरस्वती, दिसम्बर १९१६ ।

पास उसके दौड़ कर जाता हृदय
और घटों वैठ रहता है वहीं।
गोद जिसकी आज खाली हो गई
है अनूठा रत्न जिसका खो गया।
देखकर उस दुखिनी माँ की दशा
वावला सा क्यों हृदय है हो गया।[1]

पाण्डेय जी के काव्य मे अनन्त एव अज्ञात जगन्नियन्ता के प्रति भी लालसा है :—

कहाँ गये तुम नाथ, मुझे दो भूल ?
गड़ता है उर वीच विरह का शूल।
थे जव तक तुम सन्तत मेरे पास,
किया तुम्हारा मैंने नित उपहास।
सुनता था जव नित्य तुम्हारी वात,
था उसका माधुर्य नहीं तव ज्ञात।

* * *

मिलो वहीं जो रोष हृदय का त्याग,
तुम्हे दिखाऊँ अपने जी की आग।[2]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीताजलि' एव अग्रेजी काव्य के प्रभाव से मुकुटधर पाण्डेय के काव्य मे अन्तर्भावना को विशेष अवकाश मिलने लगा था। फलत पाण्डेय जी की १६१५ ई० के वाद की रचनाओ मे यह भावना विशेष-रूपेण उपलब्ध होने लगती है; किन्तु इससे पूर्व कवि प्रकृति-निरीक्षण मे पूर्ण सरल और स्वाभाविक था। उससे पूर्व कवि की इस प्रकार की कोई कामना नही थी।

वर्षा वहार सव के मन को लुभा रही है,
नभ मे घटा अनूठी घनघोर छा रही है।
विजली चमक रही है वादल गरज रहे हैं,
पानी वरस रहा है झरने भी ये वहे हैं।
चलती हवा है ठडी हिलती हैं डालियें सव,
वागो मे गीत सुन्दर गाती हैं मालिनें अव।

---

१. मुकुटधर पाण्डेय, 'हृदय', सरस्वती, मार्च १६१७।
२. ,, 'मर्दित मान', सरस्वती, नवम्वर, १६१८।

तालो मे जीव जलचर अति हैं प्रसन्न होते
फिरते लाखों पपीहे हैं ग्रीष्म-ताप खोते ।[1]

उपर्युक्त के अतिरिक्त 'पूजा-फूल' मे ग्राम-गुण-गान, फूल, गुलाब, कुमुदिनी, पूर्ण चन्द्र, शरद शर्वरी, महानदी, ग्रीष्म मे मेरे गमले, ग्राम्य-जीवन, प्रभात, सन्ध्या, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा-विहार, शरद, हेमन्त, शिशिर, प्रभात-भ्रमण एव एक लहर आदि-आदि अन्य प्रकृति-परक रचनाएँ हैं। पाण्डेय जी ने निष्काम-भाव से ही प्रकृति को देखा है।

प्रकृति के प्रति प्रेम मे कवि को आत्मिक सुख मिलता है। इस कारण ही पाण्डेय जी ने प्रकृति को ही अपने काव्य की आधार-शिला बनाया है। इनके सम्बन्ध मे उनके निम्न दृष्टिकोण हैं।

हरित पल्लवित नव वृक्षों के दृश्य मनोहर,
होते मुझको विश्व बीच हैं जैसे सुखकर।
सुखकर वैसे अन्य दृश्य होते न कभी हैं,
उनके आगे मुझे तुच्छ परम वे सभी हैं।[2]

उपर्युक्त पक्तियो द्वारा पाण्डेय जी की काव्य-प्रवृत्तियो पर पूर्ण प्रकाश पड जाता है। उनमे अपने समकालीन किसी भी कवि से अधिक स्वच्छन्दता एव रहस्यात्मकता है। प्रकृति के अन्तर्गत अव्यक्त शक्ति की अनुभूति उन्ही की विशेषता थी। इसीसे पाण्डेय जी का व्यक्तित्व एव काव्य दोनो ही महत्वपूर्ण हैं।

* * *

---

१. मुकुटधर पाण्डेय, 'वर्षा वहार', 'पूजा फूल', प्रकाशक ब्रह्म प्रेस, इटावा प्रथम सस्करण।

२. मुकुटधर पाण्डेय मेरा प्रकृति प्रेम " " "।

उपसंहार

१७वी-१८वी शताब्दी मे जब योरुप मे प्रकृति-विज्ञान, दर्शन, समाज-विज्ञान, राजनीति एव अर्थशास्त्र आदि मे परिवर्तन हो रहे थे, उस समय भी महाद्वीप के बुद्धिजीवियो के हृदय मे रोम एव ग्रीस की परम्पराओ तथा शास्त्रीयता के प्रति विश्वास था। जान काल्विन और मार्टिन लूथर के रूढि-वादिताओ के विरुद्ध सुधारवादी आन्दोलन होने पर भी उस समय सम्पूर्ण योरुपीय विश्वविद्यालयो एव शिक्षण सस्थाओ मे लेटिन और ग्रीक-साहित्य की प्रवृत्तियो के प्रति ममता और आस्था थी। कालान्तर मे यद्यपि लोक-भाषाओ के प्रयोग की अभिवृद्धि हुई तथापि इन भाषाओ का प्रारम्भिक सृजित साहित्य अपने विषय एव अभिव्यजना के सम्बन्ध मे उक्त भाषाओ का ही ऋणी एव आभारी था।

जर्मनी मे मार्टिन आपिज (Martin Opitz), स्पेन मे काल्डिरन (Calderon), फ्रास मे कार्निले (Corneille), मॉलियर (Molier) एव रैसिन (Racine) तथा इंग्लैण्ड मे मिल्टन(Milton), ड्रायडन(Drydon) एवं पोप (Pope) आदि परम्परावादी शास्त्रीय काव्य के सम्बन्ध मे प्रति-निधित्व कर रहे थे, किन्तु शास्त्रीयता का सम्मोहन दीर्घकाल तक समाज को आकर्षित न कर सका। सामयिक परिस्थितियो ने सामाजिको को मानवतावादी और यथार्थवादी बना दिया। फलत स्वच्छन्दतावादी भावना का सूत्रपात हो उठा। विल्सन एव पिरानेजी के प्रकृति-चित्रणो ने फ्रास मे इस भावना के लाने मे विशेष प्रेरणा दी। साथ ही फ्रास मे वाल्टेयर एव रूसो द्वारा विचारो मे इस प्रकार की क्रान्ति प्रस्तुत कर दी गई कि मानवता मुक्त होने के लिये छटपटा उठी। फलत फ्रास की विश्व-व्यापी राज्य-क्राति हुई और रूसो की यह विचार-धारा 'मानव स्वतन्त्र जन्मा है, किन्तु वह सर्वत्र बन्धनो मे आबद्ध है' मानवता के उपासको के लिये गुरुमन्त्र ही सिद्ध हुई। जर्मनी मे काण्ट, फिशे एव हीगेल

ने आध्यात्मिक भूमि पर कर्तव्यनिष्ठा, आदर्शवादिता एव रहस्यवादिता का सम्पोषण किया। इन लोगो की विचारधाराओ ने यथार्थ पर जोर देकर स्वाभाविक भावनाओ की उत्पत्ति के लिये क्षेत्र तैयार किया। इस भावना से इग्लैण्ड भी प्रभावित हुये बिना न रहा। टॉमसन, कॉलिन्स और ग्रे आदि के काव्यो मे अग्रेजी काव्य के आगस्टन-युग की परम्परावादी प्रवृत्तियो से विरोध भावनाओ का समन्वय उपलब्ध होता है। योरुपीय स्वच्छन्दतावादी प्रगति के प्रचार और प्रसार के द्वारा इस ओर एक सुदृढ पृष्ठभूमि तैयार कर दी गई।

भारतीय साहित्य मे सदैव शास्त्रीयता का प्राबल्य रहा। कारण धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र एव राजनीतिशास्त्र आदि मे सर्वत्र ही आदर्श की पूजा एव प्रधानता रही है। हिन्दी-साहित्य के वीरगाथा काल (१०५०-१३७५ वि० स०) और रीतिकाल (१७००–१६०० वि० स०) मे व्यक्तिवादी भावना से दूर शास्त्रीय काव्य ही प्रसूत रहा। प्रथम मे अतिशयोक्ति से परिपूर्ण आलकारिक व्रजभाषा का प्रयोग हुआ। काव्य मे कृत्रिमता की बहुलता रही। द्वितीय मे सस्कृत के आचार्यों की रीति-परिपाटी पर ही सम्पूर्ण रीतिकाव्य की रचना हुई, इससे वह सोलहो आना परम्परावादी काव्य ही है। भक्तिकाल (१३७५–१७०० वि० स०) मे व्यक्ति-प्रधान काव्य अवश्य प्रसूत हुआ तथापि उसमे स्वच्छन्दवादिता के लक्षण न आ सके। सम्पूर्ण भक्ति-काव्य के अन्तर्गत चिर-प्रतिष्ठित भारतीय दर्शन ही तानो-बानो मे बुना हुआ है। राम-कृष्ण की भक्ति-भावना को लेकर सूर और तुलसी ने उत्कृष्ट कोटि का काव्य सृजन किया, किन्तु अपने आदर्शो से सयुक्त होने के कारण वे स्वय अपनी परम्परा के अनुयायियों के लिये अनुकरणीय हो गये।

अग्रेजों के आर्थिक शोषण तथा सामाजिक और राजनीतिक दमन से भारतीय इतिहास मे एक नूतन अध्याय अवश्य खुला, इसमे सन्देह नही। परतन्त्रता से अपमानित और क्षुब्ध भारतीय १८५७ ई० के भारतीय विद्रोह मे अग्रेजो के विरुद्ध स्वतन्त्रता उपलब्धि के लिए अवश्य उठ खडे हुए, किंतु परस्पर के विद्वेष एव फूट से अग्रेजो को ही बल मिला। इस विद्रोह मे यह अवश्य सत्य है कि भारतीयो को अपने दुर्भाग्य से असफलता का ही साक्षात्कार करना पडा, किंतु इससे जाग्रति का भारत को अनुभव अवश्य हुआ। वस्तुत उसे नव चेतना का आशीर्वाद मिला, जिससे वह अन्ध-विश्वास की खुमारी छोडकर यथार्थ को परखने मे समर्थ हो सका। परम्परागत रूढियो को धक्का लगा जिससे जीवन के सत्य के प्रति उसका ममत्व बढ चला। ऐसे अनुकूल वातावरण मे ही

भारतेन्दु एव उनकी गोष्ठी के कवियो को काव्य के विपय, छन्द एव भापा आदि के परिवर्तन आदि के लिये वाध्य होना पडा। इसमे सन्देह नही कि उनके परम्परावादी काव्य मे वही शास्त्रीय निष्ठा अब भी विद्यमान थी; किन्तु वह काव्य-क्षेत्र मे नूतनता की उपेक्षा भी न कर सके। जनता की भापा (प्रचलित खडी बोली) मे लोक-प्रचलित छन्दों (लावनी, गजल, होली एव कबीर आदि) मे जनता की समस्याओ (भुखमरी, अविद्या, परतन्त्रता एव समाज के अन्याय विकार आदि) के वर्णन प्रस्तुत किये गये। यह सब स्वच्छन्दवादिता अवश्य नही थी, किन्तु इनसे तत्सम्बन्धी प्रेरणाओ की अनुभूति अवश्य हुई, इसमे सन्देह नहीं। स्वच्छन्दवादिता की कुछ प्रवृत्तियाँ ठाकुर जगमोहनसिंह के काव्य मे उभरी हुई उपलब्ध होती हैं, अनन्तर प० श्रीधर पाठक के द्वारा अनूदित 'एकातवासी योगी' काव्य के प्रस्तुत कर देने पर स्वच्छदतावादी काव्य का स्वरूप हिन्दी-काव्य मे प्रसूत हो उठता है। 'एकान्तवासी योगी' का प्रकाशन हिन्दी के लिये एक नवीन घटना थी। देश-विदेश के सभी काव्यानुरागियो ने इस काव्य की भूरि-भूरि प्रशसा की और आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हे प्रथम हिन्दी का स्वच्छन्दतावादी कवि सिद्ध किया।

भारतेन्दु-युग के उपरान्त द्विवेदी-युग की उपदेशात्मक एवं इतिवृत्तात्मक काव्य-प्रवृत्तियो के कारण स्वच्छन्दवादिता की स्वाभाविक धारा मे व्यवधान अवश्य प्रस्तुत हुये, किन्तु प० श्रीधर पाठक के कारण स्वच्छन्दतावादी-काव्य की परम्परा चलती अवश्य रही। द्विवेदी-काव्य-भूमि के वाहर के कवि राय देवी-प्रसाद 'पूर्ण', रामनरेश त्रिपाठी एव रूपनारायण पाण्डेय आदि के द्वारा स्वच्छ-न्दवादिता को सम्पोपण मिलता रहा। १६१५ ई० के उपरान्त पाश्चात्य काव्य के परिचय और रवीन्द्र वावू की गीताजलि के प्रभाव से छायावादी कविता का युग प्रारम्भ हो गया। स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रगति आलोच्यकाल की समाप्ति १६२५ ई० तक चलती रही। स्वच्छन्दतावादी एव छायावादी काव्य के लक्षण अधिकाशत समान हैं। इससे १६१५–२५ ई० के मध्य में दोनो प्रकार के काव्यो का सम्मिश्रण समान रूप से चलता रहा। प्रसाद, पन्त एव निराला आदि के काव्यो मे इस प्रकार के मिश्रित काव्य के लक्षण स्पष्ट परिलक्षित हैं।

अब देखना है—योरुप एव भारत दोनो की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा के मूल मे कौनसी परिस्थितियाँ थी, जिनमे इसे विशेप बल मिला। इतना देशान्तर होते हुये भी निस्सन्देह दोनो स्थलो के स्वच्छदतावादी काव्य के मूल मे

पूँजीवाद के उत्थान का ही मूल कारण था जिससे उसे जाग्रति मिली। योरुप मे मूलत औद्योगिक क्रान्ति एव भारत मे अग्रेजो के आर्थिक शोषण, दासता और मिलो के प्रचार से व्यक्ति-प्रधान स्वच्छन्दतावादी काव्य के लिये प्रसार-क्षेत्र मिला। कवि-गण नवीन स्वातन्त्र्य लालसा और योरुपीय सास्कृतिक और साम्राज्यवादी प्रसार की महत्वाकाक्षा से अनुप्रेरित होकर काव्य-क्षेत्र मे अवतरित हुये। सामन्त-युगीन समाज-व्यवस्था का ह्रास होता गया तथा क्रमश मध्य वर्ग की स्थिति सुस्थिर हो चली। कविगण अपने को स्वात्म-निर्भर समाज-निरपेक्ष रूप मे देखने लगे। सामाजिक दृष्टि मे तथा सामाजिक बन्धनो मे वैयक्तिक आत्म-निर्भरता का उत्थान स्वच्छन्दतावादी कविता के लिये उपयुक्त सम्बल सिद्ध हुआ। योरुप के प्रारम्भिक स्वच्छन्दतावादी कवि जिन विद्रोही और महत्वाकाक्षा-युक्त भावनाओ को लेकर अग्रसर हुये उनमे वेदना के लिये कोई विशेष अवकाश न था। भारतीय परिस्थिति भिन्न रही। भारतीय पूँजीवाद योरुपीय पूँजीवाद के द्वारा आक्रात रहा है। योरुपीय राष्ट्रो की साम्राज्यवादी नीतियो ने हिन्दी-कवियो के स्वच्छन्दवादिता को एक अन्तर्निहित वेदना से आच्छन्न कर रखा। योरुपीय और भारतीय सामाजिक स्थितियो के अन्तर के कारण दोनो की स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रेरणा बहुत भिन्न है। फिर भी दोनो मे समानता का अश कम नही है। योरुपीय स्वच्छन्दतावाद के समान ही हिन्दी काव्य का स्वच्छन्दतावाद सामन्तवादी समाज-व्यवस्था के विरोध मे उपस्थित हुआ। दोनो मे मध्यवर्गीय आत्म-निर्भरता और वैयक्तिक स्वातन्त्र्य भावना प्रबल है। स्वच्छन्दवादिता के अन्य उपकरण भी जैसे प्रकृति-प्रेम, स्वच्छन्द-प्रेम, अज्ञात की लालसा दोनो मे समान हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि योरुप और भारत की स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्तियो में समानता और भिन्नता की पर्याप्त मात्राएँ विद्यमान हैं।

यदि भारत पराधीन न होता और पूँजीवाद के सघर्ष स्वाभाविक रूप से ही घटित हुये होते तो दोनो देशो की स्वच्छन्दवादिता मे किसी भी प्रकार का अन्तर न होता।

इग्लैण्ड मे १७६८ में Lyrical Ballads के प्रकाशन से स्वच्छन्दतावादी काव्य का सुदृढ स्वरूप प्रदर्शित हुआ। इसमे कालरिज की Ancient Mariner, Kublakhan एव Christabel तथा वर्ड्सवर्थ की The Prelude एव The Excursion आदि रचनाएँ नवीन स्फूर्ति एव चेतना लेकर प्रकट हुईं।

अनतर बायरन, शेले एव कीट्स आदि के द्वारा अग्रेजी का स्वच्छंदतावादी काव्य पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँच गया। बायरन ने सामाजिक रूढियो, शेले ने सामाजिक अत्याचारो के विरुद्ध काव्य-रचना कर तथा कीट्स ने प्रेम और सौदर्य के अमर गान गाकर अग्रेजी स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा को विशेष सबल बना दिया।

हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी एव छायावादी कवि अग्रेजी के इस सम्पन्न काव्य से बडे ही प्रभावित हुए थे। प्रसाद, पन्त एव निराला आदि पर भी इसका प्रभाव पडा है। स्वय प० श्रीधर पाठक ने इस भावना से ही अनुप्रेरित होकर गोल्डस्मिथ के अमर काव्यो के हिन्दी-अनुवाद किये थे, जिनसे हिन्दी के परम्परा-वादी एव व्यवहारवादी काव्य मे एक नवीन युगोन्मेष हुआ।

सत्य तो यो है कि इस प्रकार के काव्य मे जीवन की सच्ची व्याख्या का सार तत्व और मानव-हृदय को स्पर्श करने वाली सवेदनशीलता विद्यमान थी। फलस्वरूप इस प्रकार के काव्य का सम्मान बढना स्वाभाविक ही नही अनिवार्य था। व्यवहारवादी काव्य की तडक-भडक और भूल-भुलैयाँ कब तक सबोध प्राणी को सम्मोहन-ग्रस्त कर पाती ? मानवता से परे कृत्रिम सकीर्ण वातावरण मे पल्लवित वह काव्य कब तक अपने अस्तित्व की दुहाई देता ? लोक-जीवन के यथार्थ के साथ वह कब तक आँख-मिचौनी खेल पाता ? —ये ऐसे प्रश्न थे जिनसे काव्य-विषयक शास्त्रीयता पलायन कर उठी। राम-कृष्ण के लोक-रजन-गान कवि की वाणी से उस समय भी प्रस्फुटित थे, मन चलने पर उनके लिये शृ गारिक काव्य का द्वार भी उन्मुक्त था, किन्तु उनमे जीवन की मुस्कान न थी। कवि का वह सब सृजन सप्राण न था। फलतः हिन्दी का स्वच्छन्दतावादी काव्य लौकिक आशीर्वाद प्राप्त कर रिंग चला।

'भारतेन्दु-युग' के स्वच्छन्दतावादी प्रेरक तत्वो ने प्रभावोत्पादन तो किया; किन्तु ठाकुर जगमोहनसिंह तद्विषयक अपने प्रयोगो मे अन्यो से क्या अपने युग-नियामक (भारतेन्दु जी) से भी आगे ही रहे। उनकी अपनी प्रवृत्तियाँ थी—अपनी प्रतिभा थी। अपने युग मे अग्रसर होते हुए भी उस क्षेत्र मे ठाकुर साहब का काव्य लोक-व्यापी न हो सका। अनन्तर द्विवेदी-युगीन काव्य की अधिका-धिक प्रवृत्तियो को पराभूत करते हुए पाठक जी को अप्रतिम सफलता मिली थी। स्वच्छन्दतावादी काव्य के राज-पथ मे यदि ठाकुर साहब प्रथम पथ-चिह्न थे तो पाठक जी द्वितीय थे। पाठक जी ने व्यापक क्षेत्र घेरा—केवल काव्य मे ही नही व्यावहारिक जीवन मे भी। फलतः हिन्दी के आचार्य ने उन्हे प्रथम

स्वच्छन्दतावादी कवि की संज्ञा प्रदान की, जो न्यायतः सत्य थी और शत-प्रतिशत उनके काव्य और जीवन मे चरितार्थ थी।

प्रथम स्वच्छन्दतावादी कवि होते हुए भी उनके व्यक्तित्व ने बहुसख्यक कवियो को प्रभावित किया। वस्तुत उनका व्यक्तित्व स्वच्छन्द था—मौलिक था। इससे उन जैसे कृती के प्रति आचार्य द्विवेदी तक की आस्था थी। काव्य-भाषा को लेकर राधाचरण गोस्वामी और उनकी गोष्ठी ने उनका विरोध किया, किन्तु उनसे तुर्की-बतुर्की उत्तर पाकर साहित्य का चिर सत्य उनकी समझ मे आ गया। हिन्दी के सर्वोच्च वैयाकरण कामताप्रसाद गुरु ने उनकी काव्य-पद्धति पर व्यग कसे, किन्तु पाठक जी भी व्यग करना जानते थे। उस नोक-झोक का भी आचार्य द्विवेदी के कारण अनुकूल ही समाधान हो गया। यह सब पाठक जी के महत्तम व्यक्तित्व के कारण ही सम्भव हो सका। द्विवेदी जी के प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व के होते हुए भी द्विवेदी-मण्डल की काव्य-भूमि के बाहर के कवि लोग अपने अस्तित्व को सुरक्षित किये थे। उनके पीछे पाठक जी के नूतन प्रयोग थे। इससे वह निराश क्यो रहते ?

काव्य के अन्तरग एव बहिरग दोनो स्वरूपो मे परिवर्तन प्रस्तुत हो उठे। यद्यपि भारतेन्दु-युग मे परिस्थितियो ने कवि-वर्ग को भाव, भाषा एव छन्द आदि सभी क्षेत्रो मे स्वच्छन्दताजीवी बना दिया था, किन्तु अपने मन से वह स्वच्छन्दतावादी न बन सके थे। उनमे वैयक्तिक प्रधान काव्य का वैसा समावेश न हो सका था जैसा स्वय पाठक जी, अनन्तर द्विवेदी-काव्य-मण्डल के बाहर तथा अवशिष्ट छायावादी भावना लेकर चलने वाले कवियों के काव्यो मे था। वस्तुत इस प्रकार के काव्य मे भारतेन्दु एव द्विवेदी दोनो युगो की प्रतिक्रिया सन्निहित थी। छायावादी युग का काव्य, जिसने इस प्रकार के काव्य पर अपनी आधार-शिला बनाई थी, मूलत द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति की विशुद्ध प्रतिक्रिया थी। यह सब स्वच्छन्दतावादी काव्य की सार्थकता के कारण सम्भव हो सका था। केवल अपने इसी पुण्य से वह अर्द्धशताब्दी तक अबाध गति से प्रगतिशील रहा।

भारतेन्दु-युग से लेकर द्विवेदी-युग तक काव्य की भाषा का निर्णय अवश्य हो चुका था। अकेली ब्रजभाषा अब तक प्रान्तीय बोलियों को उपेक्षित कर राजरानी-सी समादृत थी। अन्य टुकुर-टुकुर उसकी प्रतिष्ठा को देखती हुई अपने अस्तित्व को सरक्षित किये थी। अकेले इतने बड़े सौभाग्य का सवहन छोटी बात न थी; किन्तु जब विषयो के क्षेत्र मे व्यापकता बढ़ी तब वह पगु ही सिद्ध हुई।

इससे लोक-भाषा को अपनाना ही सर्वग्राह्य हुआ। फलत लोक-भाषा के सामान्य स्वरूप मे खड़ी बोली की प्रतिष्ठा बढना स्वाभाविक ही हुआ। यो भाषा के साधन से स्वच्छन्दवादिता का उत्कर्ष तो अवश्य नहीं हुआ; किन्तु उसके द्वारा उसके विभिन्न अगो मे से एक अग की पुष्टि अवश्य हो उठी।

भाषा के स्थान पर किसी भी काव्य के लिए भावनाएँ प्रमुख साध्य हैं। भाषा यदि काव्य का वाह्यावरण है तो भावनायें उसकी अन्तरात्मा हैं। भावनाओ के बिना काव्य की भित्ति बालू की दीवाल है और उसका अस्तित्व पूर्ण निरर्थक है। इन्ही भावनाओ के आधार पर आलोच्यकाल मे प्रगीत एव प्रवन्ध-काव्य (खण्ड एव महाकाव्य) लिखे गये, जिनमे स्वच्छन्दवादिता का पूर्ण अथवा आंशिक स्वरूप विद्यमान रहा। उपर्युक्त प्रकार के काव्यो मे यद्यपि प्रगीतात्मकता स्वच्छन्दतावादी काव्य के सृजन मे विशेष सहायक हुई है; किन्तु अन्य अवशिष्ट प्रकार के काव्यो मे भी उसके सन्निवेश से स्वच्छन्दवादिता का सूत्रपात हो उठा है।

आलोच्यकाल की प्रगीतात्मक काव्य-शैली के निर्माण मे भक्ति-काव्य की पद-शैली की प्रेरणा पृष्ठ-भूमि मे अवश्य रही है। यो भक्त कवि की वैयक्तिक भावना उन पदो मे भी विद्यमान रही, किन्तु भारतीय भक्तिवाद का सस्थापन जिन दार्शनिक सिद्धान्तो पर आधारित रहा वही सब भक्त कवियो का आदर्श था। इससे उस प्रकार के काव्य मे व्यवहारवादिता शत-प्रतिशत प्रस्तुत रही। भारतेन्दु-युग तक ही क्या आज तक जो व्यक्ति अपनी आस्तिक-भावना की अर्चना अपने देवता के चरणो मे अर्पित करना चाहता है वह चिर-परिचित-इसी पद शैली को अपना लेता है और उन्ही चिर-परिचित भावनाओ के गान मे अपनी निष्कृति का अनुभव करता है।

उक्त पद-शैली के अतिरिक्त मुसलमानी-काल की गजल-पद्धति का विशेष प्रचार बढा और भारतेन्दु जी एव उनकी मण्डली के कवियो ने गजल के अतिरिक्त रेखता, होली, कबीर एव कजलियाँ आदि लोक-प्रगीतो का प्रयोग किया था।

उपर्युक्त भारतेन्दु-युग की गीत-प्रगति का द्विवेदी-युग मे उत्कर्ष ही रहा। स्वय राय देवीप्रसाद पूर्ण ने टेक देकर गीत लिखे हैं, किन्तु उनमे नैतिक एव परम्परावादी काव्य की भावनाएँ ही प्रमुख हैं। इस प्रगीत-शैली का स्पष्ट स्वरूप मैथिलीशरण गुप्त की 'झंकार', पाण्डेय मुरलीधर और पाण्डेय मुकुटधर के 'पूजा फूल' के अन्तर्गत आशीर्वादात्मक पद्य, मातृ-पूजा एव प्रभाती आदि, जयशकर प्रसाद के 'झरना' और 'सरस्वती' मे प्रकाशित मैथिलीशरण गुप्त, बदरीनाथ भट्ट, मुकुटधर पाण्डेय एव गिरिवर शर्मा आदि-आदि के प्रगीतो द्वारा

प्रमुख दिशा मिली है। आगे चलकर यही प्रगीत-शैली छायावादी काव्य का प्रमुख आधार बनी है।

प्रबन्ध-काव्य की परम्परा मे सर्वप्रथम श्रीधर पाठक द्वारा 'एकान्तवासी योगी' प्रस्तुत किया गया था। फिर उसी परम्परा मे मैथिलीशरण गुप्त ने 'रग मे भग', जयशकर प्रसाद ने 'प्रेम पथिक' एव 'महाराणा का महत्व' आदि, सियारामशरण ने 'मौर्य-विजय' और रामनरेश त्रिपाठी ने 'मिलन' और 'पथिक' आदि खण्ड-काव्य तथा अयोध्यासिह उपाध्याय ने 'प्रिय प्रवास', रामचरित उपाध्याय ने 'रामचरित-चिन्तामणि' और मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' (आंशिक रूप) महाकाव्य के स्वरूप मे प्रस्तुत किये थे। इस स्थल पर यह जान लेना भी आवश्यक है कि उपर्युक्त सम्पूर्ण प्रबन्ध-काव्य स्वच्छन्दतावादी-काव्य के उत्पादन न थे। उपर्युक्त खण्डकाव्यो मे जयशकर प्रसाद का 'प्रेम पथिक' एव रामनरेश त्रिपाठी के 'मिलन' और 'पथिक' ही उस कोटि मे आ सकते हैं। 'प्रिय प्रवास' एव 'साकेत' यद्यपि हमारे व्यवहारवादी काव्य की ही शृ खला मे हैं, तथापि इनके द्वारा भी स्वच्छन्दतावादी वैयक्तिक-काव्य का प्रस्फुटन हुआ है।

भारतेन्दु-युग तक रामायण एव महाभारत काव्यो के चरित्रो की ही प्रधानता रही है, किन्तु तत्कालीन परिस्थितियो से बाध्य होकर कवि ने 'स्व' को भी काव्य का विषय बनाना प्रारम्भ कर दिया था। उस युग मे ठाकुर जगमोहन सिह ने अवश्य अपनी प्रेमिका श्यामा को लेकर जिन वैयक्तिक प्रेम-काव्यो की रचना की उनमें प्रेम को लेकर जो जिज्ञासा, उत्कण्ठा और विरहजनित उत्पीडन है, उनमे यो भक्ति का आवरण अवश्य है, किन्तु उनमे ठाकुर साहब का वास्तविक व्यक्तित्व ही झाँकता है। इससे उन काव्यो मे ठाकुर साहब एक प्रेमी नायक के रूप में ही प्रस्तुत होते हैं।

राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रबल हो जाने पर भारतेन्दु-युग की अपेक्षा द्विवेदी-युग मे निर्माण का विशेष प्रश्न था। फलस्वरूप देश के गौरवपूर्ण भूत से पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एव धार्मिक आदि आदर्श चरित्र लेकर उन पर छोटी-बडी रचनायें हो उठी। आस्था प्रधान देश को ऐसे चरित्रो से उत्थान में प्रेरणाएँ मिली। उपर्युक्त के अतिरिक्त काल्पनिक चरित्रो का भी आधिक्य बढ़ा। रामचन्द्र शुक्ल का 'शिशिर पथिक', प्रसाद का 'प्रेम पथिक' एव 'आँसू' तथा रामनरेश त्रिपाठी के 'मिलन' एव 'पथिक' खण्ड-काव्यो के नायक, नायिकायें

एव अन्य चरित्र काल्पनिक ही रहे हैं। 'आँसू' मे उत्पीडित मानव का चरित्र है, जो पूर्ण काल्पनिक है।

इस प्रकार के काल्पनिक चरित्रों से वैयक्तिक प्रधान काव्यो का सृजन तो हुआ ही है, किन्तु उनसे प्रेम, करुणा, जीवन का दर्शन एव प्रकृति-साहचर्य की भावनाए भी उपलब्ध हुई हैं, जिनके ऊपर छायावादी काव्य अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख सका है।

आलोच्यकाल में विविध रसो मे रचना हुई है। युग के जितने भी प्रेम-काव्य हैं उनमे रूप-माधुरी के आकर्षण से उत्पन्न सयोग एव विरह से वियोग दोनो पक्षो से परिपक्व होकर शृगार-रस का स्पष्ट स्वरूप हिन्दी काव्य में प्रस्तुत हुआ है। प्रसाद के 'प्रेम पथिक', रामनरेश त्रिपाठी के 'मिलन' एव 'पथिक' में त्याग भरे प्रेम का उद्दाम स्वरूप विद्यमान है। 'प्रिय प्रवास' एव 'साकेत' के प्रारम्भिक सर्ग मे भी उसका प्रस्फुटन हुआ है।

मैथिलीशरण गुप्त के 'भारत भारती', 'किसान', 'जयद्रथ वध' सनेही के 'कृषक क्रन्दन', सियारामशरण के 'अनाथ', रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' आदि-आदि काव्यों मे करुण, आलोच्य-काल की पत्रिकाओ की सम्पूर्ण राष्ट्रीय कविताओ, मैथिलीशरण गुप्त के 'जयद्रथ वध', सियारामशरण गुप्त के 'मौर्य विजय', जयशकर प्रसाद के 'महाराणा का महत्व' आदि की रचनाओ में वीर रस, इसी प्रकार से अवशिष्ट रसो पर भी आलोच्य-काल मे काव्य रचा गया है।

आलोच्य-काल मे प्रकृति-काव्य के विविध स्वरूपो को लिया गया है। उससे अनुरजन एवं उपदेशात्मक भाव भी ग्रहण किये गये हैं। किन्तु उसमे चेतना एव मानवी स्वरूपो का समावेश एक नवीन प्रगति थी। प्रकृति की चेतनता एव मानवी स्वरूपो के आरोप के द्वारा ही छायावादी युग के कवि को प्रतीकात्मक शैली को अपनाने मे सुविधा हुई थी। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', मैथिलीशरण गुप्त, जयशकर प्रसाद, मुकुटधर पाण्डेय, सुमित्रानन्दन पन्त एव सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आदि सभी के काव्यो मे प्रकृति अपने विविध स्वरूपो में विद्यमान है।

इतनी प्रवृत्तियो के अतिरिक्त आलोच्य-काल के कवि-वर्ग अपने जीवन-दर्शन से भी उदासीन न थे। सामाजिक विषमताओ, प्रेमाख्यानो तथा राष्ट्र के उत्थान-पतनो ने कवियो को जीवन की ओर झाँकने का अवकाश दिया। सुख-दुःख के अवसरो ने सामाजिक जीवन मे हास-रुदन की व्यवस्था करदी। मैथिली-

शरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, प्रसाद, पन्त एव निराला आदि सभी कवियो के काव्यो मे जीवन की असारता एव सुख-दुख के दर्शन का सन्निवेश किया गया है। जीवन की असारता एव अवसाद की भावनाओ से ही छायावादी काव्य के निराशावाद एव वेदनावाद के उत्पन्न होने मे सहायता मिली है। आगे चलकर इसी प्रवृत्ति के द्वारा कवि काव्य के रहस्यवादी क्षेत्र मे प्रविष्ट हो सका था।

आलोच्य काल के काव्य के विवेचन से इतना पूर्णत स्पष्ट है कि काव्य अपने स्थूल स्वरूप से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होता गया है। १८७५ ई० के उपलब्ध काव्य मे उसका स्थूल शरीर ही सामने आ सका था, किन्तु अपने क्रमिक विकास मे १९२५ ई० के काव्य मे उसकी अन्तरात्मा भी दृष्टिगोचर हो उठी। काव्य की यही वह गति-विधि थी जिस पर छायावादी एव रहस्यवादी काव्य अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख सके हैं। यह गति-विधि जिसके फलस्वरूप यह सब सम्भव हो सका, साहित्य की साधारण धारा एव परिस्थिति न थी। अपनी इस महत्ता के कारण ही स्वच्छन्दतावादी हिन्दी-काव्य की इस विशेष धारा को आलोचना का विषय बनाकर आलोच्य काल के मध्य मे उसकी प्रगति का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। भक्ति और रीतिकालो की शास्त्रीयता निस्सन्देह काव्य के स्वाभाविक स्वरूप पर पटाक्षेप किये थी। स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रगति से उसकी अवरुद्ध-गति को एक नूतन जीवन मिला। फलत काव्य मे मानवी चेतना का प्रस्फुटन हुआ। इस प्रकार हिन्दी के कृत्रिम काव्य के स्थान पर स्वाभाविक काव्य का स्वरूप सुशोभित हुआ। वास्तव मे काव्य के इसी स्वरूप मे साहित्य-देवता का 'सत्य-शिव-सुन्दर' निवास करता है। इससे इस विशेष धारा से हिन्दी-काव्य का महान उपकार हुआ, साथ ही उसने उसे गरिमामय और महिमामय भी बना दिया, यह सत्य है।

पूर्व-स्वच्छन्दतावादी युग की भावधारा एव काव्य शैली आदि दोनो दृष्टियो से जो काव्य-प्रवृत्तिया सचित हो रही थीं उनका प्रगल्भ परिपाक प्रसाद जी के आसू, पन्त और निराला की आरम्भिक रचनाओ मे दिखाई देता है।

इन दोनो काव्य-भूमियो का साहित्यिक विवेचन हमारी प्रबन्ध की सीमा के बाहर है, परन्तु इतना निवेदन करना अप्रासगिक न होगा कि ठा० जगमोहन सिंह, श्रीधर पाठक, एव रामनरेश त्रिपाठी की काव्य-कृतियों की अपनी आरम्भिक स्थिति का परिचय देने वाली काव्य-भावना ही प्रसाद और परवर्त्ती कवियों मे अपनी पूर्ण तरुणाई मे उपस्थित हुई है। अतएव आचार्य शुक्ल जी के

इस मत[1] से सहमत होना हमारे लिये कठिन है कि प्रकृति-स्वच्छन्दतावाद ठा० जगमोहनसिंह एव श्रीधर पाठक की कृतियो मे ही उपलब्ध होता है तथा प्रसाद, पन्त और निराला आदि मे आकर उक्त काव्य-धारा सकुचित और साम्प्रदायिक वन जाती है। उल्टे हम यह मानते हैं कि ठाकुर साहव और पाठक जी का आरम्भिक काव्योन्मेष ही इन छायावादी कवियो मे वेगपूर्ण होकर पूर्णरूप से प्रस्फुटित हुआ है।

---

१. ब्लैक आदि के पीछे सन् १८८५ मे जो प्रतीकवाद-मिश्रित नूतन रहस्यवाद साहित्य-क्षेत्र के एक कोने मे प्रकट हुआ —जिसकी नकल वगला से होती हुई हिन्दी मे आई—वह किस प्रकार एक साम्प्रदायिक वस्तु है और योरुप के अधिकाश साहित्यिकों द्वारा किस दृष्टि से देखा जाता है, यह हम अच्छी तरह दिखा चुके हैं। दूसरी वात लीजिये। हम नहीं समझते कि हिन्दी वालों की खोपडी को एक दम खोखली माने, उनके वीच इस प्रकार के अर्थशून्य वाक्य 'छायावाद' के सम्वन्ध मे कैसे कहे जाते हैं कि 'यह नवीन जाग्रति का चिह्न है, देश के नवयुवको के हृदय की दहकती हुई आग है इत्यादि, इत्यादि। भला, देश की नई 'जाग्रति' से देशवासियो की दारुण दशा की अनुभूति से और असीम-ससीम के मिलन, अव्यक्त और अज्ञात की झाकी आदि का क्या सम्वन्ध ? क्या हिन्दी के वर्तमान साहित्य-क्षेत्र मे शब्द और अर्थ का सम्वन्ध विलकुल टूट गया है ? क्या शब्दो की गर्द-भरी आंधी विलायत के कलाक्षेत्र से धीरे-धीरे हटती हुई अव हिन्दी वालो की आंख खोलना मुश्किल करेगी ?

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काव्य मे रहस्यवाद, 'चिन्तामणि' भाग २, पृष्ठ १६६, सरस्वती मन्दिर, काशी, २००२ वि०

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

योरुप में स्वच्छन्दतावादी काव्यान्दोलन की पृष्ठभूमि

(१६००-१८५०)

विषय-प्रवेश

योरुप के १८वी और १९वी शताब्दी (पूर्वार्द्ध) के एतिहासिक वायुमण्डल मे इस प्रकार की प्रगतियां और परिवर्तन घटित हुए, जिनसे योरुप ही नही, किन्तु विश्व के सपूर्ण महाद्वीप प्रभावित हुए। इनकी पृष्ठभूमि मे वे विचार-धार ेथी, जो १७वी और १८वी शताब्दी के प्रारम्भ मे ही अपना प्रभाव डालती हैं। आलोच्य-काल के समाज के लिए ये घटनाएँ पथ-चिह्न थी, जिनसे अनुप्रेरित होकर उसने अपना नवीन मार्ग निर्धारित किया।

१६वी और १७वी शताब्दी मे जागीरदारी प्रथा (Feudal System) सम्पूर्ण योरुप मे ही प्रचलित थी। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि समझा जाता था। इनकी निरकुशता से शासित बडे ही आक्रान्त थे। उनके अस्तित्व की इकाई की वस्तुत कोई गणना ही नही थी। इस प्रकार की एकतन्त्रता फान्स मे बॉरबन्स (Bourbons), स्पेन मे हेप्सबर्ग (Habsburges) और बॉरबन्स (Bourbons) तथा रूस मे पीटर महान द्वारा प्रचारित थी। इसके विरोध मे उत्तरी नीदरलैंड के निवासियो ने स्पेन के सम्राट फिलिप द्वितीय से सघर्ष भी किया, किन्तु वे असफल रहे।

१७वी शताब्दी के प्रारम्भ मे ही बोहीमिया के चेक्स (Zeches) ने भी अपने राजा फर्डिनैण्ड द्वितीय को शक्ति-विहीन करने का प्रयास किया, किन्तु वह भी असफल रहे। १७वी और १८वी शताब्दी मे पोलैण्ड मे इस प्रकार की एक राजनीतिक सस्था का उदय हुआ, जिसके अन्तर्गत राजा प्रजा से चुना जाता था और जिस पर नागरिकता, चर्च तथा सभ्यो के सरक्षण का दायित्व था।

यद्यपि निरकुशता के विरुद्ध ये सभी प्रयास विफल हुए, किन्तु इगलैण्ड को

इस सम्बन्ध मे पूर्ण सफलता मिली। उसकी जनतन्त्र शक्ति का इस प्रकार क्रमिक विकास हुआ कि राजकीय शक्ति झकझोर डाली गई।

शक्ति-सम्पन्न होते हुए भी ब्रिटेन के राजा चार्ल्स प्रथम को प्रजा के शासन के समक्ष अपना जीवन अर्पित कर देना पड़ा। १६८८ ई० की इगलैंड की 'गौरवपूर्ण राजक्रान्ति' मे तो जेम्स द्वितीय को सिंहासन छोड़कर ही भाग जाना पड़ा। इस प्रकार इगलैण्ड का सिंहासन पूर्णरूप मे पालियामेण्ट के हाथ मे आ गया। इस समय मे इगलैण्ड का राजा सदैव के लिए पालियामेण्ट के हाथ की कठपुतली हो गया।

जब इगलैण्ड मे इस प्रकार के स्थायी परिवर्तन हो रहे थे उस समय भी महाद्वीप मे राजाओ के निरकुश शासन का एकाधिपत्य था। लुई १४वां इस प्रकार के स्वेच्छाचारी राजाओ का आदर्श था।

१८वी शताब्दी मे फ्रान्स के दो विचारक वॉल्टेयर और रूसो इस प्रकार के व्यक्ति थे, जिन्होने अपने मौलिक विचारो से अपने युग को प्रभावित किया। वॉल्टेयर अन्याय, अत्याचारो और निरकुशताओ का पूर्ण विरोधी था। धर्म पर अन्धविश्वास उसे पसन्द नही था। अपनी इन विचारधाराओ के कारण उसे जेल मे भी रहना पड़ा, किन्तु फिर भी विचारपूर्ण सत्साहित्य लिखकर उसने रूढियो के विरुद्ध क्रान्ति उपस्थित कर दी। रूसो दूसरा विचारक था जिसने अपने साहित्य से समाज के नेत्र खोल दिए। Social Contract (Du Contract Social) मे उसके मौलिक विचारो का समावेश है।

"रूसो ने क्रान्ति का पाठ नही पढ़ाया, शायद उसे इस प्रकार की क्रान्ति की आशा भी नही थी; किन्तु उसकी पुस्तको और विचारो ने मनुष्यो के मस्तिष्कों मे इस प्रकार के बीज वपन कर दिए, जिनसे क्रान्ति अकुरित हो उठी।"[1]

१८वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे योरुप मे तीन महत्वपूर्ण क्रान्तियाँ घटित हुई—(१) अमेरिका का स्वातन्त्र्य-सग्राम, (२) फ्रान्स की राजक्रान्ति और (३) औद्योगिक क्रान्ति। वास्तव मे इन सभी के प्रभाव से योरुप का स्वरूप ही

1 Rousseau did not preach revolution, probably he did not expect one But his books and ideas certainly sowed the seed in men's mind which blossomed out in revolution

—Jawaharlal Nehru 'The Glimpses of World History', Part 338

बदल गया। इनमे से प्रथम दो राजनीतिक एव अन्तिम आर्थिक क्रान्ति रही है।

(क) तत्कालीन परिस्थितियाँ

१ राजनीतिक स्थिति

१ अमेरिका का स्वातंत्र्य संग्राम

१८वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध, जैसा उल्लेख किया जा चुका है, अपनी घटनाओ के कारण योरुपीय इतिहास मे प्रसिद्ध है। १७४८ ई० मे 'आस्ट्रिया का उत्तराधिकार' विषयक युद्ध समाप्त हुआ और 'एक्स-ला-चँपेल' की सन्धि के अनुसार मेरिया थेरेसा को आस्ट्रिया की उत्तराधिकारिणी मान लिया गया और सिलीसिया का प्रान्त प्रशा के सम्राट फ्रेडरिक के समीप ही रहने दिया गया। सन्धि का अभिनय अवश्य हो गया; किन्तु मेरिया थेरेसा फ्रेडरिक के कारण उत्पन्न सकट और अपमान को नही भूली थी। मेरिया उस अवसर की प्रतीक्षा मे थी जब वह अपने प्रान्त सिलीसिया को लौटा ले और फ्रेडरिक को कुचल दे। इसी भावना से प्रेरित होकर 'सप्तवर्षीय युद्ध' (१७५६-६३ ई०) मे उसने फ्रास का साथ दिया था।

सप्तवर्षीय युद्ध के क्षेत्र योरुप, अमेरिका तथा भारतवर्ष मे थे। फ्रास को इस युद्ध मे काफी क्षति उठानी पडी। उसने आस्ट्रिया को सहायता देने के लिए प्रशा और इगलैण्ड के विरुद्ध राइन नदी पर एक सेना भेजी, किन्तु फ्रास की सेना जर्मनी मे रोजबक (Rossback) स्थान पर परास्त हुई। अमेरिका और भारत मे भी फ्रास इगलैण्ड से परास्त हुआ। सर्वप्रथम १७५८ ई० मे कनाडा मे ओहियो के बेसिन से अग्रेजो ने फ्रासीसियो को निकाल दिया। इस प्रकार कनाडा पर अग्रेजो का अधिकार हो गया। भारत मे भी फ्रासीसी अग्रेजो से कई स्थलो पर परास्त हुए और उनकी शक्ति का सदैव के लिए ह्रास हो गया।

१७६३ मे इस युद्ध की समाप्ति पर पेरिस की सन्धि द्वारा इगलैण्ड को फ्रास से अमेरिका मे कनाडा और मिसीसिपी नदी के पूर्व का प्रदेश मिला और कुछ बन्दरगाहो के अतिरिक्त फ्रासीसी भारत से हटा दिये गये।

सप्तवर्षीय युद्ध से निस्सन्देह अग्रेजी साम्राज्य की नीव दृढ हुई और उसका यश दिग-दिगन्त तक फैल गया; किन्तु थोडे समय के उपरान्त अमेरिका मे अग्रेजो की बस्तियो का अग्रेजी साम्राज्य से सघर्ष प्रारम्भ हो गया, जिसमे उनकी दानवी और स्वार्थी नीति का व्यवहार हुआ, जिससे उन्हे अपनी बस्तियो

से ही हाथ नही धोना पडा; किन्तु अपयश भी हाथ लगा।

१७६५ ई० मे अग्रेजी पार्लियामेट ने सैनिक व्यय के लिए Stamp Act नामक कर अमेरिका पर लगाया, किन्तु रॉकिघम (Rockingham) के मत्री होते ही यह कर हटा दिया गया। अमेरिका के लोग बडे ही प्रसन्न हुए, किन्तु थोडे समय के उपरान्त ब्रिटिश पार्लियामेट ने बस्तियो पर कर लगाने का अधिकार सिद्ध किया। इससे जनता मे फिर असन्तोष फैल गया। लार्ड नॉर्थ के मन्त्रित्व मे १७७० ई० मे कॉच और कागज का कर समाप्त कर दिया गया, किन्तु चाय का कर ज्यो का त्यो रहा। फलत सस्ती पडने के कारण जब चाय भारत से बोस्टन बदरगाह पर पहुची तब कर से खीजे अमेरिकनो ने चाय के बोरे रात्रि मे समुद्र मे फेंक दिये। यह घटना इतिहास मे The Boston Tea Party (१७७०) के नाम से प्रसिद्ध है।

इसके उपरान्त अग्रेज सम्राट की सरकार द्वारा काफी कडाई का व्यवहार किया गया। "बस्तियों और इगलैण्ड के मध्य मे युद्ध आरम्भ होने से कुछ ही पूर्व १७७४ ई० मे 'वाशिगटन' ने घोषित किया था कि उत्तरी अमेरिका का कोई भी विचारशील व्यक्ति स्वतन्त्रता नही चाहता था। वे इगलैण्ड और अमेरिका के जन-वर्ग के मध्य मे ऐक्य और सद्भावना के पुनर्स्थापन के लिये हृदय से अभिलषित थे। वे केवल औपनिवेशिक सरकार चाहते थे।"[1]

अमेरिकन बस्तियो की माँग अग्रेजी साम्राज्यवादिता के क्रूर हाथो द्वारा कुचल डाली गई। फलत अमेरिकनो के समक्ष सघर्ष मे सम्मिलित होने के अतिरिक्त कोई चारा भी नही रह गया था। विचार-विनिमय और आगामी कार्यक्रम के निर्धारण के लिये ४ जून १७७६ ई० को इन लोगो की 'महाद्वीपीय समिति' (Continental Congress) की बैठक हुई। जिसमे स्वतन्त्रता का घोषणा-पत्र (Declaration of Independence) प्रस्तुत करने का निश्चय हुआ। इस घोषणा-पत्र को लिखने का सौभाग्य वर्जीनिया के एक

---

1 In 1774 a little before war began between the colonies and England Washington stated that no thinking man in all North America desired independence ××× They were ardently desirous of restoring harmony and good will between England and American children All they ask for is some kind of dominion Government

—Jawahar Lal Nehru The Glimpses of World History, Page 359

ग्रामीण महाशय टॉमस जेफर्सन (Thomes Jefferson) को है। इस घोषणा-पत्र[1] की निम्न धाराएँ थी।

स्वातन्त्र्य घोषणा ने यह स्पष्ट कहा—

"१—केवल अग्रेज ही नही सभी मनुष्य ईश्वर द्वारा प्रदत्त कतिपय अविच्छेद्य अधिकारो से युक्त होते हैं, जिनमे जीवन, स्वतन्त्रता और आनन्द की उपलब्धि मुख्य है।

२—सभी शासक अपनी उचित शक्तियो को शासितो की स्वीकृति से प्राप्त करते हैं। यह सुव्यवस्थित वक्तव्य सत्ताधारियो के शासन के स्थान पर जनतत्र के अधिकारो का सिद्धान्त है।

३—फलत अत्याचारी शासन को उलट देना और सर्वप्रिय शासन की यदि आवश्यकता हो तो अस्त्रो-शस्त्रो के बल से भी स्थापना करना न्यायोचित है। दूसरे शब्दो मे क्रान्ति उपस्थित करना जनता का अधिकार है।"

इस घोषणा-पत्र के अन्तर्गत उन्होने अग्रेजो के करो का विरोध प्रारम्भ कर दिया और 'बिना प्रतिनिधित्व के कर नही' का नारा बुलन्द किया, तथापि ब्रिटिश पार्लियामेंट मे उनके प्रतिनिधि का समावेश न हो सका। अमेरिका के निवासियो के पास सेना नही थी तथापि वाशिंगटन के सेनापतित्व मे एक सेना बनी। इसी समय फ्रास ने बस्तियो की सहायता की। स्पेन ने भी इगलैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। युद्ध की समाप्ति अमेरिका के पक्ष मे हुई। फलस्वरूप पेरिस की सन्धि १७८३ ई० मे हो गई।

यही बस्तियाँ स्वतत्र होकर सयुक्त राष्ट्र अमेरिका बनी। जार्ज वाशिंगटन

---

1 1. All men—not merely English men—are endowed by their Creator, the declaration boldly asserted certain inalienable rights among which are life, liberty and pursuit of happiness

2. All Governments derive their just powers from the consent of the Governed—a succint statement of the principle of popular, as opposed to aristrocratic Government

3 Hence it is perfectly justifiable to over-throw a tyrannical Government and to establish a popular one by force of arms, if necessary, in other words there is a right of revolution

—J. H Hayes A Political and Cultural History of Modern Europe, Page 482

संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रथम अध्यक्ष था।

अंग्रेजों की इस पराजय से उनकी साम्राज्यवादिता को बहुत बड़ा धक्का लगा। निस्सन्देह वॉल्टेयर और रूसो की साम्यवादी विचारधारा से जागीरदारी और शासकीय परम्परा की सामन्तशाही ध्वस्त होने लगी। जिसका प्रथम पुष्प अमेरिका की स्वतन्त्रता के रूप में पुष्पित हुआ और जिसका विकसित रूप 'फ्रांस की राजक्रांति' के रूप में आने को था।

२. फ्रांस की राजक्रांति

बहुत से फ्रांसीसी युवक जो अमेरिका के इस युद्ध में सम्मिलित हुए थे वहाँ से बहुत-सी प्रेरणाएँ लेकर लौटे और अपने देश में आकर उन प्रेरणाओं को कार्यान्वित करने का प्रयास किया।

फ्रांस के साम्राज्य में कुलीन और पादरियों को बड़ी ही सुविधायें मिली हुई थी। इस प्रकार फ्रांस में दो श्रेणियों के लोग थे। प्रथम सभी प्रकार की सुविधायें और सम्मान-प्राप्त दूसरे सभी प्रकार की सुविधायें और सम्मान विहीन। द्वितीय श्रेणी के लोगों पर ही वस्तुतः शासन का कोप पड़ता था और उन्हीं को करों के भार का वहन करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त द्वितीय श्रेणी के लोग सेना, चर्च और राजकीय नौकरियाँ आदि में कहीं भी कोई उच्च पद प्राप्त नहीं कर सकते थे।

मज़दूर तथा कृषक-वर्ग की दशा भी बड़ी शोचनीय थी। मज़दूर धनी-मानी कारखाने के स्वामियों से पीड़ित थे और कृषक जागीरदारी प्रथा से। कृषक को भूमि का लगान, चर्च का कर तथा राजा द्वारा लगाये कर सभी कुछ देने पड़ते थे। उनके पास कभी-कभी खाने को भी न रह जाता था।

इसी समय देश की ऐसी दशा देखकर विद्वान लोगों को बड़ी ही चिन्ता हुई। उन्होंने आलोचना और प्रत्यालोचना करके देश की दशा सुधारने का बीड़ा उठाया। इस प्रकार के विचारकों में वॉल्टेयर तथा रूसो प्रमुख थे।

१७७४ ई० में लुई १६वें के सिंहासनारूढ़ होने से लेकर १७८९ ई० तक अर्थात् क्रान्ति होने से पूर्व तक उसने धनाभाव की पूर्ति के लिये यथासाध्य प्रयास किये। उसने विचार भी किया कि अमीरों और पादरियों की सुविधायें बन्द कर दी जायें, किन्तु अमीर लोग बड़े ही रुष्ट हुए। उसके समक्ष कोई चारा भी नहीं था, विवश होकर १७८९ ई० में उसने States General को भी

बुलाया। प्रश्न यह भी उठा कि States General मे अमीरो का आधिक्य रहे अथवा नवीन वैधानिक परिवर्तन किये जावें। साधारण लोग प्रतिनिधित्व के लिए कटिबद्ध थे ही। फलत राजा तथा पादरियो को विवश होकर उन्हे States General मे सम्मिलित होने का आदेश देना पडा।

रोवस्पियेर की मृत्यु के उपरान्त 'आतक का राज्य' समाप्त हो गया और डायरेक्टरी के शासन (१७९५ ई०) का प्रारम्भ हुआ। इस समय ही नेपोलियन बोनापार्ट देश के समक्ष आता है। उसने अपने देश के महान शत्रु आस्ट्रिया पर आक्रमण कर दिया। वहाँ उसकी गौरवपूर्ण विजय हुई। नेपोलियन को सेना मे उच्च पद मिला। अनन्तर पीड माउण्ड, मिलान तथा लोम्बार्डी को भी उसने परास्त किया। योरुप मे उसने बडे-बडे युद्ध किये और वह विजयी भी हुआ। इगलैण्ड से फ्रान्स का युद्ध अब भी चल रहा था। युद्ध का कारण केवल क्रान्ति के सिद्धान्त ही नही थे, किन्तु १७वी शताब्दी से ही सामुद्रिक शक्ति पर अधिकार करने की जो योजना थी, उसके कारण यह सघर्ष जाग्रत था। उसकी योजना थी कि ईजिप्ट को परास्त कर भारतवर्ष पर आक्रमण कर अग्रेजी शक्ति को कुचल दिया जाय, किन्तु मिस्र मे उसकी पराजय हुई।

नेपोलियन अभी तक डायरेक्टरी के अन्तर्गत सेनापति था, किन्तु इटली और आस्ट्रिया को परास्त करने तथा अपने सफल आतको के कारण फ्रान्स की जनता का उसमे विश्वास जम गया। १७९९ ई० मे डायरेक्टरी का अन्त कर दिया गया। इस समय तीन कौंसिलो की राष्ट्रीय समिति (National Assembly) ने जिसका प्रधान नेपोलियन था, सर्वप्रथम उपयोगी विधान निर्माण करने की योजना प्रारम्भ की, किन्तु परिस्थितिवश उससे यह कुछ भी करते न बना। राजा और राष्ट्रीय समिति मे मैत्री भाव के अभाव के कारण रात-दिन सघर्ष चलता था। इससे जनता रुष्ट थी। वह अपने को नियन्त्रित न कर सकी। फलत. १४ जून १७८९ को बेस्टील का बन्दीगृह इन क्रान्तिकारियो द्वारा उन्मुक्त कर दिया गया। वस्तुत सघर्ष और क्रान्ति यहीं से प्रारम्भ हो जाती है। ४ अगस्त १७८९ ई० मे सभी कुलीन और पादरियो ने देश की इस प्रकार सकटमय स्थिति को देखकर अपनी सुविधाओ को National Assembly को अर्पित कर दिया और निवेदन कर दिया कि उन्हे भी नागरिको की कोटि मे गिना जावे। मिराव्यू (Mirabeau) का, जो राजा का भक्त था और जो सरलतापूर्वक ही इस क्रान्ति को मिटाने के पक्ष मे था, इसी समय निधन हो जाता है। राजा तथा राज-परिवार बन्दी था ही। राजा

ने गुप्त रूप से भागने का विचार किया और वह भागा भी; किन्तु पकड लिया गया। वह वन्दी बनाकर पेरिस लाया गया। इसी समय National Assembly मे दो विचारधारायें उठी। एक विचारधारा राजकीय शक्ति को पुन: सिंहासनारूढ देखना चाहती थी, द्वितीय विचारधारा जनतन्त्र के पूर्ण पक्ष मे थी।

इस समय योरुप की शक्तिया फ्रास के इन परिवर्तनो को ध्यान मे देख रही थी। १७९२ ई० मे फ्रास ने आस्ट्रिया मे युद्ध प्रारम्भ कर दिया। आस्ट्रिया की सेनायें फ्रास मे घुसी और उनके द्वारा फ्रास की सेनायें परास्त हुई। इस सम्बन्ध में फ्रासीसियो ने अपने राजा का शत्रु पक्ष से मिल जाने का भ्रम किया। राजा के महल पर आक्रमण हुआ। राजा वन्दी बनाया गया। फ्रास की सेनाओ ने आगे चलकर आस्ट्रिया और प्रशा की सेनाओ को परास्त भी किया। २१ सितम्बर सन् १७९२ ई० को National Convention की बैठक हुई जिसमे फ्रास मे जनतन्त्र की घोषणा हुई। लुई १६वें पर अभियोग भी चला। अन्त मे २३ जनवरी सन् १७९३ ई० को उसे मृत्युदण्ड मिला। इसके उपरात देश मे 'आतक का साम्राज्य' रहा। लुई की रानी तथा जिरोदिस्ट दल के वहुत से नेताओ को प्राणदण्ड दिया गया। जो भी राज-पक्ष के लोग थे, उनके साथ इसी प्रकार का व्यवहार किया गया। क्रमश अपनी शक्ति को वढाता हुआ नेपोलियन फ्रास का सम्राट् भी वन गया। इसके उपरान्त स्पेन तथा इगलैंड आदि से उसे युद्ध भी करने पडे। १८ जून सन् १८१५ ई० मे वह वाटरलू के रणक्षेत्र मे ड्यूक ऑव वेलिंगटन के द्वारा परास्त हुआ और वदी बनाया गया।

फ्रांस की राजक्रांति के परिणाम

इस क्रान्ति से सम्पूर्ण योरुप मे 'जनतन्त्रवादी' भावना का पूर्ण प्रचार हुआ। अभी तक राजा दैवी अधिकार से शासन करते चले आ रहे थे। फ्रास के इस विश्वव्यापी प्रभाव के कारण इटली, हालैण्ड, स्विट्जरलैंड, स्पेन तथा जर्मनी आदि देशो मे जनतन्त्र राज्य का प्रारम्भ हुआ। इसी क्रान्ति के कारण देश के नागरिको को स्वतन्त्रता उपलब्ध हुई और उन्हे वोट देने का अधिकार मिला। इटली तथा हालैड देशो मे भी नागरिक स्वतन्त्रता का प्रचार हुआ। नागरिको को सभी करो से मुक्त किया गया। समाज के जीवन मे भी

अधिक परिवर्तन हुए। कुलीन तथा पादरियो की सामन्तशाही सदैव के लिए समाप्त हो गई। शिक्षा का प्रचार भी चर्च के हाथो से लेकर राज्य के एक विभाग के अन्तर्गत कर दिया गया। इससे फ्रांस तथा अन्य देशो मे भी राष्ट्रीयता की लहर दौड गई।

निस्सदेह इस क्रान्ति ने योरुपीय प्रदेशो की सामन्तशाही तथा कुलीनता को हिला डाला। इस सभी का श्रेय वाल्टेयर तथा रूसो को ही था, जिनकी विचार-धाराओ के कारण इतने महान् परिवर्तन हुए।

"वॉल्टेयर, डिडरो और रूसो द्वारा राजक्रान्ति पोषित और प्रोत्साहित हुई। जिनकी रचनायें उस सघन विशाल वृक्ष के समान थी, जिसकी छाया मे दूसरे पौधो का पनपना सम्भव भी नही था।"[1]

२ आर्थिक स्थिति

औद्योगिक क्रान्ति

अमेरिका के स्वातन्त्र्य युद्ध से विश्व के धरातल पर जनतन्त्रवाद भावना का उदय होता है। जिसके कारण साम्राज्यवादिता तथा जागीरदारी प्रथा पर काफी आघात लगा। अनन्तर फ्रान्स की राजक्रान्ति आधुनिक इतिहास का सूत्र-पात करती है, जिसके कारण विश्व मे मानवता की पूजा आरम्भ हुई और उसके अस्तित्व का मूल्य समझा गया। इन राजक्रान्तियों का निस्सन्देह मार्मिक प्रभाव विश्व की राजनीतिक परिस्थितियो पर पडा, किन्तु इन सभी से अधिक 'औद्योगिक क्रान्ति' का प्रभाव पडा, जिसने विश्व के आर्थिक ढाचे को ही बदल डाला, जिसके फलस्वरूप समाजगत मानवीय विचारो पर भी काफी प्रभाव पडा है।

यह औद्योगिक क्रान्ति' वस्तुत. इंगलैड मे पल्लवित हुई, परन्तु इसका प्रभाव इगलैड से सम्बन्धित योरुपीय प्रदेशो तथा विदेशो मे भारतवर्ष तथा

---

1 The revolution was nourished and inspired by Voltaire, Diderot and J J. Rousseau, whose works formed so to speak a thick and tall plantation in whose shadow, no other growth was possible

Andre Lebon—Modern France ' The History of the Nations, Page 128

अमेरिका मे भी पडा। इसमे इसका आशय बहुत सकुचित क्षेत्र मे केवल इगलैंड के लिए लेना उचित न होगा। जहां तक इस क्रान्ति के समय का सम्बन्ध है कोई भी निर्धारित समय बता सकना कठिन ही नही असम्भव भी है, क्योंकि इस क्रान्ति की प्रगति क्रमिक विकास पर ही आधारित है, तथापि १७५० ई० के उपरान्त इस क्रान्ति के बीज के अकुर फूटने लगते हैं। १७५० ई० से १८१५ ई० तक इस क्राति की प्रगति प्रारम्भिक ही रही, किन्तु १८१५ ई० के उपरान्त वैज्ञानिक विकास के कारण इस क्रान्ति को वैज्ञानिक सहयोग भी उपलब्ध हुआ, जिससे यह क्रान्ति और भी अधिक तीव्रगामी सिद्ध हुई।

योरपीय इतिहास मे १७वी शताब्दी इगलैंड के सम्राट् और पार्लियामेंट के सघर्षो के लिए, १८वी शताब्दी इगलैंड और फ्रान्स के युद्धो के लिए तथा १९वी शताब्दी विज्ञान के विकास के लिये प्रसिद्ध है। इस सम्बन्ध मे एक राजनीतिक विद्वान् का कथन है "यदि अन्तिम शताब्दी मे सभ्य जीवन का सम्पूर्ण लौकिक ढाचा बदला है, तो इसके लिये हम न तो राजनीतिज्ञो के आभारी हैं और न राजनीतिक सस्थाओ के, हम इसके लिये उन लोगो के सामूहिक प्रयासो के ऋणी हैं, जिन्होने विज्ञान का विकास और उपयोग किया है।"[1]

औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व योरप का मानव प्रकृति से गुथा हुआ था। उसका सरल और स्वाभाविक जीवन था। भूमि ही उसके उत्पादन का सबसे बडा साधन थी। प्राचीन परिपाटी से खेती होती थी। तकली और चर्खा से सूत काता जाता था तथा लकडी के करघो पर सूत बुना जाता था। लोहार हथौडा से कार्य करते थे। गांवो की सख्या अधिक थी। नगर जो एकाध थे भी वे इतने सम्पन्न न थे और न वहां का व्यस्त जीवन ही था, किन्तु विज्ञान के विकास से उपर्युक्त परिस्थितियो पर बहुत बडा प्रभाव पडा। मशीनो के निर्माण से मानव-जीवन परिवर्तित हो गया। मशीनो ने मनुष्यो का स्थान ले लिया। कार्य तथा उत्पादन शीघ्रता से होने लगा। कुटीर-उद्योगो का स्थान

1 If in the last hundred years the whole material setting of civilized life has altered, we owe it neither to politicians nor to political institutions, we owe it to the combined efforts of those who have advanced science and those who have applied it —Warner and Martin The Ground Work of British History, Section III Page 584.

बडी बडी मशीनो और फैक्ट्रियो ने ले लिया। इस प्रकार मशीनो के निर्माण और उपयोग से सभ्यता के इतिहास मे एक नवीन अध्याय जुडा है।

विज्ञान

कृषि के क्रमश विकास प्राप्त करने के उपरान्त अन्य क्षेत्र, जिनमे औद्योगिक क्रान्ति का प्रवेश हुआ, वह वस्त्र का व्यवसाय था। १८वी शताब्दी के मध्य तक सूत कातने के साधन तकली और चरखा तथा वस्त्र बुनने का साधन करघा था। योरुप के प्रदेशो की घरेलू उद्योग-धन्धो की वही स्थिति थी जो अभी तक भारतीय ग्रामो की रही।

रुई से सूत कातने और सूत से वस्त्र बुनने के सम्बन्ध की मशीनो के आविष्कार से इस क्षेत्र मे उत्पादन की मात्रा मे एक साथ ही वृद्धि हुई। १७३८ ई० मे जानके ने इस प्रकार का नाल (Shuttle) बनाया जो करघे के एक ओर से दूसरे ओर तक मशीन द्वारा फेंका जा सकता था। १७६४ ई० मे हारग्रीव्ज ने इस प्रकार के चरखे को बनाया जिससे ८-१० सूत एक साथ निकलने लगे। इस प्रकार की बनी हुई मशीन का नाम (Spinning Jenny) था। १७६९ ई० मे आर्कराइट ने इस प्रकार की मशीन बनाई जिसमे बेलन से सूत कतता था और यह बेलन यान्त्रिक शक्ति से घूमते थे। १७८५ ई० मे कार्टराइट द्वारा इस प्रकार का करघा बनाया गया जिसमे ताना-बाना अपने आप बुना जाता था। इस प्रकार वस्त्रोत्पादन के क्षेत्र मे वर्णनातीत विकास हुआ।

"सन् १८१५ ई० मे राबर्ट आवन नाम का एक वस्त्र-व्यवसायी अभिमान से कहा करता था कि उसके अपने एक कारखाने मे दो हजार कारीगर जितना कपडा तैयार करते है, पुराने तरीको से सारे स्कॉटलैण्ड के सब जुलाहे मिलकर भी उतना कपडा न तैयार कर सकते थे।"[1]

जब उपर्युक्त प्रकार के अन्वेषण और आविष्कार हो रहे थे उस समय लोहे के सम्बन्ध मे भी जनता की अभिरुचि बढी। अभी तक लोहा लकडी के कोयले से गलाया जाता था। जगलो के कम होते जाने से ईंधन का दाम भी बढ गया। १८वी शताब्दी में १७५० ई० पत्थर के कोयला के उपयोग का ज्ञान हुआ। फलत इसके प्रयोग से अधिक उष्णता उपलब्ध हुई, जिससे लोहा ढालने के काम मे सुविधा हुई। हेनरी कार्ट (Henry Cart) के प्रयत्नो ने लोहे

---

१. सत्यकेतु विद्यालकार—'योरुप का आधुनिक इतिहास', पृष्ठ २८१।

के ढालने और विविध पदार्थ-निर्माण करने मे काफी सहायता मिली । १८वी शताब्दी के अन्त मे स्थल-स्थल पर लोहे के कारखाने बन गए ।

भाप की शक्ति

भाप की शक्ति के प्रयोग से 'औद्योगिक क्रान्ति' को अधिक प्रोत्साहन मिला । १७६६ ई० मे वाट (Watt) ने भाप का इजिन निर्मित किया । १८१२ ई० मे Comet नाम का जहाज क्लाइड नदी मे तैराया गया । १८१४ ई० मे स्टीफेन्सन के प्रयास से भाप-शक्ति मे सचालित इजिन प्रयोग मे आया । १८२५ ई० मे इगलैंड मे पहली रेलवे लाइन बनी । वह केवल १२ मील लम्बी थी । १८३० ई० मे मैनचेस्टर और लिवरपूल के बीच मे रेलवे लाइन बन जाने से रेलगाडियो का दौडना सुलभ हो गया ।

इन आविष्कारो से जल और भूमि पर आवागमन मे आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए । माल ढोने मे और एक स्थल से दूसरे स्थल तक सरलता और सुरक्षित रूप से जाने मे महान सुविधाएँ हुई । इस सम्बन्ध मे मनुष्य का जीवन सुखमय हो गया ।

औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम

नवीन यन्त्रो के निर्माण और आविष्कारो से निस्सन्देह विश्व के सामाजिक और आर्थिक जीवन पर काफी प्रभाव पडा । अभी तक कुटीर-उद्योग-धन्धो के प्रचार और विकास मे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे सामाजिको मे पारस्परिक आदान-प्रदान चलता रहता था । जीवन मे किसी भी प्रकार की प्रतियोगिता न होने के कारण सभी शान्ति और सुख से कालयापन कर रहे थे । उस समय अपने व्यवसाय में कला-चातुर्य प्रदर्शन करने मे सुविधायें थी । जीवन मे स्वावलम्बन और ईमानदारी थी, किन्तु मशीनों के निर्माण और उपयोग से जीवन का ढाचा ही बदल गया ।

जिन शिल्पियो को अपने शिल्प पर गर्व था, जिसके कारण समाज मे उनकी उपयोगिता समझी जाती थी, गृह-उद्योगो के नष्ट हो जाने से वही शिल्पी उदर-पोषण के लिए घूमते थे और उन्हे पूँजीपतियों के सकेत पर फैक्ट्रियों में काम करना पडता था ।

इन उद्योग-धन्धो को लेकर पूँजीपतियो ने आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभ उठाया । उनके समीप सम्पदा थी, जिससे उन्होने नवनिर्मित मशीनो को क्रय

कर शिल्पियो को कार्य मे लगाया। शिल्प के सम्बन्ध मे क, ख, ग, न जानते हुए भी उन्होने शिल्प के नए उत्पादनो से काफी धन कमाया। जब कारखानो मे उत्पादन की मात्रा बढ़ी तब उन्हे खपाने के लिए विश्व मे उचित बाजार ढूंढ़ने की आवश्यकता हुई। अमेरिका, एशिया, अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया महाद्वीपो मे अंग्रेज, फ्रान्सीसी, पुर्तगीज तथा डच आदि अपनी-अपनी बस्तियाँ स्थापित कर व्यापार करने लगे। इन महाद्वीपो से कच्चा माल योरुप के प्रदेशो में पहुँचता था। वहाँ उनसे विविध प्रकार के पदार्थ निर्मित होते थे और अनन्तर उन्ही देशो मे ऊँचे मूल्य पर बिकने चला जाया करता था। इस प्रकार पूँजीपतियो ने पिछड़े देशो से जिनमे कलो का प्रयोग नही हुआ था, काफी धन कमाया और धनवान हो गए। भारतवर्ष भी इसी प्रकार अंग्रेजो, फ्रान्सीसियो तथा अन्य योरुप निवासियो का बाजार था, किन्तु व्यापार की प्रतियोगिता और राजनीति के दाव-पेंचो मे अंग्रेज सबसे प्रवीण थे। फलत अंग्रेज विजयी हुए। उन्होंने भारत चूस डाला। भारत दाने-दाने के लिए अनाथ हो गया। इस शोचनीय परिस्थिति को मिटाने के लिए ही महात्मा गान्धीजी ने मशीनो से बने पदार्थों का बहिष्कार किया। विदेशी-बहिष्कार से मैनचेस्टर तथा इगलैण्ड के कपडे की फैक्ट्रियाँ हिल गईं। स्वदेशी पदार्थो के प्रचार से भारतीय उद्योग-धन्धो को विकास प्राप्त हुआ। खादी को प्रमुख स्थान देने के कारण देश का काफी उपकार हुआ।

कलो के प्रयोग के आधिक्य से पूँजीपतियो की नीति मे काफी विकार आ गया। वे अधिक से अधिक पैसा कमाना चाहते थे। फलत शिल्पियों को मजदूरी मे भी कसते थे।

"स्त्रियो तथा छोटे बच्चो तक को वायु-विहीन और अस्वस्थ स्थानो मे घण्टो देर तक इतना काम करना होता था कि उनमे से बहुत से मूर्छित और थकान से निष्प्राण हो जाते थे।"[1]

बडी-बडी फैक्ट्रियो की स्थापना से अधिक जनसंख्या वाले नगरों की वृद्धि हुई। इस प्रकार के नगर समुद्र के किनारे और लोहे-कोयले की खानो के समीप

---

1 Women, and little children even worked long hours in stuffy, unhealthy places till many of them almost fainted and dropped down with fatigue

—Jawahar Lal Nehru. 'The Glimpses of World History,' Page 352

बस गये थे। १७६० ई० मे लिवरपूल की आबादी चालीस हजार थी। १८४१ मे वही आबादी दो लाख २८ हजार हो गई। सन् १८०० ई० मे योरुप मे अठारह नगर ऐसे थे जिनकी आबादी १ लाख से अधिक थी। एक शताब्दी के उपरान्त इन नगरो की संख्या २ लाख मे ऊपर हो गई।

'औद्योगिक क्रान्ति' का पारिवारिक जीवन पर भी प्रभाव पडा। गांव तथा दूर से काम करने के लिए आने वाले परिवारो को नगरो मे स्थानाभाव के कारण निवास के लिए समुचित स्थान नही मिलता था। इससे इन परिवारो को बडे कष्ट से रहना पडता था। इससे सार्वजनिक स्वास्थ्य पर भी काफी प्रभाव पडा।

योरुप के अन्य देशो पर इसका प्रभाव

यद्यपि 'औद्योगिक क्रान्ति' सर्वाधिक इगलैंड मे हुई, किन्तु दूसरे देश भी इससे अछूते नही रहे। फ्रान्स की राजक्रान्ति के उपरान्त देश मे मशीनो का उपयोग बढा। १७८५ ई० मे फ्रान्स मे कपडे का सबसे बडा कारखाना खुला, जिसके लिए सभी मशीने इगलैंड से मगाई गई थी। रुई के अतिरिक्त फ्रान्स ने रेशमी और ऊनी वस्त्र बनाने मे सन्तोषजनक प्रगति की। साबुन, तेल, शराब, कपडा, घडी, शीशा आदि बनाने मे फ्रास इगलैंड से कही आगे हो गया। जर्मनी व्यावसायिक दृष्टिकोण से अन्य देशो से बहुत कुछ पिछडा रहा। प्रिंस बिस्मार्क के समय मे जब सम्पूर्ण जर्मनी राजनीतिक एकता मे युक्त हुआ उस समय वहाँ व्यावसायिक प्रगति गतिशील हुई।

योरुप के बेल्जियम, डेनमार्क, हालैंड तथा स्वीडन आदि भी इससे प्रभावित हुए।

३ सामाजिक स्थिति

सामाजिक जीवन मे व्यक्ति का वही स्थान है जो भवन के अस्तित्व के लिये एक ईट अथवा पत्थर का। इनका आधार अथवा सहायता लेकर जिस प्रकार भवन विश्व मे सुशोभित होता है उसी प्रकार समाज की इन इकाइयो से समाज का निर्माण होता है। सबोध होने के कारण मानव विचारशील और भावना-प्रधान भी होता है। फलत उसके चतुर्दिक घटित होने वाली परिस्थितियाँ उसे प्रभावित किये बिना नही रहती। इन परिस्थितियो का प्रभाव ही समाज के प्राणियो को प्रगति देता है। यह प्रगति ही किसी समाज का क्रमागत इतिहास है। फलत इन्ही से सामाजिक स्थिति अवगत होती है।

१८वी शताब्दी के अन्तिम भाग तथा १९वी शताब्दी के प्रारम्भ मे समाज मे कुलीन, पादरी, कृपक तथा मजदूर आदि ये चार वर्ग थे। कुलीन तथा पादरियो के अधिकार तथा सुविधाएँ राजपरिवार से कुछ ही कम थी। अन्यथा समाज मे इन्हे सबमे उच्च स्थान प्राप्त था। जागीरदारी प्रथा अब भी अपनी पूर्व-परम्परा के अनुसार जीवित थी। जागीरदारो से कृषको को भूमि मिली हुई थी। कृपक अपने जागीरदारो के एक प्रकार से नौकर थे। वे प्रासादो मे निवास करते थे और ये उनके आश्रित उन्ही के समीप साधारण मकानो मे रहते थे।

पादरियो की श्रेणियो मे भी दो विभाजन थे। अधिकार-प्राप्त पादरियो का समाज मे विशेप सम्मान था। वे जागीरदार तथा कुलीन समाज के समान ही वडी ही साज-सज्जा तथा विलास मे जीवन व्यतीत करते थे। चर्चो मे वडी-वडी सम्पत्तियाँ लगी हुई थी, जिनकी सम्पूर्ण आय उच्च पादरियो के हाथ मे आती थी। इनमे से वडे-वडे अधिकारी भी होते थे—कार्डिनल (Cardinal), आर्च विशॅप (Archbishop), विशॅप (Bishop) तथा एवॅट (Abbot)। इनके अतिरिक्त साधारण पादरी भी थे, जिनकी दशा वडी हीन थी। शिक्षित एव धार्मिक होते हुये भी समाज मे इनका सम्मान नही के वरावर था। सम्मान-प्राप्त पादरियो की स्थिति भारतवर्ष के महन्तो की-सी थी। भले ही उनमे योग्यता एव साधना न हो, किन्तु परम्परागत गद्दी के अधिकारी होने के कारण अन्धविश्वासी समाज उन्हें पूजता था।

'औद्योगिक क्रान्ति' के कारण समाज मे पूँजीवर्ग तथा मजदूरवर्ग की स्थापना हुई। कुलीन लोगो के पास पैसा था ही। इससे भारतवर्ष तथा अमेरिका से व्यापार करके वह धनराशि कमा रहे थे। अनन्तर वैज्ञानिक उन्नति होने पर उन्होने कलो को खरीदकर अपने कारखाने भी स्थापित किये। इन कारखानो की स्थापना से पूर्व शिल्पी लोग अपने घरो मे रहते हुये अपना कार्य करते थे। वाजार मे अपनी निर्मित चीजो को वेचकर अपना भरण-पोपण करते थे। वास्तव मे वे इस समय सभी प्रकार मे स्वतन्त्र थे। उनकी आत्माएँ नियन्त्रण-विहीन थी, जिसमे कल्पना के विकास मे वडी ही सुविधाएँ रही, किन्तु कारखानो की स्थापना से इनमे आकाश-पाताल का अन्तर हो गया। मशीनो द्वारा सस्ता माल वनने के कारण शिल्पियों का अपने माल से उनकी प्रतियोगिता मे खड़ा रह सकना असम्भव हो गया। टिकाऊपन तथा सौन्दर्य के दृष्टिकोण से मशीनो की वनी चीजें निस्सन्देह दो कौडी की थीं, किन्तु समाज

अपने निर्वाह के लिये सस्ती चीज के सामने महँगी चीज में अधिक धन फँसाने में बुद्धिमानी नहीं समझता था। फलतः शिल्पियों का पतन हुआ। कारखानों में पूँजीपतियों के सकेतों पर उन्हें कार्य करना होता था। मशीन के सामने उनकी प्रतिभा सुषुप्त हो गई थी। कारखानों के स्वामी विदेशों के बाजार में प्रतियोगिता करने की दृष्टि से सदैव यह चाहते थे कि उन्हें अपने माल बनवाने में कम व्यय करना पड़े। इससे वह कारीगरों को कम से कम देने का प्रयत्न करते थे। शिल्पियों की दशा कारुणिक होती गई, उन्हें पेट की ज्वाला शान्त करने के लिये भी काफी नहीं मिलता था। फलतः उनकी स्त्रियों और बच्चों को भी बन्द कारखानों तथा खानों में काम करना पड़ता था। उनके निवास-गृह बुरे थे, भर पेट भोजन न मिलता था। इससे शिल्पी समाज क्रमशः निर्धन से निर्धनतर होता गया। पूँजीवर्ग अपने धन के समक्ष इन शिल्पियों की चिन्ता क्यों करता ? इस प्रकार इनके धन के मद ने मानवता को कुचलना प्रारम्भ कर दिया।

समाज के प्रत्येक क्षेत्र में विषमताएँ थी। शासन के लिये अब भी योरुपीय प्रदेशों में राजा सिंहासनारूढ थे, जिनकी स्वेच्छाचारिता शासितों को पीड़ित किये हुये थी। उनके समक्ष जन-समाज के अभिमत का कोई मूल्य ही नहीं था, किन्तु अमेरिका तथा फ्रास की क्रान्तियों ने इन स्वेच्छाचारी शासकों को झुका दिया। इसने मानवता को मानव की दृष्टि से देखने के लिये उन्हें प्रेरणा ही नहीं दी, किन्तु बाध्य भी किया।

इस प्रकार देशों को राजकीय स्वतन्त्रता उपलब्धि के साथ जनतन्त्रीय भावनाओं के विकास का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। प्रत्येक व्यक्ति ने स्वतन्त्रता तथा व्यक्तित्व का मूल्य समझा। १९वी शताब्दी के प्रारम्भ तक पूँजीपतियों के वर्ग के समक्ष मानव परिस्थिति-वश विनत बना हुआ था। इस शोषण के कारण ही वास्तव में साम्राज्यवाद के विरोधी सिद्धान्त का योरुप के प्रदेशों में प्रचार भी हुआ।

विज्ञान के विकास के कारण निस्सन्देह धर्म के प्रति लोगों की आस्था घट रही थी। तार्किक भावना के विकास के कारण तथा जीवन-क्षेत्र में प्रतियोगिताओं के आधिक्य के कारण मानव-जीवन निर्वाह के लिये सामग्री जुटाने के लिये व्यस्त हो गया। धार्मिक क्षेत्र में आडम्बर और दिखावा की क्रमशः उपेक्षा की जाने लगी।

उपर्युक्त के अतिरिक्त मध्यम श्रेणी का वर्ग और भी शक्तिशाली होता जा

रहा था। वास्तव मे यह वह वर्ग था, जो सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक क्षेत्र मे सम्मान प्राप्त लोगो की अपेक्षा उन क्षेत्रो मे रहते हुये भी उपेक्षित था। यह लोग विद्वान् और सुशिक्षित थे तथापि रूढिवादिता एव अन्ध विश्वासो के कारण उनका कोई मान ही नही था। फलत इन लोगो की विचारधाराओ मे क्रान्ति की भावनाएँ भर रही थी और वे अपने समाज के सम्मानित व्यक्तियो को उनकी विषम भावनाओ के कारण घृणा की दृष्टि से देखते थे।

४—सास्कृतिक स्थिति

विगत वर्णनो से स्पष्ट है कि राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक सभी क्षेत्रो मे क्राति-सी मची हुई थी। क्रातिकारियो ने जिस प्रकार राजनीतिक तथा अन्य क्षेत्रो मे आशातीत परिवर्तन कर दिये उसी प्रकार १८वी शताब्दी मे इस प्रकार के क्रान्तिकारी विचारक भी उत्पन्न हो गये, जिनकी विचारधाराओ और प्रयासो ने योरुप के बौद्धिक तथा सास्कृतिक विकास को प्रोत्साहन प्रदान किया। कुछ समय तक यह सभी प्रभाव योरुप महाद्वीप को ही प्रभावित किये रहे, किन्तु अनन्तर शेष विश्व पर भी इनका प्रभाव पडा।

"'नवोत्थान युग' एव 'सुधार युग' से भी अधिक युग-निर्मात्री सास्कृतिक विकास मे उत्कर्ष पर पहुचती हुई इस बौद्धिक क्रान्ति ने प्रकृति-विज्ञान को इसका आधुनिक रूप प्रदान किया। इसने सामाजिक विज्ञान का बीजारोपण किया। इसने प्राकृतिक विधान और मानवीय विकास का तात्विक ज्ञान उत्पन्न किया। इसने नवीन मानवतावाद पर बल दिया। इसने धर्म को पूर्ण रूप से प्रभावित किया और कला के क्षेत्र मे शास्त्रीयता के सुन्दर फलो को नोच फेंका तथा स्वच्छन्दवादिता के उर्वर बीज का वपन किया।"[1]

---

1 Reaching its climax in the 'Enlightenment'—a movement more epochal than 'Renaissance' or 'Reformation'— it gave to natural science its modern vogue, it originated modern social science, it put forth a new metaphysics of natural law and human progress, it emphasized a new humanitarianism, it profoundly affected religion and in art it atonce plucked many fair fruits of classicism and planted the fertile seed of romanticism

J H Hayes A Political and Cultural History of Modern Europe, Page 496

(अ) प्रकृति-विज्ञान का विकास
(Progress of Natural Science)

१७वी-१८वी शताब्दी मे 'प्रकृति-विज्ञान' (Progress of natural Science) का निस्सदेह विकास हुआ। यह विकास कॉपरनिकस (Copernicus), गेलीलियो (Galilio) और हार्वे (Harvey) द्वारा अनुभूत सिद्धान्तो पर ही पूर्ण रूप से आधारित था। अभी तक का प्रकृति-विज्ञान तन्त्रो तथा मन्त्रो पर आश्रित था और इनका अस्तित्व इन्ही से प्रेरित समझा जाता था, किन्तु इस युग ने विज्ञान को विशुद्ध वैज्ञानिक रूप प्रदान किया और अन्धविश्वास का आवरण उतार फेंका।

इटली, जर्मनी तथा फ्रास मे इस विज्ञान के उत्थान के लिए १७वीं शताब्दी मे विद्यापीठें स्थापित की गई। १६६५ ई० के लगभग अग्रेजी विद्यापीठ ने Philosophical Transactions और फ्रांस ने Journal des savants नाम की पत्रिकाए निकाली। इसके अतिरिक्त पैरिस, ग्रीनविच तथा अन्य स्थानो पर वेधशालाएँ तथा सग्रहालय स्थापित किये गये।

राजनीतिज्ञो ने भी वास्तव मे इस विज्ञान मे अनुराग लेना प्रारम्भ कर दिया था। लुई १४वें का अनुज स्वय वैज्ञानिक प्रयोगो मे आनन्द लेता था और इगलैंड का राजा चार्ल्स द्वितीय भी Chymical Laboratory मे विनोद का अनुभव करता था।

एक डच क्रिश्चियन हुईजेन्स (Christian Huygens) ने, जो गेलीलियो (Galilio) का समकालीन था, पेण्डुलम वाली घटी बनाई। इस प्रकार गेलीलियो के गतिशील अन्वेषण मे वृद्धि की गई। इसी समय न्यूटन ने (१६४२-१७२७ ई०) गेलीलियो तथा हुईजेन्स के सिद्धान्तो को सकलित किया और उसने The Mathematical Principles of Natural Philosophy पुस्तक प्रकाशित की। न्यूटन के 'आकर्षण शक्ति' के सिद्धान्त से खगोल शास्त्र को नया बल मिला। अपने खगोल शास्त्र के पाण्डित्य के कारण ही हरशल (Herschel) १७८२ ई० में जार्ज तृतीय का राज-ज्योतिषी नियुक्त किया गया। १७८३ ई० मे हरशल ने 'Motion of the Solar system in Space' नाम की पुस्तक लिखी, जिससे न्यूटन के आकर्षण का सिद्धान्त उत्कर्ष पर पहुँच गया।

१८वी शताब्दी मे जीव-शास्त्र के अध्ययन को भी प्रोत्साहन मिला। इस

प्रकार के अध्ययन से मानवीय अग-प्रत्यगो का ज्ञान भी हुआ, जिससे उपचार की सुचारु व्यवस्था होने मे कोई कठिनाई नही हुई।

(आ) अध्यात्म विद्या

"विज्ञान १७वी-१८वी शताब्दी मे केवल स्थूल जगत के वाह्य ज्ञान के ही विस्तार मे व्यस्त नही रहा, किन्तु इससे आकाश, शिल्प, कृमि-कीट तथा पशु-पक्षियो के गहन तथा विस्तृत निरीक्षण से 'प्रयोगशाला' के प्रयोगो की अभिवृद्धि हुई। यह मानवीय अस्तित्व, आदि सृष्टि के कारण और ईश्वर-विषयक सिद्धान्तो के ज्ञान को, जो दर्शन की वह शाखा रही है, जिसे अरस्तू के समय से ही अध्यात्म विद्या कहा जाता रहा और जिसके सिद्धान्त स्थूल जगत् से परे और ऊँचे हैं, प्राप्त करने मे सलग्न रहा।"[1]

१७वी शताब्दी से पूर्व अध्यात्म का सम्बन्ध धर्मशास्त्र से था, किन्तु इस शताब्दी से इसका सम्बन्ध प्रकृति-विज्ञान से हो गया।

डिसकार्टिस वेकन, गीयारडानो, ब्रूनो आदि की परम्परा का दार्शनिक था। वह आधुनिक विवेचनात्मक दर्शन का जनक कहा जाता है। डिसकार्टिस को इसका श्रेय है कि—कल्पना एव अनुमान पर आधारित दर्शन को भी उसने मानवीय चेतन और अनुभूति पर आश्रित किया और ईश्वर तथा वाह्य जगत् के पदार्थों का सम्बन्ध सिद्ध किया। वरुस्पिनोजा (Baruch Spinoza) (1632-1677), विलहेम लिवनिज (Wilhelm Leibnitz) (1646-1716) जानलॉक, (John Locke) (1632-1704) एव डेविड ह्यूम (David Hume) (1711-1776) द्वारा

---

1 "Science" in the 17th and 18th centuries, involved not merely an increase of detailed knowledge about the physical universe, a multiplying of laboratory experiments, a closer and wider observation of the heavens, the rocks, the insects, the birds and the beasts It involved also a great access of speculation about the nature of being, of first causes and of God—about that branch of philosophy which since Aristotle's time had been called metaphysics-speculation about what is beyond or above the physical

Hayes A Political and Cultural History of Modern Europe, Page 506

आध्यात्मिक सिद्धान्तो को काफी विकास प्राप्त हुआ। उपर्युक्त सभी दार्शनिकों की विचारधाराओ ने इस दिशा मे काफी प्रगति की, किन्तु इमेन्युल काण्ट Immanuel Kant—(१७२४–१८०४) का इन सभी मे महत्वपूर्ण स्थान है। वह दर्शनशास्त्र के अतिरिक्त प्रकृति-विज्ञान का महान् पण्डित था। उसने भूचाल, मानव, चन्द्र तथा भूगोल आदि पर सफलतापूर्वक लिखा। इतना होते हुए भी वह दार्शनिक के रूप मे ही अमर है। वस्तुत वह आदर्शों का परम पुजारी था। प्रत्येक से आदर्शवादी होने की आशा भी करता था। नैतिक कर्तव्य और आदर्श अभी तक धर्म से ही सम्बद्ध थे, किन्तु वह प्रकृति-विज्ञान से उनको सम्बन्धित करना चाहता था। इस प्रकार का मानवीयकरण ही काण्ट की मौलिकता थी। फलत इसकी सफलता के लिए ही काण्ट ने अपनी दार्शनिक रचनाएँ की।

"इस समस्या की व्याख्या उसका आदर्श था, जब हम ईश्वर के अस्तित्व को नही जान सकते हैं तब हमारी नैतिक चेतना के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम ईश्वर के अस्पष्ट अस्तित्व को और उसी प्रकार सकल्प की स्वतन्त्रता और आत्मा की अमरता को पहिचाने।"[1]

काण्ट के आदर्शवाद से १८वी शताब्दी समाप्त हुई और १९वी शताब्दी का प्रारम्भ हुआ। वस्तुत. इस समय तक सभी ही वैज्ञानिक दार्शनिक थे और सभी ही दार्शनिक वैज्ञानिक थे। प्रकृति के उपयोग के सम्बन्ध मे विगत वर्षों के विद्वानो की अपेक्षा यह लोग निस्सदेह अधिक सस्कृत थे। फलत. इसी कारण प्राकृतिक पदार्थों की व्याख्या के सम्बन्ध मे उन्हे सशय था।

आध्यात्मिक विचार-धाराओ को लेकर अधिक मात्रा मे आलोचनायें और प्रत्यालोचनायें हुई। धार्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्रो मे इनकी जो मान्यता भी थी वे इस प्रकार के सास्कृतिक विकास से पृष्ठभूमि मे जा पडी। इस विकास से प्राकृतिक विधान को लेकर ज्ञान-सवर्धन, मानवीय विकास,

---

1 His solution of the problem was idealism—the doctrine that while we cannot know that God exists, our moral sense requires us to recognize the transcendental existence of God likewise the freedom of the will and the immortality of soul

—Hayes A Political and Cultural History of Modern Europe, Page 510

व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य तथा अन्य लौकिक सुविधायें स्वाभाविक-रूपेण उपलब्ध हुई ।

(इ) धर्मनिष्ठा और आस्तिकवाद

(१) धर्मनिष्ठा (Pietism)

योरप के इतिहास ने १७वी शताब्दी मे ही धर्मनिष्ठा के प्रति एक आकर्षण हो चला था । मानव मे यह विश्वास जम चला था कि धर्म की कट्टरता के कारण उसके मूल तत्व का विनाश हो जाता है । इस भावना को प्रोत्साहन वस्तुत ईसाई धर्म के अन्तर्गत विविध शाखाओ के परस्पर सघर्ष के रक्तपात से ही मिला । यद्यपि वैज्ञानिक प्रगति प्रारम्भ हो चली थी, किन्तु ईसाइयो मे धार्मिक कट्टरता के प्रति उदासीनता का कारण विज्ञान न होकर सघर्ष ही था । इगलैड मे ही रानी मेरी ट्यूडर ने केवल कैथोलिक धर्म की कट्टरता के कारण प्रोटेस्टेण्ट एव स्वतन्त्र धार्मिक भावना वाले लोगो को आग मे फेकवा दिया अथवा मरवा दिया था । यह धर्म-पालन न था, किन्तु मानवता का हनन था । फलत कुछ विचारक यह भावना लेकर उठे—यदि ईसाई धर्म के प्रतिपादित सिद्धान्तो को त्यागकर उसके अनुयायी महात्मा ईसा के मूल उपदेशो का ही अनुशीलन करते तो शायद विश्व का अधिक कल्याण होता । यही एक विचारधारा थी, जो इतिहास मे धर्मनिष्ठा के नाम से प्रसिद्ध है ।

जर्मन मे प्रचलित 'धर्मनिष्ठा' के सम्बन्ध मे फिलिप स्पेनर (Philip Spener) (१६३५-१७०५) का नाम लिया जा सकता है । उसने १६७५ ई० मे "Heart felt longings for a reform of the true Evangilical church which will be pleasing to God" नाम की पुस्तक प्रकाशित की । उसने लूथर के द्वारा प्रचलित धार्मिक परम्परा के अपने अनुयायियो को विवादात्मक और सघर्षात्मक विषयो को त्याग देने के लिए उपदेश दिये । काण्ट वस्तुत इसी प्रकार के वातावरण मे पल्लवित हुआ था ।

स्वीडन बॉर्ग (Swedenborg) (१६८८-१७७२)—यह एक रहस्यवादी धर्मनिष्ठ था, जिसे १७४५ ई० मे 'दैवी ज्ञान का बोध' हुआ । अनन्तर उसके द्वारा बहुत-सी रचनायें 'दैवी अनुराग और ज्ञान' और नवीन जेरुसलम पर प्रकाशित हुई ।

जार्ज फाक्स (George Fox) (१६२४-१६९१)—यद्यपि स्पेनर व स्वीडन

वॉर्ग के समान विचार-प्रधान मौलिक न था, किन्तु वह भी उदारचेता था। उसने एक समाज की स्थापना की थी, जिसे उसने क्वृकर (Quaker) नाम प्रदान किया था। इसी प्रकार जान वेसली ने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय मे अपने अध्यापन-काल मे ही Holy Club नाम की सस्था स्थापित की थी। अनन्तर उसका नाम मेथॅडिस्ट (Methodist) हुआ। अपने महाद्वीपीय भ्रमण मे उसका जर्मन धर्मनिष्ठा (German Pietism) से परिचय हुआ था, जिससे उसे काफी प्रेरणायें मिली।

(२) आस्तिकवाद (Deism)

इस आस्तिकवाद का प्रचार इगलैड मे ही प्रारम्भ हुआ। वस्तुत इस समय तक इगलैड के ईसाई धर्म मे प्रकृति-विरुद्ध इस प्रकार की मानवता से परे बातो का सन्निवेश हो चुका था कि लोगो को ईसाई धर्म के प्रति एक सन्देह उत्पन्न हो गया। फलत इन व्यक्तियो की प्रेरणाओ से विश्वसनीय और सरल बोधगम्य प्रकृति-धर्म का प्रचार हो चला। यह विचारधारा ईश्वर के आस्तिकवाद मे विश्वास करती थी, नास्तिकवाद मे नही। धर्म तथा मानवता के क्षेत्र मे प्रत्येक स्थल पर वे तथ्य और प्रकृति-स्वरूप के ही प्रोत्साहन-कर्ता थे।

इस प्रकार के प्रकृति-धर्म के लिये (Deism) नाम अग्रेजी का ही दिया हुआ था। इसके द्वारा ईसाई धर्म सर्वप्रिय हुआ और प्रकृति-विधान, स्वाभाविक अधिकार और तथ्यात्मक तर्को आदि का प्रचार हुआ।

पियर बेल (Pierre Bayle) (१६४७-१७०६)—डिसकार्टिस की शिष्य-परम्परा मे होते हुए भी स्वतन्त्र विचारधारा और धार्मिक सहिष्णुता का अनुयायी था। The Critical and Historical Dictionary उसकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। धर्मान्धता तथा पुराणो की कहानियाँ जो बच्चो को डराने तथा मर्यादा के निर्माण के लिए थी, उन्हे नियन्त्रित रखने और रोकने का उसने प्रयास किया।

वॉल्टेयर (१६९४-१७७८)—वॉल्टेयर वस्तुत. आस्तिक दार्शनिक था। १८वी शताब्दी की आस्तिक-भावना के नेतृत्व का श्रेय उसीको है। वह अपने युग की साहित्यिक प्रगतियो का प्रणेता था। वैज्ञानिक विकास को अपनी विचारधारा के अनुकूल समझता था, किन्तु धार्मिक अन्धविश्वासो की उसने कटु आलोचनायें भी की। अंग्रेजो के ससर्ग मे आने पर 'Letters on English' लिखकर अँग्रेजी चर्च तथा समाज की व्यग्यात्मक आलोचनायें भी

की। उसके द्वारा सास्कृतिक-विकाम को प्रोत्साहन मिला। वह वास्तव मे प्रकृति-विज्ञान, प्रकृति-विधान, स्वाभाविक अधिकार और मानवतावाद का पूर्ण अनुमोदक था। कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेन्ट किसी भी धर्म मे उसका विश्वास न था। उसे क्योकर (Quaker) प्रगति मे विश्वास था। उसका कथन था कि ईसाई चर्चे भले ही मूर्खों को समझा सकें और शान्ति रख सकें, किन्तु बुद्धिमान व्यक्तियो को उनसे किसी प्रकार का भी सतोप न मिल सकता था। उसे उस ईश्वर मे विश्वास था, जिसने चन्द्र, सूर्य, तारे, आकाश तथा पृथ्वी का निर्माण किया है।

उपर्युक्त प्रकार का आस्तिक भाव पोप के काव्य मे, हर्डर के गद्य मे, गिवन की एतिहासिक रचनाओ मे, फ्रान्सीसी डिडरो और डी एलेमबर्ट के विश्व-कोप मे हैं।

(ई) समाज-विज्ञानों का विकास

समाज-विज्ञान प्रकृति-विज्ञान के साथ ही प्रगतिशील रहा। दोनों ही विषयो ने विश्व और उसकी प्रगतियो को तार्किक विचार-धारा और खुले नेत्रो से देखा। इनकी आधारशिला अन्धविश्वास तथा धर्म से पूर्ण परे थी।

मानव-जीवन की विगत परिस्थितियो का ज्ञान वस्तुत समाज-विज्ञान है। १७वी-१८वी शताब्दी मे आलोचनात्मक इतिहास का अध्ययन समाज-विज्ञान के विकास का कारण बना। इस प्रकार के विकास के प्रोत्साहन के लिये योरुप मे यत्र-तत्र समृद्धिशाली पुस्तकालय स्थापित हुए। पोप के द्वारा १८वी शताब्दी मे Vatican Library सभी प्रकार से सम्पन्न बनाई गई। इसी शताब्दी मे फ्लोरेन्स की Laurentian Library और मिलान की Ambrosian Library मे हस्तलिखित पुस्तको की सख्या बढाई गई। १६६१ ई० मे The Royal Prussian Library की नींव पडी थी और १७वी शताब्दी मे इसका पुनरुद्धार हुआ। The Royal French Library की प्रगति को लुई के द्वारा सतोपजनक प्रोत्साहन और सहायता मिली।

विको (Vico)(१६६८–१७४४)—ने प्रचलित ग्रीक और रोम के इतिहास का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। हर्डर ने Ideas on the philosophy of History नाम की पुस्तक मे इतिहास के अस्तित्व पर अपने मौलिक विचार प्रगट किये।

उपर्युक्त विचारधारा के कारण समाज-विज्ञान के क्षेत्र की अभिवृद्धि हुई। मनुष्य-शरीर-रचना-शास्त्र (Anthropology), पुरातत्त्व (Archaeology), भाषा-विज्ञान (Philology) तथा तुलनात्मक धर्म (Comparative Religion) का अध्ययन बढा। इन विषयो के समावेश से समाज-विज्ञान के विषय और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गये।

विवेचनात्मक इतिहास प्रस्तुत करने का श्रेय गिबन (१७३७–९४) तथा ह्यूम (१७११–७६) को है। प्रथम ने Decline and Fall of Roman Empire, बडी ही अलकृत तथा मर्मस्पर्शी शैली मे लिखा, द्वितीय ने History of England मृदु शैली मे लिखी और एक राष्ट्र की सामाजिक तथा साहित्यिक प्रगतियो को राजनीतिक उत्थान-पतनो के समतुल्य ही महत्ता प्रदान की।

इन रचनाओ से भी अधिक प्रिय वाल्टेयर का 'Age of Louis XIV नाम के इतिहास का रहा। Raynal (१७१३–९६) के इतिहास विद्वत्तापूर्ण न थे, किन्तु उनमे दार्शनिकता का अश था, इसमे उनका अपना स्थान था। 'History of the Stathoderate' और 'History of Parliament of England' सामयिक चित्रणो से युक्त होने के कारण बडे ही प्रसिद्ध ग्रन्थ थे, किन्तु इन सबसे अधिक प्रसिद्ध इतिहास Philosophical and Political History of European Commerce and Establishment in the two Indies रहा।

(य) राजनीति-विज्ञान

ब्रिटिश राज्यान्तर्गत १७वी-१८वी शताब्दी मे इस प्रकार के राजनीतिक प्रस्ताव शासक वर्ग के समक्ष आये थे—राजनीतिक शासकीय सत्ता का शासित मानव के साथ क्या सम्बन्ध है? इन प्रस्तावो के समाधान के लिये अग्रेज राजनीतिज्ञो ने उत्तर भी दिये थे। राजनीतिक स्वतन्त्रता सर्वप्रथम उपलब्ध होने के कारण अग्रेजो की राजनीतिक प्रगति योरुपीय महाद्वीप के प्रदेशो के लिये आकर्षण का विषय थी और सर्व-प्रकारेण अनुकरणीय थी। विशेषरूपेण फ्रास प्रदेश अग्रेजो की राजनीतिक प्रगति से अधिक प्रभावित हुआ था।

(र) समाज-विज्ञान के अन्य क्षेत्र

रूसो वस्तुत मानवता और प्रकृति का अन्यतम विचारक था। उस युग मे प्रकृति के प्रति उसे अनुराग था जबकि अन्य लोग प्रकृति का अध्ययन करते

थे, उसे प्रात और सध्या के स्वर्णिम दृश्य देखने मे वही आनन्द आता था, जिस प्रकार एक गणितज्ञ को बीजगणित का अभ्यास करने मे। रूसो का वस्तुत कवि हृदय था। वह स्वच्छन्दतावादी धारा का अधिनायक था। Discourse on Arts and Science (१७४६) मे स्वाभाविकता एव कृत्रिमता का अन्तर उसने स्पष्ट किया। उसने प्रमाणित किया कि सभ्य समाज का मनुष्य अधिक विकृत है और प्रकृति से दूर रहता है जबकि असभ्य और जगली व्यक्ति मे अधिक स्वाभाविकता और सत्यता रहती है।

मानव-समाज तथा उन प्रदेशो को जो राजनीतिक प्रगतियो तथा सघर्षो के कारण व्यथित थे, रूसो की विचारधाराएँ बडी ही प्रिय लगी। उनकी द्वितीय रचना Origin of Inequality Among Men (१७५३) मे उसने यह प्रदर्शित किया कि मानवीय प्रलोभन, स्वार्थ और अहकार के कारण ही विश्व के धरातल पर विषमता उत्पन्न हो जाती है। इसी आधार पर सबल निर्बलो को पीडित करते हैं। 'प्रकृति की ओर लौट आओ' (Back to Nature) उसका नारा था।

इसी प्रकार मॉण्टेस्क्यू (Montesquieu) ने कानून के अध्ययन का आदर्श प्रस्तुत किया। उसके 'Spirit of the Laws' के द्वारा प्रमुख देशो के तुलनात्मक कानूनो के अध्ययन का आदर्श उपस्थित किया गया।

उपर्युक्त के समान अर्थशास्त्र, भूगोल, भाषा-विज्ञान आदि का भी अध्ययन किया गया। १८वी शताब्दी की प्रमुख विचारधारा मानवतावाद से प्रेरित थी। इस मानवतावाद के कारण मानव-समाज मे आर्थिक, सामाजिक, वैधानिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्रो मे काफी सुधार हुए। इस विचारधारा के कारण ही Negro Slavery समाप्त हुई और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-स्थापना के लिए प्रयास हुए। मानवता की भावना के दृढ हो जाने पर विश्व-बन्धुत्व की भावना भी दृढ होने लगी। इस सम्बन्ध मे रूसो के वचन थे—"यहाँ न कोई फ्रास निवासी है, न स्पेन का, न जर्मनी का और न इगलेंड का। यहाँ केवल सब योरुप निवासी हैं। सभी एक-सी अभिरुचि, एक-सी भावना और एक-से आचार-व्यवहार रखते है।"[1] लेनिन ने कहा था—"देश-प्रेम एक

---

1 Rosseau—No more are there French men, Spaniards, Germans or English, there are only Europeans All have the same tastes, the same passions, the same customs

सबल विकार है जिसे त्याग देने मे ही मैं प्रसन्न हूँ।"[1] टॉमसपेन का कथन है— "विश्व हमारा देश है और मानव हमारे भाई हैं।"[2]

५ शास्त्रीयता का परिपाक और स्वच्छन्दवादिता के अंकुर

१७वी-१८वी शताब्दी मे प्रकृति-विज्ञान, दर्शन और समाज-विज्ञान मे जब इस प्रकार मे नूतन भाव और सुधार समाविष्ट हो रहे थे उस समय भी योरुप का बौद्धिक जीवन ज्यो का त्यो पूर्ववत ही रहा। उनमे प्राचीन रोम और ग्रीस की शास्त्रीयता के लिए निष्ठा थी—और अपने आदर्शों की भूख मिटाने के लिए वे उन्ही देशो की साहित्यिक पद्धति का अनुसरण करते थे। उस समय तक बुद्धिमानो और पण्डितो के समक्ष इस प्रकार का कोई नवल आदर्श नही था जिसका वे अनुकरण करते। इस सम्बन्ध मे उन्हे ग्रीस और रोम से ही, साहित्य ही क्या अन्य क्षेत्रो मे भी—आदर्श उपलब्ध होते थे।

उस समय तक योरुप महाद्वीप के सभी विश्वविद्यालय और माध्यमिक विद्यालय चाहे वे प्राचीन परिपाटी पर चल रहे थे अथवा जनतान्त्रिक और मार्टिन लूथर जैसे सुधारवादी विचारको की विचारधारा पर, सभी मे रोम और ग्रीस की शिक्षा-परिपाटी का अनुसरण हो रहा था। इस युग मे लेटिन भाषा के प्रति एक उदासीनता अवश्य छाने लगी थी। प्रादेशिक भाषाओं का विकास होने लगा था, किन्तु उन पर फिर भी लेटिन और ग्रीस साहित्य की शैली का प्रभाव था। उन पर आलकारिकता और कृत्रिम शैली का आधिक्य था।

(ख) स्वच्छन्दवादिता का सूत्रपात

अ—जर्मनी में स्वच्छन्दवादिता

इस युग मे ही स्वच्छन्दवादिता का जर्मनी मे प्रवेश हुआ। जर्मन विद्वान अभी तक फ्रास प्रदेश की शास्त्रीय भावना का सम्मान करते थे और उसी के अनुयायी थे, किन्तु अब उनकी अभिरुचि अग्रेजी साहित्य की ओर भी बढ़ी। उन्होंने शेक्सपीयर और मिल्टन का अध्ययन किया। अग्रेजो के समान ही उनमे भी राष्ट्रीय रचनायें करने की भावना प्रबल हो उठी।

---

1 Lessing—Love of country is at best but an heroic vice which I am quite content to be without

2 Thomas Paine—The world is my country mankind are my brothers

Klopstock (१७२४-१८०३), Wieland (१७३३-१८१३) और Lessing (१७२६-८१) वस्तुतः इस प्रकार के जर्मन कवि थे जो इन नवीन भावनाओ को काव्य मे प्रमुख स्थान देकर चले।

क्लॉपस्टाक ने मिल्टन के महाकाव्य का अध्ययन कर स्वय भी महाकाव्य लिखा। मैकफर्सन की Odes के समान Odes भी लिखी। Messias नाम के काव्य पर उसका यश वस्तुत आश्रित है। यद्यपि उसमे कल्पना का अभाव था तथापि उसके काव्य मे गेय काव्य के सभी गुण हैं। उसकी विचारधारा मानवीय और देवी भावनाओं के मध्य ही प्राण-पोषण पाती रही है। उसमे मानवता के प्रति ममत्व है और स्थल-स्थल पर वैयक्तिक चित्रणो और सौन्दर्य के प्रति आकर्षण है। वीलेण्ड की Oberon नाम की रचना पूर्णरूपेण स्वच्छन्दतावादी है। लैसिंग गेटे से पूर्व एक सफल लेखक, आलोचक और विचारक था। उसने अपनी रचनाओ द्वारा अपने देश की बौद्धिक भावना को विकसित किया। Minna Von Barnhelm (१७६७) और Emilia Galotti (१७७२) के द्वारा राष्ट्रीय और रोमाण्टिक जर्मन नाटक का रूप प्रदर्शित किया। Laokoon तथा Hamburgische Dramaturgie आदि उनकी साहित्यिक आलोचनायें थी। उसने शिक्षा तथा धर्म-विषयक भावनायें भी व्यक्त की। Nathan dev weise नाम के नाटक मे इसका नायक विशुद्ध प्रकृति का व्यक्ति है, उसे रूढिया पसन्द नहीं। वह पूर्ण रूप से अपने वचनो मे ही नही, किंतु अपने आचरण से भी स्वच्छन्दतावादी है। इस प्रकार लैसिंग ने स्वच्छन्दतावादी धारा को काफी अग्रसर किया है।

"यदि गेटे, शिलर और काण्ट ने राष्ट्र को उनकी रचनाओ का स्वागत करते प्राप्त किया तो वे इनके लिये अनेको कारणो के ऋणी थे, किन्तु उनमे से प्रमुख थे—फ्रेडरिक द्वितीय की राजनीतिक और लैसिंग की साहित्यिक प्रगति।"[1]

ये कलाकार शास्त्रीय होते हुए भी शेक्सपियर, ओसियान तथा डा० यग से काफी प्रभावित थे। इस कारण नवीन विचारधारा का प्रस्फुटन होना स्वाभाविक

---

1 If Goethe, Schiller and Kant found a nation prepared to receive their works they owed the fact to many causes, but among these the chief were the political activity of Fredrick II and the literary activity of Lessing
—Encyclopaedia-Britanika, Volume 10

था। इसी विचारधारा ने सप्तवर्षीय युद्ध के उपरान्त से सम्पूर्ण योरप को ही मन्त्र-मुग्ध कर लिया। प्राचीन रूढ़ियों से विमुक्त नवीन स्वतन्त्र भावना के संरक्षण के लिये जर्मन में Sturm Und Drang (Storm and Pressure) नाम का आन्दोलन प्रचलित हुआ।

"Sturm Und Drang का जन्म ही रूढ़ियों को तोड़ फेंकने के लिये हुआ। उनमें से अधिक लोग साहित्य-क्षेत्र में और उसी प्रकार से जीवन में प्रत्येक प्रकार के बन्धन को घृणा करते थे और निरन्तर ही उन्होंने घोषणा की कि प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तियों को प्रकृति की प्रेरणाओं के अनुरूप ही रचना करना चाहिये। 'प्रतिभा' से उनका आशय था—प्रकृति द्वारा प्राप्त सबल चेतना और प्रबल प्रतीकों का उपयोग।"[1]

इस प्रकार के आन्दोलन ने जर्मनी के प्रकृति-प्रेमी भावुक कलाकारों को अपनी ओर आकर्षित किया।

हर्डर (Herder) (१७४४-१८०३)—वस्तुतः हर्डर लैसिंग, गेटे और शिलर के मध्य की कड़ी था। लैसिंग की रचनाओं ने कलाकारों के ध्यान को संगीत और वीरगीतों की ओर अवश्य आकर्षित किया था, किन्तु हर्डर इस प्रकार का प्रथम मौलिक जर्मन था, जिसने भावनाओं का सम्मान किया। उसकी रचना Stimmen der volker (Voices of the peoples) में अनेकों जातियों के गेय काव्यों का संग्रह किया। इस प्रकार अपने देशवासियों के लिये उसने काल्पनिक आनन्द की एक निधि प्रस्तुत कर दी।

गेटे—ग्रीक संस्कृति का पूर्ण अनुयायी था। इसी प्रकार वह पारसी तथा बौद्ध सांस्कृतिक दृष्टिकोणों का सम्मान करता था। वस्तुतः वह अपने हृदय से कवि था। प्रत्येक प्रकार के सौन्दर्य से उसके मानस में भावनाओं का उद्रेक हो उठता था। उसकी भावनाएं बड़ी कोमल होती थीं। 'Gotz von Berlic-

---

1 To break down conventionalities appeared to the 'Sturm Und Drang, most of them despised laws of every kind in literature as well as in life and continually proclaimed that the duty of man of genius was to write precisely as nature dictated By 'genius they ment vehement sensation by 'nature' a free use of vigor epithets

Encyclopaedia Britanika, Volume, 10

hingen' और Die Loidan Jungen Werthers' रचनाए पूर्ण स्वच्छन्दतावादी थी। इनमे प्रकृति के मार्मिक चित्र हैं। उसके गीत बडे ही प्रिय, कलात्मक और आनन्दयुक्त रहे हैं। Hermann Und Dorothea, और Fauste उसके सफल वीर गीत थे।

शिलर (१७५६-१८०५)—शिलर गेटे का प्रतिद्वन्द्वी था। गेटे वस्तुत कवि था। शिलर इस प्रकार की किसी प्रकार की भावना से प्रेरित न हुआ था। फ्रान्स की राजक्रान्ति मे उसे प्रोत्साहन और प्रेरणा मिली थी। वह समाज के किसी भी प्रकार के बन्धन को स्वीकार करने को तैयार नही था। Die Rauber, Fiesco और Kabale Und Liebe नाटको मे उसकी भावनाओ का प्राधान्य मिलेगा।

काण्ट—जर्मनी के बौद्धिक विकास मे काण्ट की Kritic der Reinen Vernunft का प्रमुख हाथ था। इस पुस्तक का वैसा ही प्रभाव है जिस प्रकार का डारविन की Origin of Species पुस्तक का है। उनके जीवन के अन्तिम भाग के गेय काव्य मे पूर्ण नूतनता है। वह दार्शनिक भी था। उसने पदार्थ और मस्तिष्क का जो अन्तर स्थापित किया, उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप फिशे, शैलिंग और हीगेल हैं।

गेटे के जीवन काल मे ही विशुद्ध स्वच्छन्दतावादी काव्य अपने नवीन रूप से अवतरित हुआ। प्रारम्भ मे इस प्रगति को गेटे से ही प्रेरणा मिलती रही, किन्तु कालान्तर मे यह प्रगति उसकी प्रेरणाओ का अतिक्रमण कर गई। फिशे के नवीन दार्शनिक दृष्टिकोण से इस विचार-धारा को और भी बल मिला। उसकी दार्शनिकता ने मानवीय व्यक्तित्व को जो मर्यादा और रूढियो से उन्मुक्त है—विश्व मे प्रमुख स्थान दिया। शैलिंग वस्तुत फिशे से भी अधिक प्रभावशाली था। उसने अपने काव्यात्मक रूप द्वारा मानवीय मस्तिष्क और प्रकृति के सम्बन्ध व्यक्त किये। उसके इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर उसके अनेकों ही शिष्य कार्यक्षेत्र मे अवतरित हुये। इनमे प्रमुख रूप से स्टीफेन्स (Steffens) का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण है। उसी ने मानव-जीवन तथा प्रकृतिक्षेत्र मे रहस्यो के अस्तित्व का उद्घोष किया। मूलत इन कलाकारो का प्रमुख उद्देश्य स्वच्छन्दतावादी भावना को शास्त्रीय साहित्य मे उपलब्ध स्वच्छन्दतावादी भावना से अधिक स्वतन्त्र पद प्रदान करने का था।

आ—फ्रान्स में स्वच्छन्दतावाद

लुई १४वे का शासन पूर्णरूपेण शास्त्रीय साहित्य के लिये प्रसिद्ध है। वॉल्टेयर भी शास्त्रीय ही था। रूसो स्वच्छन्दतावादी कलाकार था। फ्रान्स की राजक्रान्ति का भी कारण स्वच्छन्दतावादी साहित्य की उद्भावना ही थी। रूसो की वाणी ने फ्रान्स मे केवल स्वच्छन्दवादिता को ही उपस्थित नहीं किया, किन्तु उसने जनतन्त्र का भी सिंहनाद किया। बिराजर(Beranger) (१७८०–१८५७) शैली और विचारधाराओ मे पूर्ण शास्त्रीय ही था, किन्तु उसका गेय काव्य करुणरस, प्रसाद गुण और स्वाभाविक प्रवाह से युक्त होने के कारण अपने सामयिक काव्य से कही अधिक स्वच्छन्दतावादी था।

लमरटाइन (Lamertine) (१७६०-१८६६) कवि की The Meditation और The Harmonies दोनो रचनायें क्रमश शास्त्रीयता और स्वच्छन्दवादिता का रूप प्रदर्शित करती हैं। उसने प्रकृति से ही प्रेरणायें लेकर, आकर्षक चित्रण प्रस्तुत किये हैं। काव्य के विधि-विधान का उसके काव्य मे अच्छा समन्वय है। उसकी शैली भी बडी ही मार्मिक और स्वाभाविक है।

विक्टर ह्यूगो (H Victor Hugo) केवल नाटकीय क्षेत्र मे ही नही कविता मे भी स्वच्छन्दतावादी था। चिर प्रचलित विषय, छन्द और शैली आदि सभी मे ह्यूगो ने नवीन मार्ग को अपनाया। १८४८ ई० के फ्रान्स के राजविद्रोह के कारण कवि मे गेय काव्य रचने की प्रवृत्ति जागरूक हुई।

ड मस्से (De Musset) स्वच्छन्दतावादी-धारा का सबसे अधिक प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार था। वह बायरन के काव्य से बडा ही प्रभावित था। उसके काव्य मे स्वाभाविकता, सरलता और सौन्दर्य था।

इ—इंगलैण्ड मे स्वच्छन्दतावाद

ग्रेट ब्रिटेन मे विल्सन के द्वारा किया हुआ प्रकृति-चित्रण, रिचार्डसन के द्वारा लिखे हुए भावुकतापूर्ण उपन्यास, रावर्टबर्न्स के द्वारा जन-वाणी मे लिखी हुई काव्यात्मक रचनायें तथा टामस चेटर्टन के द्वारा मध्यकालीन इतिहास के विषयो को लेकर रचित कवितायें—इन सभी ने अग्रेजी स्वच्छन्दतावादी धारा को अग्रसर किया। स्वच्छन्दवादिता का एक स्थायी स्वरूप १७६८ ई० मे कालरिज और वर्डस्वर्थ के सम्मिलित प्रयास से 'Lyrical Ballads' के सस्करण मे प्रकाशित हुआ। कालरिज की 'Ancient Mariner' Kublakhan और Christable तथा वर्डस्वर्थ की 'The Prelude

और The Excursion रचनाओ ने स्वच्छन्दवादिता का एक अमर रूप स्थापित कर दिया। इसके उपरान्त वाल्टर स्कॉट के उपन्यासो ने स्वच्छन्दतावादी धारा को अक्षुण्ण रखा।

ई—रूस में स्वच्छन्दतावाद

रूस के साहित्यिक वायु-मण्डल मे १८१५ ई० के उपरान्त स्वच्छन्दतावादी धारा प्रवाहित हुई। रूस की इस धारा पर अंग्रेजी और जर्मनी की स्वच्छन्दतावादी धारा का पूर्ण प्रभाव पडा है। पुश्किन (Pushkin) रूस का प्रथम स्वच्छन्दतावादी कवि था। वह जार अलेक्जेण्डर प्रथम (Tzar Alexender I) का समकालीन था। अलेक्जेण्डर प्रथम स्वय अपनी विचारधाराओ मे स्वच्छन्दतावादी था। उसने अन्य कलाओ को भी रूढिवादिता की सीमा से बाहर लाकर स्वाभाविकता से ओत-प्रोत किया। पुश्किन, बायरन तथा नेपोलियन दोनो का ही परम प्रशसक था। उसने शेक्सपियर की अनुकृति मे Boris Godunov (१८२५ ई०) नामक दुखान्त नाटक लिखा। उसने अन्तिम अवस्था मे पीटर महान के द्वारा स्वीडन-निवासियो की पराजय का विषय लेकर एक महाकाव्य की रचना की थी। पुश्किन के अनन्तर रूसी स्वच्छन्दतावादी काव्य को प्रोत्साहन देने और अग्रसर करने का श्रेय गोगल (Gogal) को है। उसने युक्रेनिया और कासक के निवासियो के ग्रामीण-जीवन की कहानियो को लेकर अपने काव्यो की रचना की। Dead Souls (१८४२) उसकी सर्वोत्कृष्ट रचना है, जिसमे प्रादेशिक समाज को उसने अपने काव्य का विषय बनाया।

(ग)—स्वच्छन्दतावादी काव्य पर विहंगम दृष्टि

१७वी–१८वी शताब्दी मे योरुप मे सभी ही ललित कलाओ पर शास्त्रीय भावनाओं का एकच्छत्र साम्राज्य था, किन्तु प्रकृति-विज्ञान के विकास प्राप्त करने पर शास्त्रीय भावना के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई। जीवन मे और कलाओ के क्षेत्र मे जिस कृत्रिमता का प्राधान्य था, उसका क्रमश ह्रास होने लगा। काव्य-क्षेत्र मे भी स्वाभाविकता के समावेश का स्वागत हुआ। फ्रांस की राजक्रान्ति के मूल मे जो वॉल्टेयर और रूसो की विचारधारायें थी उन्होंने तत्कालीन योरुप की सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को पोषित किया। कालान्तर मे रूसो का Liberty, Equality और Fraternity का सिद्धान्त विश्व का सिद्धान्त बना। जिससे सामाजिक रूढियो का विच्छेद सम्भव हो सका और

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का दृष्टिकोण प्रबल हुआ। अंग्रेजी काव्य मे १८वी शताब्दी मे स्वच्छन्दतावादी काव्य का सूत्रपात हुआ और इसका प्रभाव जर्मनी और फ्रान्स के काव्यो पर यथाशीघ्र ही पडा। कालान्तर मे इस प्रकार की प्रगति सम्पूर्ण योरुप का ही विषय बन गई।

"स्वच्छन्दवादिता वस्तुत योरुपीय संस्कृति मे एक विरोधात्मक प्रगति थी। स्वच्छन्दवादिता का मूल १८वी शताब्दी मे था, किन्तु क्रान्ति-विप्लव और नेपोलियन के युगो मे यह पोषित हुआ और मेटरनिच के युग मे इसका सफल फलागम हुआ।"[1]

ग्रीस और रोम से प्रेरणा पाने की अपेक्षा इसने प्रकृति से ही प्राण-प्रतिष्ठा प्राप्त की। शास्त्रीय जीवन की अपेक्षा पर्वत, झरना, झील तथा प्रपातो मे कवि अधिक सौदर्य और आकर्षण देख सका। ग्रामीणो के स्वाभाविक जीवन में जो सरलता का समावेश है—वह मध्ययुगीन एतिहासिक घटनाओ से कवियों के लिये कही अधिक महत्वपूर्ण थी, जिनको कवि-जनो ने अपनी स्वच्छन्दतावादी कविता का वर्ण्य-विषय बनाया। सबमे अधिक भावनाओ और वैयक्तिक विचारधाराओं का सम्मान बढा। काण्ट, फिशे और हीगेल आदि जर्मनी के महान विचारको ने प्रकृति और मानव-जीवन मे रहस्यवादात्मक अश का समावेश किया। इगलैण्ड मे स्वच्छन्दतावादी काव्य सबसे अधिक सफल और उत्कृष्ट रहा। वर्ड्सवर्थ, बायरन, शेली और कीट्स आदि ऐसी स्वच्छन्दतावादी विभूतिया थी, जिनके काव्य ने योरुप तथा विश्व के साहित्य को भी प्रभावित किया। इनसे पूर्व टॉमसन, कालिन्स, ग्रे, गोल्डस्मिथ, काउपर, ब्लैक और बर्न्स आदि अग्रेजी स्वच्छन्दतावादी काव्य के सक्रान्ति-युग के कवि थे। इन्होंने ही रोमाटिक नवोन्मेष (Romantic Revival) के लिये पृष्ठभूमि तैयार की।

---

1 Romanticism was a truly revolutionary force in European Culture The roots of romanticism were in the 18th Century, but it was nourished by developments of revolutionary and Napoleanic eras and brought to rich fruitage in the period of Matternich

—Hayes The Political & Cultural History of Modern Europe P. [illegible]

परिशिष्ट २

अंग्रेजी साहित्य में पूर्व-स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रगति

विषय प्रवेश

विगत परिशिष्ट मे योरुप मे १७वी-१८वी शताब्दियो की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एव सास्कृतिक परिस्थितियो के प्रभावो की एक स्पष्ट रूपरेखा हमारे सामने आ चुकी है। युगो-युगो से योरुपीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे परम्परा-प्रियता एव सामन्तशाही का एकच्छत्र साम्राज्य था, जिनको उपर्युक्त परिस्थितियो ने झकझोर डाला। इस युग मे हुई क्रान्तियो (अमेरिका का स्वातन्त्र्य सग्राम, औद्योगिक क्रान्ति एव फ्रास की राजक्रान्ति) ने ही वस्तुत मानव को यथार्थ रूप से देखने की चेतना दी। अपने विचारो और आचरणो तक मे वह इतना अन्धा हो चुका था और उसकी आत्मा मर चुकी थी कि जीवन के सीधे-सादे विकारो को न अपनाकर वह रूढियो और कृत्रिमता को ही सर्वस्व मान बैठा था। उसके व्यक्तित्व और विचारधारा का भी कोई मूल्य है—यह प्रथम बार उसे अवगत हुआ।

इस वैयक्तिकता के प्रचार मे तत्कालीन विचारको ने जिस मौलिकता का परिचय दिया है—वह भी कम आश्चर्यजनक नहीं। समाज मे व्यवहृत विषमता तो वैसे ही असतोष फैलाए थी, किन्तु इसी समय रूसो के इस कथन ने 'मानव स्वतन्त्र जन्मा है; परन्तु सर्वत्र वह बन्धन मे है'—विचारो के क्षेत्र मे आग मे घी डालने का कार्य किया। फ्रास की राजक्रान्ति हो उठी, जिससे मानवता की एक कसौटी विश्व के समक्ष आई। १८वी शताब्दी के योरुपीय इतिहास मे इस मानवतावाद (Humanitarianism) पर ही विश्व-बन्धुत्व की भावना

सुदृढ हो उठी जिसके पृष्ठपोषक रूसो के अतिरिक्त वॉल्टेयर, लेसिंग एवं टामस पेन आदि थे। वैयक्तिक विचारधाराओ को कान्ट, फिशे एवं हीगेल आदि दार्शनिको के विचारो से भी बल मिला था। इन दार्शनिको ने ही मानव और प्रकृति के अव्यक्त सम्बन्ध के विषय मे भी प्रकाश डाला था। इससे व्यक्तिवादी भावना को एक सुस्थिर प्रगति मिली।

उपर्युक्त व्यक्तिवादी विचारधारा ने ही साहित्य-क्षेत्र मे स्वच्छन्दतावादी भावना को उत्पन्न करने मे सहायता दी और यथासमय योरुप महाद्वीप के जर्मनी, फ्रान्स, इगलैड एव रूस आदि मे इस प्रकार के साहित्य का सृजन हो उठा।

योरुप महाद्वीप मे प्रचलित स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रगति का विगत अध्याय मे सक्षिप्त विवरण दिया जा चुका है। इस युग की प्रवृत्तियो का विकास वस्तुत पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्तियो पर ही आधारशिला बना सका है। फलस्वरूप पूर्व-स्वच्छन्दतावादी युग भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

हमारे प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय हिन्दी की छायावादी काव्य की प्रवृत्ति से पूर्व पडता है। इस सक्रान्ति-युग मे ही वास्तव मे उन प्रवृत्तियो का सृजन हुआ, जिनसे छायावादी काव्य अस्तित्व प्राप्त कर सका। अंग्रेजी साहित्य मे पूर्व-स्वच्छन्दतावादी युग के काव्य और हमारे आलोच्य विषय के अनुसार हिन्दी के इस सक्रान्ति-युग के काव्य की प्रवृत्तियो मे काफी साम्य है। इससे अंग्रेजी साहित्य के पूर्व-स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्तियो से परिचय प्राप्त करने के लिए टॉमसन, कॉलिन्स, ग्रे, काउपर, गोल्डस्मिथ, बर्न्स एव ब्लेक के काव्यो का अध्ययन इस परिशिष्ट में सन्निविष्ट किया गया है।

पूर्व-स्वच्छन्दतावादी युग के कुछ कवि

अ—जेम्स टॉमसन (१७००—१७४८)

टॉमसन का काव्य अंग्रेजी काव्य मे अपना विशेष महत्व रखता है। वह वस्तुत पोप का समकालीन था। पोप की रीतिबद्ध शैली मे रचित काव्य जब ड्रायडन के सिद्धान्तो का पूर्ण सम्पोषण करते हुए अंग्रेजी काव्य-भडार को भर रहे थे उस समय टॉमसन के काव्य ने प्रकृति को अपने काव्य का साधन बनाकर तत्कालीन साहित्यिको को आश्चर्यचकित कर दिया। उसके काव्य ने ऑगस्टन-युग के काव्य को, जो नगर की सकुचित सीमा में निष्प्राण हो रहा था, गाँव के उन्मुक्त वातावरण मे प्रस्तुत कर उसे सप्राण कर

दिया। उसने विषयो के साथ-साथ छन्दो मे भी परिवर्तन प्रस्तुत किए। Heroic Couplet के स्थान पर उसने Spenserian Stanza और मुक्त छन्द (Blank Verse) को अपना लिया। उसने दुरूह शैली के स्थान पर प्रासादिक शैली को अपनाया और अभिव्यंजना शैली से कृत्रिमता को यथासाध्य दूर रखा। प्रकृति के प्रति उसके मानस मे अगाध ममत्व था। यह अवश्य सत्य है कि वह ग्रे के समान प्रकृति के अन्तरतम मे प्रवेश न कर सका और न वर्ड्सवर्थ के समान प्रकृति मे मानवीय और ईश्वरीय भावनाओ को चित्रित कर सका, फिर भी प्रकृति का उन्मुक्त रूप उसने काव्य मे अवश्य प्रस्तुत किया, जिसके लिये वह स्तुत्य है।

Be gracious, Heaven for how laborious man
Has done his part Ye fostering breezes, blow
Ye softening dews, ye tender showers, descend
And temper all, thou world reviving sun,
Into the perfect year [1]

(हे देवलोक! परिश्रमी मनुष्य ने किसी प्रकार अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर लिया है, इससे आप उसके प्रति दयालु हो जावें। अभिवृद्धि प्रदान करने वाले मृदुल पवन, आप प्रवाहित हो। कोमल ओस कण तथा बौछारें, आप आएं। हे संसार को जीवन-दान देने वाले सूर्य, आप सभी को आनन्दित कर पूर्ण व्यवस्थित वर्ष बनायें।)

इस प्रकार कवि ने मानव को प्रकृति का एक अभिन्न अंग बना दिया है।

प्रकृति को अपने जीवन की आधारशिला बनाकर कवि भाग्य के प्रति उपहास करता है। इस सम्बन्ध मे वह बड़ा ही साहसिक हो उठा है। इस प्रकार की स्वच्छन्द भावना के लिये 'The Castle of Indolence' उसकी महत्वपूर्ण रचना है।

I care not, Fortune what you me deny :
You cannot rob me of free Nature's grace ,
You cannot shut the windows of the sky
Through which Aurora shows her brightening
Face,

---

1 Spring, Page 4 The Poetical Works of James Thomson, London Ward Lock and Co Warwick House.

You cannot bar my constant feet to trace
The Woods and Lawns, by living stream at Eve,
Let Health my Nerves and Finer fibers brace
And I their Toys to the great children leave
Of Fancy, Reason, Virtue nought can me bereave [1]

(भाग्य तुम मेरी उपेक्षा करते हो, किन्तु मुझे तुम्हारी चिन्ता नही, तुम मेरे प्रति मुक्त प्रकृति की सहृदयता रोक नही सकते। तुम आकाश के झरोखे जिनके द्वारा उषा अपने आभा-पूर्ण मुख को दिखलाती है, बन्द नही कर सकते। तुम सायकाल मे वन हरित मैदान एव सजीव सरिता का आनन्द लेते हुये निरन्तर गतिशील मेरे पगो के लिए व्यवधान प्रस्तुत नही कर सकते। स्वास्थ्य का मेरी शिराओ एव वस्त्रों के लिये बन्धन हो सकता है। मैं विद्वानो के लिये कल्पना, तर्क एव सदाचार के खिलोने छोडता हूँ, इनमे से किसी के लिये मैं शोकाकुल नही हो सकता।)

कवि उपर्युक्त भावनाओ मे जो मस्ती छिपाये है, वह अप्रतिम है। उसे अपने भाग्यहीन होने की चिन्ता नही। क्योकि प्रकृति का विशुद्ध वातावरण उस दिशा मे भी उसे सरक्षण प्रदान कर सकता है। उसे विश्वास है कि प्रकृति अपनी उदारता से उसे निश्चिन्त रखेगी। इस प्रकार टॉमसन के काव्य मे भावना-प्रधान वैयक्तिकता एव प्रकृति-उपासना आकर्षण के विषय है।

आ—विलियम कॉलिन्स (William Collins) (१७२१–१७५९)

अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी रचनाओ के विभिन्न विषयो मे दुःखवाद को भी प्रमुख स्थान दिया गया है। पूर्व-स्वच्छन्दतावादी युग मे कॉलिन्स एव ग्रे ही इस भावना को प्रधानता देकर चल सके हैं।

कॉलिन्स अपने जीवन मे थोडी-ही रचनाये कर सका है, किन्तु उसकी वे रचनायें ही बडी महत्वपूर्ण हैं। वह सबोध (Odes) का वास्तव मे सफल रचयिता था। उसने सबोध (Odes) को सफल प्रवाह ही नही दिया, किन्तु अपनी उदात्त भावनाओ का उनमे मधुर सगुम्फन कर दिया है।

---

1 The Castle of Indolence II-3 Page 366 The Poetical Works of James Thomson, London Ward Lock & Co. Warwick House

× × × be mine the hut,
That from the mountain's side,
Views wilds, and swelling floods,
And hamlets brown, and dim discover'd spires,
And hears their simple bell, and marks o'er all
Thy dewy fingers draw
The gradual dusky veil

(Ode to Evening)

(पर्वतीय किनारे पर मेरी झोपडी हो, जहाँ से जगलो, बाढो, भूरे-भूरे ग्रामो एव अस्पष्ट मीनारो के दृश्य प्रस्तुत हो और उनकी सरल घण्टी की ध्वनि श्रुतिगोचर हो और विशेषरूपेण तेरी ओस की अगुलियो द्वारा क्रमश अन्धकार के आवरण को लाने का प्रयास दृष्टिगोचर हो ।)

अपनी भावनाओ को पल्लवित करने के लिये कवि प्रकृति का एकान्त चाहता है । कवि यथार्थ जीवन के थपेडो से मर्माहत हो प्रकृति के अक मे शाति का अभिलाषी है । इस प्रकार दु खवाद की भावना व्यक्त हो जाती है । काव्य की पृष्ठभूमि मे ग्राम्य प्रदेश का चित्रण तो है ही, साथ मे मधुर सगीत का पुट भी है । 'How sleeps the Brave' का निम्न अश भी विचारणीय है—

By Fairy hands their knell is rung,
By forms unseen their dirge is sung ,
Their honour comes, a pilgrim grey,
To bless, the Turf that wraps their clay,
And Freedom shall a while repair,
To dwell a weeping Hermit there

(अप्सराओ के हाथो से उन वीरो की अर्थियो की घटी बजाई जाती है। अदृश्य स्वरूपो से उनके यशोगान गाये जाते हैं। उनके सम्मानस्वरूप एक वृद्ध तीर्थ-यात्री उस हरी घास को जिसमे उनके मृत शरीर आवृत हैं, आशीर्वाद देने के लिये आता है और थोडी ही देर मे एक करुणार्द्र सन्यासी के वहाँ निवास करने मे स्वतंत्रता का नवीन स्वरूप प्रस्तुत होता है ।)

पक्तियो मे प्रासादिकता के साथ-साथ स्वाभाविक प्रवाह है । जहाँ तक

काव्यगत अभिव्यंजना शैली का प्रश्न है उसके काव्य में भी टामसन के काव्य के समान ही कृत्रिमता है, किन्तु स्वतंत्र व्यंजनाओं की तुलना में वह टॉमसन से कहीं अधिक सफल है।

टॉमस ग्रे (Thomas Gray) (१७३६–१७७२)

कवि-सुलभ प्रतिभा तथा अन्य ऐसी कितनी ही बातें कालिन्स के समान ग्रे में भी थी, किन्तु जहाँ पर काव्य क्षेत्र में मौलिकता का प्रश्न है वह कालिन्स से बहुत पीछे है। फिर भी वह भाग्य का धनी था। तत्कालीन किसी भी कवि से समाज के मध्य में उसे अधिक सम्मान प्राप्त था। उनकी कविता की अपेक्षा उसकी कविता विशेष लोकप्रिय थी। इस प्रकार के सम्मान का कारण उसकी काव्यगत विशेषतायें है। सगीतात्मक छन्द, प्रामादिक शैली, उदात्त भावना एव दार्शनिक दु खवाद आदि-आदि का उसकी काव्यकला में सुन्दर सगुम्फन हुआ है।

मैथ्यू आरनाल्ड का उसकी काव्य-कला के सम्बन्ध में निम्न कथन है—

"कवि के रूप में ग्रे का स्थान बहुत ही उच्च है। केवल इसलिये नहीं कि उसकी कविताओं में सौंदर्य का आलोक है और न इसलिये कि शिथिल और कृत्रिम शैली के युग में उसने विशुद्ध शैली का उपयोग किया। इन सभी के ऊपर उसमें प्रतिभा एव कला-चातुरी थी, जिनसे उसने अपनी कविताओं का सृजन किया। काव्य-साफल्य के दृष्टिकोण से वह कॉलिन्स से कहीं उच्च है। यद्यपि 'Ode to Evening' में कॉलिन्स ग्रे की अपेक्षा कहीं अधिक विशुद्ध है तथापि यह Ode उस सरिता के समान है, जिसका अस्तित्व बालू में ही समाप्त हो जाता है। जब कि ग्रे की कवितायें निश्चित और सतोषजनक निर्माण करती हैं।"[1]

---

1 Gray holds his high rank as a poet not merely by the beauty and grace of passages in his poems, not merely by a diction generally pure in an age of impure diction, he holds it, above all, by the power and skill with which the evolution of his poems is conducted Here is his grand superiority to Collins, whose diction in his best poem—'The Ode to Evening' is purer than Gray's, but then the 'Ode to Evening' is like a river which loses itself in the sand, whereas Gray's best poems have the evolution sure and satisfactory

Emerson Macmillan Magazine—1884

ग्रे मे मौलिकता की कमी होते हुए भी एक जिज्ञासु की भावना भी थी। वह नेत्र खोलकर साहित्य-क्षेत्र मे प्रविष्ट हुआ था। इससे उसने ड्रायडन और मिल्टन के काव्यो से बहुत कुछ सीखा था। ड्रायडन के सम्बन्ध मे ग्रे का निज का कथन है—

"यदि उसके (ड्रायडन के) काव्य मे किसी प्रकार की श्रेष्ठता थी तो उसने उस महाकवि से सीख ली थी।"[१]

'Elegy written in a country church yard' उसकी अमर रचना करुण भावनाओ से ओत-प्रोत है। आदि से लेकर अन्त तक यह रचना गम्भीर वातावरण से ओत-प्रोत होने के कारण मर्मस्पर्शी है। प्रारम्भिक पक्तियों के हृदयस्पर्शी दृश्य विचारणीय है—

The curfew tolls the knell of parting day,
The lowing herd wind slowly o'er the lea,
The ploughman homeward plods his weary way,
And leaves the world to darkness and to me.
Now fades the glimmering landscape on the sight
And all the air a solemn stillness holds,
Save where the beetle wheels his droning flight
And drowsy tinklings bell the distant folds

(सान्ध्य वेला की साकेतिक घण्टी दिवस की विदाई की घण्टी है। विनीत पशु-समूह-रूपी पवन चरागाह से धीरे-धीरे निकलता है। हलवाहा दैनिक कार्य से थककर घर की ओर आता है और वातावरण विश्व एव मेरे लिये अन्धकार प्रस्तुत कर देता है।

अब दृष्टिगोचर होने वाला चमकता हुआ प्रदेश अदृश्य होता है और केवल

---

1 'If there was any excellence in his own numbers he had learned it Wholly from the great poet '—Gray
—The Poetical works of Thomson Gray—Bradshaw London, George Bell & Co, Page LXIII

उन स्थानो के अतिरिक्त जहाँ गुबरैला भनभनाहट की ध्वनि में चक्कर काटता हुआ उडता है और निद्रालु पशुओं की घण्टियाँ दूर के पशु-वाटो के लिये लोरियाँ प्रस्तुत करती हैं—शेष वातावरण मे गम्भीर शान्ति छा जाती है ।)

कवि ने जिस सरलता के साथ नान्व्य वेला का चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, वह अकृत्रिम और न्यायोचित है ।

विश्व व्यथाओं का घर है । इसमे पग-पग पर शोकों तथा अन्य लौकिक व्यवधानो के ऐसे आघात लगते हैं कि मानव किंकर्तव्यविमूढ होकर रह जाता है ।

Let not Ambition mock their useful toil,
Their homely joys and destiny obscure
Nor Grandeur hear, with a disdainful smile,
The short and simple annals of the poor [1]

(परिश्रम, पारिवारिक आनन्द और अदृश्य भाग्य के ऊपर कामना मत उत्पन्न होने दो । बडे लोगो को निर्धनो की छोटी और सरल कहानियाँ, उपेक्षाभरी मुस्कान से मत सुनने दो ।)

सुख-दु ख का द्वन्द्व भी मानव को पगु बना देता है— यह भी द्रष्टव्य है—

Since sorrow never comes too late,
And happiness too swiftly flies
Thought would destroy their paradise [2]

(अवसाद शीघ्र ही आता है और आनन्द भी शीघ्रता से अदृश्य हो जाता है । केवल विचार ही उनके स्वर्ग को विनष्ट कर देता है ।)

ये पक्तियाँ कॉलिन्स के समान उनके दु खवाद को स्पष्ट प्रकट करती हैं ।

Where'er the Oak's thick branches stretch
A broader browner shade,
Where'er the rude and moss-grown beach
O'er Canopies the glade,
Beside some water's rushy brink
With me the Muse shall sit and think

---

1 Gray—'Elegy written in a country church yard' Lines 20-32

2 Gray—Prospect of Eton College, Last stanza

At ease reclined in rustic state
How vain the ardour of the crowd,
How low, how little are the proud,
How indignant the great [1]

(जहाँ कही शाहबलूत की मोटी शाखाये फैलकर दूर-दूर तक छाया करती हैं। जहाँ कही काई मे उगी हुई प्राकृतिक उपज समुद्र के किनारो को ढक लेती है और कही पास से ही पानी बहता हो—वही मेरे साथ मेरी कविता-देवी बैठेंगी और सोचेंगी। हम लोग स्वाभाविक रूप से विश्राम लेंगे। जनसमूह की साज-सज्जा कैसी व्यर्थ है। अहकारी लोग कितने पतित हैं और बड़े लोग कितने क्रोधी हैं।)

उपर्युक्त पक्तियो मे भी ग्रे का प्रकृति-चित्रण विषयक चातुर्य स्पष्ट परिलक्षित होता है। पक्तियो के शब्द-चयन मे यद्यपि कृत्रिमता और दुरूहता अवश्य समन्वित है तथापि प्रकृति का चित्रण मार्मिकता मे किया गया है। इस सम्बन्ध मे वह टॉमसन और कालिन्स से कही आगे है।

"ग्रे मिल्टन की विशिष्टता, पोप की विशुद्धता तथा सगीत की मधुरता अपने काव्य मे सन्निहित रखता है। यदि उसने अधिक रचनायें की होती तो अंग्रेजी भाषा मे उसे प्रथम पद पर अधिष्ठित करने मे कोई कठिनाई न होती।"[२]

निस्सदेह ग्रे एक महान कवि था। अपने काव्य द्वारा उसने स्वच्छन्दतावादी भावना को अधिक बल से सम्पोषित किया और अपनी प्रतिभा से उसे साहित्य मे व्यापक बनाया।

इ—ओलिवर गोल्डस्मिथ (Oliver Goldsmith) (१७२८-१७७४)

यह निस्सदेह सत्य है कि गोल्डस्मिथ मे कवि-सुलभ प्रतिभा, उदात्त भावनाये तथा मौलिक कल्पनायें नहीं थी तथापि अपने थोड़े-से साधनो मे ही वह अंग्रेजी काव्य के एक अछूते अंग की पूर्ति कर सका है। अभी तक ग्रामीण वातावरण को लेकर अंग्रेजी काव्य मे रचनायें न हो सकी थी। इस

1 Gray—Ode on the Spring
2. Admsmith 'Gray joins to the sublimity of Milton, the elegance and harmony of Pope, and nothing is wanting to render him perhaps the first poet in the English Language, but have written a little more'

दिशा में ही गोल्डस्मिथ ने अग्रसर होकर अंग्रेजी काव्य की स्वच्छन्दतावादी भावना को अधिक सबल बना दिया है।

The Traveller, The Deserted Village एवं The Hermit आदि उसकी प्रमुख रचनायें हैं। निस्सन्देह वह जानसन के शास्त्रीय प्रभाव से पूर्ण प्रभावित था और परम्परागत विषयों के साथ उसने पूर्व प्रचलित Heroic Couplet छन्द को अपनाया, किन्तु वह अपने हृदय और व्यवहार से पूर्ण स्वच्छन्दतावादी था।

Sweet Auburn loveliest village of the plain
Where health and plenty cheered the labouring swain,
Where smiling spring its earliest visit paid,
And parting summer's lingering blooms delayed.

(मधुर ग्रावर्न, देश का सुन्दर ग्राम था। स्वास्थ्य और सम्पन्नता जहाँ के परिश्रमी निवासियों को सदैव प्रसन्न रखा करती थी। जहाँ प्रफुल्लित वसन्त अपने सर्वश्रेष्ठ स्वरूप से अवतरित हुआ करता था और उसकी समाप्ति पर भी पुष्प बहुत काल तक खिले रहते थे।)

जो ग्राम इस प्रकार के सरस आनन्द से भरा था, जहाँ क्रीडायें थी, सुन्दर-सुन्दर दृश्य थे और ग्रामीणों के मुखों पर मन्द मुस्कान थी, वह सभी स्वप्न हो गया। परिवर्तन के कठोर थपेडों ने उस सम्पन्न गाँव की निम्न कारुणिक दशा कर दी—

But times are altered, trades unfeeling train
Usurp the land and dispossess the swain,

× × ×

Those gentle hours that plenty bade to bloom,
Those calm desires that asked but little room,
Those healthful sports that graced the peaceful scene,
Lived in each look, and brightened all the green,

Those far departing, seek a kinder store
And rural mirth and manners are no more,

(किन्तु समय बदल गया है। धन की लालसा ने लोगो को इस भूमि और यहाँ के निवासियो को त्याग देने के लिये बाध्य कर दिया है। वे सुन्दर क्षण जो हमारे जीवन को सुखी बना दिया करते थे, वे सतोष की कामनायें जो हमे थोडे ही मे तृप्त कर दिया करती थी, वे स्वास्थ्यप्रद क्रीडायें जो शान्तिप्रद दृश्य प्रस्तुत करती थी—उपर्युक्त सभी ही प्रत्येक व्यक्ति के नेत्रो से झलका करते थे। फलस्वरूप प्रकृति भी उनके कारण चमक उठती थी। जब मे धन की कामना हमारे देशवासियो मे आ गई है ग्रामीण प्रसन्नताओ और व्यवहारो का अस्तित्व ही नही रह गया है।)

इन पक्तियो मे मानव-जीवन के उत्थान-पतन के मर्मस्पर्शी चित्रण हैं। कवि की वाणी मे भी अवसाद का अश भरा है। कॉलिन्स और ग्रे का दु खवाद उसके काव्य मे भी सुरक्षित है। The Deserted Village मे अध्यापक और पुरोहित का चित्रण बडा सजीव बन पडा है। इसी प्रकार The Vicar of Wakefield मे डा० प्रिमोर्स (Dr Primorse) का चित्रण भी बडा ही सुन्दर है। इन विभूतियो की मानव-जगत् के साथ सहानुभूति थी। उनके सुख-दु ख मे वे समान रूप से सम्मिलित थे। इनके द्वारा स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा की बन्धुत्व-भावना की रक्षा होती है।

The Hermit काव्य का विषय ही रोमाण्टिक है। यह एक प्रेम-गाथा है। प्रेमी और प्रेमिका मे परिस्थिति-वश वियोग उपस्थित हो गया था। प्रेमिका अपने प्रेमी को ढूँढती है। अन्त मे वह वही जा पहुँचती है जहाँ उसका प्रेमी उसके प्रेम ने आकुल हो सन्यासी जीवन व्यतीत करता है। अन्त मे सन्यासी भी अपने प्रेमी हृदय को खोल देता है और दोनो आजीवन के लिये प्रेम-सूत्र मे आबद्ध हो जाते हैं।

Turn Angelina, ever dear
My charmer, turn to see
Thy own thy long lost Edwin here,
Restored to love and thee
Thus let me hold thee to my heart
And every care resign,

And shall be never, never part
My life—my all that's mine ?

(मुझको मुग्ध करने वाली प्रियतमा अजलैना घूमो और युगो मे बिछुड़े हुये अपने एडविन को देखो। प्रेम सफल है जो मैं तुमको मिला।

इस प्रकार मुझे अपने को गले लगा लेने दो और तुम इस क्षण मे निश्चित हो जाओ। मेरी सर्वस्व ! मेरी जीवन ! अब हम कभी भी एक दूसरे से अलग न होगे।)

उपर्युक्त पक्तियो से सजीव प्रेम छलका पड़ता है। शैली पूर्णरूपेण मधुर और प्रासादिक है।

'The Traveller' कवि की राष्ट्रीय रचना है। अनेको राष्ट्रो का चित्रण करता हुआ कवि प्रत्येक राष्ट्र और उसकी राजकीय सत्ता को दोषपूर्ण सिद्ध करता है। कवि मानवीय शान्ति और आत्मिक सुख को व्यक्ति के हृदय के आन्तर मे ही अनुभूति की भावना प्रदान करता है।

गोल्डस्मिथ प्रेम और ग्रामीण जीवन के सफल चित्रण प्रस्तुत करने मे सफल हुआ है, यह सत्य है। उसकी रचनाओ से स्वच्छन्दवादिता की भावना की प्राण-प्रतिष्ठा हुई है। इसी से गोल्डस्मिथ को स्वच्छदतावादी काव्य के सम्पोषको मे एक सम्मानपूर्ण स्थान दिया जाता है।

उ—विलियम काउपर (William Cowper) (१७३१–१८००)

काउपर पूर्व-स्वच्छन्दतावादी युग के मध्यकाल का एक प्रमुख कवि है। वह एक धार्मिक कवि था। १८वी शताब्दी के अन्तिम काल मे जब इगलैण्ड मे धार्मिक सुधार की भावना (Evangelicism) प्रबल थी, काउपर को भी उससे प्रेरणा मिली। इन भावनाओ के लिये उसका एक ओर यदि वेस्ली और ह्वाइटफील्ड से सम्बन्ध था तो दूसरी ओर था बिलवर फोर्स और क्लार्कसन से। कवि के रूप मे भी दृष्टिकोणो मे विभिन्नता होते हुए भी गोल्डस्मिथ का क्रेन एव बर्न्स आदि कवियो से प्रगाढ सम्बन्ध था।

उसमे प्राचीन और नवीन का सुन्दर समन्वय है। Heroic Couplet के साथ-साथ उसने मुक्त छन्द (Blank Verse) को भी अपने काव्य का साधन बनाया। निस्सदेह वह पूर्ण शास्त्रीय और परम्परावादी था, किन्तु अपनी उदात्त भावनाओ और प्रकृति तथा ग्रामीण क्षेत्र के चित्रणो के कारण स्वच्छन्दतावादी न होते हुए भी उसमे स्वच्छन्दवादिता के अधिक लक्षण

विद्यमान थे। विपयो के अनुकूल ही सरल और बोधगम्य अभिव्यजना शैली को अपना कर काउपर विशेष लोकप्रिय हुआ।

Ah for a closer walk with God
A calm and heavenly frame
A light to shine upon the road
That leads me to the lamb
—Olney Hymns

(भगवान के सानिध्य के लिये हममे शान्ति और स्वर्गीय गुण हो और हममें ऐसा प्रकाश हो जो उस मार्ग को चमका सके जो मेमना तक जाता है।)

उपर्युक्त पक्तियों मे आस्तिक भावना है जो किसी भी धार्मिक व्यक्ति के समान उसे भी आश्वस्त किये है। उसका हृदय बडा ही कारुणिक और सहृदय था। अपनी माँ के चित्र को प्राप्त कर उसकी यह मार्मिक पक्तियाँ प्रस्फुटित हो उठी थीं—

Oh that those lips had language! life has pass'd
With me but roughly since I heard thee last
Those lips are thine—thy own sweet smiles I see,
The same that oft in childhood solaced me,
Voice only fails, else how distinct they say,
Grieve not, my child, chase all thy fears away?[1]

[(मा का चित्र देखकर) यदि ये होंठ वाणीयुक्त होते। काफी समय बीत चुका है जब मैंने तुम्हारी अन्तिम वाणी सुनी थी। ये तुम्हारे वही होंठ है—मैं इनमे वही मन्द मुस्कान पाता हूँ जो बचपन मे मुझे सुखी किया करती थी। होठ यद्यपि निर्जीव हैं तथापि वे अपनी भावनाओ को व्यक्त करते हैं और कहते

---

1 Cowper—On the Receipt of my Mother's Picture out of Norfolk The Oxford Book of Eighteenth Century Verse—chosen by 'David Nichol Smith.

है—'ऐ मेरे बच्चे दुःखी मत हो और भय को भगा दो।]

पंक्तियो मे वात्सल्य का सागर उमडा पडता है। जननी का आश्वासन जीवन का अमर वरदान अपने मे निहित किये है, जिसमे मनुष्य सुख की श्वास ले सकता है।

प्रकृति के चित्रण मे उसे टामसन की कोटि मे रखा जा सकता है। टॉमसन प्रकृति का सभी परिस्थितियो मे चित्रण करता है। जब कि काउपर उसकी कुछ ही स्थितियो का चित्रण करता है। इन स्थितियो के चित्रण मे काउपर विशेष सफल है।

Come, Ev'ning, once again, season of peace,
Return, sweet Ev'ning, and continue long,
Methinks I see thee in the streaky west,
With matron—step slow—moving, while the night
Treads on thy sweeping train, one hand employ'd
In letting fall the curtain of repose
On bird and beast, the other chang'd for man
With sweet oblivion of the cares of day.

The task Evening

(हे शान्ति देने वाली सन्ध्या, तुम मेरे पास आओ। हे मधुर सन्ध्या, तुम आओ और दीर्घकाल तक ठहरो। धारी वाले पश्चिम के बादलो को देखकर मैं अनुभव करता हूँ कि तुम स्नेह भरे पगो से मन्दगामिनी गति से चली आ रही हो जब कि तुम्हारी पीठ पर रात्रि अपना प्रभाव डाल रही है। रात्रि अपने एक कर द्वारा शान्ति का आवरण पक्षियो और हिंसक पशुओ और द्वितीय कर द्वारा मधुर सुख का आवरण उन मानवों पर, जो दिन भर की चिन्ताओ से व्यथित हैं, डाल रही है।)

सरलतम शैली मे ही कवि ने यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर दिया है।

'John Gilpin' की परिहासमूलक रचना अंग्रेजी काव्य मे अद्वितीय है। इसमे हास का पूर्ण परिपाक बन पडा है।

उसकी काव्य-कला की यह विशेषता थी कि वह बडी सुन्दर और सरल शैली मे गाँव और उसकी घटनाओ का चित्रण कर सका है। इसके अतिरिक्त

उसने उन्ही भावनाग्रो को अपने काव्य मे स्थान दिया, जिनकी अनुभूति उसे अपने जीवन मे हुई।

ऊ—रॉवर्ट वर्न्स (Robert Burns) (१७५६-१७६६)

वर्न्स कवि के रूप मे अद्वितीय है। उसके काव्य ने इगलैंड के किसी भी कवि से मानव और मानवता के क्षेत्र को अधिकाधिक अपनाया है। जनता के हृदय पर उसका अमिट प्रभाव है। वर्न्स के गीत सरलतम भाषा मे सर्व-साधारण की भावनाओ को व्यक्त करते हैं। इस स्वरूप मे शेक्सपियर का नाम भी प्रस्तुत किया जा सकता है, किन्तु उसका क्षेत्र सार्वजनिक न होकर विश्व का मानव है और अपनी भावनाओ को व्यक्त करने मे वह सदैव सरल रहा भी नही है। इस प्रकार अपने क्षेत्र का वह अप्रतिम कवि कहा जा सकता है।

वर्न्स ने स्कॉटलैंड मे कृषक के घर मे जन्म लिया था और कृषि-कर्म की ही उसे शिक्षा भी दी गई थी। अपने इस पैतृक व्यवसाय मे वह दत्त-चित्त रहा, किन्तु निर्वाह न हो सकने के कारण स्कॉटलैण्ड को छोडकर वह जमायका जा पहुँचा। १७८६ ई० मे उसने अपनी कविताओ का प्रथम सग्रह, जिसमें The Cottor's Saturday Night और To a Mouse नाम की प्रसिद्ध रचनायें थी, प्रकाशित कराया। इस सग्रह का वडा ही स्वागत हुआ। तदनतर वह अपने देश को लौट आया और जनता का अपने प्रति आकर्षण अनुभव कर उसने द्वितीय सग्रह भी प्रकाशित कराने का विचार किया।

फ्रान्स की क्रान्ति और रूसो के विचारो ने प्रत्येक रोमाटिक कवि को प्रेरणा दी, किन्तु वर्न्स के काव्य की प्रगति किसी भी प्रकार की प्रेरणा से प्रभावित न हुई। उसमे कवि-सुलभ प्रतिभा एव स्वच्छन्दतावादी भावनायें स्वाभाविक थी, जिससे उसके काव्य का स्वाभाविक सृजन सम्भव हो सका।

उसके काव्य के साधन प्रेम, प्रकृति, जनता की भाषा तथा मूर्त चित्रण थे। काव्य के विषय भी उसने जनता के मध्य मे ही चुने। इस प्रकार काव्य के प्रत्येक दृष्टिकोण से वह स्वाभाविक स्वच्छन्दतावादी कवि था। अपनी काव्य-रचना के सम्बन्ध मे उसका निम्न कथन है :—

Some rhyme a neebor's name to lash,
Some rhyme (vain thought) for needfu' cash,
Some rhyme to court the countra clash,
An raise adin,

For me, an aim I never fash,
I rhyme for fun.
—Epistle to Jame Smith.

(कोई कविता पड़ोसी के नाम को व्यापक बनाने, कोई कविता (व्यर्थ का विचार) आवश्यक धन, कोई कविता ग्रामीण संघर्ष और कोलाहल के लिए लिखा करते हैं। मैं कभी उद्देश्य के पीछे नही भटकता हूँ। मैं सदैव केवल अपने आनन्द के लिये रचना करता हूँ।)

यह Fun उसकी स्वाभाविक प्रेरणा और प्रवृत्ति थी, जिससे वह काव्य-क्षेत्र को अपना सका। उसका काव्य-धर्म भी सरल और प्रकृति का नसर्गी था।

Give me ae spark O' Nature's fire,
That's a' the learning I desire
Then tho' I drudge thro dub an' mire
At plaugh or cart,
My Muse though hamely in attire,
May touch the heart.
—Epistle to John Lapraik.

(प्रकृति की अग्नि की मुझे एक चिनगारी दो। इस ज्ञान के लिये ही मेरी केवल आकांक्षा है। यद्यपि मैं हल और गाडी पर कठोर परिश्रम करता हूँ तथापि दैवीस्वरूपा मेरी कविता हृदय स्पर्श कर सके।)

अपनी कविता के लिये वह प्रकृति से प्रेरणा चाहता है। इसी से वह मानव-जगत और उनके सुख-दुख के अधिक समीप है। इसी से अपने काव्य द्वारा वह किसी भी भावुक हृदय को स्पर्श करने मे समर्थ हो सका है।

उसका प्रेमगीत 'A Red Red Rose' के समान ही मधुर और प्रिय है :—

My love is like a red red rose
That's newly sprung in June,
My love is like the melodie
That's sweetly play'd in tune
Urbani—Selection of Scots Songs

(मेरा प्रेम जून के नूतन खिले हुए गुलाब के पुष्प के समान है। मेरा प्रेम मधुर ध्वनि से गाए हुए संगीत के समान है।)

जीवन मे सम्पदा और पद ही सभी कुछ नही हैं। यदि ये सभी कुछ होवें भी तो भी इनसे मानसिक सन्तोष आकाश-कुसुम है।

It's no in titles nor in rank,
It's no in wealth like Lon'on Bank,
To purchase peace and rest,
It's no in makin muckle mair
It's no in books, it's no in lear,
To make us truly blest
If happiness hae not her seat
And centre in the breast
We may be wise or rich or great
But never can be blest

—Epistle to Davie, A Brother Poet.

(शांति और विश्राम न उपाधियो मे हैं और न पद मे हैं, न लन्दन बैंक के समतुल्य सम्पदा से ही उन्हें क्रय किया जा सकता है, वास्तविक आनद के लिये नगर-पिता का पद व्यर्थ है, न यह पुस्तको मे है और न राजकीय वैभव मे है। यदि सुख स्थिर स्वरूप मे हमारे हृदयो मे केन्द्रित नही है तो हम भले ही बुद्धिमान हो, धनी हो और महान भी हो, हम कभी सुखी नही हो सकते।)

लौकिक प्राणी अपने जीवन के सुख और शान्ति को विश्व के वैभव एवं सम्मान मे ढूढता है। फलत जीवन मे वास्तविक सुख से वह वंचित रह जाता है। उसे सुख-शान्ति के तत्वो को अपने मे ही टटोलना चाहिये तभी उसकी आकाक्षाओ की तृप्ति हो सकती है।

गोधन गजधन वाजिधन और रतन धन खान।
जब आवै सन्तोष धन सब धन धूरि समान॥

चूहा के प्रति भी उसके हृदय मे ममत्व और शीलता है—

I'm truly sorry Man's dominion
Has broken Nature's social union,
An' justifies that ill opinion
Which makes thee startle

At me, thy poor, earth-born companion,
An' fellow-mortal

—To a Mouse

(वास्तव मे मुझे दु ख है कि मानवीय वैभव ने प्रकृति के सामाजिक सम्बन्ध को तोड दिया है और इस दुर्भावना ने ही तुम मुझ जैसे निर्धन, पृथ्वी पर उत्पन्न और मरणशीलजीव पर चौक पडते हो—उपर्युक्त सभी न्यायोचित है ।)

बर्न्स के हल से चूहे के निधन के कारण उसके हृदय मे करुणा का उद्रेक हो उठा । चूहा भले ही छोटा और नगण्य जीव हो, किन्तु सहृदय और सप्राण होने के कारण वह भी मानवीय स्नेह और दया का अधिकारी है ।

सप्राण जीव के समान प्रकृति भी उसके लिये सजीव है । Daisy के लिये लिखी हुई कवि की निम्न पक्तियां भी विचारणीय हैं—

We, modest, crimson-tipped flow'r,
Thou's met me in an evil hour,
For I mann crush among the stoure
Thy slender stem.
To spare thee now is past my pow'r
Thou bonnie gem.

—To a Daisy

(विनम्र, लाल, नुकीले पुष्प—एक बुरे समय मे तुम्हारी मुझसे भेंट हुई है । क्योकि मैं समूह मे तुम्हारी कोमल डण्ठलो को कुचलता हूं । हे मासल रत्न, तुमको बचा सकना अब मेरी शक्ति के परे है ।)

वड्र्सवर्थ का कथन है—'कविता हृदय से निसृत होती है और हृदय की ओर ही जाती है'—इस कसौटी पर कसने से बर्न्स का काव्य पूर्ण सफल है । उसके काव्य मे मानव और मानवता का चित्रण, चराचर के प्रति ममत्व और व्यथा तथा विश्व के सुख-दु.ख के साथ सवेदना और सहानुभूति है । उसके ये ऐसे सिद्धान्त हैं, जिन्होने स्वच्छन्दतावादी कवियो मे उसे बहुत उच्च उठा दिया है । जनता का कवि होकर जनता की वाणी मे ही जनता के विषयो को अपनाकर उनका वर्णन करना बडी बात है । अपने इन गुणो से वह अंग्रेजी का ही नही विश्व का एक महान कवि है, यह पूर्ण सत्य है ।

ए—विलियम ब्लेक (William Blake) (१७५७-१८२७)

पूर्व-स्वच्छंदतावादी युग मे कवि की दृष्टि बाह्य जगत की ओर ही रही थी। वह केवल विश्व, मानव, प्रकृति तथा उनकी प्रगतियो मे ही उलझा रहा। इससे आगे सोचने और जाने का उसे सौभाग्य ही नही मिला, किन्तु उसकी यह स्थिति अधिक काल तक स्थायी नही रही। वह बाह्य के समान क्रमश अन्तर का वर्णन करने के लिये भी आकुल हो उठा। वस्तुत काव्यान्तर्गत यह अग अभी तक अछूता था। इस अग की पूर्ति का प्रयास ही ब्लेक द्वारा किया गया। काव्य मे रहस्यात्मक भावना का मिश्रण ही ब्लेक की देन थी। फलस्वरूप उसका काव्य वर्ड्सवर्थ के आस्तिक काव्य के लिये सफल आदर्श प्रस्तुत करने मे, समर्थ हुआ।

'Poetical Sketches' और 'Songs of Innocence' कवि के प्रारम्भिक सग्रह है। उनमे, यह अवश्य सत्य है, सफल काव्य नही है, किन्तु फिर भी उनमे भावी कवि के लक्षण विद्यमान थे। छन्द को अलकृत करने की उसकी प्रवृत्ति ज्ञात होने लगती है। अनन्तर, 'The book of thel,' 'The Marriage of Heaven and Hell,' 'The Gates of Paradise,' 'The Vision of the Daughters of Albion' मे उसकी रहस्य भावनायें व्यक्त होने लगी थीं।

O thou with dewy locks, who lookest down
Through the clear windows of the morning turn—
Thine angel eyes upon our western isle,
Which in full choir hails thy approach, O Spring

—Poetical Sketches—To Spring

(अरे वसन्त, तुम अपनी ओसवाली लटो के साथ प्रात कालीन झरोखो के द्वारा झांका करते हो। तुम्हारे अप्सरा जैसे नेत्र हमारे पश्चिमी द्वीप पर पडते हैं, जहाँ के निवासी पूर्ण आनन्द के साथ तुम्हारा स्वागत करते हैं।)

इन पक्तियो मे कवि स्वाभाविक रूप से 'वसन्त' का स्वागत-गान गाता है। वसन्त की साज-सज्जा के वर्णन मे ही वह प्रवृत्त है। कवि इस समय विश्व के चौराहे पर खडा होकर इधर-उधर देखता है। उसके हृदय मे ईश्वर की असीम सत्ता के प्रति जिज्ञासा उठती है—

Little lamb, who made thee?
Dost thou know who made thee?
Gave thee life and bid thee feed,
By the stream and o'er the meed

—Songs of Innocence—The Lamb.

(छोटे मेमने, तुझे किसने बनाया है ? क्या तू जानता है कि तुझे किसने बनाया है ? सरिता के किनारे और चरागाह मे तुझे किसने जीवन दिया है और चुगना सिखाया है ?)

एलिजाबेथ-युग के कवियो, प्रकृति तथा गेय काव्य मे ब्लेक का अपार अनुराग था; किन्तु उसने उनकी अनुकृति न की। वह स्वय कवि-सुलभ प्रतिभा से सपन्न था—इससे काव्य-क्षेत्र मे उसने अपने मौलिक पथ का निर्माण किया।

प्रकृति के प्रति ममत्व और रहस्यात्मक भावनायें, जो स्वच्छन्दतावादी युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ थीं, ब्लेक में पूर्ण रूप से विद्यमान थी। प्रकृति का चित्रण उसने सरलतम शैली मे ही प्रस्तुत किया है—

The sun descending in the west,
The evening star does shine,
The birds are silent in their nest
And I must seek for mine
The moon, like a flower
In heavens high, bower,
With silent delight,
Sits and smiles on the night.

—Songs of Innocence—Night.

(सूर्य पश्चिम की ओर ढल रहा है, सन्ध्याकालीन नक्षत्र भी तो चमकता है, पक्षी अपने घोसले मे शान्त हैं और मुझे स्वय अपने आश्रय को ढूंढना चाहिये। उच्च आकाश रूपी कुञ्ज मे पुष्प के समान चद्रमा शात आनद के साथ आसीन है और रात्रि पर मुस्कराता है।)

इन पक्तियों में प्रकृति का यथातथ्य चित्रण कवि सफलता से चित्रित कर सका है, जो सभी प्रकार मार्मिक है।

विश्व की रहस्यात्मक भावना मे बहुधा दु खवाद का भी मिश्रण रहता है। उसके काव्य मे भी यह प्रवृत्ति उपलब्ध होती है। जीवन के करुण पक्ष के साथ उसमे अन्य पक्ष भी देखने की क्षमता है—

Joy and woe are woven fine,
A clothing for the soul divine
Under every grief and pine
Runs a joy with silken twine
It is right it should be so
Man was made for joy and woe
And when this we rightly know
Safely through the world we go

(सुख-दु ख वडी सुन्दरता से बुने हुये दैवी आत्मा के लिये वस्त्र स्वरूप हैं। प्रत्येक शोक और व्यथा के अन्तर्गत रेशमी धागा पर आनन्द दौड लगाता है। यह ठीक है और ऐसा होना भी चाहिये। मानव वास्तव मे सुख और दु ख के लिये ही बनाया गया था और ठीक रूप मे यदि हमे यह अवगत हो जाता है तब विश्व मे हम कुशलता-पूर्वक प्रयाण करते हैं।)

जीवन के सुख-दु ख, हास-रुदन तथा प्यार-घृणा ऐसे द्वन्द्व हैं, जो निरन्तर रूप मे घटित होते रहते हैं। जब मानव का भाग्य उन्हे सहन करने के लिये ही है तब वह मानव के समान ही उन्हे क्यो न सहन करे ? इसी मे उसके व्यक्तित्व की सफलता है। ब्लेक ने इस प्रकार के शब्दो द्वारा मनुष्य को सबल बनाने का प्रयास किया है। उसकी वाणी मे विश्व-बन्धुत्व का भी विकास उपलब्ध होता है। यह भावना यही न समाप्त होकर ईश्वर के अस्तित्व को भी प्रमाणित करती है।

And all must love the human form,
In Heathen, Turk or Jew,
Where Mercy, Love and Pity Dwell,
There God is dwelling too

—Songs of Innocence—The Divine Image

(हिन्दुओ, मुसलमानो और यहूदियो मे हमें प्रत्येक मानव के साथ स्नेह करना चाहिये। जहाँ दया, स्नेह और करुणा का निवास है वहाँ भगवान भी निवास करते हैं।)

विश्व का मानव मात्र समान रूप से रक्त, मास और मज्जा से निर्मित है। फलत वैषम्य की भावना रखना निस्सन्देह लज्जास्पद है। सभी मे प्रेम और साहचर्य का पारस्परिक व्यवहार मानवता की रक्षा के लिये आवश्यक ही नही अनिवार्य है, किन्तु राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परम्परायें मानव को सत्पथ से भुलाये हैं। वह परस्पर मे घृणा करता है और लड पडता है। इस विकार के विरुद्ध सतोगुण मे जीवन का शुक्ल-पक्ष निहित है, जिसमे दया, स्नेह और करुणा का उद्रेक हो उठता है। इन्ही सद्गुणो मे उस जगन्नियन्ता का निवास है। मानव उसी के कारण परस्पर स्नेह करे—तब ही विश्व की कुशल है।

ब्लेक विश्व के शुक्ल-पक्ष का कवि है। ससार जिसे बुरा कहता है कवि उसमे भी भलेपन की भावना ग्रहण कर उसके सौन्दर्य को निखार देता है। ससार जहाँ रुदन करता है कवि वहाँ 'हास' की सामग्री प्रस्तुत कर देता है। इस प्रकार जनता का कवि, मानवता का कवि और प्रकृति का कवि ब्लेक अपने महत्तम व्यक्तित्व को लेकर अपने युग की काव्य-प्रगति को ही अभिसिंचित नही करता, किन्तु भावी काव्य-परम्परा के लिये अद्वितीय सारल्य के साथ आध्यात्मिक अनुभूति भी प्रदान करता है।

ब्लेक के द्वारा स्वच्छन्दतावादी भावना को प्रेरणायें ही नही मिली, किन्तु उसके व्यक्तित्व और काव्य के प्रभाव के कारण वर्ड्सवर्थ और कालरिज जो काव्य के क्षेत्र मे पूर्वजो की काव्य-सम्पदा को देखकर अपनी-अपनी प्रतिभा और शक्ति को आँक रहे थे—ब्लेक के अमर सदेश से—अपनी खुमारी को त्यागकर उठ खडे हुए और १७९८ ई० मे Lyrical Ballads परीक्षा के लिये विश्व के समक्ष प्रस्तुत करदी।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि स्वच्छन्दतावादी काव्य के लिये किस प्रकार पूर्व-स्वच्छन्दतावादी युग मे समुचित प्रवृत्तियो का उद्भव होता गया। टॉमसन मे जो स्वच्छन्दतावादी भावना व्यक्त हुई थी वह क्रमश विकास को प्राप्त करती गई। बर्न्स और ब्लेक तक स्वच्छन्दवादिता के पल्लवित होने के लिये एक राजमार्ग प्रशस्त हो उठा, जिस पर कालरिज, वर्ड्सवर्थ तथा अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियो को चलकर अपने काव्य द्वारा विश्व को आश्चर्यचकित कर देना था।

कवि, जो भावना-लोक का उपासक होता है, इतिहास की उपर्युक्त परिस्थितियो से अपने को कैसे मुक्त रख सकता था। उसने भी काव्य मे कृत्रिमता

के बन्धन को निर्मम होकर तोड दिया और उसे सरलता तथा स्वाभाविकता के चौराहे पर लाकर खडा कर दिया। उसकी वाणी के प्रश्रय के लिये प्रकृति, मानव सहानुभूति, ईश्वर और जीवन की सरलता प्रस्तुत थी ही, फिर वह निराश क्यो रहता ? इन्ही का अवलम्बन लेकर वह विश्वास के साथ चल पडा। विश्व के मनीषियो ने इस नवीन काव्य-प्रगति को रोमाटिक नवोन्मेष (Romantic Revival) अथवा रोमाटिक क्राति (Romantic Revolt) सज्ञा दी। जो भी हो, किन्तु यह अमर सत्य है कि इस नवीन काव्य-धारा से मानवता और सरलता की पूर्णरूप से रक्षा हुई। काव्य के इस स्वरूप मे स्वाभाविकता का अश होने के कारण काव्यानुरागियो ने उसका सभी प्रकार से स्वागत किया।

विश्व का मानव मात्र समान रूप मे रक्त, मास और मज्जा से निर्मित है। फलत वैषम्य की भावना रखना निस्सन्देह लज्जास्पद है। सभी मे प्रेम और साहचर्य का पारम्परिक व्यवहार मानवता की रक्षा के लिये आवश्यक ही नही अनिवार्य है, किन्तु राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परम्परायें मानव को सत्पथ से भुलाये है। वह परस्पर मे घृणा करता है और लड पडता है। इस विकार के विरुद्ध सतोगुण मे जीवन का शुक्ल-पक्ष निहित है, जिससे दया, स्नेह और करुणा का उद्रेक हो उठता है। इन्ही सद्गुणो मे उस जगन्नियन्ता का निवास है। मानव उसी के कारण परस्पर स्नेह करे—तब ही विश्व की कुशल है।

ब्लेक विश्व के शुक्ल-पक्ष का कवि है। ससार जिसे बुरा कहता है कवि उसमे भी भलेपन की भावना ग्रहण कर उसके सौन्दर्य को निखार देता है। ससार जहाँ रुदन करता है कवि वहाँ 'हास' की सामग्री प्रस्तुत कर देता है। इस प्रकार जनता का कवि, मानवता का कवि और प्रकृति का कवि ब्लेक अपने महत्तम व्यक्तित्व को लेकर अपने युग की काव्य-प्रगति को ही अभिसिंचित नही करता; किन्तु भावी काव्य-परम्परा के लिये अद्वितीय सारल्य के साथ आध्यात्मिक अनुभूति भी प्रदान करता है।

ब्लेक के द्वारा स्वच्छन्दतावादी भावना को प्रेरणायें ही नही मिली, किन्तु उसके व्यक्तित्व और काव्य के प्रभाव के कारण वर्ड्सवर्थ और कालरिज जो काव्य के क्षेत्र में पूर्वजो की काव्य-सम्पदा को देखकर अपनी-अपनी प्रतिभा और शक्ति को आँक रहे थे—ब्लेक के अमर सदेश से—अपनी खुमारी को त्यागकर उठ खडे हुए और १७६८ ई० में Lyrical Ballads परीक्षा के लिये विश्व के समक्ष प्रस्तुत करदी।

उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि स्वच्छन्दतावादी काव्य के लिये किस प्रकार पूर्व-स्वच्छन्दतावादी युग में समुचित प्रवृत्तियो का उद्भव होता गया। टॉमसन मे जो स्वच्छन्दतावादी भावना व्यक्त हुई थी वह क्रमश विकास को प्राप्त करती गई। बर्न्स और ब्लेक तक स्वच्छन्दवादिता के पल्लवित होने के लिये एक राजमार्ग प्रशस्त हो उठा, जिस पर कालरिज, वर्ड्सवर्थ तथा अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियो को चलकर अपने काव्य द्वारा विश्व को आश्चर्यचकित कर देना था।

कवि, जो भावना-लोक का उपासक होता है, इतिहास की उपर्युक्त परिस्थितियों से अपने को कैसे मुक्त रख सकता था। उसने भी काव्य में कृत्रिमता

सहायक पुस्तकें

क—हिन्दी

१—आर्त्त कृषक	श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'
२—आधुनिक साहित्य	श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
३—कविता कौमुदी भाग २	स० श्री रामनरेश त्रिपाठी
४—कांग्रेस का इतिहास	डा० श्री पट्टाभि सीतारमय्या
५—काव्योपवन	श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
६—किसान	श्री मैथिलीशरण गुप्त
७—कविता कुसुम माला	स० श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय
८—करुणालय	श्री जयशंकर प्रसाद
९—चन्द्रावली नाटिका	श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
१०—चारु चरितावली	स० श्री वेंकटेशनारायण तिवारी
११—तृप्यन्ताम	श्री प्रतापनारायण मिश्र
१२—द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रंथ	(नागरी प्रचारिणी सभा)
१३—द्विवेदी-काव्यमाला	स० श्री देवीदत्त शुक्ल
१४—पल्लव	श्री सुमित्रानन्दन पंत
१५—प्रिय प्रवास	श्री हरिऔध
१६—प्रेमघन सर्वस्व भाग १	(हिन्दी साहित्य सम्मेलन)
१७—बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रंथ	सं० श्री झाबरमल्ल शर्मा एवं श्री बनारसी दास चतुर्वेदी
१८—भारत में अंग्रेजी राज्य भाग ३	कर्मवीर श्री सुन्दरलाल
१९—भारत का इतिहास भाग २	डा० श्री ईश्वरी प्रसाद
२०—भारतेन्दु ग्रंथावली भाग २	(नागरी प्रचारिणी सभा)

२१–भारत दुर्दशा नाटक श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
२२–भारत भारती श्री मैथिलीशरण गुप्त
२३–मौर्य विजय श्री सियारामशरण गुप्त
२४–युग और साहित्य श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी
२५–युगवाणी श्री सुमित्रानन्दन पन्त
२६–योरुप का आधुनिक इतिहास श्री सत्यकेतु विद्यालंकार
२७–रसज्ञ रंजन श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी
२८–राधाकृष्ण ग्रंथावली स० डा० श्यामसुन्दर दास
२९–रामचरित चिन्तामणि श्री रामचरित उपाध्याय
३०–राष्ट्र गीतावली स० रामेश्वर प्रसाद
३१–रोमांटिक साहित्य शास्त्र श्री देवराज उपाध्याय
३२–लोकोक्ति शतक श्री प्रतापनारायण मिश्र
३३–शंकर सर्वस्व स० श्री हरीशंकर शर्मा
३४–शकुन्तला नाटक (अनुवाद) राजा श्री लक्ष्मणसिंह
३५–संस्मरण श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
३६–साकेत श्री मैथिलीशरण गुप्त
३७–स्वजीवनी श्री श्रीधर पाठक
३८–सत्य हरिश्चन्द्र श्री भारतेन्दु
३९–हिन्दी कविता का क्रान्तियुग डा० श्री सुधीन्द्र
४०–हिन्दी कविता मे युगान्तर डा० श्री सुधीन्द्र
४१–हिन्दी काव्य मे प्रगतिवाद श्री विजयशंकर मल्ल
४२–हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ डा० रघुवंश
४३–हिन्दी कोविद रत्नमाला भाग १ डा० श्री श्यामसुन्दर दास
४४–हिन्दी साहित्य का इतिहास श्री रामचन्द्र शुक्ल
४५–हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
४६–हिन्दी साहित्य डा० श्री श्यामसुन्दर दास
४७–हिन्दुस्तान की कहानी श्री जवाहरलाल नेहरू
४८–हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लखनऊ के पंचम अधिवेशन का पं० श्रीधर पाठक का अध्यक्षीय भाषण।

ख—सस्कृत

४९– गरुड पुराण
५०–मेघदूत — श्री कालिदास
५१–श्रीमद्भागवत — महर्षि व्यास
५२–श्रीमद्भगवद् गीता — ”
५३–ऋतु सहार एव अभिज्ञान शाकुन्तल — श्री कालिदास

ग—अग्रेजी

५४–एन इण्ट्रोडक्शन टु द पोयट्री ऑव द रोमाटिक रिवायवल — श्री के० के० शर्मा
५५–ए जनरल हिस्ट्री ऑव योरुप (३५०–१९००) — श्री ओलिवर थेचर तथा श्री फर्डिनैण्ड सिवली
५६–ए पोलिटिकल एण्ड कल्वरल हिस्ट्री ऑव माडर्न योरुप भाग १ — श्री जे० एच० हेज़
५७–इन्साक्लोपीडिया ब्रिटानिका भाग १०
५८–लाइट ऑव एशिया — श्री आरनाल्ड
५९–माडर्न फ्रास—द हिस्ट्री ऑव नेशन्स — श्री एण्ड्रीलेवन
६०–द डेजर्टेड विलेज — श्री गोल्डस्मिथ
६१–द ग्राउण्ड वर्क ऑव ब्रिटिश हिस्ट्री सैक्शन ३ — श्री वार्नर एण्ड मार्टिन
६२–द ग्लिम्पसिस ऑव वर्ल्ड हिस्ट्री — श्री जवाहरलाल नेहरू
६३–द हरमिट — श्री गोल्डस्मिथ
६४–द पोइटीकल वर्क्स ऑव जेम्स टामसन
६५–द पोइटीकल वर्क्स ऑव टामसन ग्रे
६६–द पोइटीकल वर्क्स ऑव लागफैलो
६७–द ट्रेवलर — श्री गोल्डस्मिथ
६८–द मेकिंग ऑव लिटरेचर — श्री आर० एस० स्कॉट जेम्स
६९–द आक्सफोर्ड बुक ऑव एटीन्थ सेंचुरी वर्क्स — श्री डेविड निकॉल स्मिथ

विवेचित सहायक काव्य

अ—ठाकुर जगमोहनसिंह द्वारा रचित

१–पन्ना (पजिका)

२–दोहावली
३–प्रेम रत्नाकर
४–प्रमिताक्षर दीपिका
५–कालिदास—ऋतुसंहार (अनुवाद)
६–पं० रामलोचन प्रसाद का जीवन
७–प्रेमहज़ारा
८–श्री विजय राघवगढ पचीसी
९–कालिदास—कुमारसम्भव (अनुवाद)
१०–प्रेम-सम्पत्ति नाटिका
११–इक्के वाला का नाटक
१२–दम्पति विलाप
१३–पवन दूत
१४–चित्रकूट वर्णन
१५–कपोत विरहाष्टक
१६–कालिदास—मेघदूत
१७–सज्जनाष्टक
१८–श्यामालता
१९–प्रेम सम्पत्तिलता
२०–श्यामा स्वप्न
२१–देवयानी
२२–श्यामा सरोजिनी
२३–प्रलय
२४–श्री चन्द्रिका
२५–श्रवण विलाप

आ—पं० श्रीधर पाठक द्वारा रचित

२६–मनोविनोद
२७–बाल भूगोल
२८–एकान्तवासी योगी
२९–जगत सचाई सार
३०–ऊजड ग्राम
३१–श्रान्त पथिक

३२–काश्मीर सुषमा
३३–आराध्य शोकाजलि
३४–जार्ज वन्दना
३५–भक्ति विभा
३६–श्री गोखले प्रशस्तिः
३७–श्री गोखले गुणाष्टक
३८ -देहरादून
३९–श्री गोपिका गीत
४०–भारत गीत
४१–तिलिस्माती मुंदरी

(इ) राय देवीप्रसाद पूर्ण

४२–पूर्ण संग्रह

(ई) श्री रामचन्द्र शुक्ल

४३–बुद्ध चरित

(उ) श्री रूपनारायण पाण्डेय

४४–पराग

(ऊ) श्री रामनेरश त्रिपाठी

४५–मिलन
४६–स्वप्न
४७–पथिक

(ए) श्री जयशंकर प्रसाद

४८–चित्राधार
४९–कानन कुसुम
५०–महाराणा का महत्व
५१–प्रेम पथिक
५२–झरना
५३–आँसू

(ऐ) श्री मुकुटधर पाण्डेय

५४–पूजा फूल

पत्रिकाएँ

१–हिन्दोस्थान
२–भारतमित्र
३–हिन्दी प्रदीप
४–सरस्वती
५–नागरी प्रचारिणी पत्रिका
६–अभ्युदय
७–विद्यार्थी — म० प० रामललित शर्मा, हिन्दी प्रेस, प्रयाग
८–राम — P O लका, बनारस सिटी
९–विशाल भारत
१०–युगारम्भ — स० व्योहार राजेन्द्रसिंह, जबलपुर
११–प्रहरी

विश्व की रहस्यात्मक भावना में बहुधा दु खवाद का भी मिश्रण रहता है। उसके काव्य मे भी यह प्रवृत्ति उपलब्ध होती है। जीवन के करुण पक्ष के साथ उसमे अन्य पक्ष भी देखने की क्षमता है—

Joy and woe are woven fine,
A clothing for the soul divine
Under every grief and pine
Runs a joy with silken twine
It is right it should be so
Man was made for joy and woe
And when this we rightly know
Safely through the world we go

(सुख-दु ख बडी सुन्दरता से बुने हुये दैवी आत्मा के लिये वस्त्र स्वरूप हैं। प्रत्येक शोक और व्यथा के अन्तर्गत रेशमी धागा पर आनन्द दौड लगाता है। यह ठीक है और ऐमा होना भी चाहिये। मानव वास्तव मे सुख और दु ख के लिये ही बनाया गया था और ठीक रूप मे यदि हमे यह अवगत हो जाता है तब विश्व मे हम कुशलता-पूर्वक प्रयाण करते हैं।)

जीवन के सुख-दु ख, हास-रुदन तथा प्यार-घृणा ऐसे द्वन्द्व हैं, जो निरन्तर रूप मे घटित होते रहते हैं। जब मानव का भाग्य उन्हे सहन करने के लिये ही है तब वह मानव के समान ही उन्हे क्यो न सहन करे? इसी मे उसके व्यक्तित्व की सफलता है। ब्लेक ने इस प्रकार के शब्दो द्वारा मनुष्य को सबल बनाने का प्रयास किया है। उसकी वाणी मे विश्व-बन्धुत्व का भी विकास उपलब्ध होता है। यह भावना यही न समाप्त होकर ईश्वर के अस्तित्व को भी प्रमाणित करती है।

And all must love the human form,
In Heathen, Turk or Jew,
Where Mercy, Love and Pity Dwell,
There God is dwelling too.

—Songs of Innocence—The Divine Image

(हिन्दुओ, मुसलमानो और यहूदियो मे हमे प्रत्येक मानव के साथ स्नेह करना चाहिये। जहाँ दया, स्नेह और करुणा का निवास है वहाँ भगवान भी निवास करते हैं।)

पत्रिकाएँ

१–हिन्दोस्थान
२–भारतमित्र
३–हिन्दी प्रदीप
४–सरस्वती
५–नागरी प्रचारिणी पत्रिका
६–अभ्युदय
७–विद्यार्थी
८–राम
९–विशाल भारत
१०–युगारम्भ
११–प्रहरी

म० प० रामललित शर्मा, हिन्दी प्रेस, प्रयाग
P O लका, बनारस सिटी

स० व्योहार राजेन्द्रसिंह, जबलपुर